सामान्य शिक्षा

(A TEXT BOOK OF GENERAL EDUC/

For 2nd and 3rd Yr. T. D. C.
(Arts, Science and Commerce) Students

•

DR. M. P. ROY
S. D. Govt College, BEAWAR

PROF M. C PALIWAL
Dungar College, BIKANER.

MISS INDU KHANNA
Govt. College JHALAWAR

PROF. P. N. MATHUR
Govt. Girls College, KOTA

PROF. S. N. MATHUR
R. R. College, ALWAR

•

General Editor
DR. V. S. BHARGAWA
Govt. College, DHOLPUR.

•

1968

•

कॉलेज बुक डिपो, जयपुर

प्रकाशक :
[illegible] बुक डिपो
जयपुर

द्वितीय पूर्णतया संशोधित एवं परि

मूल्य : दस रुपया मात्र

मुद्रक
काले

[illegible]

प्रस्तुत पुस्तक टी० डी० सी० कक्षाओं (कला, विज्ञान एवं वाणिज्य) के द्वितीय व तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। लिखते समय विद्यार्थियों को आवश्यकता-पूर्ति का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है। इसीलिए न्यू टाइप प्रश्नों (Objective Type Questions) को भी प्रत्येक अध्याय के अन्त में दे दिया गया है।

राजस्थान के विभिन्न महाविद्यालयों के अनुभवी प्राध्यापकों ने इस पुस्तक को लिखा है अतः आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि विद्यार्थी इसे अवश्य लाभप्रद पायेंगे।

विश्वेश्वर स्वरूप भार्गव
एम. ए., पीएच. डी.

SYLLABUS

GENERAL EDUCATION

There shall be one paper of three hours duration carrying 100 marks. The Minimum pass marks shall be 36.

A candidate shall be required to attempt :

1. 3 short essays — 60 marks

N B. (i) Students from Science Faculty will be required to attempt 2 short essays from Social Sciences and Humanities Section and one from the Physical and Biological Sciences Section

(ii) Students of Arts Faculty and Commerce Faculty will be required to attempt 2 essays from Physical and Biological Sciences Section and one from Social Sci nces and Humanities Section.

2. (i) 2 Brief notes normally not exceeding 100 words — 20 marks

(ii) 2 series of objective type tests. — 20 marks

NATURAL SCIENCES

Role of Science and Technology in the modern world.

(a) The evolution of Science : (i) Ancient Science the parallel growth of practical arts and theoretical speculation-illustrated by the evolution of ideas about [illegible]

(b) [illegible]

outlook.

(c) Science and Society :—

(i) Constructive and destructive applications of Science.

(ii) Energy and its applications-idea of matter and energy; its different forms, convertible into each other; Sources of energy-from fire to atomic energy.

(iii) Fight against diseases.
(iv) Science and culture
(v) The Social responsibility of Science.

SOCIAL SCIENCES

A. Cultural Heritage of India.

(a) Cultural synthesis in ancient India: Pre-vedic Ary and Buddhist influences, fundamental teachings of the principal religions of India and their contribution to our common heritage.

(b) Cultural synthesis during the medieval peri Impact of Islam on Indian Society, Bhakti and S Movements.

(c) Cultural Integration in Modern India :

(i) The impact of the West.

(ii) The study of Indian renaissance as a fusion of our traditional values and ideas of industrialised West

(d) The Freedom Struggle :—

(i) The role of the Freedom Movement in unif the country and its people.

(ii) Various political trends in the Nationalist Mo ments, Impact of the National Movement Socio-Economic life in the country.

B. Contemporary Problems :

(a) The Challenge of Economic regeneration-India's needs and Resources; need for planning in underdeveloped countries like ours, Problems of planning in economic development of India; especially that of agriculture and industry.

(b) Problems of emotional integration and national unity- A study of the devise and harmonising forces in contemporary Indian society.

(c) Salient features of Indian Art, architecture, sculpture and painting.

विषय-सूची

भाग १ : सामाजिक विज्ञान
(Part I : Social Sciences)

भाग २ : प्राकृतिक विज्ञान
(PART II : NATURAL SCIENCES)

PART 1

सामाजिक विज्ञान

(SOCIAL SCIENCES)

भारत की सांस्कृतिक परम्परा
(CULTURAL HERITAGE OF INDIA)

प्राचीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय पूर्व वैदिक आर्यकालीन एवं बुद्धवादी प्रभाव, भारत के प्रमुख धर्मों की आधारभूत शिक्षाएँ और उनका हमारी सांस्कृतिक परम्परा में योगदान।

मध्ययुगीन सांस्कृतिक समन्वय, भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव भक्ति तथा सूफी आन्दोलन।

आधुनिक भारत मे सांस्कृतिक एकीकरण :

(i) पश्चिम का प्रभाव

(ii) भारतीय पुनर्जागरण-प्राचीन परम्परागत मूल्यों और अर्वाचीन पश्चिमी विचारों के संयोग के रूप में।

स्वातन्त्र्य संघर्ष :

(i) स्वातन्त्र्य-आन्दोलन-देश और जनता के एकीकरण में उसकी भूमिका।

(ii) राष्ट्रीय आन्दोलन में विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीय आन्दोलन का देश के सामाजिक-आर्थिक जीवन पर प्रभाव।

प्राचीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय-पूर्व-वैदिक आर्यकालीन एवं बुद्धवादी प्रभाव; भारत के प्रमुख धर्मों की आधारभूत शिक्षाएं और उनका हमारी सांस्कृतिक परम्परा में योगदान

[CULTURAL SYNTHESIS IN ANCIENT INDIA-PRE-VEDIC ARYAN AND BUDHIST INFLUENCE; FUNDAMENTAL TEACHINGS OF THE PRINCIPAL RELIGIONS OF INDIA AND THEIR CONTRIBUTION TO OUR COMMON HERITAGE]

भूमिका, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के आधारभूत तत्व

हमारा भारत संसार के प्राचीनतम सभ्य देशों की श्रेणी में अग्रणी स्थान रखता है। नश्वर संसार में प्रत्येक वस्तु विनाश को प्राप्त होती है। सभ्यता और संस्कृति इसका कोई अपवाद नहीं है। मिश्र, मैसोपोटामिया, यूनान, रोम आदि की प्राचीन सभ्यताए विनाश के गर्त में समा गई हैं। यह एक सौभाग्य और गौरव की बात है कि भारत को हजारों वर्ष पुरानी और प्राचीनतम सभ्यता आज भी अपना गौरवमय अस्तित्व बनाये हुए है, अत: भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अतीत गौरवपूर्ण है और उसकी आधारशिला इतनी सशक्त एवं दृढ है कि युगों के उत्थान पतन और झंझावातों को ठोकरें खाकर भी वह आज भी अडिग, अविचल खड़ी है। अनेक विदेशी सभ्यताओं ने इसे निगलने का प्रयास किया, किन्तु यह अपनी प्रबल समन्वयकारी शक्ति के बल पर मिटी नहीं, बल्कि उन्हे अपने में मिलाकर आज भी जीवित-जागृत खड़ी है।

भारतीय संस्कृति आदि से अन्त तक न तो आर्यों की रचना है और न द्रविड़ों की, प्रत्युत, उसके भीतर अनेक जातियों का अंशदान है। वह उन सभी जातियों और मननियों का समुदाय है जो कि समय-समय पर इस देश मे आई और यहीं बस गई। इस तरह भारतीय संस्कृति महा मानवता का परिवार है जिसका अध्ययन संकीर्ण दृष्टि से नहीं किया जाना चाहिए। तो आइये यहा हम अपनी इस प्राचीनतम भारतीय संस्कृति की कुछ प्रमुख विशेषताओं अथवा उसके प्रधान तत्वों का अवलोकन करें।

(१) समन्वय शक्ति—भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के स्थायित्व का दूसरा प्रधान कारण उसकी समन्वय शक्ति है। प्रसिद्ध इतिहासकार [illegible] के शब्दों में भारतीय संस्कृति उस महा समुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियां आकर विलीन होती जा रही हैं। मिस्र, सुमेरिया, यूनान आदि देश बहुत प्राचीनकाल में सभ्य हो गये थे, किन्तु वहां की वह सभ्यता [illegible] रूप से वर्तमान युग तक अपने अस्तित्व को न बना सकी। किन्तु अपनी अद्भुत समन्वय शक्ति के बल पर भारत के सांस्कृतिक जीवन की धारा आज तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। भारत में समय समय पर, प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक भारत पर नाना संस्कृतियों ने प्रभाव जमाना चाहा, उनका यहां [illegible] शासन भी रहा, किन्तु भारतीय संस्कृति की मर्यादा मिट न सकी। उसने सबको आश्रय दिया, उनके सुन्दर तत्वों को ग्रहण करने में संकोच नहीं किया और साथ ही अपनी प्राचीनता को बनाये भी रखा। विदेशी भी यहां आकर [illegible] अपने को भारतीय कहने लगे। वास्तव में विनम्र, उदार और उदात्त [illegible] भारतीय संस्कृति में नये-पुराने सभी प्रकार के तत्वों का [illegible] आज भी विद्यमान है। इसका दायरा बहुत बड़ा है। यह नाला, नदी या [illegible] नहीं, समुद्र है।

(२) सत्यं, शिवं सुन्दरम् का आदर्श—भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र "सत्यं, शिव, सुन्दरम्" की भावना में निहित है। यह सत्य, सर्वकल्याण [illegible] जीवन के सौंदर्य में आस्था रखती है। ये वे आधार-शिलाएं हैं जो काल [illegible] अपरिवर्तनीय रहती हैं। सत्य, शिव, सुन्दरम् की भावना में ही जीवन की पूर्णता और यही भावना भारतीय संस्कृति की प्राण है।

(३) व्यापकता—भारतीय सभ्यता व संस्कृति की एक अन्य विशेषता उसकी व्यापकता है। उसका क्षेत्र किसी सीमा में बन्धा हुआ नहीं है। इसका [illegible] सदैव सर्वाङ्गीण विकास का रहा है। इसने जीवन की शारीरिक, मानसिक [illegible] आत्मिक—तीनों शक्तियों को उन्नत बनाने की चेष्टा की है। इसने सदैव "[illegible] वद्धो" की प्रेरणा दी है और विरोध में भी एकता का जन-जन को सन्देश दिया है। यही कारण है कि धरती पर विभिन्न विचार-दर्शन, सामाजिक व्यवस्थाएं [illegible] सांस्कृतिक विभिन्नताएं एक साथ मुक्त रूप में विकसित हो सकी हैं।

(४) आध्यात्मिकता—भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में आध्यात्मिकता पर, धर्म पर विशेष बल दिया गया है। इसका धर्म एक संकीर्ण धर्म कभी नहीं रहा। अपने मुख्य अर्थ में वह मानव मात्र के लिए है। इसने सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य एव त्याग को सदैव सर्वोच्च सम्मान दिया है। भारत का प्रत्येक मनुष्य धार्मिक भावना से ओत-प्रोत है और उसमें जाने-अनजाने यह विचार बना रहता है कि जो धर्म का नाश करेगा उसका [illegible] विनाश कर देगा और धर्म की रक्षा करने वालों की धर्म भी रक्षा करेगा [illegible] ईश्वर [illegible] उपासना में सन्निहित नहीं है, अपितु [illegible]

धर्म की भावना भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को अब तक जीवित रखने का एक प्रधान कारण रही है।

(५) धार्मिक सहिष्णुता एवं वसुधैव कुटुम्बकं की भावना—धार्मिक सहिष्णुता हिन्दू संस्कृति की अपूर्व विशेषता है। भारतीय दर्शनशास्त्रों के अनुसार मनुष्य के लिए एक ही मार्ग नहीं है। व्यक्तिगत विकास, अपनी समझ और मनोदशा के विभिन्न अनुसार मार्ग अपनाये जा सकते हैं। हमारे यहाँ ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञानमार्ग भी है, भक्तिमार्ग भी है, कर्म-मार्ग भी है और योग-मार्ग भी है। जिसको जैसी क्षमता हो, जैसी रुचि हो, जैसी योग्यता हो वह उसी के अनुसार चाहे जिस मार्ग को अपना सकता है। हमारे यहां निराकार ईश्वर की उपासना का भी विधान है तो साकार रूप में परमेश्वर की भक्ति करने की बात भी कही गई है। वेदान्त का अद्वैतवाद, बौद्ध धर्म का अनीश्वरवाद तथा चार्वाक का भौतिक नास्तिकवाद सबका हमारे धर्म में समन्वय हो गया है। धार्मिक क्षेत्र में जितनी सहिष्णुता तथा आचरण की स्वतन्त्रता हमारे देश में रही उतनी कभी भी कहीं नहीं रही होगी। भारतवासी सदा से धार्मिक मामलों में बड़े उदार रहे हैं। उन्होंने मुसलमानों के पीर-पैगम्बरों का भी आदर किया है और ईसा तथा मूसा दोनों ही उनकी दृष्टि में पूज्य रहे हैं।

भारतीय संस्कृति धार्मिक सहिष्णुता, शांतिप्रियता एवं मानसिक उदारता के लिए आज भी विश्व-विश्रुत है। भारतीय सभ्यता ने "जीओ और जीने दो" की भावना को ग्रहण किया है, विश्व के हर भाग के वासी को अपना बन्धु कहकर पुकारा है, उससे आलिंगन किया है। साधारणतया विश्व के दूसरे देशों और सम्प्रदायों में स्वयं को उत्कृष्ट तथा दूसरों को हीन समझने की संकीर्ण वृत्ति रही है। लेकिन भारतीय सभ्यता दूसरों का पतन देखकर नहीं, वरन् प्रगति देखकर प्रसन्न होती रही है, दूसरों का सम्मान करने में सदैव आगे रही है। आज भी भारत के नैतिक

उसकी विविधता में एकता । भारत के लोगों में कुल, वंश, धर्म और भाषा की विविधता होते हुए भी आधारभूत एकता बनी रही है । आर्यों, द्रविड़ों, हूणों, विभिन्न भाषा-भाषियों, विभिन्न धर्म-अनुयायियों, प्रतिमावादियों, नास्तिकों आदि मे विभिन्न दृष्टियों से महान् अन्तर रहे हैं और आज भी है, कि जहां तक देश की संस्कृति का सवाल है, उन सबमें एक आधारभूत एकता पायी जाती रही है । यह सांस्कृतिक एकता और एकरूपता सामाजिक तथा संस्कारो और उत्सवों से प्रकट होती है । श्री जोड (Joad) ने इसी से प्रभावित होकर लिखा है—"मानव जाति को भारतवासियों ने जो सबसे बड़ा वरदान के रूप मे दी है, वह यह है कि भारतवासी हमेशा ही अनेक ज लोगों और अनेक प्रकार के विचारों के बीच समन्वय स्थापित करने की है, और सभी प्रकार की विविधताओं के बीच एकता कायम करने की लियाकत और ताकत लाजवाब रही है ।" आज विश्व-शांति की स्थापना के विविधता में एकता के इसी मार्ग को अपनाना अनिवार्य हो गया है ।

(८) आश्रम व्यवस्था – जीवन को चार आश्रमों मे मनोविज्ञान के र विभाजित करना हमारी संस्कृति की एक अद्वितीय विशेषता है । प्राचीन भ स्कृति के अनुसार भारतीय लोगों की आयु सौ वर्ष की मानी गयी है और ा विभाजन इस प्रकार किया गया है–प्रथम २५ वर्ष तक विद्याध्ययन और ब्र लन, द्वितीय अवस्था २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थाश्रम के सुखों का उपभोग सरी अवस्था याने वानप्रस्थ आश्रम ५० से ७५ वर्ष तक की आयु जंगलों में र वान का चिन्तन करने मे बिताना, उसके बाद ७५ से १०० वर्षो की आयु यास आश्रम आता है जिसमे मनुष्य सन्यास धारण कर लेता है । इस प्रकार श्रम-व्यवस्था भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है ।

भारतीय संस्कृति की यह आश्रम-व्यवस्था वैज्ञानिक आधार पर आश्रित वैज्ञानिको का कहना है कि आयु के साथ-साथ मनुष्य का जीवन के प्रति दृ ष्टिकोण बदलने लगता है । धीरे-धीरे मानसिक परिपक्वता आती है और मनोदश परिवर्तन होता है । हमारे ऋषियो ने इस बात को भली-भांति समझ लिया था

(९) पुनर्जन्म व आशावाद—पुनर्जन्म व आशावाद का सिद्धान्त हमारी ति ने हमको सिखाया है । इस सिद्धान्त के अनुसार आत्मा अमर है और वह एक र से निकलकर दूसरे मे, दूसरे से तीसरे में प्रवेश करती है और इसी प्रकार आवा गमन का चक्कर चलता रहता है । सद्कर्मों द्वारा ही मनुष्य इस चक्कर से ाता है । जो बुरे कर्म करता है, उसका पुनर्जन्म ऐसे स्थान पर होता है जहां दु:ख ही दु:ख मिलता है । इस प्रकार की विचारधारा से मनुष्य अच्छे कार्यों रता है और बुरे कार्यों से घृणा करता है । हमारी संस्कृति हमें आशावादी भी ी है और यही कारण है कि भारतीयों में यह आशा बनी रहती है कि वह एक सुकर्म करके मोक्ष की प्राप्ति कर सकेगा ।

(१०) भाग्यवाद तथा निष्फल कर्म—भारतीय भाग्यवाद मे विश्वास रखे

है जिसके अनुसार जो दु:ख या सुख उन्हे भोगना पडता है वह उनके भाग्य मे लिखा होता है–वे ऐसा मानते हैं। जब कोई व्यक्ति अच्छा कार्य करता है और उसे बुरा परिणाम मिलता है तो वह यह सोचकर सतोष धारण कर लेता है कि मेरे भाग्य मे यही लिखा था और फिर उत्साह से आगे प्रयत्नशील हो जाता है। इस प्रकार 'भाग्यवाद' भारतीयो को सन्तोषी बनाता हुआ निरुत्साही मानव को भी उत्साह प्रदान करता है।

हमारी सस्कृति बिना फल की आशा के कर्म करने मे विश्वास रखती है जैसा कि गीता मे वर्णित है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"

अर्थात् कार्य करते रहो, फल की इच्छा मत रखो। यह सिद्धात हमें निर्भीक होकर कार्य मे सलग्न रहने की प्रेरणा प्रदान करता है। मनुष्य इससे किंकर्तव्य-विमूढता मे बचता है।

(११) वर्ण व्यवस्था—आश्रम-व्यवस्था की भाति ही हमारी वर्णव्यवस्था भी बडे स्वस्थ मनोवैज्ञानिक आधार पर बनायी गयी थी। जन्म मे कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य नही माना जाता था। भारतीय समाज का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों मे विभाजन मानव प्रकृति और स्वभाव के अध्ययन के उपरान्त किया गया था ताकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुकूल कार्य मिल े और वह इस कार्य मे सम्बन्धित अपने कर्तव्य का पालन कर सके। ब्राह्मण की तिष्ठा ज्ञान, क्षत्रिय की प्रतिष्ठा बाहुबल और वैश्य की प्रतिष्ठा उसके व्यापार मे शल होने मे थी। वस्तुतः वर्ण–व्यवस्था उदार वैज्ञानिक सिद्धान्तो पर अवलम्बित । जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविकास का पूरा-पूरा अवसर मिलता था। हमारे ःषि-मुनियों ने मनुष्य के व्यक्तित्व को पहचान कर उसे जीवन मे उपयुक्त कार्य में गाने की एक प्रणाली के रूप मे वर्ण व्यवस्था का आयोजन किया था। हमारे पूर्वज ःषि धर्म अर्थात् स्वभाव के विपरीत काम करना या कहना बुरा समझते थे। आज ो देखा जाता है कि प्राय. जिस व्यक्ति की रुचि विज्ञान मे है वह व्यापार हीं कर सकता और व्यापार मे रुचि रखने वाला हाथ मे कुदाली नही पकड सकता, ।द्यपि इसके अपवाद भी हैं।

इस प्रकार भारतीय सस्कृति अपनी विशेषताओ के कारण अद्वितीय सस्कृति । जिसका अनुसरण करने मे हम सफल जीवन का निर्माण कर सकते हैं। हमारी ाज की सभ्यता और सस्कृति भौतिक एव व्यावहारिक दृष्टि से यद्यपि एक विदेशी ाभ्यता बनती जा रही है किन्तु इसके प्राचीन मौलिक तत्व आज भी सशक्त हैं और ातमा से इसे विदेशी बनने से रोके हुए हैं। हमारी यही कामना है कि मौलिक तत्व क बार पुन इतने सशक्त हो उठें कि हम अपने उस प्राचीन गौरव को पुन. पा ाकें जब हम हर क्षेत्र मे विश्व के सिर-मौर थे।

(१) भारत के सांस्कृतिक निर्माण में विभिन्न जातियों का योग

भारत का इतिहास उस युग के विवरण से प्रारम्भ होना चाहिये जब मानव प्रथम बार इस देश में [illegible]

यह नहीं कहा जा सकता कि मानव ने कब और कहां से भारत में प्र
किया और इसे अपना घर बना लिया। भूगर्भ-शास्त्रियों के कथनानुसार इससे
पहिले मानव दौर पड़ा था और उस समय दक्षिण भारत एक तरफ अफ्रीका से।
सम्भवत दूसरी ओर आस्ट्रेलिया से एक स्थल खण्ड द्वारा जुड़ा हुआ था।
वर्षों के उपरान्त मध्यवर्ती स्थल के समुद्र में विलीन हो जाने पर यह संयोजन
हो गया। समुद्र की सतह के नीचे आज भी भारत और अफ्रीका को जुड़ा
वाली पर्वत श्रेणी विद्यमान है।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि भारत के आदर बसने
प्रथम मानव इस देश के ही निवासी थे या उनका आगमन आस्ट्रेलिया और
से हुआ था। लेकिन यह स्पष्ट है कि भारत में मनुष्य के प्रथम अवशि
दक्षिण भारत में प्राप्त हुए हैं। भद्दे और भोंडे रूप वाले कठोर पत्थर के
और अस्त्र-शस्त्र जो प्रस्तर युग के मानव से संबंधित हैं, दक्षिण भारत में
फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं। कालान्तर मे मनुष्य उत्तरी भारत मे भी निवास करने
और सदियों के बाद द्रविड़ो, आर्यों, ईरानियों, यूनानियों, शकों, यूचियों, हूणों,
मानों और यूरोपवासियों ने एक के बाद एक भारत मे प्रवेश किया। इसी का
स्वाभाविक परिणाम है कि भारत के लोग किसी एक जाति के वंशज नहीं हैं
विभिन्न जातियों के वंशजों का सम्मिश्रण है। ये जातियां परस्पर इतनी घुल
गई हैं कि यह कहना अवश्य ही कठिन है कि एक प्रकार की जाति का आरम्भ
होता है और दूसरी का अन्त कहां। वास्तव मे इस उक्ति में कोई अतिशयो
प्रतीत नहीं होती कि भारत "जातियों का अजायबघर" है। सदियों के अन्त
और जातियों के सम्मिश्रण से सदा ही संस्कृति को रूप मिलता है और भारत
प्रकार के जातीय सम्मेलन तथा सम्मिश्रण का अपूर्व क्षेत्र रहा है। भारत की सी
पर विदेशी जातियों की जब जब कुदृष्टि दिखाई पड़ी तब तत्कालिक भारतीयों में रो
प्रतिक्रिया हुई, फिर द्वन्द्व छिड़ गया और अन्त मे एक जातीय सामञ्जस्य का
का रूप निखरा। इसी तरह फिर जातियां आईं, उनमें लोहा बजा और उनके
मिश्रण से एक तीसरी जाति का प्रादुर्भाव हुआ। एक ने दूसरी पर जाने-अन
अपनी गहरी सांस्कृतिक छाप डाली और दूसरी ने उसे जाने-अनजाने स्वीकार कि
इस तरह सदियों तक अनवरत रूप से चलने रहने वाले आदान-प्रदान के फलस
भारत इस अपनी संस्कृति का कलेवर बना पाया। इस पृष्ठभूमि में यह कहा
सकता है कि आगमन, संघर्ष और निर्माण हमारी संस्कृति को ये तीन आधार
परिस्थितियां हैं।

तो फिर हमारी संस्कृति का निर्माण करने वाली इन विभिन्न जातियों
बारे में हमें कुछ जानना चाहिये। यदि शरीर और भाषा के अनुसार भारत के
का परीक्षण किया जाए तो जातियों के निम्नलिखित भेद स्पष्ट होते हैं।

(१) आदिम और जंगली जातियां—इस श्रेणी में कोल, भील, गोंड
संथाल जातियां आदि जैसा मोटे और मां

श्यामवर्णीय होता है। आधुनिक भारत मे कोल और सथाल जातियाँ उडीसा तथा छोटा नागपुर मे, भील राजस्थान, विन्ध्याचल की श्रेणियों और मध्य भारत मे तथा गोंड मध्य प्रदेश के कुछ भागो मे पाई जाती हैं। इनकी अपनी एक विशिष्ट भाषा है जिसके चिन्ह पंजाब से लेकर मद्रास तक सम्पूर्ण भारत मे यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। इसकी भाषा अधिकांशत: पालीनीशिया एवम् मेडागास्कर के निवासियों की भाषा से मिलती-जुलती है। सम्भवत किसी समय इस समस्त भूतल पर एकसी जाति के मनुष्य निवास करते होंगे और कालान्तर मे इस जाति की शाखाएं विभिन्न स्थानो पर फैल गई होंगी। भारत में बिखरी हुई ये जंगली जातियां आज भी असंख्य है। विद्वान इस विषय मे एक मत नहीं हैं कि ये ही जातियां भारत की मूल निवासी है अथवा सदियो पहले प्राचीन युग मे विदेशो से भारत मे आई थीं। हा, अनुमान यह लगाया जाता है कि किसी समय एक विस्तृत भू-भाग पर ये लोग बसे हुए थे और धीरे-धीरे किसी अन्य शक्तिशाली जाति ने, सम्भवत द्रविडो ने, इन्हें पीछे हटाया और वनों तथा घाटियो के सुरक्षित स्थानो मे ढकेल दिया। ये द्रविड शायद सम्पूर्ण देश मे सर्वत्र फैल गये। डाक्टर राधा कुमुद मुकर्जी के अनुसार भारत मे उत्तर पाषाण काल की संस्कृति और मिट्टी के बरतन बनाने की कला आदिम जातियों की ही देन है। इन जातियो की भारत को सबसे बडी देन इनकी भाषा है जो चिरकाल से चली आ रही है।

(२) मगोल जाति—भारत में मगोल विशेषताओं से युक्त मनुष्य भी हैं। इनका कद छोटा, वर्ण पीला, नाक छोटी और मुख चपटा है तथा गालों की अस्थियां उठी हुई हैं। इनके दाढ़ी का अभाव है। ये लोग उसी जाति से सम्बन्धित हैं जिससे तिब्बती, चीनी, जापानी, स्यामी और बर्मी लोग हैं। तिब्बत और मंगोलिया को इनका मूल निवासस्थान माना जाता है। भारत मे उत्तर पूर्व के पर्वतीय दर्रों से इन्होंने प्रवेश किया और कालान्तर में आर्यों ने इन्हें अपने मे मिला लिया। वर्तमान समय में मगोल जाति के लोग सिक्किम, अलमोडा, गढवाल, भूटान और आसाम की पहाड़ियों मे पाये जाते हैं। भारत में गुरखा, भूटिया, खासी मंगोलिया जाति के उदाहरण हैं। मोहेन-जोदेडो मे पाये गये सिर की अस्थियों के अवशेष और मिट्टी के बर्तनो पर बने चित्र मगोल जाति के चिन्ह ग्रहण किये हुए हैं।

(३) द्रविड—द्रविड भारत मे कब आये, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अवश्य है कि उनका आगमन आर्यों मे पहिले हुआ। द्रविडो का मूल निवासस्थान भी आज तक विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान उन्हें कोलो और भीलो के समान पाषाण तथा धातु युग के मनुष्यों का वशज मानते हैं और उन्हें भारत के प्राचीनतम मूल निवासियों मे गिनते हैं। इसके विपरीत कतिपय विद्वानों के मतानुसार द्रविड कोलो और भीलो की अपेक्षा अधिक विवेकशील और प्रगतिशील थे। अनेक दूसरे इतिहास वेत्ताओं के मत में उनका उद्गम स्थान अफ्रीका की नीग्रो जाति से है। विद्वानों का एक समुदाय ऐसा भी है जो इन्हें सिन्धु घाटी की सभ्यता के निवासियों से सबंधित करता है। परन्तु अधिक प्रसिद्ध धारणा यही है कि ये विदेशी ही थे जो भूमध्य समुद्र तट से अथवा उत्तरी पश्चिमी भारतीय दर्रों से भारत

कालान्तर में द्रविडों ने आर्य संस्कृति को अपना लिया, फिर भी उनकी संस्कृति का विकास आर्यों की अपेक्षा विभिन्न दिशा में होता रहा। द्रविडों की सभ्यता इतनी उन्नत थी कि शायद आर्य संस्कृति भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सकी। इस संदर्भ में आर्य और द्रविड संस्कृति की संक्षिप्त तुलना उल्लेखनीय होगी—

(क) आर्यों में वर्णाश्रम (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) का सामाजिक सिद्धांत प्रचलित था। द्रविडों ने इस प्रकार के किसी सामाजिक सिद्धान्त को न अपनाया और न उसका प्रचार ही किया। जाति प्रथा आर्यों की सामाजिक व्यवस्था की नींव थी, द्रविडों के समाज में इसका भी सर्वथा अभाव था।

(ख) द्रविडों के विवाह सम्बन्धी नियम आर्यों के नियमों से मिलते-जुलते थे। व द्रविड अपने रक्त-सम्बन्ध के वर्ग में ही परस्पर विवाह करते थे। उनमें सगोत्र विवाह वैध थे। आर्यों में इस प्रकार के व्यावहारिक सम्बन्धों का पूर्णतः निषेध था।

(ग) द्रविडों की सामाजिक व्यवस्था मातृ-सत्तात्मक थी, जबकि आर्यों की पितृ-सत्तात्मक।

(घ) द्रविडों का जीवन, उनकी विधियाँ और परम्परायें, उनके आचार-विचार और धर्म तथा भाषा आदि आर्यों से सर्वथा भिन्न थे।

(४) आर्य—आर्य कौन थे, कैसे थे और इनकी सभ्यता कितनी उन्नत थी तथा उसने भारतीय संस्कृति को किस तरह और कितना प्रभावित किया—इस सब का वर्णन आगे आर्य कालीन सभ्यता के अन्तर्गत किया गया है। यहां इतना ही लिखना पर्याप्त है कि आर्य श्वेत वर्ण, ऊँचा कद, प्रशस्त मस्तिष्क और लम्बी नाक वाले थे। ये उत्तर पश्चिम के दर्रों से भारत में आये थे और अपने पूर्ववर्ती निवासियों—द्रविडों को पराजित करके यहीं बस गये थे पहले ये पंजाब में बसे तब पूर्व और दक्षिण की ओर फैल गये। यहां के मूल निवासियों के अधिक संपर्क में आने से और उनसे रक्त मिश्रण होने से शनैः शनैः उनकी शारीरिक विशेषताओं में भी परिवर्तन हो गया। इस मिश्रण से भारत में एक सकर सभ्यता का उदय हुआ जिसमें आर्य और द्रविड दोनों संस्कृतियों के तत्व समान रूप से विद्यमान थे।

भारतीय संस्कृति पर जातियों का प्रभाव :—आर्यों के बाद ईरानी, यूनानी शक, हूण, मुसलमान, अंग्रेज आदि एक के बाद एक भारत में आये और उन्होंने भारतीय संस्कृति को कुछ दिया और उससे कुछ लिया। इस तरह भारतीय संस्कृति का निखार हुआ और वह अपना वर्तमान रूप धारण कर सकी। जातियों की विभिन्नता ने भारतीय संस्कृति में एक विशिष्टता की झलक उत्पन्न कर दी। यदि यह कहा जाए कि भारतीय संस्कृति आर्यों और अनार्यों के मूल तत्वों का एक सुन्दर समन्वय है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतीय संस्कृति में जो अध्यात्म-वाद है वह आर्यों की देन है, परन्तु कला एवं अन्य विशेषताओं पर अनार्यों की अमिट छाप है। द्रविडों की धार्मिक भावना और प्रथाओं का प्रभाव अमिट रहा है। यज्ञ, नाग, प्रेत व वृक्ष पूजा अनार्य जातियों से ग्रहण की गई है और मूर्ति-पूजन भी अनार्य जातियों से लिया गया है। सेवा की कल्पना, शक्ति की पूजा तथा मातृ-देवियों की आराधना भी आर्यों की देन है।

[जो]दाडो" प्रचलित किया था जिसका अर्थ है—"मुर्दों का टीला।" इन टीलों पर [स्थि]त एक बौद्ध विहार एवं स्तूप के संबंध में सन् १९२२ ई० में कुछ खुदाई हो रही [थी]। खुदाई होते-होते अचानक प्रागैतिहासिक युग की कुछ मुद्राएं प्राप्त हुईं। ऐसी [ही] अनेक मुद्राएँ पंजाब से माण्टगोमेरी जिले के हड़प्पा नामक गाँव में मिल चुकी [थीं]। इन बातों से प्रभावित होकर सन् १९२२ में एक विशेष योजना के अन्तर्गत [मो]हेनजोदाड़ो एवं हड़प्पा तथा उनके आसपास के स्थलों पर खुदाई की गई। पानी [की] सतह को छूती हुई सात तहों तक खुदाई में प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई। खुदाई [क]रने पर यह पता लगा कि इन दोनों नगरों की-सी सभ्यता पश्चिम में १५० मील [त]क और उत्तर में शिमला तक फैली हुई थी। खुदाई के द्वारा प्राप्त अवशेषों के आधार पर भारत की प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता अब कम से कम ५००० वर्ष पुरानी उस समय की झांकी जाती है जब यह उन्नति की चरम सीमा पर थी। अभिप्राय यह हुआ कि इसके विकास का आरम्भ तो और भी पुराना है। अनेक इतिहासकारों का मत है कि अब इसे सिन्धु घाटी की सभ्यता भी कहना उचित नहीं है, क्योंकि यह सभ्यता गंगा की घाटी, सम्पूर्ण राजस्थान, पंजाब, सिन्धु और और गुजरात तक व्याप्त थी। अतः इसे प्राचीन भारत की सभ्यता कहना ही उपयुक्त है। राजस्थान के उदयपुर नगर के आयड़ भाग में हाल ही की खुदाई के फलस्वरूप ऐसे निश्चित प्रमाण मिले हैं जो मोहेनजोदाड़ो के प्राप्त अवशेषों के समकालीन अथवा उससे भी प्राचीन ठहरते हैं।

कैसे लोप हुआ ? :— भारत की इस प्राचीन सभ्यता के विकास की कहानी जिस तरह अनुमान व अतीत के गर्भ में छिपी हुई है उसी तरह इसके लोप होने का विषय भी अनुमान की ही सामग्री है। यह अनुमान लगाया जाता है कि मोहेनजोदाड़ो एवं हड़प्पा के नगर प्रायः २५०० ई०पू० में ध्वस्त एवं विलीन हो गये थे। इनके ध्वस्त एवं विलीन होने के जिन अनेक कारणों का अनुमान लगाया जाता है, वे ये हैं—

(क) सिन्धु नदी की भयंकर बाढ़ों ने इन्हें अपने में विलीन कर लिया होगा, अथवा

(ख) जलवायु में असाधारण परिवर्तन, विशेषतः मौसमी हवाओं के रुख बदलने से और इस कारण वर्षा कम होने से तथा धीरे-धीरे बालू-रेत के टीलों द्वारा भूमि ढक जाने से यह सभ्यता उजड़ गई होगी, अथवा

(ग) किन्हीं बाह्य आक्रमणों ने इसे समाप्त कर दिया होगा। सिन्धु प्रदेश में आक्रमण होने के कोई भी चिन्ह अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं, अतः इसी अनुमान को अधिक बल मिला है कि सम्भवतः विश्व की इस प्राचीनतम सभ्यता की समाप्ति प्रकृति के हाथों द्वारा ही हुई। हाँ, यह अवश्य है कि कालान्तर में सिन्धु सभ्यता के प्रदेशों में आर्य-सभ्यता प्रसारित हो गई। सिन्धु-सभ्यता की कब्र पर वैदिक आर्यों

इनका विकास किन लोगों ने किया ?—"मोहेनजोदाड़ो और हड़
सम्यता" अथवा "प्राचीन सिन्धु-सम्यता" के निर्माताओं का पता निश्चित
अभी तक नहीं चला है। अभी तक इतिहासकार यह स्थापित करने में असमर्थ
हैं कि इस सभ्यता के निवासी कौन थे तथा कहाँ से आये थे। सिन्धु नदी की
में विकसित होने पर भी यह भारतीय आर्य सभ्यता नहीं थी। प्राप्त अवशेषों
आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि वहाँ के निवासी एक ही ढंग, व
अथवा नस्ल के नहीं थे। वहाँ प्राप्त मानव-अस्थियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि
लोग भिन्न-भिन्न जाति और स्थानों से आये हुए थे। अधिकांश विद्वान यह मानते
कि द्रविड लोग इस सभ्यता के निर्माता थे। भूमध्य-सागरीय प्रजाति के लो
(द्रविड) ने ही इस सभ्यता का विकास किया था, लेकिन द्रविडों एवं सिन्धु घाटी
तत्कालीन लोगों की अन्त्येष्टि-क्रियाओं में बड़ा अन्तर रहा, इसलिये कुछ विद्वा
द्रविडों को सिन्धु घाटी की सभ्यता का निर्माता मानने से इन्कार करते हैं। सिन्धु-
सभ्यता एवं वैदिक आर्य सभ्यता में भी काफी अन्तर है। मोहेनजोदाड़ो के अवशेषों
तथा मेसोपोटामिया के प्राचीन उर आदि शहरों के अवशेषों में कुछ समानता मिल
है। कुछ भारतीय मुहरें भी वहाँ प्राप्त हुई हैं। अत. अनेक विद्वान सिन्धु-सभ्यता
व सुमेरियन सभ्यता को समकालीन मानते हैं। कुछ भारतीय विद्वानों का विचार है
कि सप्तसिन्धव से जो आर्य दस्यु एवं वृन लोग अपने मूल निवास को छोड़कर
इधर-उधर फैले, उन्हीं ने सिन्धु-सभ्यता का विकास किया। जो भी हो सिन्धु-
सभ्यता की उत्पत्ति (Origin) अभी कल्पना के गर्भ में ही है।

सिन्धु सभ्यता का वर्णन :—सिन्धु-सभ्यता कैसे प्रकाश में आयी, यह कहाँ
मिटी और किन लोगों ने इसका विकास किया, आदि बातों पर संक्षेप में प्रकाश
डालने के उपरान्त अब हम इस सभ्यता के वास्तविक वर्णन पर आते हैं। सुविधा
की दृष्टि से हम इस वर्णन को निम्नलिखित अनेक उपशीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित
करेंगे—

स्थापत्य एवं नगर-निर्माण कला—प्राप्त अवशेषों से प्रकट होता है कि
मोहेनजोदाड़ो की नगर-निर्माण प्रणाली बड़ी सुविकसित एवं प्रौढ़ थी। नगर किसी
योजना के अनुसार बनाये गये थे। खुदाई से पता लगा है कि नगर की सड़कें चौड़ी
थी। सब सड़कें बिल्कुल सीधी थी। जहाँ सड़कें एक दूसरे को काटती थीं वहाँ
समकोण बनाती थी। मार्गों की दिशा पूर्व-पश्चिम अथवा उत्तर-दक्षिण थी। वायु
पश्चिम या दक्षिण से चलती है। अत. स्पष्ट है कि सिन्धु-सभ्यता के लोगों को
व्यवस्थित नगर-निर्माण कला का उच्च कोटि का ज्ञान था। उन्होंने नगर को इस
प्रकार बनाया था कि वहाँ की वायु सदैव स्वच्छ रहती थी। प्रधान सड़कों की चौड़ाई
३६ फुट और अन्य सड़कें १८ फुट, १२ फुट एवं ९ फुट चौड़ी पायी गई हैं। गलियों
की चौड़ाई ४ से ७ फुट तक मिली है।

मकानों के अवशेष यह बताते हैं कि मकान इंटदार थे, उनमें बड़ी-बड़ी
खिड़कियाँ थी और प्रायः दो-तीन मंजिल तक के थे। सड़कों के नीचे गन्दा पानी
निकालने के लिये गटर-व्यवस्था के होने के चिह्न भी मिलते हैं। नगर में बड़े-बड़े

स्नान-गृह तथा शौचालय भी सुनिश्चित स्थानो पर सर्व-साधारण के लिये बने हुए थे। कूडा करकट डालने के लिये स्थान-स्थान पर कूडे खाने रखे हुए थे। खुदाई में एक विशाल सार्वजनिक स्नानघर तक का पता लगा है जो १८० फुट लम्बा और १०८ फुट चौडा था। इसके चारों ओर नीचे तक सीढियाँ बनी थी। पानी बाहर निकालने का भी प्रबन्ध था। मोहेनजोदाड़ो और हड़प्पा नगरो के मकानो मे पकाई हुई ईंटें प्रयोग मे लायी गई थीं। दीवारों पर पलस्तर प्रायः मिट्टी का ही होता था और उसके ऊपर गोबर का। मकानो की लकडी की आलमारियाँ बनाई जाती थी। ये दीवार के अन्दर घुसाकर लगायी जाती थीं। शायद लकडी के सन्दूक भी बनते थे। रसोइयाँ मकान के आँगन मे बनाई जाती थी। रसोई के अन्दर एक ऊँचा चबूतरा होता था। छतों मे कडियो का प्रयोग बहुत होता था। पानी के लिए कुएँ बने थे—इन कुओ की दीवारें मजबूत ईंटों की बनी थी।

सार्वजनिक स्नानागार के समीप ही एक सामन्त-भवन का खण्डहर मिला है जो २०० फुट लम्बा और ११५ फुट चौडा है। इसकी दीवारें ५ फुट चौड़ी हैं। इसकी विशालता को देखकर ही अनुमान लगाया गया है कि यह किसी सामन्त का भवन होगा अथवा यहाँ सामन्तो की बैठको का आयोजन होता होगा।

नगरों एव मकानो के इस सुन्दर प्रबन्ध को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि कोई उच्च संस्था नगर का प्रबन्ध करती होगी।

साहित्य और कला-कौशल—खुदाई मे प्राप्त मुद्राओ पर कुछ लेख अंकित हैं। इससे पता लगता है कि सिन्धु सभ्यता के नागरिकों को लेखन कला का ज्ञान था। यह चित्र लिपि है। अभी तक इस लिपि को पढने के प्रयास सफल नहीं हुए। यह अनुमान लगाया जाता है कि जब ये लोग चित्र-कला मे दक्ष थे तो इन्हें साहित्य का कुछ ज्ञान तो रहा ही होगा। प्राप्त अवशेष यह सिद्ध करने में समर्थ हैं कि यह एक अति उन्नत सभ्यता थी और बिना साहित्यिक प्रगति के यह सभ्यता आगे नही बढ सकती थी।

। खुदाई में तश्तरियाँ, प्याले, थाली चम्मच, आदि बर्तन बड़ी संख्या में मिले हैं, इसे यह अनुमान लगाया जाता है कि त्योहार, विवाह आदि के अवसर पर दावतें होती होंगी।

खुदाई से पता चलता है कि आभूषणों, मूर्तियों और हाथी दाँत के सामान प्रति सिन्धु घाटी के निवासियों की बड़ी रुचि थी। कताई-बुनाई की कला के ये स बहुत ही प्रवीण मालूम होते थे। कपास, रेशम और ऊनी कपड़ों का प्रचलन । पुरुष प्राय दो वस्तुओं का प्रयोग करते थे—एक शाल की भाँति का, जो बायें न्ध के ऊपर तथा दाएँ हाथ के नीचे लिपटा होता था और दूसरा निम्न भाग को ने के लिए आधुनिक धोती की भाँति था। गरीब लोग साधारण कपड़े पहनते थे धनी लोग सुन्दर कलापूर्ण कपड़े। सम्भवतः स्त्रियों के वस्त्र पुरुषों से अधिक न न थे। स्त्रियाँ सिर पर ही एक कपड़ा बाँधती थीं।

तरह-तरह से केश रचना करने का सिन्धु-घाटी के लोगों में बड़ा शौक था। प प्रायः छोटी-छोटी दाढ़ी रखते थे। ओठ का ऊपरी भाग प्रायः साफ रहता था। ग बालों को पीछे की ओर बाँधते थे तथा बाल लम्बे होते थे।

आभूषणों का प्रयोग पुरुष तथा स्त्रियों में समान रूप से था। आभूषण स्वर्ण होते थे, किन्तु गरीब लोग लाल पकी हुई, पालिश की हुई मिट्टी के आभूषण नते थे। हार, भुजबन्द, कंगन, अंगूठी आदि आभूषण नर और नारी दोनों ही रण करते थे। स्त्रियों के शृंगार के लिए अनेक प्रसाधन विद्यमान थे—इनमें की और हाथी दांत के कंघे थे, लाल चमकीले रंग की अनेक डिब्बियाँ थीं। इन डिब्बियों में चेहरे पर श्वेत एवं गुलाबी आभा लाने के लिए कुछ पाउडर से रखे हुए । ऐसी एवं अन्य प्रकार की अनेक वस्तुएँ खुदाई में मिली हैं। सुमेर एवं मिस्र के गों में भी शृंगार के ऐसे प्रसाधन प्रचलित थे। वे लोग बटन, दर्पण और काजल प्रयोग भी करते थे। बटन कई प्रकार के बनते थे और ताँबा, रांगा आदि कई तों के बनाये जाते थे। मोहनजोदड़ो में तीन दर्पण प्राप्त हुए हैं जिनमें एक ल्कुल छोटा और दो बड़े आकार के हैं। अनेक काजल की डिब्बियाँ और सलाइयाँ प्राप्त हुई हैं।

ाले, कटार, गदा, कुल्हाडी, छुरे, हँसिया इत्यादि प्रमुख हैं। धनुष इन ...
अस्त्र था। पत्थर की गोलियों और गुलेल का प्रयोग भी ये लोग करते थे।
ाजिक समारोहो मे स्त्री-पुरुष दोनो समान रूप से भाग लेते थे। स्त्रियाँ...
म्माननीय थीं। पर्दा प्रथा का अभाव था तथा माता के रूप मे नारी का
न्त ऊँचा था। स्त्रियों का प्रधान कार्य शिशु-पालन था। खुदाई में प्राप्त
मे चरखा मिलने से अनुमान लगाया जाता है कि स्त्रियाँ घरों में प्राप्त
ती थी।

राजनीतिक व्यवस्था—सिन्धु सभ्यता मे शासन का क्या स्वरूप था,
य मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु अनेक प्राप्त खण्डहरों
नीतिक जीवन का थोडा बहुत अनुमान लगाया गया है। ऐसा विश्वास
ता है कि सभ्यता का यह क्षेत्र एक विशाल साम्राज्य होगा जिसकी मोहनजो...
ड़प्पा दो राजधानियाँ होगी। बड़े बड़े कमरो मे राज-सचालन के लिए सि
मायें हुआ करती होगी और शासन की अन्तिम जिम्मेदारियाँ राजा पर होती
रामर्श-दाताओं के परामर्श से शासन-कार्य चलाता होगा। ह्वीलर के अनुमार श
लाने का ढग सुमेर के गवर्नरो से भिन्न नही था तथा लोगो को राजनीति
वतन्त्रता अधिक मात्रा मे प्राप्त नहीं थी। सम्भवत निरकुश राजतन्त्र प्रचलित
जीवन का सुख उच्चवर्ग के लोग-यथा, शासक, पुजारी, पुरोहित तथा अन्य
ोग भोगते थे।

सिन्धु-घाटी की सभ्यता का वर्तमान भारत पर प्रभाव—सिन्धु-घाटी
सभ्यता का यद्यपि पूर्ण लोप हो गया है तथापि उसका प्रभाव आज भी भा
विद्यमान है। सिन्धु-सभ्यता मे देव-पूजन होना पाया जाता है और भारत के प्र
एव वर्तमान युग मे भी देव-पूजन का प्रचलन प्राप्य है। सिन्धु-वासियो की भाँ
प्राचीन काल से वर्तमान समय तक भारत की जनता उपयोगी वृक्षो—तुलसी,
आँवला आदि की पूजा करती आ रही है। सिन्धु-सभ्यता मे देव-पूजा के साथ
पूजा भी प्रचलित थी। यह पशु पूजा भारत मे प्राचीन काल से लेकर वर्तमान
तक चली आ रही है। सर्प-पूजा, गौ-पूजा आदि इसके प्रमाण हैं। सिन्धु-निव
की भाँति शिव-लिंग की पूजा भी हिन्दू जनता प्राचीन काल से करती आ रह
गेहूँ, जौ, चावल आदि भारतवासियो के प्रमुख खाद्यान्न हैं। यह देन सिन्धु
की ही मानी जाती है। सैन्धव लोगो के समान ही प्राचीन भारतीय मृतक
की दाह-क्रिया करते थे और वर्तमान मे भी यह प्रथा पूर्णत प्रत्यक्ष है।
भवन व नगर-निर्माण कला पर भी सिन्धु-सभ्यता की छाप परिलक्षित हो...
विशाल भवनो, उन्नत नालियों और स्नानागारों की योजना सिन्धु सभ्यता की
दिलाती है। वेश-भूषा, शृंगार एवं आभूषण सज्जा पर भी सिन्धु-सभ्यता के तरीक
की भरपूर छाप देखने को मिलती है। कृषि और पशुपालन इसी सभ्यता की देन
प्रतीत होती हैं। [... पुस्तक "मानव की कहानी" के विद्वान लेखक— डा० रामेश्वर
गुप्ता का यह मत

"सिन्धु-सभ्यता आज से लगभग ६-७ हजार वर्ष पूर्व इस सृष्टि के रंगमंच
र आकर मिश्र, बेबीलोन सभ्यताओं की भांति नटी का सा कुछ क्षणों तक अपना
य करके विलीन हो गई; किन्तु उस नटी के नृत्य की कुछ तरंगें आज भी मानो
वाहमान हैं—उनका प्रभाव आज भी भारत मे विद्यमान है। मातृदेवी की पूजा,
क्ति-पूजा, शिव और शिवलिंग की पूजा, देवतारूप मे पत्थर, वृक्ष, तुलसी और बैल
ी पूजा, जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र, योग, धूप-दीप-नैवेद्य से मूर्ति की पूजा इत्यादि बातें
न्दू सम्कृति मे सिन्धु सभ्यता से ही आईं, मानो ये बातें भारतीय संस्कृति मे उस
तीव प्राचीन काल से 'आगम' रूप मे चली आ रही हैं। कई पौराणिक हिन्दू देवता
न्धु-सभ्यता के देवताओं के ही तो विकसित रूप हैं, जैसे—

सिन्धु सभ्यता के देवता	पौराणिक हिन्दू देवता
लाल-वर्ण देवता पशुपति	रुद्र, शिव
माँ देवी	उमा, शक्ति
नील वर्ण आकाश देवता	विष्णु
शौर्य और युद्ध का देवता	मुरुकुण (शिव का पुत्र स्कन्द)
यौवन और सौन्दर्य का देवता	सनन्न: कृष्ण
गणेश	गणेश ,,

(३) भारतीय आर्यों की सभ्यता

पूर्ववर्ती शीर्षक में एक स्थल पर हम कह चुके हैं कि सिन्धु-सभ्यता के प्रदेशों
ं कालान्तर में आर्य लोग आये और उनकी सभ्यता प्रसारित हो गई। आर्यों ने पूर्व
चलित सभ्यता के कुछ अंशों को ग्रहण किया और शेष का अन्त कर एक नवीन
सभ्यता तथा संस्कृति को जन्म दिया जो कतिपय परिवर्तनों के साथ आज तक हमारे
देश मे प्रचलित है। वस्तुतः इसमे कोई अत्युक्ति नही कि भारतीय इतिहास तथा
सभ्यता का शृंखलाबद्ध स्रोत आर्यों के समय से ही चला है।

आर्य भारत में कब आये ?—काल-क्रम की दृष्टि से अभी तक आर्य सभ्यता
के कालक्रम का पूर्णतया स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है। फिर भी सामान्यतः अनुमान
यह है कि लगभग २००० ई० पू० अपने आदि निवास मध्य-एशिया को छोड़कर
आर्य लोगों ने खैबर की घाटी से पंजाब मे प्रवेश किया। पंजाब में बसने के बाद इन
लोगों ने ऋग्वेद की रचना की। सुप्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर ने इसका रचना काल
ईसा से १२०० वर्ष पूर्व बताया तो विन्टरनिट्ज ने ईसा से ३००० वर्ष पूर्व। महामना
बालगंगाधर तिलक ने इसकी रचना का समय ६००० वर्ष से भी पूर्व का माना है।
हमारी भारतीय परम्परा के अनुसार तो वेद अनादि हैं। यहाँ इस विवाद मे प्रवेश
करने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। हमारे लिए इतना मान लेना ही पर्याप्त है कि
वेद अत्यन्त प्राचीन हैं और ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व इनकी रचना हुई होगी।

आर्य कौन थे और कहाँ से आये ?—आर्य लोग कद में लम्बे, रंग के गोरे
एवं सुन्दर तथा सुगठित शरीर वाले थे। आर्य जाति [illegible]

है। हिटलर और उसके नाजी साथी स्वयं को आर्यों का विशुद्ध वंशज होने के कारण ही औरों से श्रेष्ठ समझते थे। आज भारत की जनसंख्या का अधिकांश भाग, ईरान के निवासी और अंग्रेज, जर्मन, फ्रांसीसी आदि यूरोप की अनेक जातियाँ इसी आर्य जाति की वंशज हैं, ऐसी मान्यता है।

आर्यों के मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध में अनेक विचार हैं। कुछ लोग कहते हैं कि आर्य उत्तरी ध्रुव प्रदेश से आये थे। कुछ की धारणा है कि उनका मूल निवास स्थान *मध्य एशिया रहा होगा। कुछ उनका आगमन दक्षिणी-पश्चिमी यूरोप से* मानते हैं तो अनेक विद्वान उन्हें भारत के उत्तरी प्रदेश का ही मूल निवासी स्वीकार करते हैं। आज जो मत बहुमान्य है वह यह है कि मध्य एशिया में कई हजार वर्ष पूर्व जो गोरे, तगड़े लोग रहते थे और इन्डो-यूरोपियन भाषा बोलने वाले लोग थे। वे ही आर्य थे। मध्य एशिया ही एक ऐसा प्रदेश था जहाँ से आर्यों की शाखायें पूर्व तथा पश्चिम की तरफ सुविधापूर्वक गमन कर सकती थीं। पश्चिम की ओर आकर जो आर्य यूरोप में बस गये, उनके एवं वहाँ के मूल निवासियों के मिश्रण से यूरोपीय जातियाँ बनीं और जो पूर्व की तरफ आकर हमारे देश में बस गये वे भारतीय कहलाये। इन्हीं आर्यों ने संस्कृत भाषा को जन्म दिया।

जब आर्य लोग पंजाब में बसने लगे तो उनका द्रविड़ लोगों के साथ संघर्ष हुआ। ये द्रविड़ काले, कुरूप और छोटे कद के थे। इस संघर्ष में आर्य विजयी हुए। द्रविड़ों में से अधिकांश ने आर्यों की अधीनता स्वीकार कर ली। द्रविड़ कृषि-कार्य में और पशु-पालन के कार्य में आर्यों के बड़े सहायक हुए। निरन्तर सम्पर्क के कारण द्रविड़ों के देव-देवी एवं अंधविश्वास आर्यों के धर्म में प्रवेश कर गए। लेकिन आर्यों ने उन्हें अपने बराबर कभी स्वीकार नहीं किया और उनकी संस्कृति का क्रमश लोप हो गया।

वैदिक साहित्य—भारतीय आर्यों ने सिन्धु-घाटी के प्राचीन निवासियों की भाँति नगरों, भवनों, प्रतिमाओं, मुद्राओं आदि के रूप में कोई भौतिक अवशेष नहीं छोड़ा जिनके आधार पर इनके जीवन तथा रीति-रस्म के बारे में स्पष्ट एवं प्रामाणिक

तथा नाम भी बनाते थे। लुहार लोहे; तांबे तथा पीतल के अच्छे बर्तन बनाते थे। सुनार चांदी, सोने के आभूषण, चमार चमड़े की सुन्दर वस्तुएं; कुम्हार मिट्टी के सुन्दर बर्तन बनाने में दक्ष थे। जुलाहे कपड़े बुनने में निपुण थे। घरों में स्त्रियां कढाई, कताई और चटाई का काम करती थीं। पशुओं का लेन-देन काफी होता था। भूमि को खरीदने-बेचने की प्रथा न थी। व्यापार वस्तुओं के आदान-प्रदान से होता था; मुद्रा का प्रचलन कम था। सोने के टुकड़े चलते थे जो निष्क कहलाते थे। ऋण लिया दिया जाता था। ऋण न चुकाने पर दास बनना पड़ता था।

धार्मिक दशा:— आर्यों के धार्मिक जीवन के विषय में पर्याप्त सामग्री मिलती है। उनका धर्म सादा और सरल था। वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवता मानकर उनकी उपासना करते थे। इनके मुख्य देवता पृथ्वी, वरुण, इन्द्र, आदित्य, रुद्र, शिव, वायु, अग्नि आदि थे। इन्हें प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किये जाते थे। यज्ञों में बहुधा दूध, घी, अन्न आदि का ही प्रयोग होता था। लेकिन सोमरस एवं मांस का प्रयोग करके भी देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता था। यज्ञ करना धार्मिक जीवन का एक प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता था। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये देवताओं से प्रार्थना की जाती थी। देवताओं के ऊपर वे एक उच्च शक्ति को भी मानते थे। वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को एक ही सत्ता के विभिन्न स्वरूप मानते थे। इस प्रकार वे एकेश्वरवाद के विश्वासी थे। नदी और वृक्षों की पूजा भी वे करते थे। यह उन्होंने द्रविड़ लोगों से ली थी। आर्य अपने मृतकों को प्रायः जलाते थे। वे अपने देवताओं को पिता-तुल्य मानते थे और उनको संरक्षण देने वाला समझते थे।

उत्तर वैदिककालीन सभ्यता

पूर्व वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल के जीवन में किंचित भिन्नता रही है। वैदिक काल की सभ्यता ऋग्वेद के समय की मानी जाती है और ऋग्वेद काल के बाद से महाकाव्य काल के पहले तक का युग उत्तर वैदिककाल के नाम से जाना जाता है। ऋग्वेद काल की तुलना में उत्तर वैदिककाल के लोगों की दशा में जो परिवर्तन आ गये थे उनकी चर्चा करने से इस काल की आर्य-सभ्यता का रूप हमारे सामने प्रकट हो जायगा।

राजनीतिक दशा (आर्यों का विस्तार) —इस युग में आर्यों ने संघर्ष और युद्ध करके अपने राज्य को पूर्व और दक्षिण की ओर फैला लिया। इस प्रकार वैदिक युग के अन्त तक आर्यों का साम्राज्य गंगा और सदानीरा (गण्डक) द्वारा सिंचित उपजाऊ मैदान पर पूर्णतः व्याप्त हो चुका था। विन्ध्याचल के सघन दुर्गम वनों में आर्यों के साहसी समूह अब प्रविष्ट होने लगे थे और उन्होंने दक्षिण में गोदावरी के उत्तर में शक्तिशाली राज्यों की नींव डाल दी थी। ज्यों-ज्यों ये बढ़ते जाते थे, वहीं द्रविड़ों को भगा कर अपनी बस्तियां बसा लेते थे। भाग कर अनेक द्रविड़ तो दक्षिण की ओर चले गये किन्तु लाखों लोग उत्तर में ही रह गए और आर्य लोगों से शनैः २ निकट आ गए। इस कारण आर्य संस्कृति पर द्रविड़ों का प्रभाव और ...

तथा काम भी बनाते थे। लुहार लोहे; ताँबे तथा पीतल के अच्छे बर्तन बनाते थे। सुनार चांदी; सोने के आभूषण, चमार चमड़े की सुन्दर वस्तुएं, कुम्हार मिट्टी के सुन्दर बर्तन बनाने में दक्ष थे। जुलाहे कपड़े बुनने में निपुण थे। घरों में स्त्रियां कढ़ाई, कताई और चटाई का काम करती थीं। पशुओं का लेन-देन काफी होता था। भूमि को खरीदने-बेचने की प्रथा न थी। व्यापार वस्तुओं के आदान-प्रदान से होता था, मुद्रा का प्रचलन कम था। सोने के टुकड़े चलते थे जो निष्क कहलाते थे। ऋण लिया दिया जाता था। ऋण न चुकाने पर दास बनना पड़ता था।

धार्मिक दशा: – आर्यों के धार्मिक जीवन के विषय में पर्याप्त सामग्री मिलती है। उनका धर्म सादा और सरल था। वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवता मानकर उनकी उपासना करते थे। इनके मुख्य देवता पृथ्वी, वरुण, इन्द्र, आदित्य, रुद्र, शिव, वायु, अग्नि आदि थे। इन्हें प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किये जाते थे। यज्ञों में बहुधा दूध, घी, अन्न आदि का ही प्रयोग होता था। लेकिन सोमरस एवं मांस का प्रयोग करके भी देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता था। यज्ञ करना धार्मिक जीवन का एक प्रमुख कर्तव्य माना जाता था। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये देवताओं से प्रार्थना की जाती थी। देवताओं के ऊपर वे एक उच्च शक्ति को भी मानते थे। वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को एक ही सत्ता के विभिन्न स्वरूप मानते थे। इस प्रकार वे एकेश्वरवाद के विश्वासी थे। नदी और वृक्षों की पूजा भी वे करते थे। यह उन्होंने द्रविड़ लोगों से ली थी। आर्य अपने मृतकों को प्रायः जलाते थे। वे अपने देवताओं को पिता-तुल्य मानते थे और उनको संरक्षण देने वाला समझते थे।

उत्तर वैदिककालीन सभ्यता

पूर्व वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल के जीवन में किंचित भिन्नता रही है। वैदिक काल की सभ्यता ऋग्वेद के समय की मानी जाती है और ऋग्वेद काल के बाद से महाकाव्य काल के पहले तक का युग उत्तर वैदिककाल के नाम से जाना जाता है। ऋग्वेद काल की तुलना में उत्तर वैदिककाल के लोगों की दशा में जो परिवर्तन आ गये थे उनकी चर्चा करने से इस काल की आर्य-सभ्यता का रूप हमारे सामने प्रकट हो जायगा।

राजनीतिक दशा (आर्यों का विस्तार)—इस युग में आर्यों ने संघर्ष और युद्ध करके अपने राज्य को पूर्व और दक्षिण की ओर फैला लिया। इस प्रकार वैदिक युग के अन्त तक आर्यों का साम्राज्य गंगा और सदानीरा (गण्डक) द्वारा सिंचित उपजाऊ मैदान पर पूर्णतः व्याप्त हो चुका था। विन्ध्याचल के सघन दुर्गम वनों में आर्यों के साहसी समूह अब प्रविष्ट होने लगे थे और उन्होंने दक्षिण में गोदावरी के उत्तर में शक्तिशाली राज्यों की नींव डाल दी थी। ज्यों-ज्यों ये बढ़ते जाते थे, वहीं द्रविड़ों को भगा कर अपनी बस्तियां बसा लेते थे। भाग कर अनेक द्रविड़ तो दक्षिण की ओर गये किन्तु लाखों लोग उत्तर में ही रह गए और आर्य लोगों में शनैः २ आ गए। इस कारण आर्य संस्कृति पर द्रविड़ों का प्रभाव और भी

आर्यों की वेश भूषा सीधी सादी थी। [illegible] के ऊपरी भाग के लिये और दूसरा वस्त्र [illegible] के लिए। [illegible] जाती थी। इस युग के [illegible] [illegible] जाते थे। [illegible] नर-नारी [illegible] थे। [illegible] प्रचलन था। [illegible] होता था। [illegible] मुख-[illegible] थे। [illegible] करती थी। [illegible] का भी प्रचार था।

आर्यों का जीवन आमोद प्रमोद [illegible] था। [illegible], घुड़दौड़, रथ-[illegible] तथा आखेट लोगों के मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। [illegible] युद्ध, [illegible], बाजा बजाना नृत्य एवं संगीत भी आमोद-प्रमोद के [illegible] साधन थे। [illegible] उत्सवों पर नृत्य, गान [illegible] होते थे। जलक्रीड़ा में भी आर्यों की रुचि थी।

शिक्षा आश्रमों में दी जाती थी। गुरु की सेवा व गुश्रूषा करना [illegible] था। मन्त्र कंठस्थ करने पड़ते थे।

लोगों के आचार विचार बड़े पवित्र थे। [illegible], झूठ तथा [illegible] की संख्या नगण्य थी, क्योंकि लोग इस युग में [illegible] जीवन व्यतीत करते थे। अतिथि सत्कार सर्वमान्य प्रथा थी। सत्य भाषण एक [illegible] धार्मिक [illegible] जाता था।

समाज में आश्रम-व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। आश्रम-व्यवस्था में जीव[illegible] के चार भाग किये गये थे—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। मनुष्य की पूर्ण आयु १०० वर्ष मानकर उसे २५–२५ वर्ष के चार भागों में बांटा गया था। प्रथम २५ वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम के थे जिसमें वेदाध्ययन एवं पवित्र जीवन-यापन करना होता था। द्वितीय २५ वर्ष गृहस्थाश्रम के थे जिसमें विवाह कर पारिवारिक जीवन बिता[illegible] होता था। तृतीय २५ वर्ष वानप्रस्थ आश्रम के थे जिसमें वन में ईश्वरोपासना करनी पड़ती थी। चौथे आश्रम में व्यक्ति संसार से पूरी तरह विरक्त होकर सन्यासी [illegible] जंगल में रहता था। इस प्रकार आश्रम-व्यवस्था का आयोजन था, किन्तु यह [illegible] व्यवहार्यतः सब पर लागू नहीं होती थी।

आर्थिक दशा—आर्यों का आर्थिक जीवन सुखमय था। आर्य अधिकांश कृषक थे। क्षत्रिय एवं ब्राह्मण भी थोड़ी बहुत खेती अवश्य करते होंगे, किन्तु यह उनका मुख्य धन्धा नहीं था। दो बैलों को जुए में जोड़ कर हल से खेत जोते जाते थे। खेत सींचने के लिये सकरी नालियों का प्रयोग होता था। खाद के प्रयोग से लोग परिचित थे। प्रधानतः गेहूं और जौ की खेती होती थी। पशुपालन भी आर्यों का एक महत्व-पूर्ण धन्धा था। पशुओं में बैल; घोड़े; गाय, बकरी; भेड़; गधे और कुत्ते पाले जाते थे। गायों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। द्रविड़ों के सम्पर्क में आकर आर्यों ने कला-कौशल तथा व्यापार में पर्याप्त उन्नति की। आर्य विभिन्न कला-कौशल में निपुण थे। बढ़ई रथ एवं गाड़ियां बनाना जानते थे। लकड़ी पर नक्काशी होती थी।

प्रथा नाम भी बनाते थे। लुहार लोहे; तांबे तथा पीतल के अच्छे बर्तन बनाते थे। सुनार चांदी, सोने के आभूषण; चमार चमड़े की सुन्दर वस्तुएं; कुम्हार मिट्टी के सुन्दर बर्तन बनाने में दक्ष थे। जुलाहे कपड़े बुनने में निपुण थे। घरों में स्त्रियां कढ़ाई, कताई और चटाई का काम करती थीं। पशुओं का लेन-देन काफी होता था। भूमि को खरीदने-बेचने की प्रथा न थी। व्यापार वस्तुओं के आदान-प्रदान से होता था; मुद्रा का प्रचलन कम था। सोने के टुकड़े चलते थे जो निष्क कहलाते थे। ऋण लिया दिया जाता था। ऋण न चुकाने पर दास बनना पड़ता था।

धार्मिक दशा:— आर्यों के धार्मिक जीवन के विषय में पर्याप्त सामग्री मिलती है। उनका धर्म सादा और सरल था। वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवता मानकर उनकी उपासना करते थे। इनके मुख्य देवता पृथ्वी, वरुण, इन्द्र, आदित्य, रुद्र, शिव, वायु, अग्नि आदि थे। इन्हें प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किये जाते थे। यज्ञों में बहुधा दूध, घी, अन्न आदि का ही प्रयोग होता था। लेकिन सोमरस एवं मांस का प्रयोग करके भी देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता था। यज्ञ करना धार्मिक जीवन का एक प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता था। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये देवताओं से प्रार्थना की जाती थी। देवताओं के ऊपर वे एक उच्च शक्ति को भी मानते थे। वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को एक ही सत्ता के विभिन्न स्वरूप मानते थे। इस प्रकार वे एकेश्वरवाद के विश्वासी थे। नदी और वृक्षों की पूजा भी वे करते थे। यह उन्होंने द्रविड़ लोगों से ली थी। आर्य अपने मृतकों को प्रायः जलाते थे। वे अपने देवताओं को पिता-तुल्य मानते थे और उनको संरक्षण देने वाला समझते थे।

उत्तर वैदिककालीन सभ्यता

पूर्व वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल के जीवन में किंचित भिन्नता रही है। वैदिक काल की सभ्यता ऋग्वेद के समय की मानी जाती है और ऋग्वेद काल के बाद से महाकाव्य काल के पहले तक का युग उत्तर वैदिककाल के नाम से जाना जाता है। ऋग्वेद काल की तुलना में उत्तर वैदिककाल के लोगों की दशा में जो परिवर्तन आ गये थे उनकी चर्चा करने से इस काल की आर्य-सभ्यता का रूप हमारे सामने प्रकट हो जायगा।

राजनीतिक दशा (आर्यों का विस्तार) —इस युग में आर्यों ने संघर्ष और युद्ध करके अपने राज्य को पूर्व और दक्षिण की ओर फैला लिया। इस प्रकार वैदिक युग के अन्त तक आर्यों का साम्राज्य गंगा और सदानीरा (गण्डक) द्वारा सिंचित उपजाऊ मैदान पर पूर्णतः व्याप्त हो चुका था। विन्ध्याचल के सघन दुर्गम वनों में आर्यों के साहसी समूह अब प्रविष्ट होने लगे थे और उन्होंने दक्षिण में गोदावरी के उत्तर में शक्तिशाली राज्यों की नींव डाल दी थी। ज्यों-ज्यों ये बढ़ते जाते थे, वहीं द्रविड़ों को भगा कर बस्तियां बसा लेते थे। भाग कर अनेक द्रविड़ तो दक्षिण की ओर चले

लेकिन आर्यों ने अपने वर्णों की शुद्धता बनाए रखने का भरसक प्रयास किया और इसीलिए शूद्र स्त्रियों के विवाह का निषेध किया गया। किन्तु फिर भी वर्ण-संकरता समाप्त नहीं हुई।

उत्तर वैदिक काल में बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हो गया और राज्यों व साम्राज्यों का विकास हुआ। राजा लोग अधिक शक्तिशाली हो गए और उन्होंने सार्वभौम सत्ता ग्रहण कर ली। किन्तु राजा निरंकुश नहीं बन सके क्योंकि अत्याचारी राजाओं को सिंहासन से उतार दिया जाता था और शासन-सत्ता जन-सभाओं के हाथ में आती थी। इस काल में राज्याधिकारियों की संख्या पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ गई जिनमें पुरोहित, सेनापति आदि प्रमुख थे। पुलिस विभाग के कार्यकर्त्ता को 'उग्र' कहा जाता था, (सहस्र) हजार गावों का शासक 'अधिपति' कहलाता था। हर राज्य में ६ मन्त्रियों की एक परिषद् भी होने लगी। इस काल के साहित्य से यह भी पता चलता है कि शासन कार्य १८ विभागों में सम्भवतः विभाजित होता था और साथ ही ऐसे राज्य भी थे जिनका शासन राजा के हाथ में न होकर सभा-समितियों और मुनियों द्वारा होता था। इन राज्यों को गणराज्य कहा जाता था। राज्यों में परस्पर दलबन्दी एवं द्वेष भावना बढ़ने लग गई थी।

सामाजिक दशा —पूर्व वैदिककाल में जहां अधिकांशतः एक स्त्रीव्रत पर बल दिया जाता था वहां उत्तर वैदिककाल में बहु-विवाह-प्रथा प्रचलित हो गई थी और पारिवारिक जीवन पहले की अपेक्षा असहयर्य हो चला था। स्त्रियों की स्वतन्त्रता

उन्नत और चिन्तामुक्त अवस्था में यह स्वाभाविक था कि भोग-विलास के साधन बढ़ते तथा वस्त्र, आभूषण, वाहन एवं सुन्दर भवनों का निर्माण होता।

धार्मिक दशा.—पूर्व वैदिककालीन धार्मिक जीवन बड़ा सादा था किन्तु उत्तर वैदिक काल में धार्मिक भावनाओं ने बहुत जोर पकड़ा। इस काल में अनेक प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा होने लगी। जहां पूर्व और वैदिक काल में लोगों में भक्ति एवं आत्म-समर्पण की भावना की बहुलता थी, वहां उत्तर-वैदिक काल में मंत्रों की शक्ति द्वारा देवताओं को वशीभूत करना आरम्भ किया जाने लगा और मंत्रों का महत्त्व प्रतिदिन बढ़ने लगा। यज्ञ आदि में बलि देने की प्रथा का प्रचलन हो गया तथा पुरोहितों व ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई। वैदिक काल में अध्यात्मवाद पर बल दिया जाता था किन्तु उत्तर वैदिक काल में कर्म की विवेचना अधिक की जाने लगी तथा कर्म के आधार पर ही पुनर्जन्म की योनि निर्धारित होने लगी। प्राकृतिक शक्तियों के सूचक वैदिक देवताओं का लोप हो गया और उनका स्थान ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पार्वती, दुर्गा, भैरव, गणेश आदि ने ले लिया। दार्शनिक वर्गों में आत्म-चिन्तन करने लगे। ब्रह्म और जीव की व्याख्या की गई। "भक्ति-आन्दोलन का सूत्रपात भी इसी युग में हुआ। ज्ञान, कर्म और भक्ति का सुन्दर समन्वय हुआ।" तपोमय जीवन के महत्व पर जोर दिया जाने लगा।

उत्तर वैदिक काल के अन्तिम चरण को हम महाकाव्यों का काल कह सकते हैं। इस पर हम आगे पृथक से संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

वैदिक तथा पूर्व-वैदिक तत्वों का समन्वय:—आर्यों तथा द्रविडों के पारस्परिक सम्पर्क ने वैदिक सभ्यता को अत्यधिक प्रभावित किया और दोनों जातियों की सभ्यता के तत्वों का समन्वय बहुत प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो गया। आर्यों के ग्राम-संगठन, भवन निर्माण तथा नगर-निर्माण कला पर पूर्व वैदिक तत्वों की छाप पड़ी। सामुद्रिक व्यापार भी द्रविडों की देन है। इतना ही नहीं, आर्यों की वेष-भूषा, खानपान, सामाजिक रीतिरिवाजों पर भी पूर्व वैदिक तत्वों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। "पूर्व वैदिक तत्वों का सर्वाधिक प्रभाव तथा समन्वय धार्मिक क्षेत्र में हुआ। द्रविडों के भूत-प्रेतों को नया नाम देकर आर्यों ने उन्हें देवता बना लिया। वैदिक सभ्यता में भक्ति की धारा का रूप द्रविडों की ही देन है। शिव, उमा, कृष्ण, गणेश, कार्तिक आदि पूर्व वैदिक देवता हैं जिन्हें आर्यों ने अपना लिए। धार्मिक कर्मकाण्डों में भी समन्वय हुआ। होम आर्यों का है परन्तु पूजा द्रविडों की। मन्दिर और मूर्तिपूजा, जो हिन्दू धर्म के प्राण हैं, द्रविडों की ही देन हैं। मातृशक्ति की उपासना भी आर्यों ने द्रविडों से ग्रहण की। धर्म के आगम तथा निगम सिद्धान्तों में निगम आर्यों का है परन्तु आगम द्रविडों का है।" इस प्रकार हम वैदिक तथा पूर्व वैदिक तत्वों का समन्वय स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

(४) आर्यों की देन या प्रभाव
(Legacy or Impact of the Aryans)

पिछले पृष्ठों पर वैदिक कालीन आर्य सभ्यता के प्रधान
करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्यों ने अपनी देन

लेकिन आर्यों ने अपने वर्ण की शुद्धता बनाए रखने का भरसक प्रयास किया और इसीलिए शूद्र स्त्रियों के विवाह का निषेध किया गया। किन्तु फिर भी वर्ण-संकरता समाप्त नही हुई।

उत्तर वैदिक काल मे बडे-बडे नगरों का निर्माण हो गया और राज्यों व साम्राज्यों का विकास हुआ। राजा लोग अधिक शक्तिशाली हो गए और उन्होने सार्वभौम सत्ता ग्रहण कर ली। किन्तु राजा निरंकुश नही बन सके क्योंकि अत्याचारी राजाओं को सिंहासन से उतार दिया जाता था और शासन-सत्ता जन-सभाओं के हाथ मे आती थी। इस काल मे राज्याधिकारियों की संख्या पूर्वापेक्षा अधिक बढ गई जिनमे पुरोहित, सेनापति आदि प्रमुख थे। पुलिस विभाग के कार्यकर्ता को 'उग्र' कहा जाता था, (सहस्र) हजार गावों का शासक 'अधिपति' कहलाता था। हर राज्य मे ६ मंत्रियों की एक परिषद् भी होने लगी। इस काल के साहित्य से यह भी पता चलता है कि शासन कार्य १८ विभागों मे समवतः विभाजित होता था और साथ ही ऐसे राज्य भी थे जिनका शासन राजा के हाथ मे न होकर सभा-समितियों और मुखियों द्वारा होता था। इन राज्यों को गणराज्य कहा जाता था। राज्यों मे परस्पर दलबन्दी एवं-द्वेष भावना बढने लग गई थी।

सामाजिक दशा—पूर्व वैदिककाल मे जहा अधिकांशत एक स्त्रीव्रत पर बल दिया जाता था वहा उत्तर वैदिककाल मे बहु-विवाह-प्रथा प्रचलित हो गई थी और पारिवारिक जीवन पहले की अपेक्षा कलहपूर्ण हो चला था। स्त्रियों की स्वतन्त्रता कम हो गई थी और वे वैदिककाल की भांति यज्ञ, सभा आदि मे अधिकांशतः भाग नहीं लेती थीं। अब बाल-विवाह होने लगा था तथा कन्या जन्म को अशुभ एवं शोकमय माना जाने लगा था। वर्ण व्यवस्था वैदिककाल की तुलना में अधिक जटिल एवं कठोर हो गई थी तथा जाति प्रथा ने पैर जमा लिए थे। किन्तु अभी अन्तर्जातीय विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं लगने लगे थे और लोग अपने व्यवसाय को परिवर्तित कर सकते थे। जीवन पहले ही के समान चार आश्रमों मे बंटा हुआ था किन्तु ये आश्रम वस्तुतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों तक ही सीमित रहे होंगे तथा बेचारे शूद्र कहे जाने वाले लोग तो आजीवन सेवा करते होंगे।

आर्थिक दशा:—गंगा के मैदानों में बसने के बाद आर्य आर्थिक दृष्टि से अधिक समृद्ध और सम्पन्न हो गए थे। समय पर वर्षा होने पर पर्याप्त अन्न पैदा होने के कारण वे लोग खाने-पीने की चिन्ता से मुक्त थे। इस काल मे वैदिककाल की अपेक्षा पशु-पालन और कृषि में अधिक उन्नति हो गई थी। गोबर की खाद का प्रयोग खूब होने लगा था। साल में दो फसलें पैदा की जाती थीं। कला-कौशल व व्यापार भी उन्नत दशा मे था। विदेशों से भी व्यापार होता था। मुद्राओं के प्रचलन मे वृद्धि हो गई थी तथा वे व्यापार का माध्यम बन गई थीं। 'निष्क' के साथ-साथ 'कृष्णल' नामक सिक्के भी चलने लगे थे। ब्याज प्रथा भी चल पड़ी थी। व्यापारियों ने संघों का निर्माण कर लिया था। कई प्रकार के नाप-तौल के साधन भी प्रचलित हो

८.३१

बताया गया है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' के सिद्धान्त को ठीक प्रकार अनुभव कर लेने मात्र से मनुष्य ईश्वर के समान बन जाता है और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। कर्म मार्ग ईश्वर सम्बन्धी सूक्ष्म दार्शनिक जटिलताओं में उलझने की अपेक्षा सदाचार को ही मोक्ष का साधन मानता है। भक्ति मार्ग में ज्ञान एवं कर्म की अपेक्षा जगत्-पिता में दृढ़ आस्था और भक्ति को ही मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन बताया गया है। गीता में इन तीनों ही मार्गों का विवेचन और समन्वय किया गया है। आज का हिन्दू समाज इन तीनों ही मार्गों में आस्था रखता है।

(१४) एकेश्वरवाद की भावना – आर्यों ने एकेश्वरवाद का सिद्धांत चलाया। ऋग्वेद के एक श्लोक "एकं सद् विप्रा वदन्ति बहुधा" से स्पष्ट है कि आर्यों की प्रथम व प्रमुख मान्यता है कि ईश्वर एक है। उसके अनुसार एक ब्रह्म ही सत्-चित-आनन्द है।

(१५) आत्म-ब्रह्म की भावना – ईश्वर की सर्वव्यापकता के अतिरिक्त आर्यों ने आत्मा की अमरता, अवतारवाद, भक्तिवाद, त्याग, तीर्थ, यात्रादि के सिद्धांतों से हिन्दू-धर्म को गौरवान्वित किया। जीवन का मूल तत्व आत्मा है, जो अजर व अमर है। समस्त आत्माएं एक ही ब्रह्म का रूपान्तर हैं। ब्रह्म को जानने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अहंकार व मद का त्याग करे। उपनिषदों में ऐसा उल्लेख आता है कि जीव, आत्मा व परमात्मा एक ही हैं। इन सब तत्वों की देन के लिए हम आर्यों के ऋणी हैं।

(१६) आशावादिता—भारतीय संस्कृति में आशावादिता भी आर्यों की ही देन है। कहीं भी वैदिक साहित्य में निराशा, आत्म ग्लानि, दुःख दरिद्रता नहीं दिखलाई पड़ती है। यही दृष्टिकोण काफी मात्रा में आज भी दृष्टि-गोचर होता है।

(१७) यज्ञ और अनुष्ठान—शुभ और पवित्र अवसरों, पर्वों और संस्कारों में यज्ञादि का विधान इसी युग की देन है। हमारे सभी संस्कारों में हवन आदि का आयोजन उसी समय से चला आ रहा है। जन्म, चूडाकरण, उपनयन; विवाहादि की परम्परा आर्यों से ही समाज में आई और आज भी प्रचलित है।

(१८) परलोकवाद—भारतीय धर्म की प्रमुख विशेषता इसका पारलौकिक दृष्टिकोण है और परलोकवाद का यह विचार आर्यों की ही देन है। इस परलोकवादी दृष्टिकोण ने भारत को सांस्कृतिक क्षेत्र में जहां अग्रणी बनाया वहां सभ्यता के क्षेत्र में इसने उसे विश्व के अन्य राष्ट्रों से पिछड़ा रखने में भी योग दिया। यह दृष्टिकोण भारतीयों में आनन्द और विश्वास को उत्पन्न करके दूसरे लोक में सुख तथा मोक्ष की मीठी गोलियां खिलाकर उसे सांसारिक कष्टों को सहन करने की शक्ति प्रदान करता रहा है। इसने भारतीयों में सतोषवादी प्रवृत्ति को पनपाकर उन्हें वैज्ञानिक क्षेत्रों में आगे बढ़ने से सदैव रोका है।

(१९) उत्तम युद्ध प्रणाली – आर्य जाति युद्ध कला के तत्कालीन मापदण्ड के आधार पर संसार में सर्वश्रेष्ठ थी। आर्यों ने ही भारत में लोहे जैसे कठोर धातु के हथियारों का प्रयोग शुरू किया। वे विभिन्न विनाशक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण और प्रयोग जानते थे। स्थायी सैन्य-संगठन; सैनिक अनुशासन तथा चार अंगों–हाथी,

ग्रामो मे ही हुआ जिसके फलस्वरूप श्रेष्ठ प्रजातंत्र का विकास सुलभ हो गया। शताब्दियां व्यतीत हो जाने पर भी आर्यों की ग्रामीण सभ्यता के अनेक अवशेष आज भी भारतीय ग्रामो में विद्यमान हैं। कृषि, गाय की पवित्रता, पशुपालन का महत्व ये सब आर्यों की ही देनें हैं।

(१०) पारिवारिक जीवन—पारिवारिक जीवन आर्यों की एक अन्य देन है। पितृ-सत्तात्मक समाज की स्थापना आर्यों ने ही की। इसके साथ संयुक्त परिवार प्रणाली के मूल में भी आर्य संस्कृति ही थी। संयुक्त परिवार का जन्म भी उसी समय हुआ और घर के प्रशासन मे गृह-पति और गृह-पत्नी के स्थान की प्रमुखता का श्रीगणेश भी उसी युग मे हुआ। परम्परागत रूढ़ियों का पालन परिवार के सदस्य करते थे। अच्छे सम्बन्धो के कारण परिवार मे सुख और शांति का वातावरण रहता था। आर्यों द्वारा विकसित संयुक्त परिवार प्रणाली ही कतिपय परिवर्तनों के साथ आज भारत मे विद्यमान है।

(११) सहिष्णुता की भावना—आर्यों ने ही भारतीय सभ्यता मे सहिष्णुता के बीज बोये। उन्होने ही सर्वप्रथम बताया कि आपके-कर्म का प्रथम लक्षण सहिष्णुता है। "जीओ और जीने दो" यह आर्यों का मूल मंत्र रहा है और आज का भारत इस सिद्धांत का कितना अनुयायी है, यह छिपा नही है। आर्यों ने सहिष्णुता के बल पर भारत के आदिवासियों को ही आत्मसात् नही किया वरन् जो कोई भी यहां आया उसे स्थान दिया और उसके लिए ऐसा वातावरण बना दिया कि कालान्तर मे वह आर्य संस्कृति मे ही समाहित हो गया।

(१२) पुनर्जन्म और कर्म फल — आर्य लोग पुनर्जन्म मे विश्वास करते थे और यह मानते थे कि—

"जो जन्मा है वह जरूर मरेगा।
और जो मरा है वह जरूर जन्मेगा।"

जैसा कि उपनिषद् मे वर्णन है, आर्य कर्म को प्रधानता देते थे। उनकी यह मान्यता थी कि मनुष्य जैसा करता है, वैसा ही उसे फल मिलता है। बुरे कर्मों के कारण ही मनुष्य बार-बार इस पृथ्वी पर जन्म लेता है तथा आत्मा शरीर रूपी जाल (बन्धन) मे फंसी रहती है। सत्कर्म ही मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। अच्छे कर्मो द्वारा मनुष्य या तो अच्छी योनि मे जन्म पाता है या जन्म के बंधन से छूटकर मोक्ष प्राप्त करता है। लोगो मे आचरण की दया और निरामिष आदि के विचारों को उत्प्रेरित करने में उन्हें आर्यों ने ये सिद्धांत अपनाए थे। इस सिद्धांत का हम हमारे दैनिक अनुभव करते रहते हैं। लगभग प्रत्येक भारतीय पुनर्जन्म [और] रखता है, भले ही पाश्चात्य सभ्यता का मुलम्मा चढ़ जाने से भावनाओं के अनुकूल आचरण न करता हो।

(१३) तीन मार्ग—वैदिक ऋषियों ने मोक्ष-प्राप्ति के लि[ए] मार्ग बताये-ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग ईश्वर की परमात्मा के बारे में यहां ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का आधार मानता

बताया गया है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' के सिद्धान्त को ठीक प्रकार अनुभव कर लेने मात्र से मनुष्य ईश्वर के समान बन जाता है और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। कर्म मार्ग ईश्वर सम्बन्धी सूक्ष्म दार्शनिक जटिलताओं में उलझने की अपेक्षा सदाचार को ही मोक्ष का साधन मानता है। भक्ति मार्ग में ज्ञान एवं कर्म की अपेक्षा जगत्-पिता में दृढ़ आस्था और भक्ति को ही मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन बताया गया है। गीता में इन तीनों ही मार्गों का विवेचन और समन्वय किया गया है। आज का हिन्दू समाज इन तीनों ही मार्गों में आस्था रखता है।

(१४) एकेश्वरवाद की भावना – आर्यों ने एकेश्वरवाद का सिद्धांत चलाया। ऋग्वेद के एक श्लोक "एकं सद विप्रा वदन्ति बहुधा" से स्पष्ट है कि आर्यों की प्रथम व प्रमुख मान्यता है कि ईश्वर एक है। उसके अनुसार एक ब्रह्म ही सत्-चित-आनन्द है।

(१५) आत्म-ब्रह्म की भावना – ईश्वर की सर्वव्यापकता के अतिरिक्त आर्यों ने आत्मा की अमरता, अवतारवाद, भक्तिवाद, त्याग, तीर्थ, यात्रादि के सिद्धांतों से हिन्दू-धर्म को गौरवान्वित किया। जीवन का मूल तत्व आत्मा है, जो अजर व अमर है। समस्त आत्माएं एक ही ब्रह्म का रूपान्तर हैं। ब्रह्म को जानने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अहंकार व मद का त्याग करे। उपनिषदों में ऐसा उल्लेख आता है कि जीव, आत्मा व परमात्मा एक ही हैं। इन सब तत्वों की देन के लिए हम आर्यों के ऋणी हैं।

(१६) आशावादिता—भारतीय संस्कृति में आशावादिता भी आर्यों की ही देन है। कहीं भी वैदिक साहित्य में निराशा, आत्म ग्लानि, दुःख दरिद्रता नहीं दिखलाई पड़ती है। यही दृष्टिकोण काफी मात्रा में आज भी दृष्टि-गोचर होता है।

(१७) यज्ञ और अनुष्ठान—शुभ और पवित्र अवसरों, पर्वों और संस्कारों में यज्ञादि का विधान इसी युग की देन है। हमारे सभी संस्कारों में हवन आदि का आयोजन उसी समय से चला आ रहा है। जन्म, चूड़ाकरण; उपनयन, विवाहादि की परम्परा आर्यों से ही समाज में आई और आज भी प्रचलित है।

(१८) परलोकवाद—भारतीय धर्म की प्रमुख विशेषता इसका पारलौकिक दृष्टिकोण है और परलोकवाद का यह विचार आर्यों की ही देन है। इस परलोकवादी दृष्टिकोण ने भारत को सांस्कृतिक क्षेत्र में जहां अग्रणी बनाया वहां सभ्यता के क्षेत्र में इसने उसे विश्व के अन्य राष्ट्रों से पिछड़ा रखने में भी योग दिया। यह दृष्टिकोण भारतीयों में आनन्द और विश्वास को उत्पन्न करके दूसरे लोक में सुख तथा मोक्ष की मीठी गोलियां खिलाकर उसे सांसारिक कष्टों को सहन करने की शक्ति प्रदान करता रहा है। इसने भारतीयों में संतोषवादी प्रवृत्ति को पनपाकर उन्हें वैज्ञानिक क्षेत्रों में आगे बढ़ने से सदैव रोका है।

(१९) उत्तम युद्ध प्रणाली – आर्य जाति युद्ध कला के तत्कालीन मापदण्ड के आधार पर संसार में सर्वश्रेष्ठ थी। आर्यों ने ही भारत में लोहे जैसे कठोर धातु के हथियारों का प्रयोग शुरू किया। वे विभिन्न विनाशक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण और प्रयोग जानते थे। स्थायी सैन्य-संगठन; सैनिक अनुशासन तथा चार अंगों-हाथी;

घोडा; रथ व पैदल में सैन्य-विभाजन विचार आर्यों की ही देन हैं। भारतीयों युद्ध-कला मे प्रवीण बनाने मे आर्यों का बहुत बडा हाथ रहा है।

(२०) आश्रम प्रथा – आर्यों के ऋषि आश्रमो ने भी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रसार तथा ज्ञान के विकास मे बड़ा योग दिया। प्राचीन ऋषि-मुनि अपने तपोवन आश्रम स्थापित करते थे जिनमे उनका अधिकाश समय ज्ञानार्जन मे व्यतीत होता था। शिक्षा द्वारा अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाना इनका प्रमुख कार्य था। वे गहन विषयो की गुत्थी सुलझाते थे। इस तरह ये आश्रम प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्रोत बन गये। इन आश्रमो के महत्व को बताते हुए सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि "इन आश्रम प्रथा के द्वारा शातिमय उपवनो मे हमारे दर्शन शास्त्र की उन्नति हुई तथा आचारशास्त्र, नीतिशास्त्र एव साहित्य की शाखाओ को जीवन मिला। यहीं पर हमारी सच्ची प्राचीन सभ्यता विद्यमान थी और इन सब बातो का श्रेय हमारे प्राचीन आर्यों को था।

आर्यों ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को जो कुछ भी प्रदान किया वह एक ठोस सामग्री है और भारतीय सभ्यता की आधारशिला है। हमारा धर्म, हमारे सामाजिक आदर्श, हमारा समाज सगठन और तत्व-चिन्तन हमारे विचार आदि सभी मे आर्यों की देन बडी महत्वशाली है। अन्य जातियाँ भी इस देन से प्रभावित हुईं और उन्होंने इस देन को अपना लिया। इससे वे समृद्ध हो गईं। आज भी भारतीय सभ्यता व संस्कृति मे आर्यों द्वारा प्रदत्त तत्व विद्यमान हैं और हमारी संस्कृति का प्रवाह निरन्तर चल रहा है।

वरन् उपर्युक्त भिन्न भिक्षुवर्गों में से ही ये दो वर्ग थे, यद्यपि उनका प्रभाव दूसरों की अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण तथा स्थायी हुआ था।"

बौद्ध तथा जैन दोनों ही धर्मों ने भारतीय संस्कृति के प्रवाह को प्रभावित किया और उस पर अपनी युगान्तकारी छाप छोड़ी। यहां हम बुद्धवादी प्रभाव का अवलोकन करेंगे।

(१) राजनीतिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म ने अपना अनोखा योगदान दिया। इसने समाज में जाति-पाति के ऊँच-नीच के भावों को विनष्ट करके सामाजिक सांस्कृतिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करने का प्रयत्न किया। सामान्य बोलचाल की भाषा के प्रयोग से यह एकता और भी दृढ़ हो गई। इस धर्म ने अपने श्रोताओं की प्रमुख भावनाओं को विशेष रूप से प्रभावित किया। इसने अपनी सरलता से सभी को आकर्षित किया। सामान्य जनता इस धर्म को समझने लगी और एक दूसरे के निकट आई। इस तरह बौद्ध धर्म ने भारतीय राष्ट्र के विकास में योग दिया और भारत की राजनीतिक एकता का मार्ग पूर्वापेक्षा सुलभ बना दिया।

बौद्ध धर्म ने राजनीतिक क्षेत्र में शांति और भ्रातृत्व के सिद्धांत का भी प्रचार किया। अशोक महान की नीति बौद्ध धर्म की अपूर्व देन है। अशोक ने तलवार के बल पर नहीं, अपितु शांति के बल पर विश्व-विजय करने का प्रयास किया और विश्व-कल्याण के उच्च आदर्शों से वह प्रेरित हुआ। राजनीति में "वसुधैव कुटुम्बकम्" का प्रचार अशोक ने बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर ही किया था और आज स्वतन्त्र भारत की राजनीति के मूल में भी यही भावना काम कर रही है।

(२) सामाजिक क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म ने महत्वपूर्ण प्रभाव अंकित किया। जहाँ हिन्दू धर्म की व्यवस्था ने असमान वर्गों को जन्म देकर भारत में पृथकता की भावनाओं को फैलाया वहां बौद्ध धर्म ने समानता के आधार पर समाज को संगठित करने का प्रयास किया तथा एक ही भाषा का प्रसार करके भारतवासियों में एकता की भावना को मज़बूत बनाया। समानता की भावना ने दलित वर्ग एवं स्त्री-समाज से दीन-हीनता की भावना को दूर करके उनमें नव-चेतना का संचार किया। बौद्ध धर्म ने सहनशीलता का उपदेश दिया और मनुष्यों का कल्याण करने की शिक्षा दी। समानता और सहनशीलता की इन शिक्षाओं के कारण अधिकांश जातियों और नर-नारियों का भेद-भाव विलीन हो गया।

बौद्ध धर्म ने सदाचार, लोक-सेवा और उच्च आदर्शों पर बल देते हुए पहली बार भारत में मानव के परस्पर समान सम्बन्धों पर बल दिया। यद्यपि इससे पूर्व भी उपनिषदों तथा महाभारत में सदाचार, जन-सेवा और स्वार्थ त्याग आदि उच्च आदर्शों पर बल दिया गया था परन्तु उससे साधारण जनता के सदाचार और नैतिकता का स्तर बहुत ऊँचा नहीं उठ पाया था। दान, शुद्धता, आत्मबलिदान, सत्यता, आत्म-नियन्त्रण, दया, समता, अहिंसा, मन-वचन और कर्म की पवित्रता आदि नैतिक गुणों का भारतीय समाज में समुचित ढंग से समावेश

धर्म के कारण ही मूर्ति पूजा भारत मे दृढ़तापूर्वक स्थापित हो सकी। यह तत्व आर्य धर्म के नहीं थे, उनमें तो खुली हुई वेदियो पर यज्ञ-अनुष्ठानादि करना ही प्रमुख था।

रथ-यात्रा भी बौद्ध धर्म की देन है। जनता के लिए सुव्यवस्थित नैतिक शिक्षा के प्रसार का कार्य बौद्ध धर्म ने ही सर्व प्रथम नालन्दा विश्वविद्यालय द्वारा आरम्भ किया। धार्मिक क्षेत्र में बौद्धिक स्वतन्त्रता का समारंभ करके बुद्ध ने एक विवेकशील धर्म को जन्म दिया और दिया लोगो को 'आत्म-दीप' होने का सदेश। यह बुद्ध ही थे जिन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि वे उनके वचनो और आदेशो को गुरु-वचन मानकर ग्रहण न करें, अपितु अपनी बुद्धि-विवेक की कसौटी पर उन्हें वैसे ही कसें जैसे एक स्वर्णकार सोने को कसता है।

(४) वैदेशिक क्षेत्र में भी इस धर्म ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को प्रभावित किया—बौद्ध धर्म न केवल भारत में फला-फूला अपितु भारत से विलुप्त होने के बाद भी यह विदेशो मे भारतीय संस्कृति की कीर्ति-गाथा गाता रहा और आज भी यह भारत के बाहर के विश्व में एक सर्वाधिक प्रमुख धर्म बना हुआ है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी मे जब सम्राट अशोक इस धर्म का महान उपासक बना तब बौद्ध धर्म भारत के बाहर व्याप्त होने लगा। बौद्ध धर्म के प्रचारकों ने लंका और बर्मा (ब्रह्मा) को अपने धर्म मे परिवर्तित कर लिया। एशिया माइनर के मैसोपोटामिया तथा सीरिया देशों में, अफीका के मिश्र तथा यूरोप के मकदूनिया के देशों मे भी बौद्ध धर्म के प्रचारक जा पहुंचे। उसी युग मे बौद्ध धर्म मध्य एशिया मे प्रसारित हो गया और एक अनुश्रुति के अनुसार अशोक का एक पुत्र कच्छ तथा उसके समीप-वर्ती प्रदेशों पर अपनी राज्य सत्ता स्थापित करने एवम् बौद्ध धर्म का प्रचार करने मे सफल रहा। एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार चीन देश में बौद्धधर्म बहुत पहिले के ही युग में पहुंच गया था। चीनी भाषा मे बौद्ध ग्रन्थो का अनुवाद सर्व प्रथम कश्यप-मातंग ने किया जो ईस्वी सन् ५६ में चीन गया था। बौद्ध धर्म ने कोरिया में सन ३७२ मे प्रवेश किया जहा से वह सन् ५३८ मे जापान जा पहुचा। ईसा की तीसरी शताब्दी के पूर्व ही इन्डोचीन बौद्ध धर्म से रंग चुका था और ६४० ईस्वी के लगभग तिब्बत भी इस धर्म के प्रभाव मे आ गया। १२ वी और १३ वीं शताब्दियो मे भारत के बगाल और बिहार के पाल नरेशो के राज्याश्रय में बौद्ध धर्म भारत में बना रहा। इस पाल युग मे अनेक भारतीय आचार्य तिब्बत गये जहा उन्होने बौद्ध धर्म को दृढ़ता प्रदान की तथा हजारों बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती भाषा मे अनुवाद किया। इस तरह बौद्ध धर्म ने भारत को पृथकता भंग कर दी और भारत तथा बाह्य देशों के मध्य मित्रतापूर्ण घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर दिये। बाह्य विश्व को भारत की यह सबसे महान देन थी। आज भी मध्य एशिया, जावा, सुमात्रा, लका आदि मे बौद्ध धर्म के माध्यम से भारतीय संस्कृति और सभ्यता अपनी महानता स्थापित किये हुए है।

बौद्ध धर्म के उपदेश और बौद्ध धर्म की महानता सशय से परे है, किन्तु यह [illegible]र की बात है कि विदेशों के बौद्ध अनुयायी अपने धर्म की आत्मा से विमुख ही

चुके हैं। धार्मिक वस्त्रों को धारण किये हुए वे आत्मा से हिंसावादी, युद्ध-प्रिय और धर्म-विरोधी बन चुके हैं। अपने आप को बौद्ध धर्म का महान पोषक और अनुयायी कहलाने वाला चीन संसार के लिए अभिशाप बना हुआ है और सम्पूर्ण विश्व-शान्ति के लिए एक गम्भीर खतरा सिद्ध हो रहा है। विश्व के विभिन्न शान्तिप्रिय बौद्ध राष्ट्रों के प्रति भी उसकी नीति निश्चित रूप से घातक है। बौद्ध संस्कृति के केन्द्र तिब्बत पर बौद्ध मतावलम्बी चीन ने जो अत्याचार किया है, उसे इतिहास कभी नहीं भुला सकता।

(५) साहित्यिक क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति को गौरवान्वित किया। व्याकरण और तर्क शास्त्र में तो बौद्ध विद्वानों ने बहुत उच्च श्रेणी का कार्य किया है। पाणिनि और पतञ्जलि के बाद व्याकरण-शास्त्र के विकास में जयादित्य और जिनेन्द्र बुद्ध जैसे विद्वानों का मुख्य स्थान था। नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य नागार्जुन माध्यमिक दर्शन के प्रवर्तक थे। बौद्ध विद्वानों ने आयुर्वेद तथा

अमरावती के स्तूप तथा अशोक के शिलास्तम्भ भारतीय कला के सर्वोत्तम नमूनों में से हैं। गुप्तकाल की बौद्ध इमारतों में बुद्ध-गया का मन्दिर, सारनाथ का दमेग-स्तूप, अजन्ता की अधिकांश गुफाएं, एलोरा की कतिपय गुफाएं, बाघ और औरंगाबाद की गुफाएं प्रसिद्ध हैं। बौद्ध चित्रकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अजन्ता और बाघ की गुफाओं में विद्यमान हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म ने प्रत्येक क्षेत्र में कुछ न कुछ समृद्धि अवश्य प्रदान की।

(६) भारत के प्रमुख धर्मों की आधारभूत विशेषताएं और उनका हमारी सांस्कृतिक परम्परा में योगदान

भारत सदैव से एक धर्म प्रधान देश रहा है। इसकी भूमि में विभिन्न धर्म पनपे हैं, पनपे हैं और इसकी संस्कृति पर अपना प्रभाव छोड़ गये हैं। भारत की संस्कृति ने भी इन विभिन्न धर्मों को कभी ठुकराया नहीं प्रत्युत उनके गुणों को ग्रहण करके उन्हें अपने में आत्मसात ही किया है। धार्मिक विचार और धार्मिक आदर्श भारतीयों के जीवन के कोने कोने में समाये हुए हैं, चाहे वर्तमान काल में वे अपने आदर्शों के प्रति सच्ची लगन से भले ही विमुख हो गये हों। धर्म ने ही भारतीय समाज और संस्कृति को विशेष स्वरूप प्रदान किया है। आधुनिक युग में पाश्चात्य भौतिकवादी दृष्टिकोण के प्रभाव से भारतीय जीवन धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत भले ही न दिखलाई देता हो, किन्तु फिर भी धर्म उसके जीवन मार्गों का पर्याप्त रूप से प्रभावित किये हुए है और प्राचीन काल में तो सभी क्षेत्रों में धर्म का प्रभाव सर्वोपरि रहा। वास्तव में विज्ञान और धर्म में कोई शत्रुता नहीं है। शत्रुता तो विज्ञान और अन्धविश्वास में है। धर्म का सात्विक रूप मानव जीवन के लिए इतना आवश्यक है कि उसके बिना मानव विकास सम्भव नहीं है। इसलिए तो कहा गया है—"जिस प्रकार किसी बीज के विकास के लिए उर्वर भूमि, जल आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानव विकास के लिए धर्म आवश्यक है।" हम भारतवासियों के लिए तो वास्तव में यह मानसिक भोजन है। हमारी आध्यात्मिक भावना का मूल स्रोत धर्म ही है।

यहां पर धर्म क्या है, इसका महत्व क्या है, आदि बातों पर प्रकाश डालना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमें तो विशेषकर यह देखना है कि भारत में कौन-कौन से प्रमुख धर्म रहे अथवा हैं और उन्होंने भारतीय सभ्यता एवम् संस्कृति को किस प्रकार प्रभावित किया है। इस संदर्भ में हम निम्नलिखित धर्मों की और उनके प्रभावों की चर्चा करना चाहेंगे —

(१) प्राचीन सिंधु सभ्यता का धर्म
(२) हिन्दू धर्म
(३) जैन धर्म
(४) बौद्ध धर्म
(५) इस्लाम धर्म
(६) ईसाई धर्म

विपत्तियों के निवारण के लिए भूत-प्रेत आदि की बाधाओं से मुक्त रहने के लिए गण्डे-तावीज पहनते अथवा बांधते थे। 'इन सब बातों से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि सैंधव लोगों की बुद्धि का विकास; मनन एवम् चिंतन का विकास विशेष नहीं हुआ था तथा बुद्धि, तर्क, विज्ञान एवम् दर्शन की गहराइयों की यह प्रारम्भिक मानव सम्यता शनैः शनैः बनते हुए आदिकालीन धार्मिक संस्कारों पर ही इन लोगों की धार्मिक संरचना आधारित थी। इन लोगों का जीवन विशेषकर ऐहिक था। ऐहिक जीवन का सुख उच्च वर्ग के लोग यथा शासक, पुजारी; पुरोहित तथा अन्य आधुनिक लोग भोगते थे-किन्तु उस युग में भी 'चेतना' अधिक जागृत नहीं थी, चेतन-अनुभूति गहरी नहीं थी।'

भारत की सांस्कृतिक परम्परा को सिन्धु सभ्यता के धर्म की देन —सिन्धु सभ्यता के धर्म की भारतीय धर्म और संस्कृति को निश्चित रूप से अविस्मरणीय देन है। डा० रामेश्वर गुप्ता ने भारतीय संस्कृति पर इसके प्रभाव को बताते हुए लिखा है—"सिन्धु सभ्यता आज से लगभग ६–७ हजार वर्ष पूर्व इस सृष्टि के रंगमंच पर अवतरित हुई, बेबीलोनिया सभ्यता की भांति नर्तकी सा कुछ क्षणों तक अपना नृत्य करके विलीन हो गई, किन्तु उस नर्तकी के नृत्य की कुछ तरंगें आज भी मानो प्रवहमान है—उनका प्रभाव आज भी भारत में विद्यमान है। मातृ देवी की पूजा, शक्ति पूजा, शिव और शिवलिंग की पूजा, देवता रूप में पत्थर, वृक्ष, तुलसी; और बैल की पूजा, शत्रु-तारा, मन्तर-जन्तर, योग, धूप-दीप-नैवेद्य से मूर्ति की पूजा इत्यादि बातें भारतीय संस्कृति में उस अतीव प्राचीनकाल से 'आगम' रूप में चली आ रही हैं। कई पौराणिक हिन्दू देवता सिन्धु सभ्यता के देवता के ही तो विकसित रूप हैं, जैसे—

सिन्धु सभ्यता के देवता	पौराणिक हिन्दू देवता
लाल वर्ण देवता पशुपति	रुद्र, शिव
मां देवी	उमा (शक्ति)
नील वर्ण आकाश देवता	विष्णु
शौर्य और युद्ध का देवता	मुरुकुरा (शिव का पुत्र स्कन्द)
यौवन और सौंदर्य का देवता	कमदेव : कृष्ण
गणेश	गणेश"

वस्तुस्थिति यह है कि भारतीय जनजीवन एवम् संस्कृति पर जितना गहरा प्रभाव सैंधव सभ्यता ने डाला उतना सम्भवतः आर्य संस्कृति भी नहीं डाल सकी। आज हम जिस संस्कृति-परम्परा पर अभिमान करते हैं और दिन-रात जिसकी दुहाई देते नहीं थकते; उसके निर्माण में सैंधव सभ्यता का बहुत बड़ा हाथ है। सिन्धु सभ्यता की भांति आज भारतीय धर्म भी मूर्ति पूजक है; पशुओं में नाग की पूजा नागपंचमी के दिन अब भी होती है। कुछ पशु जो उस काल में देवी-देवता माने जाते थे अब अन्य देवी-देवताओं के वाहन बन गये हैं। उदाहरणार्थ—सिंह अब दुर्गा का वाहन बन गया है। भूत-प्रेत रोग आदि की बाधाओं में रक्षा करने के लिए गण्डे-तावीज आज भी समाज में काफी प्रचलित हैं।

(२) हिन्दू धर्म :—आर्यों के आगमन से भारतीय संस्कृति में सभी क्षेत्रों में नये द्वार खुले। धार्मिक क्षेत्र भी अछूता न रहा। हिन्दू धर्म अथवा वैदिक हिन्दू धर्म के उदय की कोई निश्चित तिथि नहीं बताई जा सकती; किन्तु यह अवश्य है कि आर्य सभ्यता के विकास के साथ-साथ ही इस धर्म का विकास प्रारम्भ हुआ। वैदिक साहित्य (वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्) तथा उत्तरवैदिक साहित्य (वेदांग; धर्म-पुराण; इतिहास, महाभारत, रामायण, दर्शन) ही हिन्दू-धर्म, हिन्दू-मान्यता, हिन्दू-दर्शन, हिन्दू-ज्ञान-विज्ञान के आधार स्तम्भ हैं। आधुनिक हिन्दू-धर्म प्राचीन वैदिक धर्म का ही नामान्तर है। इस धर्म के प्रवर्तक, ईसाई या मुसलमान या बुद्ध धर्मों के समान कोई एक नबी या प्रोफेट (Prophet) या गुरु नहीं हुआ, न इसका प्रवर्तन किसी एक विशेष काल में हुआ। यह धर्म तो प्राचीन ऋग्वैदिक काल से (वह ऋग्वेद जो मानव जाति का आदि ग्रन्थ है) आधुनिक काल तक एक अजस्र धारा की तरह बहता हुआ चला आया है और चला जा रहा है। आज के भारतीयों में उसी प्राचीन ऋग्वैदिक संस्कृति एवं दार्शनिक मान्यताओं के संस्कार हैं।

हिन्दू धर्म की सम्पूर्ण व्याख्या करना कोई सरल कार्य नहीं है। यह धर्म मूलतः एक दैवी-सत्ता-ब्रह्म में विश्वास करता है। इसकी मान्यता है कि ब्रह्म सर्वव्यापक है और अनेक रूपों में इसकी उपासना की जा सकती है। हिन्दू धर्म के अनुसार सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करने वाला ईश्वर है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी के द्वारा बनाया हुआ है, वही सृष्टि का रक्षक है। हिन्दू धर्म वेदों पर आधारित है। इसके अनुसार वेदों की रचना किसी व्यक्ति द्वारा नहीं की गई है अपितु ये ब्रह्म द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। वेदों की ऋचायें ध्रुव, नैतिक और आध्यात्मिक सत्य का भण्डार हैं। वेदों में अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवों की स्तुतियाँ हैं और ये सब ईश्वर के ही विभिन्न रूप हैं। हिन्दू वेदों का सामाजिक और धार्मिक विषयों में प्रमाण मानते हैं।

वैदिक हिन्दू धर्म के देवी-देवता, सैंधव सभ्यता की भाँति, प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के प्रतिनिधि हैं। ये देवी-देवता तीन वर्गों में विभक्त हैं—भूमि पर निवास करने वाले, आकाश पर रहने वाले और स्वर्ग में स्थित। इनमें वरुण, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, मरुत, सोम ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश आदि देवता तथा ऊषा, पृथ्वी, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियाँ प्रमुख हैं। ये देवी-देवता जीवन और विवेक से युक्त हैं जो प्रसन्न होने पर मनुष्य का कल्याण करने में समर्थ हैं। किन्तु इन सब का मूल स्रोत एक मात्र ब्रह्म है। तात्पर्य यह है कि वैदिक हिन्दू धर्म बहु-देववादी होते हुए भी मूलतः एकेश्वरवाद में विश्वास रखता है।

हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के जीवन के चार उद्देश्य हैं—अर्थ; काम; धर्म और मोक्ष। अर्थ मनुष्य के भौतिक जीवन की ओर संकेत करता है। मनुष्य में सम्पत्ति की तृष्णा स्वाभाविक है। किन्तु उसे सही रूप में अपनाना ही र कर्तव्य अथवा धर्म है। इस अर्थ के क्षेत्र में हर व्यक्ति को नैतिकता के साथ . को ध्यान में रखना चाहिये। हिन्दू धर्म काम को मानव जीवन में महत्वपूर्ण है। लेकिन मनुष्य को यह नहीं भूलना चाहिये कि उसे न केवल भौतिक

जगत् में रहकर जीवन व्यतीत करना है अपितु आध्यात्मिक क्षेत्र का वासी भी उसे बनना है। परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करना अनिवार्य है। इसके लिये हिन्दू-धर्म ने भक्ति-मार्ग अपनाया है। श्रद्धा और विश्वास उसके लिए जरूरी है। भारतीय भक्ति-परम्परा में परमात्मा से अनेक प्रकार से लगन लगाई जा सकती है—स्वयं को दास और परमात्मा को स्वामी मानकर; या परमात्मा को मित्र मानकर या उसे पुरुष और अपने को स्त्री समझकर उससे नेह किया जा सकता है। जिस प्रकार लक्ष्य की ओर ले जाने वाले अनेक मार्ग होते हैं, उसी तरह हिन्दू धर्म में ज्ञान, भक्ति और कर्म ये तीन प्रकार के मार्ग या योग माने गये हैं। ये मनुष्य को सार्थकता उपलब्ध कराते हैं। योग का अर्थ है युक्त हो जाना। पूर्ण हिन्दू-धर्म की साधना प्राय इन तीनों योगों के अन्तर्गत आ जाती है। ज्ञान-मार्ग; कर्म मार्ग; भक्ति मार्ग—इन तीनों के समन्वय से मोक्ष प्राप्ति निश्चित है। हिन्दू धर्म के अनुसार मानव-जीवन का लक्ष्य ही जीवन-मरण से छूटना अथवा मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष की प्राप्ति अच्छा जीवन, सुन्दर विचार और सत्य कर्म से ही हो सकती है।

हिन्दू-धर्म पुनर्जन्म में विश्वास करता है और मानता है कि जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों का फल भोगने के लिए ८४ लाख योनियों में भटकता रहता है। यह क्रम तब तक चलता है जब तक आत्मा मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेती। मानव-आत्मा अमर है, उसका कभी विनाश नहीं होता। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा के विषय में गम्भीर और विस्तृत चिन्तन किया गया है और यह बताया गया है कि किस प्रकार आत्मा परमात्मा के समीप पहुँचती है और किस तरह ब्रह्म में विलीन हो जाती है।

मनुष्य का जीवन चार आश्रमों में से गुजरना चाहिये—यह हिन्दुओं की दृढ़ धारणा है। जीवन को चार आश्रमों में मनोवैज्ञानिक आधार पर विभाजित करना वैदिक हिन्दू-धर्म की अद्वितीय विशेषता है। ये चार आश्रम हैं—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम। हिन्दू धर्म जो हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है; भारतीयों की आयु १०० वर्ष की मानता है। इसके अनुसार प्रथम २५ वर्ष विद्या अध्ययन और ब्रह्मचर्य पालन में, २५ से ५० वर्ष की अवधि गृहस्थी के सुखों के उपभोग करने में, ५० से ७५ वर्ष की आयु जंगलों में रहकर भगवान का चिन्तन करने में और ७५ से १०० वर्ष तक की अवधि सन्यासी के रूप में व्यतीत करनी चाहिये। यह विभाजन मनोवैज्ञानिक आधार पर भी अत्यन्त सटीक है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि आयु के साथ-साथ मनुष्य का जीवन के प्रति आन्तरिक दृष्टिकोण बदलने लगता है। धीरे-धीरे मानसिक परिपक्वता आती है और मनोदशा में परिवर्तन होता है। हमारे प्राचीन हिन्दू ऋषियों ने इस बात को भली भाँति समझ लिया था। हिन्दू धर्म में चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) की व्यवस्था है जिन्होंने अब जाति-प्रथा का रूप धारण कर लिया है।

जहां हिन्दू धर्म ने भारतीय संस्कृति को श्रेष्ठता की सीढ़ियों पर चढ़ाया है वहां जटिल कर्मकाण्डों और पुरोहितों का महत्व बढ़ाकर भारतीय संस्कृति को हानि पहुँचाने का उत्तरदायित्व भी इसी पर है। वैदिक काल में धर्म का कर्म काण्ड इतना जटिल रूप धारण कर चुका था कि पुरोहितों की सहायता के बिना किसी धार्मिक कृति का सम्पादन ही नहीं किया जा सकता था। इन पुरोहितों ने अपने स्वार्थों की रक्षा के लिये सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में अन्धविश्वास तथा अराजकता का प्रचार किया जिसके फलस्वरूप हिन्दू संस्कृति के ग्रहणशील स्वभाव को आघात पहुँचा और हिन्दू धर्म भी अवनति के मार्ग पर चल पड़ा। वैदिक काल से ही ये बुराइयां, ठोकरें खाकर भी निरन्तर चली आ रही हैं। कर्मकाण्डों, अन्धविश्वासों, छूआछूत आदि ने इस धर्म को खोखला कर दिया है। यह हिन्दू धर्म और हिन्दू-संस्कृति के लिये एक निराशाजनक बात है कि अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता तथा पुरोहितवाद आज भी भारतीयों पर अपना रंग जमाये हुए हैं।

दार्शनिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दू धर्म की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन है। वैदिक धर्म के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद सृष्टि और जीवन के अज्ञात रहस्यों का ज्ञान देते हैं। इनमें अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक विषयों का गम्भीर मनन किया गया है और ऐसे परिपक्व विचार प्रकट किये गये हैं जैसे विश्व में आज तक न कोई कर पाया है और न शायद भविष्य में कर पाये। विश्व के अनेक विद्वान उन पर अध्ययन करके अपने जीवन को सफल मान बैठे हैं। वेदों में सम्पूर्ण मानव जीवन की बड़ी मधुर व सुन्दर कल्पना की गई है। उपनिषद् दर्शनशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, जिनमें ब्रह्म विद्या का अनुपम व विशद विवेचन है। उपनिषद ज्ञान के भण्डार हैं। सम्पूर्ण विद्याएँ; दर्शन-शास्त्र; तर्क विज्ञान आदि इन्हीं से निकल कर आज मानव जाति को अनन्य ज्ञान का आनन्द लुटा रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य के विश्व विख्यात विद्वान मैक्समूलर के शब्दों में "उपनिषद वेदान्त के आदि स्रोत हैं और वे ऐसे निबन्ध हैं जिनमें मुझे मानवीय उच्च भावना अपने उच्चतम शिखर पर पहुँची हुई मालूम होती है।" यही नहीं, प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहार इनके अध्ययन से मस्त होकर पुकार उठा था—"सारे संसार में ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है जो उपनिषदों के समान उपयोगी तथा आनन्द की ओर ले जाने वाला हो। मेरे जीवन एवं मृत्यु दोनों का यही अवलम्बन है।" आरण्यक ग्रन्थों में धर्म के मर्म और रहस्यों का वर्णन है। स्मृति और पुराण भारतीय संस्कृति के नाम को समुज्ज्वल करने वाले हैं। मनुस्मृति तो ऐसी महान साहित्यिक रचना है जिसमें जीवन निर्वाह के सम्पूर्ण नियमों की विशद विवेचना है। रामायण और महाभारत धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों का भण्डार है। इन ग्रन्थों में मानव स्वभाव के गुणों और अवगुणों का सहज ही ज्ञान भरा पड़ा है। गीता सब धर्म ग्रन्थों का निर्वाह है। निष्काम कर्म का उपदेश गीता के सिवाय दुनिया के किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं मिलेगा। इस छोटे किन्तु महान ग्रन्थ की उच्चता एवं अनुपमता पर विदेशी भी आ सकते हैं। "षट दर्शन शास्त्र" ज्ञान के असीम भण्डार हैं जिनमें पशुता से ऊपर उठकर नैतिक व आध्यात्मिक शिखर पर चढ़ने का

मार्ग दर्शन किया गया है। वैदिक हिन्दू धर्म के ये सम्पूर्ण ग्रन्थ संसार में भारतीय संस्कृति के मस्तक पर चार चाँद लगाने वाले हैं।

भारत में आज जो अनेकों धार्मिक सम्प्रदाय दिखाई पड़ते हैं, उनमें से अधिकांश हिन्दू धर्म के ही उपांग हैं। अपने उदारवादी दृष्टिकोण के कारण ही आस्तिक और नास्तिक, मूर्ति पूजक और मूर्ति-पूजा विरोधी, वैष्णव, शैव, आदि सभी और परस्पर विरोधी विचारधारा के अनुयायी इस विशाल हिन्दू धर्म के अंग माने जाते है। भारतीय समाज में प्रचलित अधिकांश व्रत, त्यौहार, तीर्थ आदि वैदिक धर्म से ही ग्रहण किए गए है। छुआछूत और प्रायश्चित की भावना भी इसी धर्म की देन है। भारतीय समाज में आज जो पिछड़ापन दिखाई देता है उसके मूल में भी हिन्दू धर्म का प्रभाव निहित है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र को किसी न किसी रूप में प्रभावित कर रखा है।

(३) जैन धर्म—जैन धर्म के २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने महावीर स्वामी के न्म से लगभग २५९ वर्ष पूर्व जैन धर्म का प्रसार किया लेकिन यह महावीर स्वामी ा थे जिन्होंने इस धर्म को वास्तविक शक्ति प्रदान की और दूर-दूर तक इसका ास्तार किया। स्वामी महावीर का जन्म ५९९ ई० पू० में वैशाली के समीप कुण्डिाम में राजा सिद्धार्थ के घर हुआ था। अपने माता-पिता के निधन के उपरान्त ३० र्ष की आयु में महावीर स्वामी ने, जिनका वास्तविक नाम वर्धमान था, गृह-त्याग र दिया। १२ वर्ष तक के भ्रमण और कठोर तप के बाद उन्होंने 'कैवल्य' (ज्ञान) ाया। इनके द्वारा प्रचलित धर्म जैन धर्म के नाम से प्रख्यात हुआ। ७२ वर्ष की ायु में ५२७ ई० पू० में आप परलोक सिधारे।

जैन धर्म के अनुसार यह संसार एक जंजाल है जिसे मनुष्य को छोड़ देना ाहिए। 'जैन' शब्द 'जिन' शब्द से बना है जिसका अर्थ ही विजेता अर्थात् 'संसार पी मोह के मद को जीतने वाला'। तपस्या और आत्मसंयम द्वारा देवपद प्राप्त रने वाले महात्मा को 'जिन' कहते हैं।

महावीर स्वामी वेदों की अपौरुषेयता में विश्वास नहीं करते थे और न वेदों में वर्णित यज्ञ, हवन आदि अनुष्ठानों में ही उनकी श्रद्धा थी। जैन लोग ईश्वर को जगत का कर्ता नहीं मानते। जैन दर्शन-शास्त्रों के अनुसार सृष्टि अनादि काल से चल रही है और उसका नियन्त्रण-कर्ता या निर्माणकर्ता ईश्वर या भगवान नहीं है। कुछ तत्व विशेष हैं जिनके समन्वय से सब पदार्थों की रचना अपने आप होती है। जैन दर्शन पुनर्जन्म तथा कर्मवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। इसके अनुसार आत्मा विगत जन्मों की संचित वासनाओं तथा अभिलाषाओं की पूर्तियों के लिए बराबर जन्म लेती है। वासनाओं तथा अभिलाषाओं को यदि नष्ट कर दिया जाय तो फिर जन्म लेने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। जैन धर्म आत्मा को सर्वशक्तिमान पवित्र प्रकाश का द्योतक मानता है। मानवीय कर्म के कारण आत्मा की शक्ति घटती-बढ़ती रहती है। इसका परिवर्तन है और यह शरीर से पृथक है। ... ... करने वाले जैन धर्म के अनुसार मनुष्य का निर्माण ही दो तत्वों—

शरीर तथा आत्मा से हुआ है। इनमें शरीर नश्वर है जबकि आत्मा अनश्वर, अजर, अमर एव विकासमान है। आत्मा अपनी पूर्ण शुद्धि के बाद आवागमन के बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

जैन धर्म के अनुसार जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्ति के लिए 'तीन रत्नों' की आवश्यकता है—(१) सम्यक् ज्ञान, अर्थात् जैन धर्म और मुक्ति के विश्व मे पूर्ण ज्ञान होना, (२) सम्यक् दर्शन अर्थात् जैन तीर्थंकरो मे पूरा विश्वास करना, और (३) सम्यक् चरित्र, अर्थात् सदाचार पूर्वक नैतिक जीवन-यापन करना तथा तीर्थंकरो द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना। ये सिद्धान्त अधिकतर गृहस्थों के लिए हैं। महावीर स्वामी ने सघ का भी निर्माण किया था जिसके भिक्षुकों के लिए कठोर नियमों का निर्माण किया गया था।

जैन धर्म का मूल सिद्धान्त 'पंच महाव्रत' है। महावीर स्वामी के पूर्व केवल चार महाव्रत–सत्य, अहिंसा, अस्तेय तथा अपरिग्रह थे। महावीर ने इसमे 'ब्रह्मचर्य' और जोड दिया। आत्मा को पाप से बचाने के लिए इन पाच महाव्रतो पर विशेष बल दिया गया है। अहिंसा का अर्थ है जीवमात्र के प्रति दया का व्यवहार, सत्य का अर्थ है कभी मिथ्या भाषण न करना, अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना, अपरिग्रह का अर्थ है अधिक वस्तुओ का सग्रह न करना और ब्रह्मचर्य का अर्थ है सच्चरित्रता तथा सयम पूर्वक जीवन व्यतीत करना।

जैन धर्म के उपरोक्त सिद्धान्तो ने हिन्दू धर्म के कर्मकाण्डो और आडम्बरो पर प्रहार किया और देश की एक विशाल जनसख्या ने इस धर्म का अनुसरण प्रारम्भ कर दिया।

जैन धर्म की भारतीय संस्कृति को देन—जैन धर्म ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को गम्भीर रूप मे प्रभावित किया। इसके प्रभाव को आज भी भारत मे सर्वत्र देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति को इसने जो अनुपम देन दी, उसे सक्षेप मे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं—

(१) अहिंसा एवं कठोर संयम का पाठ—जैन धर्म ने भारतीयो को अहिंसा एवं कठोर सयम का पाठ पढाया। जैन धर्म के सिद्धान्तो ने जिनमे विशेषकर अणुव्रत ने हमारे सामाजिक जीवन मे एक नवजीवन का संचार किया और भारतीय चरित्र को मजबूत बनाया। इसके उच्च आदर्शो से अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक, अकबर इत्यादि विदेशी शासक भी काफी प्रभावित हुए। अहिंसा हमारी विदेश-नीति का प्रमुख सिद्धान्त है। इसके प्रसार का श्रेय जैन धर्म को है।

(२) साहित्य सृजन मे देन—जैन साहित्य का काफी मात्रा मे सृजन हुआ। इस साहित्य को हम दो भागों मे बाँट सकते हैं। प्रथम श्वेताम्बर सम्प्रदाय का साहित्य और दूसरा दिगम्बर सम्प्रदाय का साहित्य। श्वेताम्बरो के ग्रन्थ अर्धमागधी में हैं जो 'अग' कहलाते है। ये ११ हैं और इनका संकलन लिखित रूप मे पाँचवीं शताब्दी ई० में हुआ था। इनके अन्य ग्रन्थों मे भद्रबाहु का "कल्पसूत्र" प्रमुख है। दिगम्बरों के ग्रन्थ दूसरी शताब्दी ई० में संकलित किए माने जाते हैं और संस्कृत

उन्होंने जिन शिक्षाओं और सिद्धान्तों द्वारा भारतीय जनमानस को प्रभावित किया तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति को समृद्ध बनाया, वे संक्षेप में इस प्रकार थे—

महात्मा बुद्ध ने चार आर्य अथवा शाश्वत सत्य बताये—(१) दुःख सत्य है, (२) दुःख का हेतु सत्य है, (३) दुःख का निरोध सत्य है, (४) दुःख का विरोध-गामी मार्ग सत्य है। इन चार सत्यों के प्रतिपादन में महात्मा बुद्ध ने कहा कि संसार नाना दुःखों से पूर्ण है। अप्रिय का मिलन प्रिय का वियोग, वासना, इच्छाओं की अपूर्ति आदि सभी दुःख हैं। इन सभी दुःखों का जन्म तृष्णा या वासना से होता है और अतृप्त तृष्णा से जन्म-मरण होता है। हमारी न बुझने वाली तृष्णा की पूर्ति के प्रयत्नों से ही विषय-वासना, मोह, द्वेष, कलह, अहंकार आदि उत्पन्न होते हैं और तब काम, क्रोध, मद, लोभ-मोह से दुःखों का जन्म होता है। महात्मा बुद्ध ने आगे बताया कि तृष्णा के नाश से सब संसार के दुःख दूर हो सकते हैं। तृष्णा विनष्ट होने पर जन्म-मरण और जन्म-मरण उत्पन्न दुःखों का निरोध होता है। इसी अवस्था को निर्वाण कहते हैं। निर्वाण इसी संसार में प्राप्त हो सकता है। अविद्या का विनाश और ज्ञान की प्राप्ति ही निर्वाण है। निर्वाण का तात्पर्य मनुष्य के अस्तित्व की समाप्ति नहीं, वरिक सांसारिक बन्धनों की समाप्ति तथा पूर्ण शान्ति है।

तृष्णा के निवारण और दुःखों के विनाश के लिए महात्मा बुद्ध ने 'अष्टांग मार्ग' का प्रतिपादन किया। दूसरे शब्दों में सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने के उन्होंने आठ नियम या साधन बताये—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्म, (५) सम्यक् आजीविका, (६) सम्यक् प्रयत्न, (७) सम्यक् स्मृति, और (८) सम्यक् समाधि।

महात्मा बुद्ध ने मानवीय जीवन की मुक्ति के लिए 'मध्यम मार्ग' का पथ प्रदर्शित किया और कहा कि उपरोक्त आठ नियमों का पालन करके व्यक्ति मध्यम मार्ग का अनुयायी बन सकता है। इस प्रकार बौद्ध धर्म में कठोर तप की पराकाष्ठा का बहिष्कार किया गया और बताया गया कि शारीरिक कष्ट तो मानसिक व आत्मिक विकास के लिए हानिकारक है।

बुद्ध ने नैतिक शील पर पर्याप्त बल देते हुए आचरण की दस बातें प्रतिपादित कीं। उन्होंने कहा कि इन आचरणों का पालन करना प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है—(१) अहिंसा का पालन करना, (२) झूठ का परित्याग करना, (३) चोरी न करना (४) वस्तुओं का संग्रह न करना, (५) भोग-विलासी न बनना, (६) नृत्य गान का त्याग करना, (७) सुगन्धित पदार्थों का त्याग करना, (८) असमय में भोजन न करना, (९) कोमल शय्या का त्याग एवं (१०) कामिनी-कंचन का त्याग। इनमें से प्रथम पाँच आचरण गृहस्थ उपासकों और अन्तिम पाँच भिक्षुओं के लिए आवश्यक बताये गये हैं।

उपरोक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त बुद्ध ने अनीश्वरवाद तथा अनात्मवाद का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि संसार की उत्पत्ति के लिए किसी सत्ता की आवश्यकता नहीं है। कार्य-कारण की शृंखला से सृष्टि का संचालन होता रहता है।

स्पष्टत. बौद्ध धर्म नास्तिक था। बुद्ध ने आत्मा के अमरत्व में भी अविश्वास प्र
किया और शरीर से पृथक आत्मा के अस्तित्व को नहीं माना। परन्तु फिर
उनका पुनर्जन्म में विश्वास था। परन्तु यह विश्वास वैदिक धर्म की तरह आत्मा
पुनर्जन्म में नहीं, बल्कि अनित्य अहंकार और तृष्णा के नूतन जन्म में था जो
कर्म के नियम से संचालित होता रहता है। इस तरह बुद्ध कर्मवादी थे। उन
यह मानना था कि जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल पाओगे।

अहिंसा बौद्ध धर्म का मूलमंत्र है और बुद्ध ने यह बताया कि
प्राणी मात्र को पीड़ा पहुँचाना महा पाप है। फिर भी समय और परिस्थितियों को
देखते हुए बौद्ध धर्म ने इस सिद्धान्त को स्थूल रूप प्रदान किया, जैनियों की भांति
उग्रवादी अहिंसा को नहीं अपनाया।

कालान्तर में बुद्ध का धर्म हीनयान तथा महायान में परिवर्तित हो गया
और इसमें बुद्ध के आदर्शों का पतन हो गया।

बौद्ध धर्म की भारतीय संस्कृति को देन—आन्तरिक दोषों, भिक्षुओं के
चारित्रिक पतन, फूट, मुस्लिम आक्रमण आदि विभिन्न कारणों वश बौद्ध धर्म १२वीं
शताब्दी के उपरान्त भारत भूमि से लगभग लुप्त हो गया, किन्तु भारत में अपने
१५०० वर्षों के जीवन काल में इसने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र
को प्रभावित किया। इसके प्रभाव का विस्तार से वर्णन पूर्ववर्ती पृष्ठों में किया जा
चुका है, अतः उसे यहां दोहराना अनावश्यक है।

इस्लाम धर्म—मक्का नगर में अरब लोगों की समूहगत जातियों में
बद्दू नामक एक जाति थी। इसी जाति के एक साधारण घराने में सन् ५७०
में मक्का नगर में इस्लाम के संस्थापक मोहम्मद साहब का जन्म हुआ। पहले
वर्षों तक आपने गड़रिये का जीवन व्यतीत किया, फिर मक्का में ही रहने वा
एक धनवान व्यापारी की विधवा के यहाँ नौकरी कर ली, जिसका नाम खदी
था। धीरे धीरे अपनी मालकिन खदीजा से इनका प्रेम सम्बन्ध हो गया और
बाद में इन्होंने उससे शादी भी कर ली थी। उस समय इनकी आयु लगभग २५
और खदीजा की ४० वर्ष की थी।

कहा जाता है कि मोहम्मद साहब को कुछ आंतरिक अनुभूतियाँ हुई थीं
उनकी एक तात्विक अनुभूति यह थी कि एक अल्लाह है—परवरदिगार और सबक
मालिक। बन्दा अपनी ख्वाहिश को अल्लाह की ख्वाहिश में मिला दे और अल्लाह के
परों में अपने आपको छोड़ दे। मोहम्मद साहब को लगभग ४० वर्ष की अवस्था में
यह ईश्वरीय प्रेरणा मिली। उन्होंने अपनी अनुभूतियों की चर्चा पहिले तो केवल
खदीजा, एक स्नेही मित्र अबुबक्र और अपने जमाई अली के सामने ही की। किन्तु
अनुभूतियों की तीव्रता बढ़ती गई और फिर तो मुक्त होकर वे इनका एलान सबके
सामने करने लगे। जो कुछ भी उन्होंने कहा उसके विषय में उन्होंने यही एलान किया
कि जो कुछ भी वे कहते हैं उसका दर्शन अल्लाह के एक दूत ने उन्हें करवाया है।
उनका ज्ञान, उनकी शिक्षाएं अल्लाह की देन है। मोहम्मद साहब ने धीरे-धीरे
अपने समर्थकों का एक संगठन तैयार किया और वे अपनी शिक्षाओं ...

ा प्रचार करने लगे । मोहम्मद साहब जो शिक्षाएं देते थे, उन्हें उनके अनुयायी लिपिबद्ध करते जाते थे । जिस ग्रन्थ को इन शिक्षाओं से लिपिबद्ध किया गया उसे 'कुरान' कहते हैं । मोहम्मद की शिक्षाएं ही इस्लाम धर्म है और कुरान ही मुसलमानों की एक मात्र धर्म-पुस्तक है । आज भी अधिकांश मुसलमान कुरान के शब्दों में कट्टर विश्वास रखते हैं । इस्लाम धर्म के जो भी मुख्य सिद्धान्त है, उन्हे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं: –

(१) इस्लाम धर्म एकेश्वरवाद का समर्थक है । इसके अनुसार ईश्वर अर्थात् खुदा एक है, इसलिये बहुदेवोपासना का परित्याग कर सर्व-शक्तिमान खुदा की आराधना करनी चाहिये । मोहम्मद इसी सर्व-शक्तिमान एक-मात्र खुदा का पैगम्बर है ।

(२) अल्लाह परवरदिगार है, सबका मालिक है । हमें अपनी इच्छा उसकी इच्छा मे मिला देनी चाहिये और अपने-आपको पूरी तरह उसके भरोसे पर छोड़ देना चाहिये ।

(३) अल्लाह बुत (मूर्ति) मे समाया हुआ नहीं है, इसलिये मूर्ति-पूजा अज्ञान है । मंदिर, बलि, पूजा, पुजारी सब मूर्खता है । प्रत्येक मुसलमान को चाहिये कि वह इन्हें खत्म करे । यह स्मरणीय है कि इस्लाम धर्म ने कभी किसी भी सूरत मे मूर्ति-पूजा को बर्दाश्त नहीं किया है ।

(४) एक बहिश्त (स्वर्ग) है और एक दोजख (नर्क) है । जो अच्छा काम करेगा वह स्वर्ग मे पूरे ईश्वरीय सुख का भोग करेगा और जो बुरा काम करेगा वह नर्क की अग्नि मे जलेगा ।

(५) जो अल्लाह में विश्वास नही करते, उन्हें कभी भी स्वर्ग नही मिल सकता ।

(६) प्रत्येक मुसलमान के चार कर्त्तव्य हैं–नमाज पढ़ना (दिन मे ५ बार), खैरात करना (अपनी आमदनी का ४० वा भाग दान में देना), रमजान मास मे रोजे रखना तथा मक्का की तीर्थ यात्रा (हज) करना ।

(७) मुसलमानों में कोई भेद-भाव नहीं होगा । खुदा के सामने खुदा की इबादत में सब बराबर होंगे । हर मुसलमान एक दूसरे का भाई होगा । वास्तव में भ्रातृत्व और समानता इस्लामी सामाजिक संगठन की दो बुनियादी चीजें हैं जो आधुनिक जनतन्त्रवाद के भी आधारभूत सिद्धान्त हैं । किसी भी मुसलमान इबादत की जगह (मस्जिद), किसी भी सामूहिक खान-पान मे यह देखा जा सकता है कि मुसलमानों मे छोटे-बड़े का, धनी-गरीब का; अफसर-नौकर का किंचित-मात्र भी भेद-भाव नहीं रहता । सब बराबर एक साथ बैठकर ईश्वर की प्रार्थना करते हैं । सब बराबर बैठकर खाते-पीते हैं । किसी भी नस्ल, किसी भी कबीले या जाति का व्यक्ति जब एक बार इस्लाम के संगठित समूह मे मिल जाता है तो उसकी विभेदात्मक सारी विशेषताएं दूर कर दी जाती हैं । यही बात है कि सामूहिक रूप से मुसलमान एक दूसरे के साथ समान भ्रातृत्व के बन्धन में जकड़े हुए हैं और अपने-आपको शक्तिशाली महसूस करते हैं । वास्तव में इतिहास मे मोहम्मद साहब द्वारा यह प्रथम

व्यावहारिक प्रयोग किया गया था कि समानता और भ्रातृत्व के आधार पर
समाज का गठन हो।

(८) इस्लाम धर्म मनुष्य को चार विवाह करने तक की आज्ञा देता
है। कावालीन खाना और निर्धनों को धार्मिक उपासना प्रदान करना तथा
धार्मिक कार्य बतलाता है। पूरा मुसलमान वही है, जो ईमान और धर्म में दृढ़
रखता है।

मोहम्मद साहब ने काफिरों और मूर्तिपूजकों से निरन्तर युद्ध करने की
दी और उनके साथ कठोर रहने का आदेश भी दिया। उन्होंने ईश्वर पर वि
स रखने वालों से कर तक वसूल लेने की इजाजत दी और कहा कि उनके स
तब लोहा लें जब तक कि वे ईश्वर के प्रति झुक न जाएं।

मोहम्मद साहब ६३२ ई० में ६२ वर्ष की उम्र में मक्का में स्वर्गव
गये। उन्होंने अपने जीवन काल में ही यद्यपि प्रत्येक नियम और धार्मिक वि
का निश्चय कर दिया था किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी के
में अनेक झगड़े हुए और मुसलमानों में दो फिरके हो गये। एक फिर्का उनके
था था जो मोहम्मद साहब की गोद के बेटे अली को और अली के वंशजों को उ
असली उत्तराधिकारी समझते थे। यह फिर्का "शिया" कहलाया। दूसरा फि
अली और उसके वंशजों को उचित उत्तराधिकारी नहीं मानता था; इस फि
लोग "सुन्नी" कहलाये। इन सुन्नियों ने अली के दो पुत्र हसन और हुसैन को
बेरहमी से मार डाला। भारत में मुसलमान इसी घटना को प्रत्येक त्योहार के
में मानते हैं और ताजिये निकालते हैं।

मुसलमानों के मुख्य तीर्थ स्थान मक्का, मदीना और अजमेर हैं।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा पर इस्लाम धर्म की देन—इस्लाम धर्म
भारत प्रवेश के बाद, भारतीय संस्कृति पर काफी प्रभाव पड़ा। इस्लामी सम्पर्क
भारतीय संस्कृति कहां तक प्रभावित हुई—इसका विस्तृत विवरण अगले अध्याय
किया गया है अतः यहां पर प्रासंगिक दृष्टि से संक्षिप्त चर्चा कर देना पर्याप्त है
इस्लाम धर्म के कारण भारत का अन्य देशों से सम्बन्ध फिर से स्थापित हुआ
कि बौद्धों के बाद लगभग समाप्त सा हो चला था। बौद्ध धर्म के बाद ब्राह्मण
फिर प्रभावी बन गया था और जाति-पांति के भेद-भाव फिर से तेजी से पनपने
थे। इस्लाम धर्म के अनुयायियों ने एकता के नारों को बुलन्द किया और बन्धुत्व
भावना को भारतीय जनता के समक्ष रखा। उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में भी एक
लाने का प्रयास किया। मुगलकाल में चित्रकला और भवन निर्माण कला
इस्लामी सभ्यता का भारी योगदान रहा और साहित्यिक क्षेत्र में भी दो
संस्कृतियों का फिर समन्वय हुआ। इस्लाम धर्म के एकेश्वरवाद ने भारतीयों में ए
ईश्वर के प्रति निष्ठा का पुनर्जागरण किया और उनमें प्राचीन हिन्दू धर्म के न
अंकुर फूटने लगे। हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये भारतीयों ने कुछ इस्लामी तत
। इस्लाम धर्म के प्रभाव ने हिन्दुओं के जाति-भेद पर प्रहार किया औ

उनमें समानता की भावनाओं का प्रसार किया। अकबर ने दोनों धर्मों का समन्वय करके एक नये धर्म को जन्म दिया जो दीन-ए-इलाही कहलाया।

(६) ईसाई धर्म — विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय धर्मों में अग्रणी ईसाई धर्म की स्थापना महात्मा ईसामसीह (४ ई० पूर्व से २६ ई० तक) ने की थी। ईसामसीह का जन्म पैलेस्टाइन में जेरूसेलम के एक बढ़ई के घर हुआ था। ईसा का बाल्यकाल एक चरवाहे के रूप में बीता। यह एक आम मान्यता है कि ईसा के जन्म के समय कुछ ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी की थी कि यह बालक यहूदियों का रक्षक होगा क्योंकि उन्होंने उसके जन्म के समय आकाश में एक नये सितारे को उदय होते हुए देखा था।

कालान्तर में ज्योतिषियों की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। ईसा जनता के रक्षक के रूप में एक ऐसे महापुरुष सिद्ध हुए जिसने तत्कालीन राजा और धर्माधिकारियों द्वारा जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई। जनता की रक्षा के लिये और धर्म के पुनर्जागरण के लिये उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संघर्ष में व्यतीत कर दिया—जीवन भर केवल यातनाएं ही भोगीं—यहां तक कि अन्त में रोम के धर्माधिकारी पोप के दबाव में आकर रोम के राजा ने इनको सूली पर चढ़ा दिया। वे भी जन-कल्याण के लिए हँसते-हँसते शांतिपूर्वक सूली पर लटक गये। यही कारण है कि आज भी उन्हें मसीहा के रूप में, ईश्वर दूत और धर्म रक्षक के रूप में पूजा जाता है। उनकी मृत्यु के बाद रोमन लोगों ने उनके सिद्धान्तों की सत्यता और महत्त्व को समझा और उन्हें अपनाने लगे। यहां तक कि रोम के सम्राट ने भी अपने अधिकारियों की रक्षा के लिये इस धर्म को अपनाया। ईसा के अनुयायी ईसाई कहलाये जिनका यह विश्वास है कि ईसा ने अपनी मृत्यु के बाद फिर से जन्म लिया है। कालान्तर में ईसा के सिद्धान्तों ने एक शक्तिशाली धर्म का रूप धारण कर लिया जो ईसाई धर्म के नाम से सुविख्यात है।

ईसा मसीह ने जो विभिन्न शिक्षाएं दीं अथवा ईसाई धर्म के जो सिद्धान्त हैं वे संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित हैं :—

महात्मा ईसा के अनुसार परमात्मा एक है, जो हम सब का दयालु पिता है और हम सब उसके समानभाव से पुत्र हैं, अतः हम सभी मानव-प्राणी समान भाई-भाई हैं। 'ईसा का राज्य' इस संसार में स्थापित होगा। एक ईश्वरीय राज्य प्रत्येक प्राणी के अन्तर में भी स्थित है; प्रत्येक प्राणी अपने अन्तर में इसकी अनुभूति करके इसको प्राप्त करे।

ईसा मसीह ने यह बातें न किसी से सीखी थीं, न पुस्तकों से ग्रहण की थीं अपितु ये बातें तो वे थीं जो स्वयं ही उनके अन्तर में प्रकाशित हो उठी थीं। इसलिये उनकी वाणी आकर्षक थी, सच्ची थी और बार-बार दबाये जाने पर भी युग-युग में फिर मुखरित होती रही।

महात्मा ईसा ने विश्व को, विशेषकर पश्चिमी प्रदेशों को यह क्रांतिकारी संदेश दिया कि अपने शत्रु से भी प्यार करो और उन्हें भी आशीर्वाद दो जो तुम्हें श्राप देता है। पश्चिम के लोगों ने यह कभी नहीं सुना था कि ईश्वर का राज्य

मनुष्य के हृदय में ही स्थित है और त्याग, सेवा, प्रेम और अहिंसा के गु अपनाते हुए मनुष्य स्वयं अपने हृदय में ही उस ईश्वरीय राज्य को प्राप्त कर स है। ईसा ने यह स्पष्ट संदेश दिया कि स्वयं को ईश्वर में समर्पित कर दो ईश्वर की इच्छा में अपनी इच्छा मिला दो । यह एक ऐसा संदेश था जो घो करता था कि मानव एवं संसार का कल्याण इसी में है और ईश्वर-राज्य स्थापना तब ही हो सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना सुधार कर ले संदेश की तुलना अब २०वीं शताब्दी के महानतम वैज्ञानिक आइन्सटाइन के स कीजिये। एक प्रश्न के उत्तर में कि किस प्रकार मानव और समाज का नैतिक ऊंचा किया जा सकता है। आइन्सटाइन ने कहा था—"कोई सामान्य तरीक हो सकता। प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपने आप को सुधारना प्रारम्भ करे। आजक त्याग की अपेक्षा सफलता को अधिक महत्व देते हैं। इसलिये लोग महत्वा होते। यह महत्वाकांक्षा ही मनुष्य की सबसे बड़ी शत्रु है। हमें धन एकत्र ही नहीं किन्तु सेवा करना भी सीखना चाहिये।" यही ईसा मसीह की 'आ उनका सच्चा संदेश है। ईसा का संसार त्याग का संसार है सेवा का सं एक दूसरे के प्रति संवेदनात्मक अनुभूति का संसार है।

ईसा ने उपदेश दिया कि सभी कुछ उस ईश्वर का है और उसी को अर्पि देना चाहिये। इस प्रकार ईसा ने अपने उपदेशों से स्थानीय राष्ट्र प्रेम की और सीमित पारिवारिक बन्धनों को समाप्त कर दिया। आर्थिक क्षेत्र में वर्ग-भेद को, निजी सम्पत्ति को और व्यक्तिगत लाभ की भावना को बु बतलाया। एक बार एक व्यक्ति उनके चरणों में भेंट कर यह प्रश्न करने "स्वामी, मैं क्या करूं, जिससे अमर हो जाऊँ।" ईसा ने उत्तर दिया, मुझे क्यों कहते हो? विश्व का स्वामी केवल एक है और वह परमपिता परमेश्व तुम उसकी इन आज्ञाओं का पालन करो—

१. व्यभिचार न करो, २. हिंसा न करो, ३. चोरी न करो, ४. की साक्षी न दो, ५. छल न करो और ६. माता-पिता का सम्मान करो व्यक्ति ने उत्तर दिया—यह बात तो मैं करता आया हूं।" तब ईसा ने प्रे कहा—तुम में एक कमी है। तुरन्त जाओ और जो कुछ भी पास है सब निर्ध बांट दो और फिर तब तुम्हारे लिये स्वर्ग में कोष भर जाएगे और तब तुम तरह भेस धारण कर लोगे। वह व्यक्ति बड़ा उदास हुआ क्योंकि उसके अपार सम्पत्ति थी। महात्मा ईसा का संदेश था कि सुई के छिद्र में से ऊंट नि सकता है परन्तु सम्पत्ति-शालियों का स्वर्ग द्वार में प्रवेश अत्यन्त कठिन है।

ईसा मसीह कहा करते थे कि उनका साम्राज्य इस संसार में नहीं है, मे है सिंहासन पर नहीं है, मानव हृदय में है। उनके ईश्वरीय साम्राज्य में सम्पत्ति, विशेषाधिकार, घमण्ड, ऊंच-नीच का भेद-भाव, लालसा और हिंसा के लिये कोई स्थान नहीं था—केवल प्रेम, त्याग, दया, करुणा आदि का ही था। ईसा की विशालता में संकुचितता को कोई स्थान नहीं दिया गया था।

बताया कि ईश्वर को कोई विशेष जाति या देश या राष्ट्र प्रिय नहीं है, उसके समक्ष तो सब बराबर हैं। उन्होंने कहा कि मानव हृदय में जब ईसा का प्रेम उमड़ पड़ता है तो उसके सामने भाई-बहिन, माता-पिता का कोई सम्बन्ध नहीं ठहरता—इन सब सम्बन्धों को भूलकर ईसा-प्रेम के अथाह सागर में अवगाहन करने लग जाता है। उन्होंने ऐसी भावनाओं की धज्जियां उड़ायी जो बाह्य आचार-विचार एवं परम्पराओं में ही धर्म की स्थिति मानती हैं। वास्तविक धर्म बाह्याचार में नहीं है, वह तो केवल ढोंग मात्र है। वास्तविक धर्म स्थित है मानव-हृदय की भावना में अन्तर के सार में।

ईसा मसीह ने उपदेश दिया कि मनुष्य को क्षमाशील होना चाहिये। बुराई का बदला बुराई से नहीं देना चाहिये। उनके "कोई एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल भी आगे कर दो" का सिद्धान्त विनम्रता सिखलाता है।

ईसा मसीह के उपदेश जो एक पहाड़ पर दिये गये थे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन्हें 'Summons on the Mountain' कहते हैं। उनके इन उपदेशों में मुख्य ये हैं :—

(१) निर्धन लोग सुखी हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।

(२) दुख सहने वाला सुखी है क्योंकि उसको अन्त में आराम मिलेगा।

(३) विनयी सुखी हैं क्योंकि वे ही पृथ्वी के अधिकारी हैं।

(४) जब लोग तुम्हें पीड़ा या गाली दें तो तुम सुखी हो।

(५) तुम शत्रु से प्रेम करो, जो तुम्हें शाप दे उसे तुम आशीर्वाद दो, जो घृणा करे उसके साथ भलाई करो और जो कष्ट पहुँचाये उसके लिए सुख की कामना करो।

ईसाई धर्म सृष्टि की रचना में ईश्वर को श्रेय देता है, अर्थात् आदम और ईव, जो ईश्वर द्वारा भेजे गये, उन्हीं की प्रेरणा से यह संसार है, ऐसा मानता है।

ईसाई धर्म का प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ बाईबिल है और तीर्थ स्थान पैलेस्टाइन है। ईसाई धर्म में भी मोटे रूप से दो सम्प्रदाय हैं—कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट। यह धर्म भी 'कयामत' के दिन में विश्वास करता है और अनन्त जीवन के सिद्धान्त की ओर संकेत करता है।

भारत की सांस्कृतिक परम्परा में ईसाई धर्म की देन—अंग्रेजों के आगमन के साथ ही भारत में ईसाई धर्म का प्रचार आरम्भ हुआ। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने यहां अनेक गिरजाघरों और मठों की स्थापना की तथा भारत की जनता के मध्य न केवल अपने धर्म का प्रचार किया प्रत्युत नाना सुधार भी किये। उन्होंने ईसा के मानवीय और आध्यात्मिक सिद्धान्तों से भारतीयों को अवगत कराया और भारत की गिरी हुई तथा पतित जातियों की दयनीय दशा को सुधारने का भरसक प्रयास किया। ईसाई धर्म-प्रचारकों की प्रेरणा से भारतीय सभ्यता में पुरातन काल से चली आ रही विश्व-बन्धुत्व की भावना और भी संपुष्ट हुई तथा उनमें परस्पर असमानता और ऊँच-नीच के जाति बन्धन ढीले पड़े। मध्यकालीन युग में भारतीय समाज में अस्त-व्यस्तता छा गई थी। धर्म के नाम पर नाना कुरीतियों का जन्म हो चुका था, जैसे—सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा, शिशु-वध, बाल-विवाह, अस्पृश्यता। ईसाई धर्म प्रचारकों ने इन सभी कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

Or

"The Indus Valley civilization was distinctive in characteristics and outlook." Discuss the statement.
"सिन्धु घाटी की सभ्यता अपने स्वरूप तथा दृष्टिकोण में एक विशिष्ट सभ्यता थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

5. Write a short essay on the Aryan civilization.
भारतीय आर्यों की सभ्यता पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

6. "The Aryans succeeded in impressing their ideas and culture upon other races of India and enriched the Indian life." Discuss the statement with reference to the Aryan legacy to India.
"आर्य अपनी संस्कृति और विचारों द्वारा भारत की अन्य जातियों को प्रभावित करने में और भारतीय जीवन को बलशाली बनाने में सफल हुए।" आर्यों की देन को बताते हुये इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

7. Describe the civilization of the Aryans in the early Vedic Age. What changes did it undergo in the later Vedic Age?
पूर्व वैदिक कालीन (ऋग्वेदिक) आर्य सभ्यता का वर्णन करिये। उत्तर वैदिक काल में इस सभ्यता में क्या अन्तर आ गया?

8. Write a short essay on the legacy of the Aryans to India.
भारत को आर्यों की देन पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

9. Compare the culture of the Rigvedic period with that of the Indus Valley and point out the main contribution of these two to the Indian culture
ऋग्वेदिक तथा सिन्धु-घाटी सभ्यता की तुलना कीजिए और यह बतलाइये कि इन दोनों की भारतीय संस्कृति को क्या देन है?

10. Write an essay on the contribution of Budhism to Indian culture.
बौद्ध धर्म का भारतीय संस्कृति को देन, विषय पर एक निबन्ध लिखिये।

11. Write an essay on the cultural synthesis in ancient India with special reference to Pre-Vedic, Aryan and Budhist influences.
प्राचीन भारत में सांस्कृतिक समन्वय पर निबन्ध लिखिये जिसमें पूर्व वैदिक आर्य तथा बुद्ध-प्रभाव का विशेष उल्लेख हो।

12. Write an essay on the teachings of Hinduism.
हिन्दू धर्म की शिक्षाओं पर एक निबन्ध लिखिये।

13. What is the contribution of Hinduism to the Indian heritage?
हिन्दू धर्म की भारतीय संस्कृति को क्या देन है?

14. Write an essay on the teachings of Budhism and Jainism.
बुद्ध व जैन-धर्म की शिक्षाओं पर एक निबन्ध लिखिये।

(र) आर्यों की वेशभूषा ।
(ल) बौद्ध एवं जैन साहित्य ।
(व) आश्रम एवं वर्ण व्यवस्था ।
(श) बौद्ध धर्म की 'आचरण की दस बातें' ।
(ष) बुद्ध का 'मध्यम मार्ग' ।

२ संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये—
(क) जैन धर्म के 'त्रिरत्न' और 'पंच महाव्रत' ।
(ख) धार्मिक क्षेत्र में भारतीय संस्कृति पर बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रभाव ।
(ग) कला के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति को बौद्ध एवं जैन धर्म की देन ।
(घ) इस्लाम की प्रमुख शिक्षायें ।
(ङ) ईसा के प्रमुख उद्देश्य ।
(च) हिन्दू-धर्म के स्रोत ।
(छ) हिन्दू-धर्म के मूल-सिद्धान्त ।
(ज) सिन्धु सभ्यता में शिव ।
(झ) ज्ञान और भक्ति मार्ग ।
(ञ) जैन धर्म और अहिंसा ।
(ट) वैदिक धर्म में सहिष्णुता की भावना ।
(ठ) आर्य और द्रविड संस्कृति की तुलना ।
(ड) भारतीय संस्कृति पर जातियों का प्रभाव ।

OBJECTIVE TYPE QUESTIONS
(नवीन शैली के प्रश्न)

१. 'हां' या 'ना' में उत्तर दीजिये—
(क) भारतीय सभ्यता व संस्कृति संसार की प्राचीन संस्कृतियों में से एक
(ख) भारतीय संस्कृति की एक विशेषता 'एकेश्वरवाद' है ।
(ग) भारतीय संस्कृति में 'परलोकवादी विचार' विदेशियों की देन है ।
(घ) आर्यों की सभ्यता सिन्धु सभ्यता से पुरानी है ।
(ङ) भारतीय संस्कृति आर्यन संस्कृति है ।
(च) सिंधु प्रांत में पशु पूजा होती थी ।
(छ) मातृ देवी की पूजा वैदिक संस्कृति से पूर्व विद्यमान नहीं थी ।
(ज) सिंधु सभ्यता की भाषा और लिपि अध्ययन की दृष्टि से सरल है ।
(झ) आर्यन सभ्यता से पहले मुद्राएं और ताबीज नहीं मिलते ।
(ञ) सिंधु घाटी की सभ्यता में लोग नृत्यकला से परिचित थे ।

(ग) सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि 'ब्राह्मी' थी।
(त) ऋग्वैदिक कालीन आर्य पशुबलि के शौकीन थे।
(थ) बुद्ध धर्म जैन धर्म के बाद आया।
(द) बुद्ध धर्म ईश्वर में विश्वास नहीं करता था।
(ध) आर्य सभ्यता के पतन के पश्चात् भारत में जो नयी सभ्यता विकसित हुई उसे सिंधु सभ्यता कहा जाता है।
(न) सिंधु सभ्यता के निवासियों का सबसे प्रमुख देवता इन्द्र था।
(प) हिन्दू धर्म एकेश्वरवाद का घोर विरोधी है।
(फ) वैदिक काल का समाज पितृ सत्तात्मक था।
(ब) बौद्ध धर्म में मूर्ति पूजा का प्रचलन सबसे पहले इसकी हीनयान शाखा ने प्रारम्भ किया।
(भ) सिंधु सभ्यता में मूर्ति पूजा को हेय दृष्टि से देखा जाता था।
(म) जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे।

२. 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिए—
(क) सिंधु-सभ्यता के निवासियों का सबसे प्रमुख देवता इन्द्र था।
(ख) वैदिक काल का समाज पितृ-सत्तात्मक था।
(ग) बौद्ध-धर्म में मूर्ति-पूजा का प्रचलन सर्वप्रथम इसकी हीनयान शाखा ने किया।
(घ) बुद्ध ने पाली भाषा को अपने उपदेशों के प्रचार का माध्यम बनाया।
(ङ) हिन्दू पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते हैं।
(च) जैन धर्म हिन्दू धर्म से बहुत पहले विद्यमान था।
(छ) इस्लाम धर्म एकेश्वरवाद का शत्रु है।
(ज) इस्लाम धर्म के अनुसार मूर्ति-पूजा अज्ञान है।
(झ) इस्लाम धर्म के संस्थापक मोहम्मद साहब आजन्म अविवाहित रहे थे।

. सही शब्द छाँटकर रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए—
(क) भारत में जिन सांस्कृतिक तत्वों का संगम हुआ है उनमें·······और······· तत्वों की प्रधानता है। [आर्य/ईरानी/द्रविड/यूनानी]
(ख) भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ है ······। [सत्कर्म/कर्त्तव्य/विवेक]
(ग) ·······को छोड़ कर अन्य किसी भी देश की संस्कृति भारत के समान प्राचीन नहीं है। [यूनान/मिसोपोटामिया/चीन/मिस्र]
(घ) वेदों को ··· ·· भी कहा जाता है। [धर्मग्रन्थ/श्रुति/ईश्वरीय ज्ञान]
(ङ) सिंधु सभ्यता से सम्बन्धित ·······नगर सबसे अधिक सुरक्षित अवस्था में मिला है। [हड़प्पा/मोहनजोदड़ो/चान्हूदड़ो]
(च) शिव नामक देवता की उपासना भारतीय संस्कृति में ····· से ग्रहण की गई है। [सिंधु सभ्यता/बौद्ध धर्म/वैदिक सभ्यता]
(छ) ब्रह्म की सत्ता तथा आत्मा परमात्मा के बारे में सत्ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र आधार मानने वाले·······कहलाते हैं। [ज्ञानमार्गी/कर्ममार्गी/भ[illegible]र्गी]

(ज) भारत पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिये आर्यों को······ ···से संघर्ष करना पड़ा। [मंगोलों/यूनानियों/द्रविड़ों/हूणों]

(झ) भारतीय समाज को संयुक्त परिवार प्रणाली······ की देन है। [बौद्ध धर्म/वैदिक सभ्यता/सिंधु सभ्यता]

(ञ) ···· ·बौद्ध धर्म की देन है। [रथ यात्रा/तीर्थ यात्रा/जल यात्री]

(ट) शव व्यवस्था का निर्माण ·······की अनुपम देन है। [बौद्ध धर्म/जैन धर्म]

(ठ) इस्लाम धर्म मनुष्य को · · · विवाह करने की आज्ञा देता है। [दो/चार/पांच]

४. तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए—

(क) आप आर्यों के मूल निवास स्थान के बारे में क्या जानते हैं?

(ख) आर्यों के विभिन्न देवताओं के नाम लिखिए।

(ग) भारतीय संस्कृति में 'भाग्यवादी दृष्टिकोण' से आप क्या समझते हैं?

(घ) बुद्ध का 'अष्टांग मार्ग' क्या है?

(ङ) आर्यों के आमोद-प्रमोद के साधन क्या थे?

(च) सिन्धु सभ्यता के लोग किन-किन पशुओं से परिचित थे?

(छ) द्रविड़ों की प्रकृति कैसी थी?

(ज) द्रविड़ों के व्यवसाय क्या थे?

(झ) द्रविड़ों का समाज कैसा था?

(ञ) द्रविड़ों के विवाह सम्बन्धी नियम क्या थे?

(ट) सिंधु सभ्यता के देवताओं के नाम बताइये।

(ठ) पौराणिक हिन्दू-धर्म के प्रमुख देवताओं के नाम बताइये।

(ड) जैन धर्म के द्वैतवाद से आप क्या समझते हैं?

(ढ) बौद्ध धर्म में 'निर्वाण' क्या है?

(ण) इस्लाम धर्म के अनुसार मुसलमान के ४ कर्त्तव्य कौन-कौन से हैं?

(त) ईसामसीह के 'ईश्वरीय साम्राज्य' से क्या तात्पर्य है?

५. सही तिथियां छांटिये—

(क) गौतम बुद्ध का जन्म······ ··शताब्दी में हुआ। [ईसा पूर्व छठी/ईसा पूर्व चौथी/ईसा पूर्व सातवीं

(ख) वैदिक सभ्यता का सूत्रपात·········ईसा पूर्व से माना जाता है। [३०००/२०००/२५००

(ग) सिंधु सभ्यता के अवशेषों की खोज सर्वप्रथम सन्········ईस्वी में की। थी। [१९१२/१९२२/१९४२/१९४०

६. निम्नलिखित के उत्तर दीजिये—

(क) बौद्ध धर्म के प्रमुख ग्रन्थों के नाम बताइये।

(ख) जैन धर्म के प्रमुख ग्रन्थो के नाम बताइये।
(ग) हिन्दू-धर्म के प्रमुख ग्रन्थो के नाम बताइये।
(घ) इस्लाम धर्म का प्रमुख ग्रन्थ कौनसा है ?
(ङ) मुसलमानो के मुख्य तीर्थस्थान कौनसे हैं ?
(च) ईसामसीह के पहाड़ पर दिये गये प्रमुख उपदेश कौन से हैं ?
(छ) ईसाई धर्म का प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ और प्रमुख तीर्थ स्थान कौनसा है ?
(ज) ईसाई धर्म मे कौन से प्रमुख सम्प्रदाय हैं ?

७ सही समूह बनाइये (प्रत्येक धर्म के सामने उससे सम्बन्धित शब्द आना आवश्यक है)

१ बुद्ध धर्म	१ एकेश्वरवाद
२, ईसाई धर्म	२ सिद्धात
३ हिन्दू धर्म	३. अष्टाग मार्ग
४ जैन धर्म	४ कयामत का दिन
५. हिन्दू धर्म	५ प्रोटेस्टेन्ट
६. इस्लाम धर्म	६ चैत्य पूजा
७ बुद्ध धर्म	७ महायान

२

मध्यकालीन सांस्कृतिक समन्वय-भारतीय समाज पर इस्लामी प्रभाव, भक्ति और सूफी आन्दोलन

[CULTURAL SYNTHESIS DURING THE MEDIEVAL PERIOD-IMPACT OF ISLAM ON INDIAN SOCIETY, BHAKTI AND SUFI MOVEMENTS]

राजपूत युग मे अपनी पृथक्करण की विघंनी भावनाओं के कारण देश अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा और भारत पर विदेशी मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया। इन नये आये हुए मुसलमानो की संस्कृति मूलतः एक विदेशी संस्कृति थी और भारतीय संस्कृति को इस विरोधी संस्कृति से संघर्ष एवं समन्वय करना था। भारतीय यद्यपि सभ्यता एव संस्कृति की दृष्टि से काफी बढ़े-चढ़े थे तथापि इस्लाम धर्म मे भी एक अपूर्व शक्ति विद्यमान थी। इसीलिए जहां मुसलमान भारत के योगियो, संतों, धर्माचारियों,'विद्वानों और शिल्पियों के सम्पर्क में आकर हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता के प्रभाव से प्रभावित हुए बिना न रह सके वहां इस्लाम के रूप में आने वाली नई संस्कृति एवं सभ्यता भी भारतीय धर्म और जीवन को प्रभावित किये बिना

हिन्दू-मुगल-काल का प्रारम्भ हुआ। अंतिम मुगल सम्राट औरंगजेब जब संश्लेषण (Synthesis) अथवा समन्वय की प्रवृत्ति से पथ भ्रष्ट हुआ और रूढ़िवादी तथा अनुदार बना तो अन्त में मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर विनष्ट हो गया; तथा पश्चिम से आने वाले पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के लिए शासन-सत्ता हथियाने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क की इस ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर एक विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त अब हम निम्नलिखित पंक्तियों मे यह बताने की चेष्टा करेंगे कि हिन्दू मुस्लिम समन्वय से कैसी नवीन संस्कृति का निर्माण हुआ और उसकी अभिव्यक्ति हमारे सामाजिक जीवन, धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं, साहित्य तथा ललितकलाओं में किस भांति हुई। दूसरे शब्दों में दोनों संस्कृतियों के एक-दूसरे पर क्या व्यापक प्रभाव पड़े।

हिन्दू समाज पर इस्लाम का प्रभाव.—हिन्दुओं पर मुसलमानों के रीति-रिवाजों का गहरा प्रभाव पड़ा। बाल-विवाह, बहु-विवाह और पर्दा प्रथा मुसलमानों के सम्पर्क के फलस्वरूप हिन्दू समाज मे प्रचलित हुई। भारतीय सामाजिक जीवन मे दासता की प्रथा ने भी बल पकड़ा। मुसलमान शासक हजारों की संख्या मे दास रखते थे; उनका अनुकरण हिन्दू राजाओं और सामन्तों ने भी किया। कट्टर हिन्दुओं ने इस्लाम के बढ़ते हुए प्रचार को देख कर जाति-प्रथा के बन्धन बहुत दृढ़ कर दिये। मुस्लिम वेश-भूषा का भी हिन्दू समाज पर काफी प्रभाव पड़ा। हिन्दू लोग भी चूड़ीदार पायजामा, शेरवानी तथा लम्बे कोट पहनने लगे। पान चबाने का प्रचार बहुत बढ़ गया एवं दरबारों के तौर-तरीकों तथा अभिवादन के मुस्लिम ढंग को भारतीयों ने अपना लिया। मांस और शराब का प्रचार बहुत बढ़ गया। हिन्दू भी फारसी पढ़ने लगे और उसमें रचनाएं करने लगे। फारसी तथा हिन्दी के मिश्रण से उर्दू का जन्म हुआ और हिन्दू मुसलमानों की मिली जुली तहज़ीब का विकास होने लगा।

हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों को निकट लाने के लिए मुसलमान शासकों ने कुछ हिन्दू-त्यौहारों को अपनाकर दरबारी पचाङ्ग मे (कैलेंडर) स्थान दिया। उदाहरणार्थ होली, बसन्त, दशहरा, रक्षाबन्धन आदि त्यौहारों में मुस्लिम जनता भाग लेने लगी। अकबर ने तो रक्षाबन्धन को एक राष्ट्रीय त्यौहार बना दिया। हिन्दू और मुसलमानों के जन्म-मरण, विवाह आदि पर होने वाले उत्सवों और पूजा-पाठ में भी अनेक समानतायें स्थापित हो गई।

हिन्दू महिलाओं की दशा पहले की अपेक्षा अधिक निम्नस्तर पर आ गई। स्त्रियों का अपने स्वामियों अथवा अन्य पुरुष सम्बन्धी पर आश्रित होना समाज की प्रमुख विशिष्टता हो गई। मुसलमानों से अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा करने हेतु हिन्दू स्त्रियों में सती-प्रथा देश व्यापी हो गई।

भारत में इस्लाम सभ्यता के प्रस्तुत होने से अन्य सामाजिक प्रभाव समाज का विभाजन था। इस्लाम ने भारतीय समाज को ऊपर से नीचे तक हिन्दू और

कला का भी सुधार तथा विकास हुआ। हिन्दू परिवारों में हुक्का पीना प्रचलित हुआ जबकि भारतीय मुसलमान पान खाने के शौकीन बन गये।

धार्मिक क्षेत्र में दोनों संस्कृतियों का एक-दूसरे पर प्रभाव—हिन्दू और मुस्लिम दोनों सभ्यताओं और संस्कृतियों ने धार्मिक-क्षेत्र में एक-दूसरे पर काफी प्रभाव डाला। रामानन्द, नामदेव, कबीर, नानक, दादू, चैतन्य, रामानुज, ज्ञानेश्वर, रैदास, ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया आदि महान् सन्त इसी युग में हुए जिन्होंने हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों के धार्मिक जीवन को प्रभावित किया।

धार्मिक क्षेत्र में मुसलमानों के कुछ महत्त्वपूर्ण तथा स्थाई योगदान हुए। मुसलमान मूर्तिपूजक नहीं हैं। हिन्दुओं ने भी किसी हद तक मूर्ति-पूजा के सम्बन्ध में उनके विचारों को ग्रहण किया। यद्यपि मूर्ति-पूजा के विरुद्ध आंदोलन तो रामानन्द ने चलाया तथापि उनके पहले ही कुछ संत निर्गुण उपासना पर जोर दे चुके थे। रामानन्द के प्रमुख शिष्य कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के मेल के लिये बड़ा सराहनीय प्रयत्न किया। उन्होंने मूर्ति-पूजा के विरोध में बहुत कुछ कहा। आगे चलकर सिक्ख धर्म के प्रवर्तक तथा प्रचारक गुरु नानक ने मूर्ति-पूजा का विरोध किया। हम इस बात से भलीभाँति परिचित हैं कि सिक्ख लोग भी मूर्तिपूजक नहीं हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि हिन्दुओं के मूर्ति-पूजा का भी मुसलमानों पर प्रभाव पड़ा। यदि हिन्दुओं में बहुत से लोगों ने मूर्ति-पूजा का परित्याग कर दिया तो एक बड़ी संख्या में मुसलमानों ने भी मूर्ति-पूजा को अपनाया। गाँवों में अनेक मुसलमानों ने कब्रों को पूजना आरम्भ कर दिया—यह हिन्दू धर्म का उन पर स्पष्ट प्रभाव था। कब्रों पर फूल-बताशे चढ़ाना और उन पर धूप या सुगन्धित पदार्थ जलाकर उनके आगे प्रार्थना करना यदि मूर्ति-पूजा नहीं है तो और क्या है?

मुसलमानों ने एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से हिन्दू धर्म को बड़ा प्रभावित किया और परिणामस्वरूप हिन्दुओं में बढ़ते जा रहे अनेकेश्वरवाद में ढिलाई आने लगी। "अल्लाह एक है" ने हमारे प्राचीन एकेश्वरवाद की ओर हमारा ध्यान फिर से आकर्षित किया। हममें से अधिकांश केवल एक ईश्वर की उपासना को ही विशेष महत्व देने लगे। मुसलमानों के सूफी सम्प्रदाय के प्रभाव से हिन्दुओं में अद्वैतवाद का पुनः प्रचार हुआ। अद्वैतवाद का अर्थ है—ब्रह्म और जीव एक है, दो नहीं। वैसे यदि ध्यान से देखा जाय तो सूफी मत स्पष्ट रूप से हिन्दुओं का ही अद्वैतवाद है, क्योंकि ब्रह्म और जीव की एकता का प्रतिपादन भारतीय महर्षि प्राचीन काल से करते चले आ रहे थे। सूफी सम्प्रदाय भारतीय वेद, उपनिषद् और वेदांत-दर्शन से गहरा प्रभावित हुआ था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस्लाम और हिन्दू धर्म के परस्पर संसर्ग से महत्वपूर्ण परिणाम निकले। इस सम्पर्क से हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे सम्प्रदायों का उदय हुआ जो हिन्दू और मुस्लिम धर्मों के भेद-भावों को मिटाने वाले थे। इन सम्प्रदायों को 'सुधार आन्दोलन' कहा जा सकता है। हिन्दू-मुस्लिम संतों और धर्माचार्यों के प्रभाव से काफी हद तक मन्दिर और मस्जिद के भेद मिटे, राम और रहीम के झगड़े

भी मिटे तथा धीरे-धीरे दोनों सम्प्रदायों में सद्भाव और सहयोग की भावना ने स्थान लिया। पारस्परिक सहिष्णुता की अभिव्यक्ति मुसलमानों के मनों में हिन्दुओं के प्रति बढ़ती हुई श्रद्धा व भक्ति में हुई और इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं के साधु-सन्तों के प्रति श्रद्धा और भक्ति-भाव रखने लगे। बंगाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं के शीतला, काली, चण्डी आदि देवी-देवताओं की पूजा को अपना लिया तो हिन्दुओं ने उदारतापूर्वक मुस्लिम पीरों और मजारों का पूजन आरम्भ किया। सामंजस्य, सहिष्णुता, सहयोग और उदारता की भावनाओं के इन परिणामों के साथ साथ सत्यपीर नामक देवता का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही मानते थे।

दोनों संस्कृतियों का पारस्परिक साहित्य पर प्रभाव—साहित्यिक क्षेत्र में भी दोनों संस्कृतियों ने एक दूसरे पर अपना गम्भीर प्रभाव डाला। कुछ मुस्लिम शासकों को साहित्य से बड़ी दिलचस्पी थी और वे उच्चकोटि के साहित्य का पूर्ण सम्मान करते थे चाहे वह किसी भी भाषा में और किसी भी जाति द्वारा लिखा गया हो। दिल्ली सल्तनत के अधिष्ठाता इल्तुमश ने शिक्षित वर्ग को सदैव प्रोत्साहन दिया। वह दिल्ली में मदरसे स्थापित करने वालों में प्रथम था। बलबन ने भी बुद्धिमान एवं शिक्षित लोगों को संरक्षण प्रदान किया। फीरोज तुगलक ने राज्य के विभिन्न भागों में लगभग ३० मदरसे बनवाये और उच्च शिक्षा के क्षेत्र का विकास किया। हिन्दुओं में विशेषकर कायस्थ लोग फारसी भाषा में उतने ही निपुण हो गये जितने कि मुसलमान थे। फारसी के ज्ञान में प्रवीण हिन्दुओं ने राजकीय सेवाओं में प्रवेश किया और इनमें से अनेक श्रेष्ठ लेखक और शायर बने। फीरोज तुगलक ने दर्शन व ज्योतिष शास्त्रों का फारसी में अनुवाद कराया। लोदीवंश के सुलतानों के समय में—विशेषकर सिकन्दर लोदी के समय में—संस्कृत के आयुर्वेद ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद हुआ। मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद वास्तव में शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ। बाबर और हुमायूं परिष्कृत रुचियों के व्यक्ति थे। अकबर यद्यपि स्वयं अशिक्षित था, पर उसने शिक्षा-विस्तार में अत्यधिक रुचि प्रकट की और शिक्षा को अधिक धर्म-निरपेक्ष बनाने के प्रयत्न किये। प्रत्येक बालक को आवश्यक रूप से नीति-सम्बन्धी पुस्तकें, अंकगणित, नाप तौल की विद्या, रेखागणित, ज्योतिष, मुखाकृति विज्ञान (Physiognomy), गृह शास्त्र, शासन के नियम, औषधि, तर्क, धर्मशास्त्र, इतिहास, दर्शन आदि का अध्ययन करना पड़ता था। संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों से व्याकरण, न्याय, वेदांग आदि पढ़ने की आशा की जाती थी। अकबर की सदैव यह इच्छा रहती थी कि समय की मांग के अनुसार विषय पढ़ाये जाय। वास्तव में वह हिन्दू-मुस्लिम एकता व सहयोग का प्रबल पोषक था। उसके समय में हिन्दू कवियों और इतिहासकारों ने सम्पन्नता व प्रगति के पथ पर बढ़ना आरम्भ किया। सम्पन्न और उच्च कुलीन परिवार की स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करायी जाती थी। उदाहरणार्थ रजिया, गुलबदन, नूरजहाँ, मुमताज, जहाँआरा आदि बेगमें पढ़ी-लिखी थीं।

इसमें कोई संशय नहीं कि बिना किसी भेदभाव के सामान्य पाठशालायें चलाने की मुस्लिम नीति ने एक हितकारी बौद्धिक वातावरण का निर्माण किया तथा इससे राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को सम्बल मिला। अकबर ने अनेक उच्च-कोटि के संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया। बदायूनी (Badaoni) ने अथर्ववेद और रामायण का फारसी में अनुवाद किया तथा महाभारत का अनुवाद हिन्दू-मुस्लिम विद्वानों की एक मण्डली से करवाया गया। फैजी (Faizi) ने लीलावती के गणित शास्त्र का फारसी में अनुवाद किया। अबुलफजल ने उच्चतम श्रेणी के लगभग ५६ फारसी कवियों के अकबर के दरबार में होने का उल्लेख किया है। फारसी, संस्कृत और अवधी—इन तीन भाषाओं में निपुण, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे लोग भी अकबर के दरबार में थे। रहीम के दोहे आज भी लोगों द्वारा बड़ी रुचि और गौरव के साथ पढ़े जाते हैं। अकबर की हिन्दी काव्य में गहरी रुचि ने हिन्दी साहित्य को प्रगति की ओर प्रेरित किया। वास्तव में अकबर संस्कृत को राजकीय संरक्षण देने वाला प्रथम मुस्लिम सम्राट था। हिन्दू और मुसलमान दोनों द्वारा एक दूसरे के साहित्य का अध्ययन करने के फलस्वरूप उनमें एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता की भावना विकसित हुई। अनेक मुसलमान हिन्दू संस्कृति के प्रशंसक हो गये। प्रान्तीय भाषाओं की खूब उन्नति हुई। सुधारवादी संतों ने चाहे वे हिन्दू थे या मुसलमान, देशज भाषाओं में अपने उपदेश दिये ताकि साधारण जनता उनको भलीभांति समझ सके। अमीर खुसरो, रहीम, जायसी, कुतुबन; इंशाअल्लाखां आदि साहित्यकारों ने मुसलमान होते हुए भी हिन्दी में रचनायें लिखीं। जायसी ने तो अवधी भाषा में महाकाव्य ही लिख डाला और वह भी हिन्दू कथा को लेकर। आज अमीर खुसरो के लोकगीतों, अब्दुर्रहीम खानखाना की 'रहीम-सतसई', कुतुबन की 'मृगावती', और जायसी के पद्मावत से कौन परिचित नहीं है। गौड़ के सुलतान नसरतशाह ने महाभारत का बंगला में अनुवाद करवाया। सुलतान हुसैनशाह के संरक्षण में मलधरबसु ने गीता का अनुवाद बंगला में किया। उर्दू का प्रादुर्भाव स्वयं हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय का ज्वलन्त प्रमाण है। मुसलमानों और हिन्दुओं के दैनिक सम्पर्क तथा दैनिक आवश्यकताओं से प्रेरित आदान-प्रदान के कारण धीरे धीरे एक मध्यस्थ भाषा का विकास हुआ। उस हिन्दी के साथ जो सैनिक पड़ावों में और मुस्लिम शासकों के निवास स्थानों के पास बोली जाती थी तुर्की और फारसी शब्दों के मिल जाने से एक नयी मिली जुली भाषा का जन्म हुआ, जो दोनों जातियों के साहित्यिक समन्वय का परिणाम था।

इतिहास लिखने में हिन्दू कम रुचि लेते थे, यह कहना अनुचित होगा कि मुस्लिम-प्रेरणा प्राप्त करने से पहले कोई हिन्दू इतिहासकार सम्भवतः हुआ ही नहीं। मुस्लिम काल में अनेक इतिहास लिखे गये और इसीलिए आज हमें उस युग में इतिहास की सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। मिनहाजुद्दीन सिराज के 'तबकते नासिरी'; अमीर खुसरो की 'मसनवी'; शम्से सिराज की 'तारीखे फीरोजशाही'; सर ... 'तारीखे मुबारकशाही'; अबुलफजल के 'अकबर नामा' और 'आइने...

भी मिटे तथा धीरे-धीरे दोनों समुदायों में सामञ्जस्य और सहयोग की भावनाओं ने स्थान लिया। पारस्परिक सहिष्णुता की अभिव्यक्ति मुसलमानों के सन्तों के प्रति हिन्दुओं की बढ़ती हुई श्रद्धा व भक्ति में हुई और इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं के साधु-सन्तों के प्रति श्रद्धा और भक्ति-भाव रखने लगे। बंगाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं के शीतला, काली यमराज आदि देवी–देवताओं की पूजा को करना लिया तो हिन्दुओं ने उदारतापूर्वक मुस्लिम पीरों और मजारों का पूजन प्रारम्भ किया। सामञ्जस्य, सहिष्णुता, सहयोग और समीपता की भावनाओं के इन परिणामों के साथ सत्यपीर नामक देवता का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही मानते थे।

दोनों संस्कृतियों का पारस्परिक साहित्य पर प्रभाव—साहित्यिक क्षेत्र में भी दोनों संस्कृतियों ने एक दूसरे पर अपना गम्भीर प्रभाव डाला। कुछ मुस्लिम शासकों को साहित्य से बड़ी दिलचस्पी थी और वे उच्चकोटि के साहित्य का पूर्ण सम्मान करते थे चाहे वह किसी भी भाषा में और किसी भी जाति द्वारा लिखा गया हो। दिल्ली सल्तनत के अधिष्ठाता इल्तुमश ने शिक्षित वर्ग को सदैव प्रोत्साहन दिया। वह दिल्ली में मदरसे स्थापित करने वालों में प्रथम था। बलबन ने भी बुद्धिमान एवं शिक्षित लोगों को संरक्षण प्रदान किया। फीरोज तुगलक ने राज्य के विभिन्न भागों में लगभग ३० मदरसे बनवाये और उच्च शिक्षा के क्षेत्र का विकास किया। हिन्दुओं में विशेषकर कायस्थ लोग फारसी भाषा में उतने ही निपुण हो गये जितने कि मुसलमान थे। फारसी के ज्ञान में प्रवीण हिन्दुओं ने राजकीय सेवाओं में प्रवेश किया और इनमें से अनेक श्रेष्ठ लेखक और शायर बने। फीरोज तुगलक ने दर्शन व ज्योतिष शास्त्रों का फारसी में अनुवाद कराया। लोदीवंश के सुल्तानों के समय में—विशेषकर सिकन्दर लोदी के समय में—संस्कृत के आयुर्वेद ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद हुआ। मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद वास्तव में शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ। बाबर और हुमायूं परिष्कृत रुचियों के व्यक्ति थे। अकबर यद्यपि स्वयं अशिक्षित था, पर उसने शिक्षा–विस्तार में अत्यधिक रुचि प्रकट की और शिक्षा को अधिक धर्म-निरपेक्ष बनाने के प्रयत्न किये। प्रत्येक बालक को आवश्यक रूप से नीति-सम्बन्धी पुस्तकें, अंकगणित, नाप तौल की विद्या, रेखागणित, ज्योतिष, मुखाकृति विज्ञान (Physiognomy), गृह शास्त्र, शासन के नियम, औषधि, तर्क, धर्मशास्त्र, इतिहास, दर्शन आदि का अध्ययन करना पड़ता था। संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों से व्याकरण, न्याय, वेदांग आदि पढ़ने की आशा की जाती थी। अकबर की सदैव यह इच्छा रहती थी कि समय की मांग के अनुसार विषय पढ़ाये जाय। वास्तव में वह हिन्दू-मुस्लिम एकता व सहयोग का प्रबल पोषक था। उसके समय में हिन्दू कवियों और इतिहासकारों ने सम्पन्नता व प्रगति के पथ पर बढ़ना आरम्भ किया। सम्पन्न और उच्च कुलीन परिवार की स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करायी जाती थी। उदाहरणार्थ रजिया, गुलबदन, नूरजहाँ, मुमताज, जहाँआरा आदि बेगमें पढ़ी-लिखी थी।

इसमें कोई संशय नहीं कि बिना किसी भेदभाव के सामान्य पाठशालायें चलाने की मुस्लिम नीति ने एक हितकारी बौद्धिक वातावरण का निर्माण किया तथा इससे राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को प्रश्रय मिला। अकबर ने अनेक उत्कृष्ट संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया। बदायूँनी (Badaoni) ने अथर्ववेद और रामायण का फारसी में अनुवाद किया तथा महाभारत का अनुवाद हिन्दू-मुस्लिम विद्वानों की एक मण्डली से करवाया गया। फैज़ी (Faizi) ने लीलावती के गणित शास्त्र का फारसी में अनुवाद किया। अबुलफज़ल ने उच्चतम श्रेणी के लगभग ५९ फारसी कवियों के अकबर के दरबार में होने का उल्लेख किया है। फारसी, संस्कृत और अरबी—इन तीन भाषाओं में निपुण, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे लोग भी अकबर के दरबार में थे। रहीम के दोहे आज भी लोगों द्वारा बड़ी रुचि और गौरव के साथ पढ़े जाते हैं। अकबर की हिन्दी काव्य में गहरी रुचि ने हिन्दी साहित्य को प्रगति की ओर प्रेरित किया। वास्तव में अकबर संस्कृत को राजकीय संरक्षण देने वाला प्रथम मुस्लिम सम्राट था। हिन्दू और मुसलमान दोनों द्वारा एक दूसरे के साहित्य का अध्ययन करने के फलस्वरूप उनमें एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता की भावना विकसित हुई। अनेक मुसलमान हिन्दू संस्कृति के भक्त हो गये। प्रान्तीय भाषाओं की खूब उन्नति हुई। सुधारवादी संतों ने चाहे वे हिन्दू थे या मुसलमान, देशज भाषाओं में अपने उपदेश दिये ताकि साधारण जनता उनको भलीभाँति समझ सके। अमीर खुसरो; रहीम, जायसी, कुतुबन; इंशाअल्लाखाँ आदि साहित्यकारों ने मुसलमान होते हुए भी हिन्दी में रचनायें लिखी। जायसी ने तो अवधी भाषा में महाकाव्य ही लिख डाला और वह भी हिन्दू कथा को लेकर। आज अमीर खुसरो के लोकगीतों, अब्दुर्रहीम खानखाना की

जब मुसलमान भारत में आये तो उन्हें अपने धार्मिक भवनों के निर्माण के लिए हिन्दू कारीगरों की सेवायें लेनी पड़ीं। इन हिन्दू कारीगरों ने अपने समय की प्रचलित परम्पराओं को अपने नये कार्यों में शामिल कर दिया। महान् हिन्दू शिल्पी पहले अनेक भव्य भवन बौद्ध व हिन्दू काल में खड़े कर चुके थे जिनमें से अनेक उनके कलाकौशल की साक्षी के रूप में आज भी विद्यमान हैं। इन शिल्पियों ने मुस्लिम भवनों का निर्माण करते समय अपनी कला के श्रेष्ठ नमूनों की झलक उन भवनों में भर दी। इसके अतिरिक्त हिन्दू मुस्लिम समन्वित स्थापत्य शैली का प्रादुर्भाव इस कारण भी हुआ कि अनेक बार मुस्लिम आक्रान्ताओं को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मन्दिरों को ही मस्जिदों में परिवर्तित करना पड़ा। इस परिवर्तन में सम्पूर्ण भवनों को नष्ट नहीं किया गया; केवल बाह्य तथा ऊपरी आकार प्रकार मात्र बदले गए। फिर, दूसरी जो नई मस्जिदें बनवाई गईं उनमें भी उन्हीं मस्जिदों का अनुकरण कर लिया गया ताकि उनमें और नवनिर्मित मस्जिदों में कोई विशेष अन्तर न दिखाई पड़े। इस तरह दोनों भवन-निर्माण शैलियों का समन्वय हो गया। साथ रहते-रहते और एक-दूसरे के द्वारा निर्मित भवनों को देखते-देखते स्वभावतः भी इन शैलियों का समन्वय कालान्तर में हुआ है। "विभिन्न कक्षों से संलग्न व खम्भों की कतारों से घिरे दरबार" और दोनों सम्प्रदायों के "सामान्य व अविच्छेद्य सौन्दर्य-प्रसाधन संबंधी व्यवहार" ने दो प्रणालियों के सम्मिश्रण में पर्याप्त सहायता की। तुर्क और अफगान भव्य भवन बनाने में शिल्पियों ने अपनी पद्धति में इस प्रकार का परिवर्तन किया कि उनकी कृति नये रोजगार देने वाले लोगों को स्वीकार्य हो सके। पुनश्च; नये कारीगरों की कला स्वभाव में एकरूप नहीं थी। इस्लाम के अनुयायी अरब, तुर्क आदि अपने साथ केन्द्रीय एशिया, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण पश्चिम यूरोप की कला भी अपने साथ लाये थे। इसलिये इन सभी की झलक और इन सभी की न्यूनाधिक सम्मिश्रण नवीन समन्वित शैली में मिलना स्वाभाविक था। डा० ताराचन्द ने सही ही लिखा है-"मुस्लिम भवन निर्माण की कठोरता को कम कर दिया गया तथा हिन्दुओं की इस क्षेत्र में अत्यधिक सूक्ष्म एवं विलासिता-पूर्ण प्रवृत्ति पर भी नियन्त्रण लगा दिया गया। समस्त कारीगर व कौशल, सौन्दर्य संपन्नता व सामान्य डिजाइन आदि तत्त्व हिन्दू-शैली के रहे, गुम्बदाकार भवन; झनरीदार छतें, सीधी दीवारें, विस्तृत व विशाल कमरे आदि मुस्लिम शैली की मुख्य विशेषतायें थीं।" बहमनी सुल्तानों

अकबरी'; निजामुद्दीन अहमद कृत 'तबकात-ए-अकबरी' गुलबदन बेगम का 'हुमा-
नामा' और फैजी द्वारा लिखित 'अकबरनामा' आदि इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों के
नाम उल्लेखनीय हैं।

विद्या और ज्ञान के प्रति मुस्लिम शासकों के प्रेम से एक अन्य महत्त्व-
परिणाम निकला—पुस्तकालयों का अस्तित्व मे आना। हुमायूं सभी मुगल बादशाहों
में पुस्तकों का सर्वाधिक शौकीन था।

इसमें कोई संशय नहीं कि हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय के
फलस्वरूप मध्ययुग भारतीय कला; साहित्य और शिक्षा के पुनर्जागरण का युग बन
गया।

दोनों संस्कृतियों का एक दूसरे की कला पर प्रभाव—वास्तव में "धर्म
और कला संस्कृति" की अभिव्यक्ति के दो भिन्न साधन हैं। संस्कृति के विकास का
पता इन दोनो मे समान रूप से लगाया जा सकता है क्योंकि संस्कृति की आत्मा के
परिवर्तन अवयव रूप से (उसके प्रत्येक अंग मे) तथा एक साथ होते हैं। शायद कला
उस परिवर्तन को प्रदर्शित करने मे धर्म से अधिक भावुक (*Sensitive*) है क्योंकि धर्म
अपनी प्रकृति से कला से अधिक व्यक्तिगत है जबकि कला केवल विषयगत रूप में
ही विद्यमान रहती है।" प्रो० हुमायू कबीर के अनुसार "एक राष्ट्र की कला उसके
अन्तर्तम चरित्रों का निर्धारण करती है।"

आज हम हमारी स्थापत्य कला, संगीत या चित्रकला आदि का जो रूप
देखते हैं, उस पर हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियो के समन्वय की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती
है। हम अग्रिम पंक्तियों में यह दर्शाने का प्रयास करेंगे कि स्थापत्य या वास्तुकला,
संगीत कला और चित्रकला के क्षेत्र मे दोनों संस्कृतियो ने एक–दूसरे पर किस प्रकार
प्रभाव डाला।

(क) वास्तुकला का क्षेत्र – मुसलमानो के आगमन से पूर्व भारतीय वास्तु
अथवा स्थापत्य कला मे, चित्रकला तथा नक्काशी मे बहुत बारीकी थी। हिन्दू
कला मे पच्चीकारी; कल्पना एवं सजावट पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अजन्ता
की गुफायें इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो कला-
कार के मन मे सजीव कल्पनाओं की बाढ़ आई हो जिससे अपनी अभिव्यक्ति के
लिए वह चित्र में कोई खाली स्थान नहीं छोड़ना चाहता। इसके विपरीत मुस्लिम
कला अपनी सादगी के लिए प्रसिद्ध थी। हिन्दुओं की निर्माण प्रणाली स्तम्भ
पंक्तियों और सीधे पाटों पर आश्रित थी। इसके विपरीत मुस्लिम प्रणाली अनुपात
की और मेहराबों तथा गुम्बजों पर निर्भर थी। हिन्दू–मुसलमानों के सम्पर्क से दो
मौलिक शैलियों का समन्वय हुआ और फलस्वरूप एक नई मिली-जुली भवन-निर्माण
[illegible] हुआ। जौनपुर की 'अटाला मस्जिद', बंगाल की 'अदीना मस्जिद'

जब मुसलमान भारत में आये तो उन्हें अपने धार्मिक भवनों के निर्माण के लिए हिन्दू कारीगरों की सेवायें लेनी पड़ीं। इन हिन्दू कारीगरों ने अपने समय की प्रचलित परम्पराओं को अपने नये कार्यों में शामिल कर दिया। महान् हिन्दू शिल्पी पहले अनेक भव्य भवन बौद्ध व हिन्दू काल में खड़े कर चुके थे जिनमें से अनेक उनके कलाकौशल की साक्षी के रूप में आज भी विद्यमान हैं। इन शिल्पियों ने मुस्लिम भवनों का निर्माण करते समय अपनी कला के श्रेष्ठ नमूनों की झलक उन भवनों में भर दी। इसके अतिरिक्त हिन्दू मुस्लिम समन्वित स्थापत्य शैली का प्रादुर्भाव इस कारण भी हुआ कि अनेक बार मुस्लिम आक्रान्ताओं को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मन्दिरों को ही मस्जिदों में परिवर्तित करना पड़ा। इस परिवर्तन में सम्पूर्ण भवनों को नष्ट नहीं किया गया, केवल बाह्य तथा ऊपरी आकार प्रकार मात्र बदले गए। फिर, दूसरी जो नई मस्जिदें बनवाई गईं उनमें भी उन्हीं मस्जिदों का अनुकरण कर लिया गया ताकि उनमें और नवनिर्मित मस्जिदों में कोई विशेष अन्तर न दिखाई पड़े। इस तरह दोनों भवन-निर्माण शैलियों का समन्वय हो गया। साथ रहते-रहते और एक-दूसरे के द्वारा निर्मित भवनों को देखते-देखते स्वभावतः भी इन शैलियों का समन्वय कालान्तर में हुआ है। "विभिन्न कक्षों में मसनद व खम्भों की कतारों से घिरे दरबार" और दोनों सम्प्रदायों के "सामान्य व अविच्छेद्य सौन्दर्य-प्रसाधन संबंधी व्यवहार" ने दो प्रणालियों के सम्मिश्रण में पर्याप्त सहायता की। तुर्क और अफगान भव्य भवन बनाने में शिल्पियों ने अपनी पद्धति में इस प्रकार का परिवर्तन किया कि उनकी कृति नये रोजगार देने वाले लोगों को स्वीकार्य हो सके। पुनश्च; नये कारीगरों की कला स्वभाव से एकरूप नहीं थी। इस्लाम के अनुयायी अरब; तुर्क आदि अपने साथ केन्द्रीय एशिया, उत्तरी अफीका और दक्षिण पश्चिम यूरोप की कला भी अपने साथ लाये थे। इसलिये इन सभी की झलक और इन सभी की न्यूनाधिक सम्मिश्रण नवीन समन्वित शैली में मिलना स्वाभाविक था। डा० ताराचन्द ने सही ही लिखा है—मुस्लिम भवन निर्माण की कठोरता को कम कर दिया गया तथा हिन्दुओं की इस क्षेत्र में अत्यधिक सूक्ष्म एवं विलासिता-पूर्ण प्रवृत्ति पर भी नियन्त्रण लगा दिया गया। समस्त कारीगर व कौशल; सौन्दर्य संरचना व सामान्य डिजाइन आदि तत्व हिन्दू-शैली के रहे; गुम्बदाकार भवन, छतरीदार छतें, सीधी दीवारें, विस्तृत व विशाल कमरे आदि मुस्लिम शैली की मुख्य विशेषतायें थीं।" बहमनी सुल्तानों की इमारतें जो बीजापुर; बीदर व गुलबर्गा में हैं; मिश्रित कला के आदर्श की द्योतक हैं। हुसैनशाह का मकबरा, बड़ी व छोटी सुनहरी मस्जिदें तथा सुल्तान नसरतशाह का कदमरसूल हिन्दू शैली के प्रभाव के सुन्दर नमूने हैं। गुजरात में

अकबरी'; निजामुद्दीन अहमद द्वारा 'तबकात-ए-अकबरी' गुलबदन बेगम का 'हुमायूं नामा' और फैजी द्वारा लिखित 'अकबरनामा' आदि इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

शिक्षा और ज्ञान के प्रति मुस्लिम शासकों के प्रेम से एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम निकला—पुस्तकालयों का अस्तित्व में आना। हुमायूं सभी मुगल बादशाहों में पुस्तकों का सर्वाधिक शौकीन था।

इसमें कोई संशय नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय के फलस्वरूप मध्ययुग भारतीय कला; साहित्य और शिक्षा के पुनर्जागरण का युग बन गया।

दोनों संस्कृतियों का एक दूसरे की कला पर प्रभाव—वास्तव में "धर्म और कला संस्कृति" की अभिव्यक्ति के दो भिन्न साधन हैं। संस्कृति के विकास का पता इन दोनो मे समान रूप से लगाया जा सकता है क्योंकि संस्कृति की आत्मा में परिवर्तन अवयव रूप से (उसके प्रत्येक अंग मे) तथा एक साथ होते हैं। शायद कला उस परिवर्तन को प्रदर्शित करने मे धर्म से अधिक भावुक (Sensitive) है क्योंकि धर्म अपनी प्रकृति से कला से अधिक व्यक्तिगत है जबकि कला केवल [illegible] रूप में ही विद्यमान रहती है।" प्रो० हुमायू कबीर के अनुसार "एक राष्ट्र की कला उसके अन्तर्तम चरित्रो का निर्धारण करती है।"

आज हम हमारी स्थापत्य कला, संगीत या चित्रकला आदि का जो रूप देखते हैं, उस पर हिन्दू-मुस्लिम सस्कृतियो के समन्वय की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। हम अग्रिम पक्तियों में यह दर्शाने का प्रयास करेंगे कि स्थापत्य या वास्तुकला, संगीत कला और चित्रकला के क्षेत्र मे दोनो सस्कृतियो ने एक-दूसरे पर किस प्रकार प्रभाव डाला।

(क) वास्तुकला का क्षेत्र – मुसलमानो के आगमन से पूर्व भारतीय वास्तु अथवा स्थापत्य कला मे, चित्रकला तथा नक्काशी मे बहुत बारीकी थी। हिन्दू कला मे पच्चीकारी, कल्पना एवं सजावट पर विशेष ध्यान दिया जाता था। अजन्ता की गुफायें इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं। उन्हे देखकर ऐसा लगता है मानों कलाकार के मन मे सजीव कल्पनाओ की बाढ आई हो जिससे अपनी अभिव्यक्ति के लिए वह चित्र में कोई खाली स्थान नहीं छोडना चाहता। इसके विपरीत मुस्लिम कला अपनी सादगी के लिए प्रसिद्ध थी। हिन्दुओं की निर्माण प्रणाली [illegible] पत्थरो और सीधे पाटों पर आश्रित थी। इसके विपरीत मुस्लिम प्रणाली

निर्माण ११६८ में पूरा हुआ था तथा यह एक हिन्दू मंदिर की नीव पर खड़ी
गई थी। कुतुबमीनार अपने निर्माण और सजधज में पूरी तरह इस्लामी है
इसके पास का मकबरा भवन-निर्माण के विस्तार; सौंदर्य और सजधज की
से सब मकबरो से अधिक हिन्दू-शैली का है। अजमेर के ढाई दिन के झोंपड़े
निर्माण भी कुतुबुद्दीन ने सन् १२०० मे करवाया था। इसका यह नाम मराठों
समय से ही रखा गया था जबकि यहा ढाई दिन का एक वार्षिक मेला
जाता था। तुगलक वंश के शाहो ने भवन-निर्माण पर विशेष खर्च नहीं
उनके द्वारा निर्मित भवनो मे फिरोजशाह तुगलक का मकबरा, इलाही दर
और मोती मस्जिद उल्लेखनीय हैं।

खिलजियो के समय मे स्थापत्य कला कुछ और आगे बढी जिसमें
के ढग तथा विशालता और रोचकता पर अधिक ध्यान दिया गया। अलाउ
खिलजी के समय का अलाइ दरवाजा, जो १३०५ ई० मे बना अपने ढग की
स्वतन्त्रता स्थापत्य कला का नमूना है। इसमे खुदाई का काम तथा गुम्बज
तोलिया तथा एशिया-माइनर के तरीके पर हैं, भीतरी हिस्से मे किनारी

की सहनशीलता तथा प्रगतिशील विचारधारा ने स्थापत्य कला के क्षेत्र में संश्लेषण व सम्मिश्रण की भावना को अधिक तीव्र कर दिया। श्री स्मिथ के शब्दों में "अकबर के हिन्दू-तौर-तरीकों के प्रति आकर्षण ने उसे हिन्दू प्रसाधन शैली की ओर वापिस मुड़ने को प्रेरित किया तथा उसके राज्यकाल में बनी अनेक इमारतें मुस्लिम होने से अधिक हिन्दू हैं।' अकबर कालीन भवनों में छज्जे व पान का प्रयोग अच्छे अनुपात से किया जाता था। खम्भों में कई पहलू होते थे जो नोकदार थे। इन खम्भों की भीतरी दीवार तथा भीतरी छतों पर उभरे हुए ज्यामिति (Geometrical) के खण्ड आकार पर बनाये जाते थे। भवनों में लगाये जाने वाले खम्भों का ढंग लकड़ी के खम्भों और पाओं सा होता था। अकबर ने यह शैली हिन्दुओं की लकड़ी शैली से ली थी। भवनों में गुम्बज लोदियों के ढंग की थी। फतहपुर सीकरी अकबर की शानदार भवन-निर्माण कला के स्मारक के रूप में आज हमारे सम्मुख है। इस नगर के बड़े-बड़े गुम्बद जैन प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। मार्टिन एस० रिडज् के शब्दों में; "फतहपुर सीकरी के महल अकबर के दफ्तर या दीवान-ए-आम जो कि हिन्दू शैली का है तथा विशिष्ट लोगों के लिए बनवाया गया शानदार सभास्थल 'दीवान-ए-खास' जो कि नियोजन, निर्माण; सजधज आदि की उत्कृष्ट कृति है सभी कुछ माननीय लक्षणों के हैं। राजा बीरबल व जोधाबाई के महल भी उल्लेखनीय हिन्दू-प्रभाव रखते हैं। शाहजहाँ (१६२७-५८) के शासनकाल में स्थापत्य कला की ओर भी प्रगति हुई। शाहजहाँ का काल संगमरमर का युग कहा जा सकता है। यहाँ तक कि जो भवन अकबर के समय लाल पत्थर के बने हुए थे, उन्हें भी संगमरमर में बदल दिया गया। शाहजहाँ कालीन भवन उत्कृष्टता; सुन्दरता और भव्यता में अपना सानी नहीं रखते। इस काल तक समन्वय की भावना चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। इस युग में संगमरमर के मेहराब विशेष रूप से नौ झुकाव वाले बनने लगे और उनके किनारे पर खुदाई से बेलबूटों का प्रयोग किया जाने लगा। खम्भे ऊपर से नीचे तक फूलते हुए किनारेदार बनाये जाते थे। ऊपर का हिस्सा घुमावदार बना हुआ होता था जबकि नीचे के खम्भों का भार बेल बूटेदार होता था। इस कलाकृति के आधार पर ही शाहजहाँ ने अजमेर की मस्जिद, अन्नासागर की बारादरी, काश्मीर के महल; अम्बाला, फैजाबाद, काबुल; उदयपुर; ग्वालियर आदि के भवनों का निर्माण करवाया। शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई आगरा की मोती मस्जिद स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण है। उसका विश्वविख्यात ताजमहल हिन्दू-मुस्लिम कलाओं का सुन्दर सम्मिश्रण है। शाहजहाँ की स्थापत्य कला के बारे में परसी ब्राउन का कहना है—

निर्माण ११६८ में पूरा हुआ था तथा यह एक हिन्दू मंदिर की नींव पर खड़ी
गई थी। कुतुबमीनार अपने निर्माण और सजधज में पूरी तरह इस्लामी है
इसके पास का मकबरा भवन-निर्माण के विस्तार; सौंदर्य और सजधज
से सब मकबरों से अधिक हिन्दू-शैली का है। अजमेर के ढाई दिन के झोपड़े
निर्माण भी कुतुबुद्दीन ने सन् १२०० में करवाया था। इसका यह नाम मराठों
समय से ही रखा गया था जबकि वहां ढाई दिन का एक वार्षिक मेला लगता
जाता था। तुगलक वंश के शाहों ने भवन-निर्माण पर विशेष खर्च नहीं किया।
उनके द्वारा निर्मित भवनों में फिरोजशाह तुगलक का मकबरा, इलाही दरवा
और मोती मस्जिद उल्लेखनीय हैं।

खिलजियों के समय में स्थापत्य कला कुछ और आगे बढ़ी जिसमें
के ढंग तथा विशालता और रोचकता पर अधिक ध्यान दिया गया। अला
खिलजी के समय का अलाइ दरवाजा, जो १३०५ ई० में बना अपने ढंग की
स्वतन्त्रता स्थापत्य कला का नमूना है। इसमें खुदाई का काम तथा गुम्बद
तोलिया तथा एशिया-माइनर के तरीके पर हैं, भीतरी हिस्से में किनारी
सजावट का काम भारतीय पद्धति पर है तथा

की सहनशीलता तथा प्रगतिशील विचारधारा ने स्थापत्य कला के क्षेत्र में संश्लेषण व सम्मिश्रण की भावना को अधिक तीव्र कर दिया। वी स्मिथ के शब्दों में "अकबर के हिन्दू-तौर-तरीकों के प्रति आकर्षण ने उसे हिन्दू प्रसाधन शैली की ओर वापिस मुड़ने को प्रेरित किया तथा उसके राज्यकाल में बनी अनेक इमारतें मुस्लिम होने से अधिक हिन्दू हैं।' अकबर कालीन भवनों में छज्जे व पान का प्रयोग अच्छे अनुपात से किया जाता था। खम्भों में कई पहलू होते थे जो नोकदार थे। इन खम्भों की भीतरी दीवार तथा भीतरी छतों पर उभरे हुए ज्यामिति (Geometrical) के खण्ड आकार पर बनाये जाते थे। भवनों में लगाये जाने वाले खम्भों का ढंग लकड़ी के खम्भों और पानों सा होता था। अकबर ने यह शैली हिन्दुओं की लकड़ी शैली से ली थी। भवनों में गुम्बज लोदियों के ढंग की थी। फतहपुर सीकरी अकबर की शानदार भवन-निर्माण कला के स्मारक के रूप में आज हमारे सम्मुख है। इस नगर के बड़े-बड़े गुम्बद जैन प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। मार्टिन एस० ब्रिडज् के शब्दों में; "फतहपुर सीकरी के महान अकबर के दफ्तर या दीवान-ए-आम जो कि हिन्दू शैली का है तथा विशिष्ट लोगों के लिए बनवाया गया शानदार सभास्थल 'दीवान-ए-खास' जो कि नियोजन, निर्माण, सजधज आदि की उत्कृष्ट कृति है सभी कुछ भारतीय लक्षणों के हैं। राजा बीरबल व जोधाबाई के महल भी उल्लेखनीय हिन्दू-प्रभाव रखते हैं। शाहजहां (१६२७-५८) के शासनकाल में स्थापत्य कला की ओर भी प्रगति हुई। शाहजहां का काल संगमरमर का युग कहा जा सकता है। यहां तक कि जो भवन अकबर के समय लाल पत्थर के बने हुए थे; उन्हें भी संगमरमर से बदल दिया गया। शाहजहां कालीन भवन उत्कृष्टता; सुन्दरता और भव्यता में अपना सानी नहीं रखते। इस काल तक समन्वय की भावना चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी। इस युग में संगमरमर के मेहराब विशेष रूप से नौ झुकाव वाले बनने लगे और उनके किनारे पर खुदाई से बेलबूटों का प्रयोग किया जाने लगा। खम्भे ऊपर से नीचे तक फूलते हुए किनारेदार बनाये जाते थे। ऊपर का हिस्सा घुमावदार बना हुआ होता था जबकि नीचे के खम्भों का भार बेल बूटेदार होता था। इस कलाकृति के आधार पर ही शाहजहां ने अजमेर की मस्जिद, अनासागर की बारादरी; काश्मीर के महल; अम्बाला; फैजाबाद, काबुल, उदयपुर, ग्वालियर आदि के भवनों का निर्माण करवाया। शाहजहां द्वारा बनवाई गई आगरा की मोती मस्जिद स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण है। उसका विश्वविख्यात ताजमहल हिन्दू-मुस्लिम कलाओं का सुन्दर सम्मिश्रण है। शाहजहां की स्थापत्य कला के बारे में परसी ब्राउन का कहना है—

'अगस्टस की आत्म प्रशंसा का कथन कि उसने ईंटों का रोम पाया किन्तु संगमरमर का रोम छोड़ा; का प्रतिरूप शाहजहां का भवन-निर्माण है। शाहजहां ने बालू के पत्थरों से बने मुगलनगर पाए किन्तु उन्हें संगमरमर का बना कर छोड़ा। ...हां की इमारतें संगमरमर के उन्मुक्त प्रयोग; ऐश्वर्यपूर्ण सजधज आदि से परि- ... पत्थर में बेलबूटों की सजावट पूर्ण खुदाई का अतुलनीय सौन्दर्य से युक्त

निर्माण ११९८ में पूरा हुआ था तथा यह एक हिन्दू मंदिर की नींव पर बन
गई थी। कुतुबमीनार अपने निर्माण और सजावट में पूरी तरह इस्लामी है।
इसके पास का मकबरा भवन-निर्माण के विस्तार; सौंदर्य और सजावट की
से सब मकबरों से अधिक हिन्दू-शैली का है। अजमेर के ढाई दिन के झोंपड़े
निर्माण भी कुतुबुद्दीन ने सन् १२०० में करवाया था। इसका यह नाम शायद
समय न हो रखा गया था अपितु यहां ढाई दिन का एक वार्षिक मेला लग
जाता था। तुगलक वंश के शाहों ने भवन-निर्माण पर विशेष खर्च नहीं किया
उनके द्वारा निर्मित भवनों में फिरोजशाह तुगलक का मकबरा; इलाही दरवा
और मोती मस्जिद उल्लेखनीय हैं।

खिलजियों के समय में स्थापत्य कला कुछ और आगे बढ़ी जिसमें बनावट
के ढंग तथा विशालता और रोचकता पर अधिक ध्यान दिया गया। अलाउद्दीन
खिलजी के समय का अलाई दरवाजा, जो १३०५ ई० में बना अपने ढंग की ए
स्वतन्त्रता स्थापत्य कला का नमूना है। इसमें खुदाई का काम तथा गुम्बज
तोलिया तथा एशिया-माइनर के तरीके पर है, भीतरी हिस्से में किनारे
सजावट का काम भारतीय पद्धति पर है तथा मेहराबों पर कुरान की आयतें
पत्थरों से खोदी गई हैं।

मुगल साम्राज्य की नींव पड़ने पर स्थापत्य कला यौवन की अंगड़ा
लगी। मुगलकालीन स्थापत्य कला का पहला रूप बाबर से लेकर हुमायूं तक
है, दूसरा रूप यहां से प्रारम्भ होता है जबकि अकबर बड़े पैमाने पर लाल प
का उपयोग करता है और तीसरा रूप तब का है जबकि शाहजहां लाल पत्थरों
बदलकर संगमरमर को प्रधानता देता है। बाबर ने स्थापत्य कला के क्षेत्र में
कार्य किया, उसमें केवल दो मस्जिदें अब अवशिष्ट हैं—एक पानीपत की काबु
बाग की मस्जिद और दूसरी सम्भल की जामा मस्जिद। इन मस्जिदों में स्थाप
कला की अधिकांशतः वही परम्परा है जो पूर्व मध्यकालीन युग के उत्तरकाल
प्रचलित थी। हुमायूं स्थापत्य कला में रुचि रखने पर भी समय की कमी से इस
क्षेत्र में विशेष कुछ नहीं कर पाया। उसके समय की आगरा और हिसार में दो
मस्जिदें मिलती हैं जिनमें हमें स्थापत्य कला की समन्वित शैली के दर्शन होते हैं।
हुमायूं की मृत्यु के बाद उसकी बेगम ने हुमायूं का जो मकबरा बनाया वह फारसी
शैली के सम्मिश्रण से बना है। इसके खम्भों में हिन्दू शैली है। शेरशाह का स्थापत्य
का कार्य केवल एक कड़ी के रूप में है जो दो लम्बे समय की स्थापत्य कला
की कड़ियों को जोड़ता है। शेरशाह की कब्र जो उसने अपने शासनकाल में ही बनवा
; हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है। इसकी दीवारों पर जगह
लगाये गये खम्भे और पान हिन्दू शैली के प्रतीक हैं। शेरशाह ने इन्द्रप्रस्थ की
बस्ती पर जो पुराना किला बनवाया, उसके मुख्य द्वार में हिन्दू-मुस्लिम
का बनावट ... अच्छा सम्मिश्रण है। अकबर के राज्यकाल में ...
...मूर्ति ... समन्वय का समुचित रूप उपस्थित ... रच

नी चित्रकला मे यूरोपीय प्रभाव का विशेष सम्मिश्रण हुआ। उस समय के चित्रों
फूलों, वृक्षो, पशु-पक्षियो का सुन्दर आलेखन मिलता है। चित्रों मे हमे उच्च
ट के प्रकृति-निरीक्षण और सुकुमार आलेखन के दर्शन होते हैं। वास्तव मे
गीर के शासन काल मे "फारसी चित्रकारी की अभिभावकता को हिला देने तथा
वत: एक भारतीय शैली के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।" हुमायू कबीर ने
दोनो शैलियो के सम्मिश्रण को प्रकट करते हुए ठीक ही लिखा है—

"बाबर और उसके वशजो द्वारा भारत मे लाई गई कला एक गहन व्यक्तित्व
रित थी। वह किसी भी प्रकार से भीड, जनता आदि मे रुचि नही रखती थी
। मुश्किल से ही उसकी रुचि कलात्मक निर्माण मे थी। ... चित्रकला
ल आश्चर्यजनक तस्वीर उतारने की चतुराई बनी रही। जब चित्रकारी की
शक्तिशाली किन्तु व्यक्तिवादी शैली भारत की परम्परागत शैली के सम्पर्क मे
यी, एक नई शैली अस्तित्व मे आई, जिसमे दोनो शैलियो के तत्व विद्यमान थे।
रूपता की कोमलता और सुडौलता, अनुपातिकता तथा विस्तार के गुण थोपे गये।"

जहांगीर की मृत्यु के साथ ही मुगल चित्रकला का पतन प्रारम्भ हो
ा। परसी ब्राउन के उल्लेखनीय शब्दो मे "मुगल चित्रकला की आत्मा जहांगीर
ी आत्मा के साथ ही लुप्त हो गई।" शाहजहां मे चित्रकला के प्रति विशेष रुचि
थी। उसने इस क्षेत्र मे अपने पिता की परम्परा को ही बनाए रखा। इस काल
'नफासत' और 'बारीकी' कला के विशेष उपलक्षण थे। जहांगीर की कला मे रगों
ा सम्मिश्रण था, शाहजहां कालीन चित्रकला मे दरबारी चित्रो मे श्रेष्ठ रगों और
र्णों का प्रयोग मिलता है। इस काल के चित्रो मे स्वाभाविकता और मौलिकता का
भाव मिलता है।

ईरानी चित्रकला में यूरोपीय प्रभाव का विशेष सम्मिश्रण हुआ। उस समय के चित्रों में फूलों, वृक्षों, पशु-पक्षियों का सुन्दर आलेखन मिलता है। चित्रों में हमें उच्च कोटि के प्रकृति-निरीक्षण और सुकुमार आलेखन के दर्शन होते हैं। वास्तव में जहांगीर के शासन काल में "फारसी चित्रकारी की अभिभावकता का हिस्सा देने तथा प्रमुखतः एक भारतीय शैली के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।" हुमायूं कबीर ने इन दोनों शैलियों के सम्मिश्रण को प्रकट करते हुए ठीक ही लिखा है—

"बाबर और उसके वंशजों द्वारा भारत में लाई गई कला एक गहन व्यक्तित्व से प्रेरित थी। वह किसी भी प्रकार से भीड़, जनता आदि में रुचि नहीं रखती थी तथा मुश्किल से ही उसकी रुचि कलात्मक निर्माण में थी। ...... चित्रकला केवल आश्चर्यजनक तस्वीर उतारने की चतुराई बनी रही। जब चित्रकारी की यह शक्तिशाली किन्तु व्यक्तिवादी शैली भारत की परम्परागत शैली के सम्पर्क में आयी, एक नई शैली अस्तित्व में आई, जिसमें दोनों शैलियों के तत्व विद्यमान थे। अजन्ता की कोमलता और सुडौलता, अनुपातिकता तथा विस्तार के गुण खो गये।"

जहांगीर की मृत्यु के साथ ही मुगल चित्रकला का पतन प्रारम्भ हो गया। परसी ब्राउन के उल्लेखनीय शब्दों में "मुगल चित्रकला की आत्मा जहांगीर की आत्मा के साथ ही लुप्त हो गई।" शाहजहां में चित्रकला के प्रति विशेष रुचि न थी। उसने इस क्षेत्र में अपने पिता की परम्परा को ही बनाए रखा। इस काल में 'नफासत' और 'बारीकी' कला के विशेष उपलक्षण थे। जहांगीर की कला में रंगों का सम्मिश्रण था, शाहजहां कालीन चित्रकला में दरबारी चित्रों में श्रेष्ठ रंगों और स्वर्ण का प्रयोग मिलता है। इस काल के चित्रों में स्वाभाविकता और मौलिकता का [illegible] मिलता है।

शास्त्रीय राग-रागनियों को मुसलमान बहुत सुन्दर ढग से गाते हैं। ध्रुपद तो उनकी एक विशेषता है। 'खयाल' और 'कव्वाली' का आविष्कार मुसलमानों ने ही किया जिसके फलस्वरूप तबला और सितार जैसे सुन्दर तथा मनोमुग्धकारी वाद्ययंत्र इस क्षेत्र में आये। दिलरुबा, सरोद, रबाब आदि वाद्य यंत्रों को मुस्लिम संगीतज्ञों ने ही उपस्थित किया। संगीत के क्षेत्र मे गजल, ठुमरी, दादरा, ख्याल, मुल्तानी, बहार दरबारी, कागडा बड़गूजरी और मियां की टोडी आदि राग-रागनियो और गायन-पद्धतियो का विकास भी मुस्लिम सम्पर्क का ही परिणाम है। नौबत, नक्कारा, ताशा, शहनाई और तबला आदि वाद्ययंत्र भी मुसलमानों की ही देन हैं।

संगीत की वास्तविक उन्नति मुगल बादशाहों ने की, बाबर को संगीत का बडा शौक था और उसने इस विषय पर एक पुस्तक भी लिखी थी। हुमायूँ भी हर सोमवार और बुधवार को संगीत सभा में जाकर संगीत सुना करता था। उसने संगीतकारो को अपने दरबार मे आश्रय दिया। जब भारत मे सूरवश की स्थापना हुई उस समय भी इस्लाम शाह और आदिल दो ही संगीत प्रेमी थे जिन्होंने संगीत कला को उच्चकोटि का सरक्षण दिया। अकबर को संगीत से बडा प्रेम था। वह स्वय एक उच्चकोटि का गायक था। उसके दरबार मे हिन्दू, ईरानी, तुरानी, काश्मीरी गायक और गायिकायें रहती थी। उसके दरबार मे तानसेन सर्वश्रेष्ठ गायक था। उसके गायक सात भागो मे बटे हुए थे जो एक-एक दिन अपने गीतो से सम्राट का दिल बहलाया करते थे। उसके दरबार के अन्य प्रसिद्ध गायक बाबा रामदास, बैजू बावरा तथा सूरदास इत्यादि थे। राजा भगवान दास और राजा मानसिंह भी संगीत प्रेमी थे जो कि खानदेश इत्यादि सुदूर प्रदेशो से आने वाले संगीतज्ञो को सरक्षण देते थे। देशी नरेशो ने भी इस कला के पल्लव मे हाथ बटाया। कई नई राग-रागनियो का जन्म हुआ। कई संगीत की संस्कृत मे पुस्तको का फारसी मे अनुवाद किया गया। जहांगीर को भी इस कला से प्रेम था। उसने इस विषय में अपने पिता की परम्परा को बनाए रखा। इकबालनामा-ए-जहांगीरी के अनुसार उसने कई संगीतज्ञों को सरक्षण प्रदान किया। शाहजहाँ भी संगीतप्रेमी था। मिरातुल-आलम के लेखक बख्तावर खां ने लिखा है कि शाहजहा एक अच्छा गायक भी था। Prof./Sarkar के अनुसार वह अपना कुछ समय गायकों के सत्संग में बिताता था। शाहजहां स्वयं कतिपय मधुर और सुन्दर हिन्दी गीतों का रचयिता था। ध्रुपदराग से उसे विशेष प्रेम था और इस राग का श्रेष्ठ गायक लाल खाँ गुण-समुद्र था। हिन्दू गायकों में महा कविराय जगन्नाथ और बीकानेर के जनार्दन भट्ट के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संगीत के साथ वाद्यकला की भी उन्नति हुई। सुखसेन रबाब और सूरसेन बीन बजाने में प्रवीण थे। शाहजहां की मृत्यु के संगीत कला पतन की ओर अग्रसर होने लगी क्योंकि औरंगजेब ने संगीत को दरबार में आश्रय नहीं दिया। यद्यपि औरंगजेब संगीत विज्ञान में निपुण था इसके क्रियात्मक रूप के विरोध में था। उसकी आज्ञा से कवि और संगीतज्ञ से नि[illegible] दिए गए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क से भारत में एक नई संस्कृति का निर्माण हुआ जिसकी अभिव्यक्ति हमारे सामाजिक जीवन, धार्मिक और दार्शनिक विचार-धाराओं, साहित्य तथा ललित कलाओं में हुई।

अब हम उन सन्तों और धर्माचार्यों के आन्दोलनों की चर्चा करेंगे जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता और सहयोग का मार्ग प्रशस्त किया।

भक्ति आन्दोलन
(Bhakti Movement)

अभिप्राय—इस्लाम और हिन्दू धर्म के पारस्परिक सम्पर्क से महत्वपूर्ण परिणाम निकले। इस सम्पर्क से कुछ ऐसे सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ जो हिन्दू और मुस्लिम धर्मों के भेद-भाव को मिटाने वाले थे और जिन्होंने हिन्दू धर्म के सुधार-आन्दोलनों का रूप ले लिया था। विश्व-बन्धुत्व, धर्म की सादगी, एकेश्वरवाद आदि का समर्थन करने वाले और जाति प्रथा, अस्पृश्यता और मूर्ति-पूजन का विरोध करने वाले इस्लामी सिद्धान्तों ने दार्शनिक हिन्दू-मस्तिष्क पर चेतन-अचेतन रूप से अपना प्रभाव डाला और इतिहास में धार्मिक सुधारकों के नाम से प्रसिद्ध होने वाले सन्त उपदेशकों के उदार आन्दोलनों को प्रोत्साहित किया। विशिष्ट विस्तृत बातों में कतिपय मतभेदों को छोड़कर ये सुधारक उदार-भक्ति-सम्प्रदाय के समर्थक थे। इसी प्रकार सन्त उपदेशकों के इन उदार आन्दोलनों को सामूहिक रूप में "भक्ति-आन्दोलन" के नाम से सम्बोधित करते हैं।

भक्ति आन्दोलन के उपदेशकों ने अधिकांशतः 'मूर्ति-पूजा और जाति प्रथा की घोर निन्दा की, सभी धर्मों की आधारभूत समानता का उपदेश दिया, एकेश्वरवाद का समर्थन किया, पुरोहित वर्ग की प्रभुता व धार्मिक कर्मकाण्डों तथा बाह्याडम्बर का विरोध किया और मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति, श्रद्धा व विश्वास पर बल दिया। उन्होंने जन्म के स्थान पर कर्म को महत्व दिया एवं पण्डितों, पुरोहितों तथा मुल्लाओं की सर्वोपरिता की निन्दा की। उनका मत था कि सच्चा धर्म दार्शनिकों पुरोहितों और पण्डितों के रूढ़ सिद्धान्तों एवं मिथ्या वादानुवाद में नहीं है और न निरर्थक कर्मकाण्ड में है, परन्तु ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति में है। उन्होंने मुक्ति का एकमात्र साधन भक्ति को माना।"

उदय के कारण—प्रायः यह कहा जाता है कि भक्ति-आन्दोलन का प्रादुर्भाव इस्लाम धर्म के प्रभाव से ही हुआ। लेकिन इस प्रकार की विचारधारा सत्य से काफी दूर है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि एकेश्वरवाद जो इस्लाम का प्रमुख सिद्धांत है और जिसने हिन्दुओं की धार्मिक विचारधारा में नये प्राण फूंक दिए, हिन्दुओं को अज्ञात नहीं था। मुस्लिम विजय से पूर्व ही हिन्दू सुधारक अनेक बार यह घोषित कर चुके थे कि जनप्रिय पूजा के अगणित देवताओं के पीछे केवल एक सर्वोपरि ईश्वर है। वास्तव में भक्ति-आन्दोलन मूलतः वेदान्त, दर्शन और भागवत धर्म की परम्परा का विकसित रूप था। भक्ति का सूत्रपात महाभारत काल में ही चुका था। विस्तृत प्रवर्तन पुराण काल में हुआ था। गीता में स्पष्ट रूप से हमें भक्ति -

भजै सो हरि का होई।" वही पहले सुधारक थे जिन्होंने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए हिन्दी भाषा का प्रयोग किया।

वल्लभाचार्य – इन्होंने भक्ति की कृष्ण–मार्गी शाखा का अनुसरण किया। शारीरिक यातनाओं, वैराग्य और संसार के त्याग का उपदेश देते हुए इन्होंने सर्वोपरि परमात्मा के साथ अपनी आत्मा और विश्व के सम्पूर्ण एकीकरण पर बल दिया। इनका एकेश्वरवाद 'शुद्ध अद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वल्लभाचार्य ने मानव-जीवन का उद्देश्य परमात्मा के साथ माना और कहा कि ज्ञान तथा भक्ति से ही मोक्ष मिल सकता है।

चैतन्य महाप्रभु – वल्लभाचार्य के ही समकालीन वैष्णव सन्त चैतन्य महाप्रभु ने जातिप्रथा की घोर निन्दा की, मनुष्य के विश्व बन्धुत्व की घोषणा की और कर्मकाण्ड की निस्सारता प्रगट की। उन्होंने ईश्वर-भक्ति का प्रचार किया और प्रेम, दया तथा भ्रातृभाव का उपदेश दिया। उन्होंने यह मत प्रकट किया कि प्रेम और भक्ति, भजन और नृत्य द्वारा परम आनन्द की एक ऐसी स्थिति उत्पन्न की जा सकती है जिसमें ईश्वर से साक्षात्कार हो सकता है। उनके सम्प्रदाय की प्रधानता प्रेम में निहित थी जिसने जनसाधारण पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला।

नामदेव—महाराष्ट्र के निवासी और दर्जी परिवार में जन्मे इस सन्त के अनुयायियों में प्रत्येक जाति, धर्म और श्रेणी के लोग थे। इनके प्रभाव में आकर कुछ मुसलमानों ने भी हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। नामदेव ने एकेश्वरवाद पर बल दिया और मूर्ति-पूजा तथा धार्मिक कर्म-काण्डों का खण्डन किया। इन्होंने भी ईश्वर-श्रद्धा तथा प्रेम को ही मोक्ष का साधन बताया।

प्रवर्तक, हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान् अग्रदूत और विशुद्ध मानव धर्म के प्रशस्त के प्रचारक तथा महान धार्मिक क्रान्ति कारक थे।" कबीर अगाध भक्ति और ईश्वर के भजन को ही मोक्ष का साधन मानते थे।

नानक—पंजाब के तलवण्डी (वर्तमान नानकाना) ग्राम में १४६६ ई० में खत्री परिवार में जन्मे गुरु नानक सिक्ख धर्म के संस्थापक और उपनिषद् के विशुद्ध एकेश्वरवाद के सिद्धान्त को पुनः जागृत करने वाले थे। कबीर के समान ही उन्होंने भी एकेश्वरवाद का उपदेश दिया, मूर्ति-पूजा की निन्दा की, बहु-देव पूजा का विरोध किया और हिन्दू तथा मुसलमानों के कर्मकाण्डों का प्रतिरोध किया। गुरु नानक एक समन्वयकारी सन्त थे जिनका उद्देश्य विभिन्न धर्मों के संघर्ष का अन्त करना था। ईश्वर के नाम के सम्मुख वे जाति और कुल के बन्धनों को निरर्थक मानते थे। उन्होंने ईमानदारी, विश्वासपात्रता, सत्य-निष्ठा दान, दया, मद्य-निषेध आदि श्रेष्ठ आदर्शों का पालन करके जीवन को उच्च बनाने पर बल दिया। ईश्वर की एकता और उसकी भक्ति में विश्वास करने वाले नानक ने बारम्बार यही कहा—"न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान, सब मनुष्यों का एक ही सद्गुरु ईश्वर है और सब उसके शिष्य हैं।" उन्होंने मरदाना नामक एक मुस्लिम शिष्य को साथ लेकर भारत के ात्रा मक्का, मदीना और कुछ अन्य मुस्लिम देशों का भ्रमण किया तथा अपने ेक अनुयायी बनाये। ईश्वर की सर्व व्यापकता का उन्होंने सर्वत्र उपदेश दिया। ्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण की भावना को मोक्ष का साधन बताते हुए भी ्होंने यह नहीं कहा कि ईश्वर की दृष्टि से विश्व का परित्याग करके संन्यास लेना ूरी है। उनका तो यही कहना था कि धार्मिक सन्यासी तथा भक्त व गृहस्थ सभी मान हैं। गुरु नानक के शिष्यों में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही है। इनके अनु-ायी बाद में सिक्ख कहलाये और उन्होंने इनके सिद्धान्त को 'ग्रन्थ साहब' में संगृहीत ्या।

सुधारकों ने भारत में चेतना और प्रगतिशील विचारों की एक नई लहर पैदा
इस विषय में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी विख्यात पुस्तक "हिन्दु
कहानी" में ठीक ही लिखा है कि—

"सारे हिन्दुस्तान में यह नया खमीर काम कर रहा था और लोगों के
में नये विचार बुद्बुदे पैदा कर रहे थे। पुराने जमाने की तरह हिन्दुस्तान में
नयी परिस्थिति की तरफ एक नयी प्रतिक्रिया चल रही थी और विदेशी तत्वों
जज्ब करने की कोशिश में वह अपने को कुछ तब्दील कर रहा था। इसी समी
से नये ढंग के सुधारक पैदा हुए जिन्होंने कि इस समन्वय के पक्ष में निश्चय के स
उपदेश दिये और अक्सर वर्ण व्यवस्था की निन्दा की या अवहेलना की। दक्षिण
पन्द्रहवीं सदी में हिन्दू सन्त रामानन्द हुए और उनके भी मशहूर चेले कबीर हुए
कि मुसलमान जुलाहे थे। उत्तर में गुरु नानक हुए जो कि सिक्ख धर्म के संस्थाप
माने जाते हैं। इन लोगों का असर उन मतों तक सीमित नहीं था जो कि उनके नाम
पर कायम हुए, बल्कि उससे कहीं ज्यादा विस्तृत थे। सारे हिन्दू धर्म पर नये विचारों
का असर पड़ा और हिन्दुस्तान का इस्लाम भी और जगहों में इस्लाम से मुख्तलिफ
बन गया।"

भक्ति-आन्दोलन के कारण वस्तुतः सम्पूर्ण देश में एक नये वातावरण
सृजन हुआ। जब यहां तुर्कों का शासन चल रहा था, हिन्दुओं को भक्ति आन्द
की शीतल छाया मिली जिसने उन्हें भगवान की अतुल कृपा और 'निर्बल के बल र
का संदेश दिया। इस आंदोलन की प्रेरणा से भारतीय जनता ने ठहर कर अपने
को सम्भाला और स्वस्थ किया।

भक्ति आंदोलन की सद्भावना की एक लहर ने पूर्ण जाति के हृदय को स्प
किया और सारे देश को उसके कोमल डोरे से बांधने का प्रयास किया।
सारे देश में एकता की भावना जाग उठी। इस लहर में कबीर, नानक जैसे
समाज सुधारक भी उत्पन्न हुए। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का भी
प्रयास किया। इससे हिन्दुत्व में दृढ़ता का आगमन हुआ। इन्हीं का लाभ उठा कर
शेरशाह और अकबर महान् ने हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त किया। इसके द्वारा
भारत में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ।

इस आंदोलन के कारण सभी धर्मों और जातियों में सहिष्णुता का प्र
हुआ। मातृत्व की भावना का विकास हुआ। नीच जातियों का उत्थान हुआ।

इस आंदोलन के कारण मूर्तिपूजा, अन्ध-विश्वास, बालहत्या, सती, दास
धार्मिक कर्मकाण्ड इत्यादि का प्रबल रूप से खण्डन हुआ जिससे समाज अधिक स्व
ना।

इस आंदोलन ने मरहठों और सिक्खों जैसी सैनिक जातियों को जन्म दिया
न्होंने मुगलों का सामना किया। इसी का सहारा पाकर विजयनगर जैसे सबल
दू साम्राज्य के निर्माण की सम्भावना हो सकी।

इस आंदोलन के द्वारा प्रान्तीय भाषाओं को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।
त साहित्य का भी सृजन हुआ। बंगला, गुजराती, मराठी, हिन्दी, राजस्थानी

आदि क्षेत्रीय भाषाए मुखरित हो उठीं। विद्यापति ने मैथिली मे, मीरा ने राजस्थानी में, चण्डीदास ने बंगला में, एकनाथ स्वामी ने मराठी मे, कबीर, जायसी ने हिन्दी मे नव जागृति उत्पन्न कर दी। तुलसी और सूर ने तो हिन्दी को अथाह सम्पत्ति प्रदान की।

भक्ति आंदोलन का भारतीय इतिहास मे विशेष महत्त्व है। इसने भक्ति का अक्षय स्रोत खोल दिया जिसके कारण हिन्दू जाति के हताश हृदय मे सरलता और आशा का सचार हुआ। इसने सामाजिक कुरीतियो का नाश कर समाज को सगठित और दृढ़ बनाया। संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषाओं मे इसके कारण अभूतपूर्व उन्नति हुई। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन आधिपत्य के काल मे उत्तरी भारत मे हिन्दू धर्म की घायल आत्मा के लिए एक प्रकार का मरहम था।

12.6 सूफी आन्दोलन (Sufi Movement)

मध्यकालीन युग में हिन्दू धर्म में भक्ति आन्दोलन हुआ जिससे मन्दिर और मस्जिद के भेद घटे, राम और रहीम के झगड़े कम हुए। उसी समय मुसलमानो मे सूफी सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसके महात्माओ अथवा सतो ने प्रेम और भक्ति का प्रचार किया।

सूफी मत का मूल स्रोत कुरान और मोहम्मद साहब का जीवन है; लेकिन इस पर भारतीय दर्शन और आध्यात्मिकता, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, तथा प्लेटो के दार्शनिक तत्वों (Neo-Platonism) का भी प्रभाव है। सूफी लोग इस्लाम के रहस्य-[illegible]दी सन्त माने जाते हैं। इस मत का जन्म-स्थान ईरान में है। सूफी सन्त श्वेत ऊनी [illegible]त्र पहनते थे जिन्हें ईरानी भाषा मे 'सूफ' कहते हैं। इसी आधार पर ये लोग [illegible]फी कहलाने लगे। यूनानी और हिन्दू सभ्यता के सम्पर्क पर यूनानी दार्शनिक प्लेटो [illegible] हिन्दू दार्शनिक तत्वो को अपने दर्शन में मिला दिया था। जब नवी शताब्दी में [illegible]नानी ग्रथ अरबी भाषा मे अनुवादित हुए तो इन नवीन दार्शनिक सिद्धान्तों से [illegible]लाम प्रभावित न रह सका। मोहम्मद साहब की मृत्यु के बाद इस्लाम के अनेक [illegible]नुयायियों ने अपनी भक्ति, श्रद्धा, प्रार्थना तथा अपने वीतराग व आध्यात्मिक [illegible]विन से सतों की परम्परा आरम्भ कर दी। इसका इस्लाम पर गहरा प्रभाव पड़ा [illegible]ौर रहस्यवाद का सूत्रपात हुआ। जब इस्लाम के अनुयायी हिन्दुओं के सम्पर्क मे [illegible]ाये तब हिन्दुओ के वेदांत और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों ने इस्लाम के रहस्यवाद पर [illegible]पना प्रभाव डाला। इन सब प्रभावो से इस्लाम में एक नवीन धार्मिक विचार [illegible]ारा प्रवाहित हुई जिसे सूफी मत के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई। "इस प्रकार ईसाई [illegible]र्म और नवीन प्लेटोनिज्म ने अपने योगदान द्वारा सूफी मत को मासल बनाया, [illegible]रान के प्राचीन फारसी धर्म और मनीधर्म (Manism) ने अपने भाग मे इसे समुन्नत [illegible]िया तथा हिन्दू व बौद्ध धर्म ने इसे अनेक विचारतत्त्व प्रदान किये, विशेषकर [illegible]हस्यवाद।"

सूफी मत की विशेषताएं – सूफी मत मे ईश्वर साकार सौंदर्य है और साधक [illegible]ाकार प्रेम। इस मत मे ईश्वर की कल्पना दुलहिन या प्रियतम के रूप में हुई। [illegible]भी धार्मिकता का आधार प्रेम है और प्रेम के बिना धर्म तथा नीति व्यर्थ है।

सौंदर्य से प्रेम और प्रेम से मुक्ति—यह सूफी मत के सिद्धान्तों का सार है। सू
मतावलम्बी सभी धर्मों की एकता, परमात्मा की सर्वव्यापकता एवं आत्मा
आत्मा में विश्वास करते हैं। सूफी संतों ने आत्मा को भगवान के साथ योग (मि
होने की बात पर भी बल दिया। सूफी धार्मिक सहिष्णुता के बड़े प्रचारक हि
हुए। उन्होंने कुरान और अन्य धर्मों के ग्रंथों का समान रूप से आदर किया। हि
सिद्धान्तों से भारतीय कर्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धान्त ग्रहण किये। कार
सूफियों का आदर्श मात्र रूप से पैगम्बर मुहम्मद नहीं रहा। सूफियों की
निन्दा की धारणा भी त्याग दी गई। अनेक सूफियों ने मांसाहार बन्द कर दि
और वे अहिंसा के सिद्धान्त के पालक हो गए।

डा० अब्दुल हमीद ने सूफी मत की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं—

(१) समस्त वास्तविकता एक है, अर्थात् हम इस पृथ्वी पर जो दृष्टि होता है वह एक सत्ता का विकास मात्र है।
(२) जिस प्रकार समस्त वस्तुओं का उद्गम एक तत्व है, उसी प्रकार उन लौटना भी उसी तत्व में निश्चित है।
(३) सत्य का ज्ञान बुद्धि से होता है तर्क से नहीं।
(४) मानव जीवन का वास्तविक लक्ष्य यह है कि वह धार्मिक अनुभूतियों द्वारा अन्तिम सत्य से साक्षात्कार करे।
(५) धार्मिक अनुभूति प्रेम है। प्रेम के अन्दर ही स्वाभाविक रूप से सत्य ज्ञान होता है।
(६) धर्म तथा नैतिकता का आधार प्रेम है। प्रेम के बिना धर्म और नीति दोनों निर्जीव हो जाते हैं।

सूफी मत की साधना में संगीत को उच्चतम स्थान है। उनके अनुसार संगीत से मन केन्द्रित होता है और फिर ईश्वर की ओर उठता है। सूफी मत में ईश्वर के प्रति प्रेम और साधक के हृदय का कितना उद्घाटन किया गया है, इसका अनुमान हम दो कथनों से लगा सकते हैं—(१) सूफी मत की अनुगामिनी एक महिला राबिया ने लिखा—"अल्लाह के प्रेम ने मुझे इतना निमग्न कर लिया है कि मेरे हृदय में घृणा और प्रेम जैसी कोई चीज नहीं रहती है, और (२) इकबाल ने एक शेर में साधक के हृदय को बताते हुये कहा है—

"हुस्न भी हो हिजाब में, इश्क भी हो हिजाब में,
या खुद आशकार हो, या मुझे आशकार कर।"

सूफी मत क्या है अथवा इस मत की धार्मिक एवं आध्यात्मिक मान्यताएं क्या हैं—इसे एक लेखक ने निम्नलिखित रूप में बड़े सुन्दर ढंग से बताया है—

प्रत्येक सूफी का उद्देश्य परमेश्वर में अपनी आत्मा का विलीनीकरण है—वह ईश्वर को अपनी इच्छा समर्पित कर देता है, अपने पापों के लिए पश्चाताप करता है, स्वच्छता, प्रार्थना, व्रत उपवास, दान और तीर्थयात्रा के नियमों का पालन करता है। शारीरिक यातनाओं और एकान्तवास व मौन से क्रोध, गर्व, ईर्ष्या, आदि दुर्गुणों का दमन करता है। यह सर्वप्रथम अवस्था है। द्वितीय अवस्था में वह आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता है। सांसारिक वस्तुओं के प्रति उसमें विरक्ति की भावना

हो जाती है। अन्तरात्मा के प्रकाश और अनन्त प्रेम से वह ईश्वर में विलीन होने का प्रयास करता है। प्रत्येक सूफी को आध्यात्मिक गुरु (पीर या शेख) की आवश्यकता होती है जो उसके आचार-विचार को नियन्त्रित कर उसकी आध्यात्मिक प्रगति की देखभाल करता है, और उसे ईश्वर में विलीन होने की अनेक अवस्थाओं की ओर ले जाता है। ध्यान, भजन, नृत्य, गीत और प्रेम से भी सूफी ईश्वर का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करने के लिये सूफी मत में साधन की पांच सीढ़ियां मान ली गई हैं। प्रथम, ईश्वर-आराधना जो उसकी आज्ञानुसार हो; द्वितीय भक्ति अर्थात् ईश्वर के प्रति आत्मा का आकर्षण; तृतीय, एकान्त स्थान में ईश्वर का ध्यान; चतुर्थ, ज्ञान अथवा ईश्वर के गुणादि का दार्शनिक विचार; और पांचवां मारीफ़त अर्थात् ईश्वरी शक्ति तथा प्रेम के पूर्ण प्राप्त हो जाने पर शरीर का भान न रह जाना। वास्तव में सूफी मत गहन भक्ति का धर्म है, प्रेम इसकी तीव्र उत्कण्ठा है, कविता, नृत्य भजन इसकी पूजा है और ईश्वर में विलीन हो जाना इसका उद्देश्य है।"

९७६. सूफी सम्प्रदाय के प्रमुख संत—सूफी मत की ओर हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आकृष्ट हुये और सूफी संतों के उपदेशों को हिन्दू तथा मुस्लिम जगत में काफी सम्मान प्राप्त हुआ। भारत में सूफियों के चार सम्प्रदाय विशेष प्रचलित हुये—(१) सुहर-वर्दिया जिसके प्रवर्तक संत जियाउद्दीन थे, (२) चिश्तिनिया, इसके प्रवर्तक हजरत मुइनुद्दीन चिश्ती थे—निजामुद्दीन औलिया, खुसरू, जायसी इसी सिलसिले के थे; और (३) नक्शबंदिया, इसके अगुआ थे, ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्द। सूफी संतों में प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती—सूफी महात्माओं में आपका नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। आप मध्य एशिया के निवासी थे। बाल्य काल से ही आपका ध्यान ईश्वर की उपासना की ओर आकृष्ट हुआ। आपने मध्य एशिया के पवित्र स्थानों का भ्रमण किया। अपनी प्रतिभा के बल पर आप चिश्ती सम्प्रदाय के अध्यक्ष बन गये। ११९० ई० में आप भारत आये तथा ११९६ ई० से स्थायी रूप से अजमेर में रहने लगे। आपका मुख्य सिद्धान्त और उपदेश यह था कि संसार के समस्त धर्मों का मूल स्रोत एक है। भगवान एक है और विभिन्न धर्म उसकी प्राप्ति के केवल साधन मात्र हैं। १२३६ में आपकी मृत्यु हो गई। उनके नाम पर अजमेर में एक दरगाह है जहां प्रतिवर्ष लाखों हिन्दू एवं मुसलमान जाते हैं। आपने अपने उपदेशों द्वारा हिन्दू और मुसलमानों में एकता बनाने में अथक प्रयत्न किया। यही कारण है कि प्रत्येक वर्ष अजमेर में आपका उर्स होता है जिसमें हजारों हिन्दू और मुसलमान भाग लेते हैं।

(३) **बाबा फरीद**—आपका जन्म काबुल के शाही घराने में हुआ था परन्तु किसी कारणवश आपको काबुल छोड़कर मुल्तान में रहना पड़ा। सांसारिक दु:खों का अनुभव करके आपने सन्यास ले लिया और भ्रमण करना आरम्भ कर दिया। आपके विचार बड़े उत्कृष्ट थे। आपने मानव-प्रेम की शिक्षा दी है। आपके विचारों से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बड़े प्रभावित हुये और इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम समन्वय के प्रयास मे आपका बहुत बड़ा हाथ रहा। १२६५ मे आपका देहान्त हुआ।

(४) **महात्मा गेसूदराज**—आपका जन्म सन् १३२१ ई० में हुआ। आपका वास्तविक नाम ख्वाजा बन्देनवाज था। जब आपका ध्यान ईश्वर-प्रेम की ओर आकर्षित हुआ तो आप दक्षिण मे चले गये। फिर आपने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के मजारो का दौरा किया। अन्त मे आप गुलबर्गा मे रहने लगे जहा आपका देहान्त १४२२ ई० मे हो गया। आपने १०५ पुस्तको की रचना की। हर वर्ष गेसू बाबा का उर्स होता है जिसमे हजारों की संख्या मे हिन्दू और मुसलमान भाग लेते हैं। गेसूबाबा ने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये अपने उपदेशों द्वारा भारीरथ प्रयत्न किया।

BRIEF NOTES

(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

निम्नलिखित में से प्रत्येक पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये जो २०० शब्दों से अधिक की न हो।

[a] आधुनिक भारतीय संस्कृति वस्तुत: इस्लामी संस्कृति है।
[b] स्त्रियों की स्थिति पर इस्लाम का प्रभाव।
[c] धार्मिक क्षेत्र में भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव।
[d] मुस्लिम-युद्ध-प्रणाली और भारत।
[e] भारतीय कला पर मुस्लिम प्रभाव।
[f] सामाजिक रहन-सहन, रीति-रिवाजों और खान-पान पर इस्लामी छाप।
[g] भक्ति-आन्दोलन और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य।
[h] सूफी मत के मूल सिद्धान्त।
[i] भारतीय संगीत पर इस्लामी प्रभाव।
[j] सूफी मत की भारतीयों को देन।
[k] कबीर
[l] गुरु नानक
[m] चैतन्य
[n] रामानुज
[o] रामानन्द
[p] अमीर खुसरो
[q] मुगल कालीन चित्रकला।
[r] मुगल कालीन संगीतकला।

OBJECTIVE TYPE QUESTIONS

(नई शैली के प्रश्न)

१. सही शब्द छांटकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

(क) मुसलमानों ने संस्कृत के स्थान पर.......को राज दरबार की भाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया। (अरबी/फारसी/उर्दू)

(ख) हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क के फलस्वरूप.......नामक एक नई बोली का प्रादुर्भाव हुआ। (खड़ी बोली/भोजपुरी/उर्दू)

(ग) हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क से भवन निर्माण की जो नवीन शैली प्रचलित हुई उसे शुरू में ....तथा बाद में.......कहा जाने लगा। (हिन्दू शैली/हिन्दू-पठान शैली/मुगल शैली/मुस्लिम शैली)

(घ) जन भाषाओं के विकास में.......ने काफी सहायता की। (सूफी आन्दोलन/भक्ति आन्दोलन)

(ङ) रैदास और कबीर.......के शिष्य थे। (नामदेव/चैतन्य/रामानन्द)

(च) बंगाल में भक्ति की कृष्ण-मार्गी शाखा को लोकप्रिय बनाने का श्रेय.......को है। (रैदास/नामदेव/चैतन्य महाप्रभु/गुरु नानक)

२. 'हां' या 'ना' में उत्तर दें—

(क) भारत में मुस्लिम राज्य धर्म पर आधारित था।

(ख) मुसलमानों के आगमन से पहले हिन्दू धर्म एकेश्वरवादी विचार धारा से सर्वथा अनभिज्ञ था।
(ग) चित्रकला की 'मुगल शैली' पूर्णतया ईरानी शैली है।
(घ) इस्लामी प्रभाव ने ही मध्य-युग मे भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया था।
(ङ) भारत मे सूफीमत सर्वप्रथम पंजाब मे फैला।
(च) भक्ति आन्दोलन का प्रेरणा स्रोत वैदिक धर्म था।
(छ) भक्ति आन्दोलन प्रमुखतया इस्लामी प्रभाव की देन है।
(ज) भक्ति आन्दोलन के प्रभावस्वरूप ही पीरों मे विश्वास तथा दरगाहों की पूजा भारत मे प्रचलित हुई।
(झ) सूफियो पर वेदांत और भक्ति-मार्गी विचारधाराओं का काफी प्रभाव पड़ा।
(ञ) रामानंद मानववादी थे।
(ट) कबीर का झुकाव प्रमुखतया इस्लाम की ओर था।
(ठ) गुरु नानक का यह कहना था कि गुरु के बिना सच्चा पथ नहीं मिल सकता।
(ड) हिन्दू धर्म को धार्मिक समानता का विचार इस्लामी सम्पर्क से मिला।
(ढ) भक्ति मार्ग मे वेदो की समस्त शिक्षायें निहित थी।

३. अति-संक्षिप्त उत्तर दीजिये (आवश्यकतानुसार एक या दो शब्द मे हो)—
(क) हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क ने किस नई भाषा को जन्म दिया ?
(ख) सूफी मत का प्रारम्भ किस स्थान से हुआ था ?
(ग) सूफी सन्तो ने अपने विचार के प्रसार के लिये कौन सा माध्यम अपनाया ?
(घ) सूफीवाद के दो प्रमुख आधार कौन से हैं ?
(ङ) नामदेव का प्रमुख संदेश क्या था ?
(च) जाति-प्रथा के बारे में कबीर का क्या मत था ?
(छ) इस्लाम के आघातो से अपने धर्म और समाज को बचाने के लिये हिन्दुओं ने क्या तरीका अपनाया ?
(ज) स्वामी शंकराचार्य ने मोक्ष प्राप्ति तथा ईश्वर की उपासना के लिये कौन से मार्ग पर जोर दिया ?
(झ) दादूपंथ ने किस सम्प्रदाय को जन्म दिया ?

४. सही समूह बनाइये.—

१. कुतुबुद्दीन ऐबक	१. फतेहपुर सीकरी
२. अकबर	२. हिन्दवी
३. बाज बहादुर	३. लाल किला, दिल्ली
४. अमीर खुसरो	४ कुतुब मीनार
५. कुतुबुद्दीन ऐबक	५. सितार
	६. ढाई दिन का झोंपड़ा
	७ शालिमार बाग
	८. अकबरनामा

३

आधुनिक भारत में सांस्कृतिक एकीकरण –

(i) पश्चिम का प्रभाव

(ii) भारतीय पुनर्जागरण-प्राचीन परम्परागत मूल्यों और अर्वाचीन पश्चिमी विचारों के संयोग के रूप में।

[CULTURAL INTEGRATION IN MODERN INDIA—

(i) THE IMPACT OF THE WEST;

(ii) THE STUDY OF INDIAN RENAISSANCE AS A FUSION OF OUR TRADITIONAL VALUES AND THE IDEAS OF INDUSTRIALISED WEST]

---

(१) पश्चिम का प्रभाव
(The Impact of the West)

१८ वीं–१९ वीं शताब्दी में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर जो इस्लामी आघात से काफी जर्जरित हो चुकी थी, एक और जबर्दस्त आघात पड़ा, वह था भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना और पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार। जब अंग्रेज भारत में आये थे तब मुगल साम्राज्य अपनी पूर्ण उन्नति पर था। परन्तु १८ वीं शताब्दी के शुरू में भारत की राजनैतिक स्थिति शोचनीय हो गई और कुछ समय उपरान्त मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। भारत अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया जो अपनी–अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए एक–दूसरे से लड़ने–भिड़ने में लगे हुए थे। ऐसी लड़खड़ाती राजनैतिक स्थिति का लाभ उठाकर यूरोपीय जातियाँ जो यहाँ पर व्यापार-वाणिज्य के लिये आयी थीं, भारत में अपना राज्य स्थापित करने के प्रयत्न में लग गयीं। अंग्रेज लोग इस प्रयत्न में सफल हुए और धीरे–धीरे उन्होंने सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार भारत पश्चिम के सम्पर्क में आया अथवा पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के सम्पर्क में आया।

भारतीय संस्कृति व सभ्यता पिछले सभी अघातों को सफलता पूर्वक झेल चुकी थी। किन्तु पाश्चात्य संस्कृति–अघात अथवा प्रभाव (Impact) ने एक बिल्कुल नई एवं भिन्न अवस्था को जन्म दिया। इस्लामी, मुगल संस्कृतियों व सभ्यताओं के प्रभाव ने हमारी संस्कृति व सभ्यता में कुछ समय के लिए मूर्छा ला दी। किन्तु इसे पुन: चेत आया और यह उठ बैठी। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, टैगोर और गांधी जैसे दिव्य पुरुषों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति में पुन: चेतना शक्ति भर दी।

भारतीय पुनः जाग उठे। उनमे अपनी सभ्यता के प्रति पुनः कुछ-कुछ गौरव मान होने लगा। लेकिन यह पुनरुत्थान की भावना जल के ऊपर दिखी गई समान ही हैं जो पाश्चात्य प्रभावरूपी जल को हटाने मे सक्षम नहीं है, बल्कि इतनी अशक्त हैं कि पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित जन-मानस की हिलोरों के विरुद्ध टिक ही नही पाती। हमारी आज की अर्थात् हमारी समकालीन भारतीय सभ्यता के अपनी वह प्राचीन मौलिक सभ्यता नहीं है बल्कि इस्लामी और सर्वोपरि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावों से ओत-प्रोत है। केवल प्राचीन सभ्यता के कुछ मौलिक तत्व अभी तक लुप्त नही हो पाये हं और उन्हीं के बल पर हम इसे भारतीय सभ्यता कह पाते हं इन मौलिक तत्वों में आज भी इतनी जीवन शक्ति विद्यमान है कि सहारा पाने पर ये तत्व हमारी पाश्चात्य प्रभावित वर्तमान भारतीय सभ्यता को पुन अपने प्राचीन गौरवपूर्ण मच पर ला खड़ा करेंगे। अब अग्रिम पृष्ठों मे हम देखेंगे कि पाश्चात्य सभ्यता व सम्पर्क ने हमारी सभ्यता व संस्कृति को कहाँ प्रभावित किया है और वर्तमान काल मे इस सभ्यता का क्या रूप है अथवा कौन-कौन सी विशेषताए या लक्षण हैं।

पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का भारतीय सभ्यता व संस्कृति पर प्रभाव––पाश्चात्य-सम्पर्क के प्रभाव से भारतीय सभ्यता एव संस्कृति पर, भारतीय जीवन पर जो भी सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक एवं राजनीतिक प्रभाव पड़ा वह अभूतपूर्व था। इस सन्दर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि जहाँ तक पाश्चात्य का प्रश्न है, उसका प्रभाव भारत के एक बहुत छोटे वर्ग पर भी पड़ा भारतवासी अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर यह मान कर अड़े रहे कि भारतीय पाश्चात्य दर्शन की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत है। परन्तु पश्चिम का वास्तविक एवं प्रभाव हमारी सभ्यता के व्यावहारिक एवं भौतिक पक्ष पर पड़ा-इतना हमारा मानसिक धरातल भी शनैः शनैः अप्रभावित होने से बचा न रहा प्रोफेसर हुमायूँ कबीर के शब्दो में "चपल यूरोपीय भावनाओं ने प्रत्येक सूक्ष्म परीक्षा की। एक ओर तो भौतिक जीवन की अवस्थाओं में परि गया और दूसरी ओर विश्वासों एव परम्पराओं के आधार को नष्ट कर दिय

(१) राजनीतिक प्रभाव – (क) विशाल शासन-यंत्र का संगठन व भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन के समय से ही धीरे-धीरे एक व्यवस्था की नींव पड़ने लगी। सिपाही-विद्रोह के पश्चात् केन्द्र व प्रान्तों शासन तंत्र का विकास हुआ। केन्द्रीय भारतीय नौकरियों में भारतीय सिवि (I. C. S), भारतीय पुलिस सर्विस (I. P.S), भारतीय मेडिकल सर्विस भारतीय ऑडिट और एकाउन्ट सर्विस (I. A. &. A. S), भारतीय [illegible] सर्विस (I. F. S) आदि प्रमुख थी। प्रान्तीय नौकरियों में माल-विभाग और [illegible]

[illegible] नौकरियों के तेज शासन-तंत्र का निर्माण किया जिसने ४० [illegible] का भार सम्भाल लिया। ऐसा भार पहले किसी भी शासन [illegible] पड़ा था। पहले भारतीय शासन-व्यवस्था इतने विशाल [illegible]

पर शासन–कार्य चलाने के लिए योग्य व समर्थ नहीं थी। अंग्रेजों ने सुव्यवस्थित कुशल नौकरशाही द्वारा जिसका अस्तित्व भारत में पहले नहीं था, शासन किया। उन्होंने यहीं के लोगों से अपने नियन्त्रण में देश के शासन का संचालन करवाया और उसके ही द्वारा देश पर नियन्त्रण रखा। इस प्रकार पाश्चात्य सम्पर्क ने, ब्रिटिश शासन के माध्यम से, भारतीयों को विशाल शासन-यन्त्र का संगठन व प्रबन्ध करने की कला और क्षमता प्रदान की।

(ख) लोकप्रिय राजनैतिक संस्थाओं का विकास— भारत में अंग्रेजों के सम्पर्क के कारण ही लोकप्रिय संस्थाओं का विकास हो पाया। अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत जनता में लोकतन्त्रवाद की विचारधारायें पनपीं और प्रजातांत्रिक संस्थाओं का क्रमश निर्माण होता गया। मिण्टो मार्ले सुधारों के समय से प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभायें लोकमत को धीरे-धीरे प्रकट करने लगीं और कालान्तर में संसदीय कार्यों के शिक्षण के लिए यह बहुमूल्य स्थान हो गया। १९१९ के अधिनियम ने प्रान्तीय शासन में आंशिक उत्तरदायित्व देकर संसदीय प्रशिक्षण के कार्य को और भी आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् १९३५ के विधान के अन्तर्गत प्रान्तों में स्वायत्त-शासन व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त लार्ड रिपन के स्थानीय स्वराज्य के सुधारों ने स्थानीय एवं म्यूनिसिपल शासन की आधार-शिला रखी। कालान्तर में ये उच्च क्षेत्रीय प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं के लिए आधार-स्तम्भ बन गए।

(ग) देश का एकीकरण—ब्रिटिश शासन की सबसे महत्वपूर्ण देन यह है कि इसने भारत को राजनीतिक एकीकरण प्रदान किया। १८५७ के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने जानबूझकर एकीकरण की ऐसी प्रणाली अपनाई जिसका उद्देश्य भारतीय रियासतों में पूर्ण अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित करना ही नहीं था; अपितु सम्पूर्ण भारत को एक करना था। आवागमन और संदेशवाहन के साधन तथा नियमित-व्यवस्था आदि ऐसे प्रमुख वाह्य स्वरूप थे जिनके द्वारा एकता सुलभ हो गई। इसी तरह देशी रियासतों तथा ब्रिटिश प्रान्तों के भेद-भाव एक ही वायसराय की अधीनता में कम हो गए। प्रभुसत्ता के सिद्धांत (Doctrine of Paramountcy) ने देशी रियासतों को प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी सत्ता पर आश्रित कर दिया। शासन की एकरूपता ने राजनीतिक एकीकरण को और भी दृढ़ कर दिया। लोगों की सामाजिक विचारधाराओं में परिवर्तन हुआ और विभिन्न जातियों का समाजीकरण हुआ। लोगों के प्रान्तीय दृष्टिकोण मिटे और एक भारतीयता की भावना बढ़ी। अंग्रेजों द्वारा एक सी वेशभूषा, रीति-रिवाज; आदि का प्रसार किया गया। इन सबसे तथा राजनीतिक जागृति से देश में एकीकरण सुदृढ़ हुआ।

(घ) देश व्यापी शान्ति और सुरक्षा—अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत युद्धों, संघर्षों, अशान्ति और अराजकता का रंगमंच बना रहता था। अंग्रेजों ने पहली बार देश-व्यापी शान्ति और आंतरिक अराजकता तथा वाह्य आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान की। विस्तृत प्रदेशों में प्रसारित ऐसी सुदीर्घकालीन शान्ति भारत में पहले स्थापित नहीं हुई थी। शान्ति; सुरक्षा और व्यवस्था के जिस कार्य का अकबर ने सूत्रपात

(ज) स्थानीय एवं ग्रामीण स्वायत्त शासन का प्रारम्भ – यद्यपि भारत में प्राचीन काल से गांवों और व्यवसायियों की स्वायत्त शासन संस्थायें विद्यमान थीं; तथापि वैधानिक रूप से स्थानीय स्वायत्त शासन का प्रारम्भ १८७० से हुआ। लार्ड मेयो के १८७० के प्रान्तीय अर्थ व्यवस्था के प्रस्ताव में स्थानीय शिक्षा, स्वास्थ्य व्यवस्था चिकित्सा की सुविधा आदि का उल्लेख था। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप ही नगरपालिकाओं के लिए नियम बनाए गए। लार्ड मेयो के बाद लार्ड रिपन ने स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास के प्रयास किए। ब्रिटिश शासन ने स्वायत्त शासन के लिए कानून भी बनाए। इन प्रयासों के फलस्वरूप छोटी-छोटी इकाइयों में जनतांत्रिक भावना का विकास हुआ।

लार्ड रिपन ने १८८२ में एक प्रस्ताव द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थानीय संस्थाओं को चलाने के निर्देश दिए और इस बात से सहमति प्रकट की कि ग्रामीण संस्थाओं का क्षेत्र छोटा होना चाहिए तथा सार्वजनिक हितों का निर्णय जिला-परिषदों में किया जाना चाहिए। इसके साथ ही यह भी सुझाव रखा गया कि छोटी-छोटी स्थानीय समितियों पर नियन्त्रण हेतु जिला परिषदों की स्थापना होगी। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विकेन्द्रीयकरण आयोग ने ग्रामीण स्वायत्त शासन के कार्य पर विशेष बल दिया। इस तरह ग्रामीण स्वायत्त शासन का प्रारम्भ हुआ।

(२) ललित कलाओं का पुनर्जागरण एवं पाश्चात्य कला का प्रवेश— पाश्चात्य सम्पर्क की प्रसिद्ध एवं प्रशसनीय सफलता ललित कलाओं के क्षेत्र में है। सन् १८६० में ब्रिटिश शासन ने भारत में पुरातत्व विभाग के प्रथम डायरेक्टर की नियुक्ति की। इस घटना ने तथा फर्ग्युसन के चिरस्मरणीय ग्रन्थ ने, जिसमें भारत की वास्तुकला के भव्य स्मारकों का विशद विवरण है, ललित कलाओं के प्रति अभिरुचि को पुनर्जागृत कर दिया। भारत-सरकार के हेतु शिलालेख सम्बन्धी विषयों के लिए डा० हल्ट्ज (Hultz) की नियुक्ति भारतीय इतिहास को सूत्रबद्ध करने के एक महान कार्य का श्रीगणेश था। सम्पूर्ण देश में शिलालेखों के लिए सरकारी खोज की गई और प्राचीन भारतीय लिपियों के अध्ययन की चेष्टा की गई। इन प्रयासों ने भारत का उन सामग्री की प्रथम किरण प्रदान की जिससे उसके इतिहास की समुचित रचना प्रारम्भ की जा सके। कालान्तर में नाना शिलालेख उपलब्ध हो गए और उनके सारांश उद्धृत किए गए। इन सब ने भारतीयों में ऐतिहासिक प्रवृत्ति जागृत कर दी। अपनी प्राचीन सफलता, सिद्धियों और राष्ट्रीयता में वे गौरव अनुभव करने लगे। भारतीयों को यह ज्ञात होने लगा कि उनके भाग्य में केवल विदेशी आक्रमणकारियों की दासता स्वीकार करना ही नहीं था, प्रत्युत वे एक ऐसे प्रगतिशील राष्ट्र थे जिन्हें शताब्दियों तक निरन्तर प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने का श्रेय था।

भारत में आधुनिक ढंग पर संस्कृत के अध्ययन को जागृत करने का श्रेय भी ब्रिटिश सरकार और उसके द्वारा आश्रय दिए जाने वाले विद्वानों को है। पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थों का यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद किया। बनारस में क्वीन्स कालेज की स्थापना

भारतीयों को नियमित यथाक्रम से संस्कृत की शिक्षा देने का प्रथम प्रयास था भारत के वेद, उपनिषद तथा धर्मशास्त्र यूरोपियन विद्वानों के अनुवादों द्वारा भारत में इतने अधिक लोगों के हाथों में अध्ययन के लिए आने लगे जितने पहले कभी नहीं प्राप्त हुए थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पाश्चात्य सम्पर्क ने भारतीयों के हृदय में कलात्मक भावना के पुनर्जागरण और साहित्यिक अध्ययन के प्रति उनकी रुचि को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया।

चित्रकला, वास्तुकला, संगीत और नृत्य कला तथा मूर्ति कला इन सभी पर अंग्रेजी तथा यूरोपियन प्रणाली का प्रभाव पड़ा। रंग, चित्रों की रचना, चित्रों के विषय एवं चित्रकला के अन्य अंग पाश्चात्य चित्रकला से प्रभावित हुए जिसके परिणामस्वरूप भारत में आधुनिक शैली का विकास हुआ। तैल-चित्र, पेस्टल रंग, सूखे रंग का पानी के साथ प्रयोग तथा पेन्सिल और स्याही द्वारा चित्रांकन की पद्धति का विकास अंग्रेजों की ही देन है। वास्तुकला के क्षेत्र में अंग्रेजों ने एक नवीन शैली को जन्म दिया जिसमें भारतीय और यूरोपीय शैलियों का सुन्दर समन्वय है। भारत में जितने गिरजाघर बने, वे यूरोपीय शैली के हैं, परन्तु निवास स्थान, सचिवालय और अन्य कार्यों के लिए जो भवन बने उनमें भारतीय एवं पाश्चात्य शैलियों का समन्वय दिखाई देता है। दिल्ली का राष्ट्रपति भवन, सचिवालय, कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल हॉल आदि इस समन्वित शैली के सुन्दर उदाहरण हैं। अंग्रेजों के कारण ही भारत में पहाड़ी नगरों (*Hill Stations*) का विशेष रूप से विकास हुआ जो आज भी हमारे लिए पर्यटन तथा स्वास्थ्य उन्नति के स्थान हैं। चूंकि अंग्रेज ठंडे मुल्क के थे, इसीलिए गर्मियों में कार्य करने के लिए उन्होंने लगभग प्रत्येक प्रांत के सुन्दर पहाड़ी स्थलों पर बंगले, क्लब, सचिवालय आदि बनवाए। भारत की मूर्तिकला पर भी पाश्चात्य शैली का प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव मुख्यतः टेकनीक के रूप में था। संगीत और नृत्य कला भी पाश्चात्य प्रभाव से अछूती नहीं रहीं। यद्यपि भारत के शास्त्रीय संगीत पर कोई विदेशी छाप नहीं पड़ी, किन्तु लोकप्रिय संगीत पर अंग्रेजी तथा यूरोपियन प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है। गीतों की रचना और उनकी स्वरलिपि में अंग्रेजी गीतों का प्रभाव परिलक्षित है। वाद्य यन्त्रों के क्षेत्र में शनै शनै अंग्रेजी धुनों का अनुकरण किया गया। आरकेस्ट्रा का प्रारम्भ विदेशी शैली की ही देन है। नृत्य के क्षेत्र में भारत के शास्त्रीय नृत्य अप्रभावित रहे . . समूह नृत्य के क्षेत्र में 'बैले' (Ballet) अंग्रेजों की ही देन है। नाट्यकला के . . . में नाट्यशाला का निर्माण, मंच की सजावट और 'टेकनीक', रोशनी डालने . . ., वेशभूषा, मेकअप, ध्वनि-प्रसारण एवं नियन्त्रण की प्रणाली आदि . . सम्पर्क का ही परिणाम है। पाश्चात्य संस्कृतियों ने ही भारतीय नाट्य- . . . [illegible] . . . विकीकरण किया है।

रूप में आकर अपने कौशल के बल पर भारत की शासन-सत्ता हथिया ली थी, जाति-पाति एव ऊँच-नीच के भेदभावों में विश्वास नहीं करते थे। वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को मान्यता देते थे। पाश्चात्य सभ्यता ने हमारी जाति-प्रथा पर प्रहार किया और भारत के शिक्षित वर्ग को भी अपना मूल-मन्त्र दिया। प्रशासकों के धर्म के निकट सम्पर्क का भारतीय जनता पर प्रभाव पड़ा और अनेक सुधारात्मक आन्दोलन चलाए गए। अग्रेजो के आगमन से भारत के यातायात मे वैज्ञानिक साधनों की प्रगति हुई। रेलो, मोटरों, वायुयानों से जाति बधन मे ढिलाई आई क्योंकि सबको, चाहे वे सवर्ण हो या अछूत, नीची कौम के हो या ऊची कौम के, साथ-साथ बैठकर यात्राएं सम्पन्न करने के निरन्तर अवसर मिलने लगे। सरकारी नौकरियों मे सबके साथ मिलकर काम करने से तथा नगरों में, होटलो मे साथ बैठने एवं खाने-पीने मे भी जाति-प्रथा पर आघात हुआ। अंग्रेजो के आगमन से सह-शिक्षा का प्रचार हुआ जिससे अन्तर्जातीय विवाहो को प्रेरणा मिली। अंग्रेजी साहित्य ने ति-प्रथा की निन्दा की। इन सबके कारण जाति-प्रथा एव छुआछूत का विचार रन्तर शिथिल पड़ता गया और आज तो इसमे कट्टरता रही ही नहीं है।

इस सम्बन्ध मे यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि अग्रेजों ने गारी जाति-प्रथा पर कोई सीधा प्रहार नहीं किया था और न इस सबध मे किसी कार का कोई नियम ही बनाया गया था। पाश्चात्य सभ्यता ने अप्रत्यक्ष रूप से [illegible]

शिकार हो गया। यूरोपवासियों की देखा-देखी लोग परम्परा
लगे और सिर पर अंग्रेजी बाल रखने लगे। पाश्चात्य सम्पर्क का
पर भी पड़ा और वे भी पाश्चात्य नारी की वेशभूषा का अनुकरण
सौंदर्य-प्रदर्शन की भावना अधिक होती है। भारतीय भोजन प्रथ
हुआ कि पाटे-चौके के स्थान पर मेज और कुर्सी पर बैठकर
भोजन करने का प्रचार बढ़ा। भोजन में चाय, बिस्कुट का प्रयोग
होटलों में भोजन करने का रिवाज बढ़ गया और भोजन की अ
ढंग पर बनने लगीं। आज अधिकांश लंच, डिनर आदि पा
होते हैं।

(ङ) **दिनचर्या, आचरण एवं सामाजिक व्यवहार पर प्र**
की दिनचर्या पर पाश्चात्य सम्पर्क का गहरा प्रभाव परिलक्षि
उठना, बेड-टी, लंच, डिनर आदि-आदि के अतिरिक्त नियमित
में भाग लेना आज के शिक्षित-समुदाय का आवश्यक ठाट-बा
भवनों के निर्माण एवं सजावट में भी आज हम पश्चिम की नक
सामाजिक व्यवहार में भी आज हम दिखावे में अंग्रेज बन गये हैं
शादी आदि के समस्त कार्यों में अधिकांश वर्ग अंग्रेजी तरीकों अ
है। सर्वाधिक कुप्रभाव पाश्चात्य-सम्पर्क का हमारे आचरण
समाज में उससे व्यभिचार, निर्लज्जता एवं कामवासना को प्रो
हमारा चारित्रिक पतन जितना पाश्चात्य सम्पर्क ने किया उ
किया।

(च) **मनोरंजन के साधनों में परिवर्तन**—यूरोपवासियों
भारतीय मनोरंजन के साधन—दंगल, हाथियों की लड़ाई, विदूष
आदि थे। किन्तु पाश्चात्य-सम्पर्क के कारण अब भारतवासी
फुटबाल, क्रिकेट, टेनिस-टनिस, बास्केटबाल आदि द्वारा अपना
लगे हैं। क्लब-प्रथा (Club-System) का आरम्भ भी अंग्रेजों क

(छ) **साम्प्रदायिकता का विकास**—पाश्चात्य शासन का
भारत साम्प्रदायिकता का विकास था। अंग्रेजों द्वारा बोये गये
विष-वृक्ष ने ही भारत की एकता को नष्ट करके देश का विभाजन
शासक ने "फूट डालो और राज्य करो" की नीति अपनाते
मुसलमानों के मध्य भेद-भाव उत्पन्न करने की नीति अपनाई।

१८८५ में कांग्रेस की स्थापना के बाद ही अंग्रेजों ने भारती
प्रतिभार (Counter Weight) के रूप में मुस्लिम साम्प्रदायिकता
आरम्भ कर दिया। सन् १८८६ में मुस्लिम एंग्लो-ओरियन्टल-डिफे
में अंग्रेजों का बड़ा हाथ था। इस संस्था का उद्देश्य मुसलमानों
करना था। इसी प्रकार १९०५ में बंगाल के
नमानों के बीच में विभाजन की खाई खोद
की अंग्रेजी नीति थी। १९०६ में

अधिनियम द्वारा पृथक्-निर्वाचन तथा नौकरियों में ज्यादा हिस्से की मांग की। १९०६ के अधिनियम द्वारा पृथक्-निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार करके भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में साम्प्रदायिक विष-वृक्ष का बीजारोपण कर दिया गया। १९१९ के अधिनियम में सिक्खों तथा ऐंग्लो इण्डियनों आदि के लिए भी पृथक् निर्वाचन पद्धति को लागू कर दिया गया। १९३२ में साम्प्रदायिक एवार्ड की नींव डाली गई। १९३५ के अधिनियम में भी निर्वाचन-पद्धति "जातियों, वर्गों और हितों" के सिद्धान्त पर आश्रित रही तथा उसे और बढ़ावा मिला।

शनैः शनैः भारत की साम्प्रदायिक समस्या अंग्रेजी आशीर्वाद से फलती फूलती गई और अब पृथक् मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्र की मांग होने लगी। सन् १९४० में लाहौर अधिवेशन में लीग ने प्रस्ताव पास किया कि मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों का भारत से विच्छेद कर दिया जाय। आगे जाकर यही पाकिस्तान के नाम से प्रसिद्ध हुआ और अन्त में साम्प्रदायिकता की इस आग ने भारत का विभाजन कर दिया।

भारतीय हों, दिल और दिमाग से पाश्चात्य । मैकाले का उद्देश्य था कि
अंग्रेजों को एक ऐसा वर्ग उपलब्ध हो सके जो उनका समर्थक तथा सहायक
इन्हीं दो उद्देश्यों को लेकर भारत में अंग्रेजी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। इ
विभिन्न शिक्षण संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई जहाँ भारतीय
भाषा, साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र, कानून, चिकित्सा आदि विभिन्न विषयों
शिक्षा दी जाने लगी। पाश्चात्य शिक्षा में प्रशिक्षित भारतीय अपने मालिकों
अनुकरण करने लगे। वे अपनी शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति को हेय समझने लगे

परन्तु जिस शिक्षा के द्वारा अंग्रेज भारतीयों को पश्चिम का अं
समर्थक बनाना चाहते थे, उस शिक्षा ने भारतीयों को सही मार्ग का ज्ञान
कराया। जहां लोग छोटी से लेकर मोटी बात के पाश्चात्य उदाहरण सामने रख
लगे, अंग्रेजी के भक्त बन गए, अपनी आध्यात्मिक धरोहर गवाकर भौतिकवाद के
पीछे पागल बन बैठे, वहां उनमें यूरोप की राजनैतिक जागृति का ज्ञान हुआ।
यूरोप के स्वतन्त्रता--संघर्षों और सुधारवादी लोकतांत्रिक आन्दोलनों के ज्ञान ने ह
जागृत किया। देश में राजनैतिक अधिकारों की मांग उठी और सम्पूर्ण भारत
श्वेत साम्राज्य के विरुद्ध दावानल उठ खड़ा हुआ। अंग्रेजों के स्वतन्त्रता एव
समानता के सिद्धान्तों ने भारतीयों में राष्ट्रीयता के बीज बोए जिनके कारण
अन्तत अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। उदार पाश्चात्य लेखकों द्वारा जब भारतीय
सभ्यता और संस्कृति की महानता के गीत गाये गये तो भारतीय भी अपनी सभ्यता
और संस्कृति की ओर उन्मुख हुए।

(४) धार्मिक प्रभाव---पाश्चात्य सभ्यता का भारतीय धर्म पर भी गहरा
एवं व्यापक प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्र एवं वैज्ञानिक पाश्चात्य--शिक्षा तथा पाश्चात्य
लोगों के स्वतन्त्र वैज्ञानिक आचार-विचारों के कारण भारतवासी नाना धार्मिक
अंधविश्वासों से मुक्त हुये। वे जादू-टोने, भूत-प्रेत व अन्य अंधविश्वासों में विश्वास
न कर वस्तु की सत्यता का ज्ञान प्राप्त करने हेतु तर्क व जिज्ञासा की प्रवृत्ति का
अनुकरण करने लगे। परिणामस्वरूप पंडों व पंडितों के धार्मिक-आडम्ब
अधिकांश जनता की श्रद्धा उठ गई।

प्रारम्भ में आर्थिक प्रलोभनों में ईसाई धर्म-प्रचारकों के बहका
आकर बड़ी संख्या में भारतीय ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। इस बात ने
हिन्दू-धार्मिक-आन्दोलन को जन्म दिया जिन्होंने सोते हुए हिन्दुओं को जगाया
उनमें स्वयं के धर्म की महानता में आस्था पैदा की। पाश्चात्य सभ्यता
धार्मिक आन्दोलनों के कारण सती-प्रथा अन्त ...
आश्चर्यजनक कमी ...

वर्सिटी थी। १८५७ से १८७७ की मध्यवर्ती अवधि में बम्बई, मद्रास, लाहोर र इलाहबाद में ४ नई युनिवर्सिटियाँ कायम हुई। इनमें ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में जाने वाली शिक्षा को दृष्टि में रखकर ही अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध किया ा। साथ ही अनेक स्कूल व कालेज भी इस काल में स्थापित किये गये।

मैकाले जैसे अंग्रेज शिक्षा-विज्ञ भारत में शिक्षित व्यक्तियों की एक ऐसी णी उत्पन्न करना चाहते थे जो रंग में काले भले ही हों, पर भाषा, विचार, नसिक चिन्तन, वेश-भूषा और रहन-सहन की दृष्टि से अंग्रेजों के समान हों। ने इस प्रयास में उन्हें सफलता भी मिली।

सन् १८३५ के बाद से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का तेजी के साथ विकास ारम्भ हुआ। जहां १८३५-३६ में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा को प्रधानता देने वाले ३ सरकारी स्कूल खोले गये, वहां १८४२ तक ऐसे स्कूलों की संख्या ५१ हो गई, ार १८५५ में ११५१। १८८७ तक भारत में ५ विश्वविद्यालय स्थापित हो गये ार अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या भी २५ लाख से अधिक हो ई। १९१० ई० में केन्द्रीय भारत सरकार के अधीन एक पृथक शिक्षा विभाग ोला गया जिसके द्वारा भारत में शिक्षा प्रसार के लिये बहुत उपयोगी कार्य हुआ। ाथम महायुद्ध के बाद १९१७ से १९२२ तक के ५ वर्षों में भारत में विश्वविद्यालयों ी संख्या ५ से बढ़कर १४ हो गई और १९४७ ई० तक भारत में कुल मिलाकर २० विश्वविद्यालय स्थापित हो गये। स्कूलों और कालेजों की संख्या में भी आशातीत द्धि हुई। प्रायः सभी बड़े नगरों में हाईस्कूलों और कालेजों की स्थापना हुई।

उपरोक्त सभी प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि भारत में शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण क्रान्ति का सूत्रपात हुआ और भारतीयों के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे।

अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी हुई, क्योंकि अनेक विचारक अंग्रेजी शिक्षा के विकास को देश के लिये हानिकारक समझते थे। इसीलिए १९वीं सदी के अंतिम वर्षों में महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की गई जिसमें न केवल संस्कृत और वैदिक साहित्य के अध्ययन को प्रमुख स्थान दिया गया था बल्कि हिन्दी-भाषा के माध्यम से नये ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई। तत्पश्चात् रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'शांति निकेतन' की स्थापना की, जो १९२१ में विश्व भारती युनिवर्सिटी के रूप में परिवर्तित हो गया। यह शिक्षण संस्था गुरुकुल कांगड़ी के समान ही भारतीय संस्कृति का प्रसिद्ध केन्द्र है। २०वीं सदी के प्रथम चरण में अन्य राष्ट्रीय शिक्षणालय स्थापित हुए जिन्होंने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करने से इन्कार किया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में जब १९२१ में असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ, तो सरकारी शिक्षणालयों का बहिष्कार भी राष्ट्रीय कार्यक्रम में सम्मिलित हुआ।

नवीन शिक्षा के परिणाम—अंग्रेजी शासकों ने भारत में नवीन शिक्षा का सूत्रपात चाहे किसी भी उद्देश्य से किया हो, भारतीयों पर इसके विभिन्न प्रभाव पड़े—

(१) अंग्रेजी भाषा का साहित्य स्वतन्त्रता और लोकतंत्रवाद की भावनाओं से अनुप्राणित है। जब इस साहित्य ने भारत में प्रवेश किया तो यहां के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग अपने देश की सामाजिक और राजनीतिक दुर्दशा को अनुभव करने लगे। इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, साहित्य आदि आधुनिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण भारत में जो शिक्षित वर्ग पनपा वह जहां सरकारी नौकरी द्वारा व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिए उन्मुक था वहां पश्चिमी देशों के समान भारत को भी उन्नति-पथ पर आरूढ़ कराना चाहता था। पढ़े-लिखे लोग नवीन शिक्षा के परिणामस्वरूप यह चाहने लगे कि भारत में नवयुग का सूत्रपात हो और देश के शासन-सूत्र का सचालन भी भारतीय ही करें।

(४) नवीन शिक्षा ने बड़ी सख्या में देशभक्त भारतीयों का ध्यान अपने देश के लुप्त गौरव की ओर आकृष्ट किया। ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित विद्यालयों में संस्कृत भाषा और प्राचीन साहित्य के अध्ययन का वैज्ञानिक विधि से प्रबन्ध किया गया था। इससे भारतीय युवकों में अपने देश की प्राचीन विचारधारा के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ और वे भारतीय संस्कृति तथा आदर्शों को पुनर्जीवित करने के लिए प्रवृत्त हुए। नये विश्व-विद्यालयों में भारत के प्राचीन इतिहास की शोध को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। इस कारण भारत के लुप्त इतिहास का जनता को ज्ञान हुआ, और वह अपने अतीत गौरव से प्रेरणा प्राप्त कर देश की दशा को सुधारने की ओर मुड़ी।

(५) स्त्री-शिक्षा के प्रचार में भी नवीन शिक्षा बहुत सहायक हुई। ब्रिटिश शासन ने जिस नवीन शिक्षा का सूत्रपात किया था उसमें स्त्री-शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया गया था। अब स्त्रियों को अपनी दुर्दशा का अनुभव हुआ। अब ऐसे अनेक समाज-सुधार-आन्दोलनों का उदय हुआ जिनका उद्देश्य बाल विवाह, पर्दाप्रथा आदि का विरोध करना, विधवा-विवाह का समर्थन करना और स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार व स्थिति प्रदान करना था।

(६) नवीन शिक्षा द्वारा जहां विभिन्न लाभ हुए, वहां उससे कुछ हानियां भी हुईं। इस शिक्षा ने भारतीयों में मानसिक गुलामी को विकसित किया, उनमें पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के प्रति प्रेम और निष्ठा को जन्म दिया तथा एक ऐसा दृष्टिकोण पैदा किया जो भारत की अपनी संस्कृति और राष्ट्रीयता के विरुद्ध था। ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रमुख स्थान था, शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी को रखा गया था और भारतीय भाषाओं की उपेक्षा की गई थी। छात्र वर्ग अंग्रेजी भाषा की योग्यता को ही विद्वता का मापदण्ड समझता था और पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने में गौरव का अनुभव करता था।

पाश्चात्य शिक्षा और सम्पर्क ने भारतीयों में पश्चिम के प्रति इतना आकर्षण पैदा कर दिया था कि भारतीय संस्कृति के प्रति उनका लगाव ही मिटने लगा। ऐसी परिस्थिति में अनेक ऐसे धर्म व समाज-सुधार-आन्दोलनों ने जन्म लिया जिन्होंने में अपने संस्कृति के प्रति गौरव का पुनर्संचार किया।

(२) सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन —भारतीय पुनर्जागरण अपनी दूसरी पीढ़ी में एक नैतिक शक्ति बन गया जिसने हमारे समाज और धर्म को सुधारा। उन्नीसवीं शताब्दी में समाज और धर्म के क्षेत्र में सुधार के जो विभिन्न आन्दोलन शुरू हुये, उन्हें नवीन शिक्षा से तो सम्बल मिला ही था, किन्तु हिन्दू धर्म में प्रचलित गम्भीर बुराइयों और कुरीतियों ने भी एक बहुत बड़ी सीमा तक इन आन्दोलनों को प्रेरित किया था। मुस्लिम शासन के आघात से लड़खड़ाते हुए हिन्दू-धर्म व हिन्दू समाज का ब्रिटिश शासनकाल में तेजी से पतन हो रहा था और मूर्ति-पूजा, नारियों की दुर्दशा, जातीय बंधनों, साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों तथा अन्य नाना

कुरीतियो तथा दोषों से वह निरन्तर खोखला होता जा रहा था। हिन्दू धर्म में इतनी कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थी कि लोग उसे अपनाने मे लज्जा अनुभव करने लगे थे और अनेक हिन्दू नवयुवक ईसाई धर्म से प्रभावित होकर उस धर्म मे प्रविष्ट होने लगे थे। ऐसे समय मे हिन्दू समाज के दोषों और धर्माडम्बर पर कुठाराघात करने के लिए नाना धार्मिक एव सामाजिक आन्दोलनों का जन्म होना स्वाभाविक था।

इन आन्दोलनों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है :—

(क) ब्रह्म समाज — ब्रह्म समाज १९वीं शताब्दी के सुधारो की पहली महान देन थी। इस आन्दोलन के प्रवर्तक राजा राममोहनराय (१७७२–१८३३ ई०) थे। राजा राममोहनराय हिन्दू धर्म तथा हिन्दू समाज का परिष्कृत तथा परिमार्जित बनाना चाहते थे। वे उन सब रूढियों तथा कुरीतियो को दूर करना चाहते थे जो कि कालान्तर मे इसमें घर कर गई थी। राजा राममोहनराय केवल धार्मिक सुधार ही नहीं अपितु समाज-सुधार भी करना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने सती-प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियो का भरपूर विरोध किया। धर्म के मामलो मे वे हिन्दुओं के प्राचीन धर्म को पुन स्थापित करना चाहते थे। वे उन अन्ध-विश्वासो के शत्रु थे जो कि हिन्दू धर्म मे प्रवेश कर गए थे। वे बहुविवाह के भी विरोधी थे।

सन् १८२८ मे अपने विचारो को मूर्तरूप देने के उद्देश्य से राजा राममोहन राय ने कुछ मित्रो के साथ एक सगठन की स्थापना की जो 'ब्रह्म समाज' कहलाया। (प्रति शनिवार को सन्ध्या काल मे इसकी बैठक होती थी। इस सभा मे वे सब लोग सम्मिलित हो सकते थे, जो ईश्वर मे विश्वास रखते हो, और मूर्ति पूजा के विरोधी हों।) इस समाज के लिए कलकत्ता मे एक भवन निर्माण किया गया, जिसके विक्रय पत्र (Sale Deed) मे राजा राममोहनराय ने लिखा था कि, "नस्ल, जाति व धर्म का भेदभाव रखे बिना सब प्रकार के लोग इस भवन मे आकर एक ईश्वर की उपासना कर सकते हैं और इस उपासना के लिए किसी प्रतिमा, मूर्ति व कर्मकाण्ड का प्रयोग नहीं किया जायगा।" नि.सन्देह राजा राममोहनराय एक महान सुधारक थे। १८३३ ई० में उनकी मृत्यु हो गई किन्तु उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज उनकी मृत्यु के बाद भी कायम रहा। (इसमे बाद मे जाकर कवीन्द्र रवीन्द्र के पिता श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर शामिल हुए (१८४३ ई० मे)। उनके प्रयत्नो से राजा राममोहनराय द्वारा प्रारम्भ किए गए इस सुधार आन्दोलन ने एक पृथक समाज व सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया। अब इसमे शामिल होने वाले व्यक्तियो को एक नई दीक्षा विधि द्वारा दीक्षा दी जाने लगी। किन्तु राजा राममोहन राय और श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर दोनो ही वेदो में विश्वास रखने वाले थे अत: ब्रह्म समाज का स्वरूप मूलत: वैसा ही रहा।

में श्री केशवचन्द्र सेन ब्रह्म समाज में शामिल हुए। उनके प्रयत्नों से ब्रह्म समाज ने बहुत उन्नति की। किन्तु बाद में श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर से उनका मतभेद हो गया चूंकि वे ईसाई धर्म से बड़े प्रभावित थे और अन्तर्जातीय विवाह तथा विधवा विवाह के पक्षपाती थे। इस मतभेद के कारण ब्रह्म समाज दो दलों में विभक्त हो गया। श्री सेन ने एक अलग समाज का सगठन किया जो भारतीय ब्रह्म समाज कहलाया। कुछ वर्षों बाद इसके भी दो दल हो गए और श्री सेन के विरोधियों ने एक तीसरे दल का सगठन किया जो 'साधारण ब्रह्म समाज' कहलाया। इस प्रकार ब्रह्म समाज की तीन शाखाएँ हो गई। आजकल जो ब्रह्म समाजी हैं वे अधिकतर 'साधारण ब्रह्म समाज' के हैं।

सिद्धान्त या नियम :—ब्रह्म समाज के मुख्य नियम निम्नलिखित हैं —

(१) ईश्वर एक है जो सम्पूर्ण सद्गुणों का केन्द्र और भण्डार है।

(२) ईश्वर ने ही इस सृष्टि की रचना की है तथा वही इसका सरक्षक है।

(३) ईश्वर अजन्मा है, वह जीव का रूप धारण करके कभी पैदा नही हुआ।

(४) ईश्वर प्रार्थना सुनता है और स्वीकार करता है। उसकी कृपा के बिना [illegible] सम्भव नही है।

(५) जीवात्मा अमर है और अपने कार्यों के लिए ईश्वर के प्रति [illegible]रदायी है।

(६) सब जाति और वर्णों के लोग ईश्वर की पूजा कर सकते हैं। उसकी [illegible] और भक्ति के लिए मन्दिर, मस्जिद और आडम्बर की आवश्यकता नही है। [illegible]वल सत्य-प्रेम और आत्मा से उसकी पूजा करनी चाहिए।

(७) पाप का त्याग और पाप कर्म से पश्चाताप ही मोक्ष का साधन है।

(८) ईश्वर में पितृभावना, मनुष्य जाति मे भ्रातृभावना तथा प्राणि-मात्र में [illegible]यामावना रखना ही परम धर्म है।

(९) मानसिक ज्योति और विशाल प्रकृति ही परमात्मा के ज्ञान के साधन [illegible]। किसी पुस्तक को दैवी मानने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि कोई पुस्तक त्रुटि रहित नही रहती।

समाज पर प्रभाव या महत्व :—आज भारतवर्ष में ब्राह्मण लोगों की संख्या कुछ ही हजार है परन्तु इस समाज ने शिक्षा के प्रचार तथा समाज सुधार में बड़ा प्रशंसनीय काम किया है। ब्रह्म समाज का सामाजिक एव धार्मिक व्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सामाजिक कुरीतियों का घोर विरोध किया गया तथा समता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर लाखों व्यक्तियों को ईसाई धर्म अपनाने से रोका गया। इसके अतिरिक्त 'सती-प्रथा' का अन्त तथा स्त्री-शिक्षा का प्रारम्भ भी राजा राममोहनराय तथा ब्रह्म समाज के प्रयत्नों का ही परिणाम था। विधवा विवाह को प्रचलित करने का भी प्रयास किया गया तथा जाति पाँति की संकीर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता एव रूढ़िवादिता का घोर विरोध किया गया जिसका प्रभाव जन जीवन पर काफी पड़ा। यहीं से आधुनिक समाज सुधार के युग का सूत्रपात हुआ।

(ख) प्रार्थना समाज—ब्रह्म समाज के प्रभाव से सन् १८६७ में महाराष्ट्र में

प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इसके प्रमुख सदस्यों में श्री महादेव गोविन्द ... सामाजि

सर आर० जी० भंडारकर तथा नारायण चन्दावरकर थे। इस आन्दो

आध्यात्मिक नेतृत्व महादेव गोविन्द रानाडे ने ही प्रदान किया और उन्हीं के

इसने सफलता भी प्राप्त की। श्री रानाडे ने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रार्थना सम

उद्देश्य को आगे बढ़ाने में लगाया। उन्होंने प्रसिद्ध "डेक्कन एजूकेशन सोसायटी"

"विधवा-विवाह संघ" की स्थापना की। वह अखिल भारतीय कांग्रेस तथा सामा

सम्मेलन के संस्थापकों में से थे। श्री रानाडे का मत था कि "सुधारक को सम

मनुष्य से निबटने की कोशिश करनी चाहिये न कि केवल एक दो सुधारों को

रखना चाहिये। सत्य सामाजिक सुधार से उसी प्रकार अभिन्न है जिस प्रकार मानव

ईश्वर-प्रेम से अभिन्न है।" इससे स्पष्ट है कि उनके समाज सुधार सम्बन्धी विचा

बहुत व्यापक थे। श्री रानाडे इस महान सिद्धान्त में आस्था रखते थे कि सुधारों की

योजना लागू करते समय अतीत से नाता नहीं तोड़ना चाहिये और दीर्घकाल से

बनी हुई आदतों तथा प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना चाहिये, क्योंकि 'सच्चे सुधारक

को किसी साफ स्लेट पर नहीं लिखना है, उसका काम बहुधा अपूर्ण अर्थ के वाक्य

को पूर्ण करना होता है।"

श्री रानाडे ने पश्चिमी सभ्यता के सिद्धान्तों का प्रयोग भारत में इस त

किया कि वे भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल सिद्ध हो सके। वास्तव में अ

अथक प्रयासों द्वारा उन्होंने भारतीय सुधारों को एक नवीन दिशा प्रदान की।

प्रार्थना समाज के उद्देश्य और कार्य—इस समाज के सिद्धान्त और विचा

ब्रह्म समाज के अनुरूप ही थे। इसके प्रमुख विषय भी वैसे ही थे जैसे कि ब्रह्म समा

के, और सामाजिक उद्देश्य भी जाति-प्रथा का अन्त, विधवाओं का पुनर्विवाह, स्त्री

शिक्षा को प्रोत्साहन तथा बाल-विवाह का अन्त करना आदि थे। किन्तु हिन्दू धर्म

के प्रति बंगाल के धर्म समाज के अनुयायियों का जो रुख था उससे प्रार्थना समा

वालों का रुख अवश्य भिन्न था। प्रार्थना-समाज के समर्थकों ने कभी "अपने को

रूप में नहीं देखा कि वे सामान्य हिन्दू मत के बाहर एक नवीन धर्म के अवलम्बी हैं,

बल्कि उन्होंने यही देखा कि वे इसके अन्तर्गत एक आन्दोलन मात्र है।" इस समाज

के समर्थकों ने नामदेव, तुकाराम और रामदेव जैसे मराठा संतों की महान धार्मिक

परम्परा से प्रेरणा प्राप्त की। यह समाज धार्मिक गतिविधियों की अपेक्षा सामाजिक

क्षेत्र में अधिक कार्यशील रहा और पश्चिमी भारत में समाज सुधार सम्बन्धी नाना

क्रियाओं का केन्द्र बना। इसके द्वारा अनाथालय, रात्रि-पाठशालाएं, विधवा-भवन,

दलित-वर्ग मिशन और इसी तरह की अन्यान्य उपयोगी संस्थाएं स्थापित की गई।

. (ग) आर्य समाज (स्वामी दयानन्द)—१६वीं सदी में पावन हिन्दू धर्म में

नव जीवन का संचार करने और हिन्दू जाति की सामाजिक दशा में सुधार करने के

लिए जिन नाना आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ, उनमें आर्य समाज का महत्व सर्वोपरि

। इसकी स्थापना महर्षि स्वामी दयानन्द (१८२४-१८८३) ने सन् १८७५ ई० में

की थी और इस आन्दोलन का प्रारम्भ बम्बई से हुआ था। स्वामी दयानन्द बचपन

से ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे और उनके विद्रोही तथा तार्किक मस्तिष्क ने मूर्ति-पूजा को कभी स्वीकार नहीं किया। काठियावाड़ में धमीर घराने में जन्मे दयानन्द का का वास्तविक नाम मूलशंकर था। बचपन से ही अत्यन्त गम्भीर प्रकृति के इस युवक ने सन् १८४६ में अपना घर त्याग दिया और अपना सारा जीवन देश और धर्म की सेवा में लगाने का निश्चय किया। अगले १५ वर्षों तक वे सम्पूर्ण भारत में ज्ञान की खोज में घूमते रहे और विभिन्न साधु-सन्यासियों तथा योगियों के सम्पर्क में आये। मथुरा में उन्हें संस्कृत के एक महान् पंडित स्वामी विरजानन्द से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। अपने इसी गुरु से उन्होंने निर्भयता का महान् पाठ पढ़ा। शिक्षा की समाप्ति पर गुरु ने शिष्य से यह वचन लिया कि वह सदैव सत्य पर आधारित ज्ञान का प्रचार करेगा और शिष्य ने भी अपने सम्पूर्ण जीवन काल में इस वचन का पूरी तरह से निर्वाह किया।

स्वामी दयानन्द पर वेदों का अत्यधिक प्रभाव था। वे अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ थे और अंग्रेजी सभ्यता तथा ईसाई धर्म से एकदम अप्रभावित। उनका उद्देश्य ही प्राचीन हिन्दू धर्म का फिर से संस्थापन था। हिन्दू धर्म में जो बुराइयाँ प्रवेश कर गई थीं, उनको वे निकालना चाहते थे। वह अपने व्याख्यानों में प्रारम्भ में संस्कृत ही बोलते थे, किन्तु श्री केशव चन्द्र सेन ने उन्हें यह परामर्श दिया कि वे जन-भाषा में ही अपने सिद्धान्तों का प्रचार करें। इसके पश्चात् उन्होंने हिन्दी के माध्यम से ही भारतवासियों को अपना संदेश प्रदान किया। सन् १८७४ में उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" की रचना की। इस ग्रंथ में धर्म के ऊपर पहले की शिक्षाएं संगृहीत हैं तथा धर्मों का आलोचनात्मक विश्लेषण है। वह यह सिद्ध करना चाहते थे कि वैदिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। भारत की बौद्धिक राजधानी वाराणसी में

पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है। (३) वेद ही सब सत्य विद्याओं और ज्ञान का भण्डार है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। (४) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये। (५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये। (६) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्य समाज को सबकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये। (७) प्रत्येक के साथ उसके गुणों के अनुसार प्रेम तथा न्यायपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। (८) अविद्या का नाश तथा विद्या का प्रचार करना चाहिये। (९) प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये। (१०) व्यक्तिगत मामलों में प्रत्येक मनुष्य को आचरण की स्वतन्त्रता होनी चाहिये परन्तु सामाजिक भलाई से सम्बन्धित विषयों में सब मतभेदों को भुला देना चाहिये।"

समाज पर प्रभाव या आर्य समाज की सेवाएं या महत्व :—आर्य समाज आन्दोलन केवल धार्मिक आन्दोलन ही न होकर एक सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन भी था। इसने हिन्दू समाज व धर्म को पतन से बचाया। अनेकों हिन्दू जो मुसलमान एव ईसाई बन गए थे, उनकी शुद्धि करके उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में वापिस बुला लिया गया। इस आन्दोलन के कारण हिन्दू समाज में नव चेतना एवं आत्म सम्मान के भाव जागृत हुए और हिन्दू यह अनुभव करने लगे कि उनका धर्म एवं उनकी संस्कृति का महत्व अन्य धर्मों तथा संस्कृतियों से उच्च है। आर्य समाज द्वारा हिन्दू समाज में प्रचलित कुप्रथाओं, जाति भेदभाव, छुआछूत, बाल-विवाह तथा आडम्बर आदि पर सामाजिक चोटें की गईं। फलस्वरूप समाज में इन बुराइयों के कम होने में काफी सहायता मिली। आर्य समाज ने वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध प्रचार कर हिन्दू समाज की एकता को दृढ़ किया। आर्य समाज के प्रयत्नों से स्थान-स्थान पर स्कूल व कालिज खोले गए जो आज भी डी० ए० वी० के नाम से चल रहे हैं। अनेक स्थानों पर अनाथालय, गऊशालाएं एवं विधवा-आश्रम खोले गये। आज भी इनके द्वारा अनाथ बच्चों, गायों एवं विधवाओं का पालन किया जाकर उन्हें स्वावलम्बी बनाया जाता है। वास्तव में इस आन्दोलन के कारण भारत-वासियों में देश के प्रति प्रेम तथा त्याग की अपनी भावना का संचार हुआ एवं देश की संस्कृति को पर्याप्त रक्षा हुई। यद्यपि सन् १८८३ में स्वामी दयानन्द का स्वर्ग-वास हो गया तथापि उनके शिष्यों ने उनका काम जारी रखा। आज भी देश की विभिन्न संस्थाओं में आर्य समाज का महत्वपूर्ण स्थान है और वह अपने [illegible] [illegible] पर चल रहा है।

उन्होंने सम्पर्क स्थापित किया जो उस समय भारत में जारी थे। उन्होंने स्थान-स्थान पर हिन्दुओं को कुरीतियों को दूर करने का उपदेश दिया। कर्नल आलकाट ने हिन्दू धर्म के गुणों पर प्रकाश डाला और कहा कि यह सब धर्मों से श्रेष्ठ है तथा सत्य इसमें ही निहित है। वे सर्वाधिक आर्य समाज से प्रभावित हुए और उन्होंने चाहा भी कि थियोसोफिकल सोसाइटी व आर्य समाज मिल कर तथा एक होकर साथ काम करें। किन्तु स्वामी दयानन्द वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे जो थियोसोफिकल विचारकों को स्वीकार्य न था। जो भी हो इनके उपदेशों से हिन्दू जनता अपनी सभ्यता व संस्कृति का महत्त्व समझने लगी थी और हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान भी प्रारम्भ हो गया था। अतः इन्होंने न्यूयार्क से अपना मुख्य कार्यालय अदयार (मद्रास) में स्थापित कर लिया। इस समाज का कार्य-क्षेत्र भारत हो गया और यहीं से इसका अन्य देशों में प्रचार हुआ। बाद में मिसिज ऐनी बेसेन्ट इस सोसाइटी की प्रमुख कार्यकर्त्ता बन गईं। वह जन्म से आयरिश थीं परन्तु उसने भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार कर लिया था और हिन्दू धर्म को भी लगभग मानने लग गई थी। ऐनी बेसेन्ट के प्रयत्नों से, जो एक अत्यन्त प्रतिभाशाली व प्रबल व्यक्तित्व वाली महिला थीं इस आन्दोलन ने भारत में बड़ी सफलता प्राप्त की।

सिद्धान्त या विचार-धारा :—थियोसोफिकल सोसायटी का मुख्य उद्देश्य यह दिखाना है कि इस संसार और मानव जाति के विकास का आधार 'विकास की एक ईश्वरीय योजना" पर है। संसार के समस्त धर्म इसी एक योजना के विभिन्न रूप हैं, अतः उनमें परस्पर विरोध नहीं हो सकता। थियोसोफिकल विचारकों के अनुसार धर्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है। उनका उद्देश्य संसार के सभी वर्गों में भ्रातृभाव को पैदा करना है। वे मनुष्य की गुप्त शक्तियों और प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं और पुनर्जन्म तथा ऐकेश्वरवाद में विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है और मानवता के सिद्धान्त ही मोक्ष के मार्ग हैं। वे धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास रखते हैं और उनकी दृष्टि में मूर्ति पूजा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयोगी है। उनके विचार में यद्यपि सत्य सब धर्मों में पाया जाता है तथापि हिन्दू और बौद्ध धर्म में यह अधिक पाया जाता है।

भारतीय समाज पर प्रभाव :—इस समाज ने भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म की उत्कृष्टता की ओर भारतीयों तथा दूसरों का ध्यान खींचकर भारतीयों का बड़ा उपकार किया। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट का कहना था कि भारत अपनी समस्याओं को तभी हल कर सकता है जब वह अपने प्राचीन आदर्शों व संस्थाओं का पुनरुद्धार करे, वह अपने गौरवमय भूतकाल पर गर्व करे, आत्म-सम्मान जागृत करे और भविष्य की उज्ज्वलता में विश्वास रखे। इन विचारों और उपदेशों के कारण भारतीय जनता में स्फूर्ति व आशा का संचार हुआ। इस प्रकार इस समाज ने भारतीयों में स्वतन्त्रता की भावना को भरा, हिन्दू समाज की सेवा की और भारतीय संस्कृति को ऊंचा उठाया। इसके अतिरिक्त देश में कई शिक्षा-संस्थाएं स्थापित की

गई । ऐनी बेसेण्ट द्वारा काशी में स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू कालेज ही आगे
हिन्दू विश्वविद्यालय हो गया ।

(४) रामकृष्ण मिशन :—इस मिशन की स्थापना अपने गुरु के नाम
स्वामी विवेकानन्द द्वारा की गई थी । स्वामी विवेकानन्द के गुरु का नाम
रामकृष्ण परमहंस था जो भारत की महानतम धार्मिक विभूतियों में से थे । स्व
परमहंस के मतानुसार ईश्वर निराकार है तथा मनुष्य के ज्ञान और पहुँच के परे है
उन्होंने मूर्ति-पूजा का खण्डन किया, जाति-व्यवस्था तथा बाल-विवाह का विरो
किया और स्त्रियों की शिक्षा के समर्थन के साथ यह भी घोषित किया कि स्त्री
स्थान पुरुष के समान हो । उनके प्रमुख एवं योग्यतम शिष्य स्वामी विवेकानन्द
थे जिनका नाम पहले नरेन्द्रनाथ था । परमहंस की मृत्यु के बाद उनके विचारों
के प्रसार के लिए स्वामी विवेकानन्द ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की । कलकत्ते
के निकट वेलूर में इसका मुख्य कार्यालय स्थापित किया गया । इसके अतिरिक्त
इसके मठ बंगलौर और मायावती (अलमोड़ा) में हैं । मिशन ने बर्मा, मलाया, लंका,
यूरोप तथा अमेरिका में भी अपनी शाखाएं स्थापित कर ली हैं ।

सिद्धान्त :—स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनुसार जीवन की वास्तविक
सफलता के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त अमूल्य हैं—

(१) अपने धर्म का त्याग न किया जाय क्योंकि प्रत्येक धर्म सच्चा और
अच्छा है ।

(२) ईश्वर, अमर, अजन्मा, अजेय व निराकार है । वह मनुष्य की बुद्धि
से परे है । वह सर्व व्याप्त है । आत्मा ईश्वरीय है ।

(३) हिन्दू सभ्यता सब से प्राचीन है ...
सुन्दर है । हिन्दू राष्ट्र ...

सर

दयालजी महाराज थे। इन्होंने दयालबाग आगरा में इस संस्था को अपने विचारों के प्रसार के उद्देश्य से प्रारम्भ किया। इस संस्था का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होते हुए भी इसने समाज और शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सेवा की है। इसके सिद्धान्तों के अनुसार ईश्वर पूर्ण है और आत्मा ही ईश्वर है। ईश्वर को योग और तपस्या से ही प्राप्त किया जा सकता है। राधास्वामी सत्संग वाले आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। उनके अनुसार गुरु ही ज्ञान, सत्य और ईश्वर का प्रतिरूप है। वे भक्तियोग पर अधिक महत्व देते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इस संस्था ने उल्लेखनीय कार्य किया है। दयाल बाग आगरा में स्थित कालेज, कृषि और औद्योगिक केन्द्र के द्वारा इस संस्था का प्रचार कार्य होता है।

(छ) भारत सेवा संघ, समाज सेवा संघ, सेवा समिति आदि:—और भी विभिन्न संस्थाओं की स्थापना धर्म व समाज-सुधार के उद्देश्य से इस काल में की गई। भारत सेवक संघ की स्थापना श्री गोपालकृष्ण गोखले ने १९०५ में की। इस संघ ने शिक्षा तथा समाज के सुधार में प्रशंसनीय भाग लिया। १९११ में श्री नारायण मेहर जोशी द्वारा स्थापित समाज सेवा संघ ने जनता को सुधारने के लिए उद्यत किया और मजदूरों की दशा सुधारने का श्लाघनीय कार्य किया। १९१४ में श्री हृदयनाथ कुंजरू द्वारा स्थापित सेवा समिति ने भी सामाजिक क्षेत्र में बड़े प्रशंसनीय कार्य किए हैं। इसने शिक्षा प्रसार में बड़ा प्रयत्न किया है और मेलों, बीमारियों तथा बाढ़ के समय जनता की बड़ी सेवा की है। जनता में सहकारिता तथा सहयोग उत्पन्न कराने में भी इसने बड़ा प्रयत्न किया।

(ज) मुस्लिम नव जागरण —चूंकि इस्लाम धर्म में भी अनेक कुप्रथाओं ने घर कर लिया था, अतः उसमें अनेक आन्दोलन हुए जिनमें बहावी आन्दोलन, अलीगढ़ आन्दोलन और अहमदिया आन्दोलन प्रमुख हैं। इन आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ, मुसलमानों की दशा में सुधार हुआ, शिक्षा में सुधार हुआ और उनके दृष्टिकोण में भी कुछ व्यापकता आई। किन्तु इन आन्दोलनों ने साम्प्रदायिकता की भावना को आगे ही बढ़ाया, कम नहीं किया।

(५) सभी ने समस्त धर्मों की मूलभूत एकता का प्रदर्शन किया तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना जागृत कर हिन्दू विचारधारा एवं भारतीयों की मनोवृत्ति को अधिक उदार किया।

(६) वर्ण-व्यवस्था की जटिलता, जाति-पांति के कठोर प्रतिबन्धों तथा सम्प्रदायों के पारस्परिक विभेदों का घोर विरोध किया एवं एकता के सूत्र में सुसंगठित समाज के निर्माण पर अधिक बल दिया।

(७) सभी ने देश के अतीत के वैभव व महानता का वर्णन किया जिससे राष्ट्रीयता के विकास में सहायता मिली।

(८) सबने भारतीय स्त्री-समाज की हीन दशा की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट कराया और उसके उद्धार व प्रगति के हेतु प्रयत्न किये।

(९) सभी ने भारतीयों के हृदयों में अपने देश, धर्म एवं संस्कृति के प्रति प्रेम

सामाजिक जागृति के साथ-साथ साहित्यिक जागृति भी हुई। भारतीय नवजागरण के कारण संस्कृत की नाना पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेजी में हुआ जिससे भारत-विषयक अध्ययन बढ़ा। अंग्रेजों और भारतीयों को हमारे लुप्त गौरव का प्रामाणिक परिचय मिला।

ब्रिटिश युग में हिन्दी और विकसित लोक-साहित्य की उत्कृष्ट रचनायें लिखी गईं। साहित्य की विविध शाखायें उपन्यास, नाटक, काव्य, निबन्ध, कहानी आदि अधिक सम्पन्न हो गई। छापेखाने के प्रवेश के कारण साहित्य की वृद्धि में बहुत अधिक सहायता मिली। हिन्दी, बंगला, उर्दू आदि में नये ढंग के साहित्य का निर्माण शुरू हुआ जिसने नव जागरण में बहुत सहायता पहुंचाई। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के कारण नवीन शैली के काव्य, नाटक व उपन्यास लिखे जाने लगे। बंगाली भाषा में ऐसे मौलिक उपन्यास लिखे गये जो विश्व-साहित्य में बहुत ऊंचा स्थान रखते थे। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के "आनन्द मठ" ने देशभक्ति और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना को विकसित करने में बहुत सहायता की। मधुसूदन दत्त ने बंगाली में ऐसे काव्य की सृष्टि की जिसे आज भी अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता है। बंगाली साहित्यिक प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट रूप रवीन्द्रनाथ टैगोर के रूप में प्रकट हुआ जिनकी ख्याति न केवल भारत में अपितु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी सर्वत्र फैल गई। बंगाली भाषा के समान हिन्दी साहित्य का भी बहुत विकास हुआ। भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तकें तैयार की गईं। हिन्दी और उर्दू में नये साहित्य का निर्माण होने लगा जिनमें देशभक्ति की भावना उत्कृष्ट रूप से विद्यमान थी। हमारे देशीय भाषाओं के साहित्य में लचीलापन, वैभिन्य, प्राकृतिक धारावाहिक प्रभाव, मधुरता और आधुनिकता उत्पन्न हो गई। भाषाओं के कोष अधिक विस्तृत हो गए। हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों की अधिक पूर्ति हुई और साहित्य पुष्ट और प्रौढ़ हो चला। मराठी साहित्य भी प्रगति के चरण नापने लगा तामिल, तेलगू आदि भाषाओं में भी नये साहित्य की रचना हुई।

भारत के नवजागरण के परिणामस्वरूप साहित्य के उत्कर्ष की जो प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई वह अब तक पूर्ण वेग से जारी है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य सम्पर्क और भारत के प्राचीन आध्यात्मिक मूल्यों के फलस्वरूप भारतीय नवजागरण ने हमारे देश को प्रगति की निश्चित दिशायें प्रदान कीं।

अंग्रेजों के समय की भारत की सामाजिक व्यवस्था, तथा उस समय उनके किये गये सुधारों पर एक निबन्ध लिखिये।

3. How far the economic life of our country changed under the British Rule ?

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत हमारे देश के आर्थिक जीवन में कहाँ तक परिवर्तन हुए ?

4. Write an essay on "The Impact of the West on our cultural life "

"हमारे सांस्कृतिक जीवन पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव" पर एक निबन्ध लिखिये।

5. Write an essay on "Indian Renaissance "

भारत में "पुनर्जागरण" पर एक निबन्ध लिखिये।

6. Write an essay on "Religious and social reawakening in India."

"भारत में धार्मिक तथा सामाजिक जागृति पर एक निबन्ध लिखिये।

7. What do you understand by the term Indian Renaissance ? How did these religious movements effect the Indian Society ?

भारतीय धार्मिक पुनरुत्थान से तुम क्या समझते हो ? इन धार्मिक आन्दोलनों का भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ? समझा कर लिखो।

8. Write an essay on the chief social reforms propounded by Brahma Samaj and Arya Samaj.

सामाजिक

(f) ब्रिटिश शासन में लोकतन्त्रीय संस्थाओं का विकास
(g) राजा राममोहन राय
(h) स्वामी विवेकानन्द
(i) स्वामी दयानन्द सरस्वती
(j) रामकृष्ण मिशन
(k) प्रार्थना समाज
(l) कांग्रेस की स्थापना

(OBJECTVE TYPE QUESTIONS)

(नई शैली के प्रश्न)

१. निम्नलिखित आन्दोलनों अथवा संस्थाओं के प्रणेताओं के नाम लिखिये—
आर्य समाज, ब्रह्म समाज रामकृष्ण मिशन, थियोसोफीकल सोसाइटी, प्रार्थना समाज, भारत सेवक संघ, समाज सेवा संघ, सेवा समिति।

२. सही समूह बनाइये—

(क)

(i) स्वामी दयानन्द	वेदान्त
(ii) राजा राममोहन राय	प्रार्थना समाज
(iii) स्वामी विवेकानन्द	केशवचन्द्र सैन
(iv) महादेव गोविंद रानाडे	हिन्दी भाषा
(v) श्रीमती एनीबीसेंट	स्वामी विवेकानन्द
(vi) सत्यार्थ प्रकाश	ब्रह्म समाज
(vii) शिकागो सम्मेलन	स्वामी दयानन्द
(viii) ब्रह्म समाज	थियोसोफीकल सोसाइटी

)

(i) ब्रह्म समाज	१८७५
(ii) आर्य समाज	१८६७
(iii) शिकागो सम्मेलन	१८७५
(iv) थियोसोफीकल सोसाइटी	१८२८
(v) प्रार्थना समाज	१८९३

अथवा राज्य ऐसा नहीं है जिसमें केवल एक धर्म या सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं। इन विभिन्न धर्मों और जातियों के कारण तथा भाषायी प्रश्नों के कारण भारत का राजनीतिक जीवन पहले भी क्षुब्ध रहा है और आज भी क्षुब्ध है। साम्प्रदायिक अशान्ति भड़कती रहती है तथा प्रमुख धार्मिक समूह सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक लाभों की पूर्ति के लिए राजनीतिक सौदेबाजी करते हैं। हिन्दू-मुस्लिम तनाव विश्व प्रसिद्ध है जिसके कारण भारत को विभाजन का दुर्दिन देखना पड़ा और जो आज भी भारत के अस्तित्व के लिये निरन्तर एक गम्भीर खतरा बना हुआ है।

राष्ट्रीय एकता लाने के विभिन्न प्रयत्न—उपरोक्त विभिन्नताओं और विविधताओं के मध्य एकता और सहयोग का सूत्रपात करने तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने के विभिन्न प्रयास अतीत में होते रहे हैं। मध्यकालीन समन्वयात्मक प्रयासों के बारे में हम पढ़ चुके हैं और देख चुके हैं कि किस प्रकार विदेशी विजेताओं ने भारत में बस कर यहां की सामान्य संस्कृति के सागर में घुल-मिल जाने की नीति अपनाई। इतिहास के पृष्ठों में देश की एकता के विषय में हमें सूफियों और हिन्दू भक्तों तथा महात्माओं के प्रयासों का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण धर्माचार्यों ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक वैदिक संस्कृति का प्रचार करके देश को एकता प्रदान करने के प्रयास किये, भक्ति आन्दोलन और सूफी सम्प्रदाय ने राम-रहीम और मन्दिर-मस्जिद के भेदों को कम किया तथा विभिन्न धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों ने भी देश को एकता प्रदान करने के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन सभी प्रयासों पर

[illegible]

अथवा राज्य ऐसा नहीं है जिसमें केवल एक धर्म या सम्प्रदाय के लोग निवास करते हैं। इन विभिन्न धर्मों और जातियों के कारण तथा भाषायी प्रश्नो के कारण भारत का राजनीतिक जीवन पहले भी क्षुब्ध रहा है और आज भी क्षुब्ध है। साम्प्रदायिक अशान्ति भड़कती रहती है तथा प्रमुख धार्मिक समूह सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक लाभों की पूर्ति के लिए राजनीतिक सौदेबाजी करते हैं। हिन्दू-मुस्लिम तनाव विश्व प्रसिद्ध है जिसके कारण भारत को विभाजन का दुर्दिन देखना पड़ा और जो आज भी भारत के अस्तित्व के लिये निरन्तर एक गम्भीर खतरा बना हुआ है।

राष्ट्रीय एकता लाने के विभिन्न प्रयत्न—उपरोक्त विभिन्नताओं और विविधताओं के मध्य एकता और सहयोग का सूत्रपात करने तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने के विभिन्न प्रयास अतीत में होते रहे हैं। मध्यकालीन समन्वयात्मक प्रयासों के बारे में हम पढ़ चुके हैं और देख चुके हैं कि किस प्रकार विदेशी विजेताओं ने भारत में बस कर यहां की सामान्य संस्कृति के सागर में घुल-मिल जाने की नीति अपनाई। इतिहास के पृष्ठों में देश की एकता के विषय में हमें सूफियों और हिन्दू भक्तों तथा महात्माओं के प्रयासों का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण धर्माचार्यों ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक वैदिक संस्कृति का प्रचार करके देश को एकता प्रदान करने के प्रयास किये, भक्ति आन्दोलन और सूफी सम्प्रदाय ने राम-रहीम और मन्दिर-मस्जिद के भेदों को कम किया तथा विभिन्न धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों ने भी देश को एकता प्रदान करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन सभी प्रयासो पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में प्रकाश डाला जा चुका है।

पाश्चात्य सम्पर्क ने देश में एकता की भावना के साथ-साथ "एक राष्ट्र, एक भाषा" की विचारधारा को प्रोत्साहित किया। अंग्रेजी शिक्षा ने समानता, स्वतन्त्रता और मातृ-भावना को सम्बल प्रदान करके एकता के क्षेत्र को आगे बढ़ाया। शनैः शनैः, लोकतन्त्र, समाजवाद एवं धर्म-निरपेक्षता जैसी विचारधाराओं ने राष्ट्र को एकता की तरफ और भी अधिक अग्रसर किया।

किन्तु भारत राष्ट्र और भारतीय जनता के एकीकरण में उपरोक्त सब प्रयासों से अधिक और स्थायी योगदान स्वातन्त्र्य आंदोलन का रहा। स्वातन्त्र्य आन्दोलन ने भारतीय राजनीतिक और सामाजिक जीवन को एक नया मोड़ देकर एकीकरण के तत्वों को मजबूत आधार प्रदान किया। अग्रिम पंक्तियों में यही बताने का प्रयास करेंगे कि राष्ट्र और भारतीय जनता के एकीकरण में स्वातन्त्र्य आंदोलन का क्या और किस प्रकार का योगदान रहा।

१८५७ के स्वातन्त्र्य आंदोलन का राष्ट्रीय एकता में योगदान—भारत में स्वातन्त्र्य आंदोलन का प्रथम मूर्तरूप सन् १८५७ की क्रान्ति में, जिसे कि अंग्रेजो ने 'विद्रोह' की संज्ञा दी थी, देखने को मिला। इस क्रान्ति ने भारतीयों के हृदयों में एकता और सहयोग की लहर जागृत की। प्रारम्भ में यह क्रांति असंतुष्ट सिपाहियों का विद्रोह मात्र था, किन्तु कालान्तर में इसने एक सर्वतोमुखी व्यापक क्रांति का रूप धारण कर लिया। अंग्रेजों के उद्धत आचरण, अमानवीय व्यवहार, अपव्यय, अनुत्तर-

वादी नीतियों, धार्मिक व प्रशासनिक भ्रष्टाचार और आर्थिक अनाचार आदि ने जन साधारण के मन में एक होकर अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के विचारों को आधार प्रदान कर दी। फलस्वरूप एक दिन सभी भारतीय ऊँच-नीच और जाति-पाँति के बंधनों को भूल कर एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए कमर कस कर संघर्ष में कूद पड़े। तांतिया टोपे, नाना फड़नवीस, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि कर्मवीरों ने देशवासियों को पारस्परिक भेदभाव भूल कर स्वातन्त्र्य संघर्ष करने का आह्वान किया। अखिल भारतीय स्तर पर कमल तथा रोटी के रूप में प्रतीकों का चुनाव हुआ। देश के कोने-कोने में अग्नि की तरह तेजी से फैल जाने वाली विद्रोह की लहरों ने यह सिद्ध कर दिया कि इस क्रांति में सभी भारतीय एक हैं। यद्यपि १८५७ की यह क्रांति निर्दयतापूर्वक दबा दी गयी, किन्तु भारतीयों की इस ऐक्य भावना की उठती हुई लहरों ने ब्रिटिश शासन को चौंका दिया। फलतः देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर दिया गया और ब्रिटिश सरकार ने शासन प्रबन्ध पूर्णरूप से अपने हाथ में ले लिया। इसके अतिरिक्त १ नवम्बर १८५८ को महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र भारतीय जनता को सुनाया गया "और यह घोषणा-पत्र सदयता, उदारता तथा धार्मिक सहिष्णुता की भावना से परिपूर्ण था।" इसमें देशी नरेशों को यह विश्वास दिलाया गया कि उनके स्वत्वों और अधिकारों की रक्षा की जावेगी। साथ ही भारत स्थित अधिकारियों को यह आदेश दिया गया कि वे जनता के धार्मिक मामलों में रंचमात्र भी हस्तक्षेप न करें तथा भारत के लिए विधि-निर्माण करते समय देश के रीति-रिवाजों परम्पराओं और लोकाचारों का ध्यान रखें। घोषणा-पत्र ने समस्त भारतीयों का बिना किसी भेदभाव और पक्षपात के योग्यतानुसार शासन के उच्च पद देने और समान अधिकार व अवसर प्रदान करने का वचन दिया। स्पष्ट है कि स्वातंत्र्य आंदोलन के प्रथम मूर्तरूप १८५७ की क्रांति ने सम्पूर्ण देश में एकता और सहयोग के साथ 'करने या मरने' का जो मन्त्र फूंका उसके दूरगामी परिणाम हुए। विचारकों ने इस क्रांति को 'स्वतन्त्रता का पहला संग्राम' कहकर कोई गलती नहीं की।

१८५७ की असफल क्रांति के बाद भारतीयों के हृदय में जगी राष्ट्रीयता की अग्नि बुझी नहीं प्रत्युत शनैः शनैः दृढ़तापूर्वक जलती रही। स्वदेश प्रेम की भावनायें बढ़ती गईं और भारत का जन-मानस एक-दूसरे के निकट आता गया। भारत में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय एकता के इस जागरण ने अन्त में १८८५ में राष्ट्रीय महासभा (Congress) की स्थापना के रूप में मूर्त आकार धारण कर लिया। कांग्रेस शीघ्र ही देशभक्ति का आकर्षण केन्द्र और राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संघर्ष की अग्रणी बन गई। अतः इसके पूर्व कि हम स्वातन्त्र्य आंदोलन को एकीकरण के दृष्टिकोण से प्रस्तुत करें, यह उचित होगा कि पहले कांग्रेस अथवा १८८५ से १९४७ तक के स्वातन्त्र्य आंदोलन के इतिहास को संक्षेप में जान लें।

स्वतन्त्रता आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहासः—सन् १८८५ की स्थापना से लेकर १९४७ तक के स्वातन्त्र्य आन्दोलन को सुविधा की दृष्टि से हम तीन टुकड़ों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) सुधारों का युग (१८८२–१९०५)
(२) स्वशासन की माग का युग (१९०६–१९१९)
(३) गांधी युग (१९२०–१९४७)

(१) सुधारों का युग (१८८५-१९०५)—कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन दिसम्बर १८८३ में बम्बई में हुआ जिसमें यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस का एक अधिवेशन प्रत्येक वर्ष बारी बारी से भारत के किसी नगर में हुआ करे। १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस केवल मुट्ठी भर भारतीय विद्वानों और सम्पन्न लोगों की संस्था रही। इस युग के कांग्रेसी नेताओं में दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, महादेव गोविन्द रानाडे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन लोगों की तत्कालीन मांगें बड़ी साधारण-सी थी, उदाहरणार्थ—व्यवस्थापिका सभाओं का विस्तार हो और उनमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाई जाए, केन्द्रीय तथा प्रान्तीय परिषदों में अधिक भारतीय लिए जाएँ, न्यायपालिका को कार्यकारिणी से स्वतन्त्र किया जाए, भारत मन्त्री परिषद में भारतीयों को स्थान मिले, भारतीयों को सैनिक सेवाओं तथा सिविल सर्विस में अधिक से अधिक नौकरियाँ दी जाएँ आदि। राजनीतिक सुधारों की मांग के अतिरिक्त कांग्रेस ने जनता की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर भी विभिन्न सुझाव समय समय पर रखे।

कांग्रेस के प्रयत्नस्वरूप केवल सन् १८९२ के अधिनियम द्वारा ब्रिटिश शासन ने कुछ सुधार भारतीय कौंसिलों में किये। जो भी हो यह अवश्य हुआ कि कांग्रेस के कार्यक्रम ने लोगों में राष्ट्रीय भावना को सम्बल दिया।

सन् १८९२ के बाद अंग्रेजों का दमनचक्र तेजी से चला और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में तिलक, लाजपतराय, विपिन चन्द्र पाल आदि नेताओं ने उग्र और नवीन विचारधारा का संचार किया। ब्रिटिश सरकार ने जनता के बढ़ते हुए कष्टों के प्रति पूर्ण उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया। जनता में असंतोष बढ़ने लगा और पूना के प्लेग कमिश्नर रैण्ड तथा एक अन्य अंग्रेज को गोली मार दी गई। सन् १८९८ के कानून में राजद्रोह की जो परिभाषा दी गई थी, १९०४ के एक कानून से उसे अधिक विस्तृत कर दिया गया। १८९८ से १९०० तक के लार्ड कर्जन के शासनकाल में अनेक दमनकारी कानून बने। कर्जन के इस कथन ने कि शासन के उत्तरदायित्वों के लिए भारतीय सर्वथा अनुपयुक्त हैं, देश में असन्तोष का तूफान खड़ा कर दिया। सन् १९०५ में लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके अपनी सबसे बड़ी मूर्खता का परिचय दिया। बंगाल की जनता ने इस विभाजन को "बंगाली राष्ट्रवाद की दृढ़ता के ऊपर एक सुक्ष्म आक्रमण" समझा। इस धूर्ततापूर्ण प्रशासकीय व्यवहार ने केवल बंगाल में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण देश में विरोध की प्रबल लहर फैला दी जिसका यह परिणाम हुआ कि अन्त में १९११ में बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया गया।

(२) स्वशासन की मांग का युग (१९०६-१९१९):——सरकार के बढ़ते [illegible] एवं [illegible] ने वाली असंतोषजनक घटनाओं का कांग्रेस पर

को सहायता की। सन् १९१४ में ही तिलक कारावास से मुक्त किये गये और श्रीमती एनीबेसेन्ट ने देश के राजनीतिक आन्दोलन में प्रवेश किया। इसके बाद भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन पुन: अंगड़ाई लेकर उठ बैठा। तिलक और एनीबेसेन्ट ने देश में "गृह शासन (Home Rule)" आन्दोलन का सूत्रपात किया। इनके प्रयासों के फलस्वरूप १९१६ में कांग्रेस के दोनों दलों में पुनः एकता स्थापित हो गई। परन्तु यह मिलाप चिर-स्थायी सिद्ध नहीं हुआ और दो ही वर्ष बाद नर्म दल वाले कांग्रेस से पृथक हो गए।

१९१६ के लखनऊ अधिवेशन में ही कांग्रेस और मुस्लिम लीग में भी मेल हुआ तथा दोनों ने मिलकर देश के लिये कांग्रेस-लीग-सुधार-योजना स्वीकार की। उन्होंने अपनी योजना को लोकप्रिय बनाने के लिये होम रूल लीग का उपयोग करने का निश्चय किया। होम रूल आन्दोलन जोर पकड़ता गया और स्वशासन की मांग जोरों से आरम्भ हुई। शीघ्र ही एनीबेसेन्ट और उनके घनिष्ठ सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया। फलस्वरूप देश-व्यापी आन्दोलन हुआ। उधर योरोपीय युद्ध की भी दशा बिगड़ने लगी; अतएव २० अगस्त १९१७ को अंग्रेजी सरकार ने भारत की शासन प्रणाली में भारतीयों को कुछ सत्ता देने के लिये 'मोन्टेग्यू-चैम्सफोर्ड' रिपोर्ट तैयार की, परन्तु कांग्रेस के गर्म दल ने इसे पसन्द नहीं किया। अन्त में इस रिपोर्ट के आधार पर ही सन १९१९ में एक सुधार अधिनियम पास हुआ जिसके अनुसार भारत में प्रान्तों में द्वैध शासन शुरू किया गया और केन्द्रीय धारा सभा के अधिकारों में भी वृद्धि हुई। गर्म दल वाले इस अधिनियम को स्वीकार करने के लिये बिल्कुल तैयार न थे जबकि नर्म दल वाले कुछ परिवर्तनों के साथ इन सुधारों को स्वीकार करने के लिये तैयार थे।

सरकार ने एक तरफ तो अपनी दिखावा सुधार नीति जारी रखी और दूसरी तरफ अपना दमन चक्र भी तेज करती गई। क्रान्तिकारी दल का काम इन दिनों भी चल रहा था। इस क्रान्तिकारी लहर को दबाने के लिये रोलेट एक्ट १९१९ में पास किया गया जिसके द्वारा सरकारी कर्मचारियों के हाथों में असाधारण दमनकारी शक्ति दे दी गई। ६ अप्रेल १९१९ को इस एक्ट के विरुद्ध देश-व्यापी हड़ताल हुई। १३ अप्रेल १९१९ को कांग्रेस जनरल डायर ने अमृतसर के जलियाँ वाले बाग में एक शान्ति सभा में लगभग २० हजार निहत्थे लोगों पर गोलियां चला दीं जिसमें हजारों लोग मारे गये और घायल हुए। अब चारों तरफ भयंकर असंतोष व्याप्त हो गया।

(३) गांधी युग (१९२० – १९४७) :—ऐसे समय महात्मा गांधी अपने सत्याग्रह के अस्त्र के साथ राजनीतिक मंच पर प्रकट हुए। १ अगस्त १९२० को लोकमान्य तिलक के स्वर्गवासी होने के बाद ही देश के राजनीतिक आन्दोलन का नेतृत्व गांधी जी के हाथ में आगया। गांधी युग में स्वातन्त्र्य आन्दोलन उत्थान पतन की सीढ़ियाँ गिनते हुए बड़े संघर्षमय दौर से गुजरा। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अहिंसापूर्ण असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। कलकत्ता के कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पास किया गया। नागपुर

अधिवेशन १९२० में कांग्रेस ने अपना ध्येय 'शान्तिमय तथा वैधानिक तरीकों से स्वराज्य की प्राप्ति' घोषित किया। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन ने सर्वत्र अभूतपूर्व उत्साह पैदा कर दिया। वास्तव में यह संघर्ष एक पहला महान था। इसी समय गांधीजी के प्रयासों से हिन्दू मुस्लिम एकता का योग आया। मुस्लिम राष्ट्र के प्रति ब्रिटिश नीति से असंतुष्ट भारतीय मुसलमानों ने सरकार के विरुद्ध खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ किया। अब देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के सहयोग से असहयोग और खिलाफत दोनों आंदोलन महात्मा गांधी तथा अली बन्धुओं के नेतृत्व में जोर से चलने लगे। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई, छात्रों ने स्कूल और कालेज छोड़ दिये तथा सैकड़ों वकीलों ने वकालत छोड़ दी। सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिये बड़ी सख्ती की। लगभग ३० हजार व्यक्ति बन्दी बना लिये गये परन्तु जनता का जोश बढ़ता ही गया। महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन को और भी अधिक वेग से चलाने तथा आज्ञा भंग आन्दोलन आरम्भ करने का विचार किया। परन्तु इसी मध्य जोश में आकर जनता ने दंगे और हिंसात्मक कार्य आरम्भ कर दिये, अतः १२ फरवरी १९२२ को अहिंसा के पुजारी गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन को अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया। इससे गांधीजी की लोकप्रियता को ठेस पहुँची। उधर स्थिति से लाभ उठाकर सरकार ने २३ मार्च १९२२ को गांधीजी को ६ वर्ष के लिये जेल भेज दिया और साथ ही खुलकर साम्प्रदायिक विष फैलाया। परिणाम स्वरूप इसी वर्ष हिन्दू महासभा का जन्म हुआ। मुस्लिम लीग की कमान जिन्ना ने अपने हाथ में सम्भाली और मुल्तान का भयंकर हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा हुआ।

सन् १९२२ में कांग्रेस में पुनः दो दल हो गए। कुछ लोग अब भी गांधीजी के पक्षपाती थे जबकि दूसरे लोग देश बन्धु चितरंजनदास तथा पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में कौंसिल में जाकर अड़ंगे की नीति से सरकारी कार्यों में बाधा डालना चाहते थे। इन लोगों ने एक अलग दल 'स्वराज्य पार्टी' का निर्माण किया जिसे प्रारम्भ में आंशिक सफलता मिली।

सन १९२२ से १९२७ तक का काल बड़ा ही अशान्ति का रहा। ८ नवम्बर १९२७ को भारतीय शासन विधान के क्रियात्मक रूप पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 'साइमन कमीशन' नियुक्त किया जिसके सातों के सातों सदस्य अंग्रेज थे। कमीशन के ३ फरवरी १९२८ को बम्बई पहुंचने पर देश-व्यापी हड़ताल द्वारा उसका अभिनन्दन किया गया। कमीशन का पूर्ण बहिष्कार हुआ और उसे काले झंडे दिखाये गये। सरकार ने प्रदर्शनकारियों पर लाठियां बरसाईं और घोड़े दौड़-

अधिवेशन में "नेहरू रिपोर्ट १९२८" को स्वीकार करके दिया जिसमें "औपनिवेशिक स्वराज्य" भारत का लक्ष्य स्वीकृत हुआ। परन्तु सरकार ऐसी कोई रिपोर्ट मानने को तैयार न थी।

चूंकि सरकार ने सर्व दल कमेटी की योजना "नेहरू रिपोर्ट" को स्वीकार नहीं किया, अत १९२९ में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया गया। २६ जनवरी १९३० को सारे भारत में "स्वतन्त्रता दिवस" (Independence Day) मनाया गया जो उस समय से आज तक प्रत्येक वर्ष बड़े समारोह से मनाया जाता है।

लाहौर अधिवेशन में अहिंसात्मक तरीकों द्वारा साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करने तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा ली गई और इस आन्दोलन का नेतृत्व भी पुन. गांधीजी को सौंपा गया। गांधीजी ने सरकार के समक्ष कुछ न्यायोचित मांगें रखीं और कहा कि यदि सरकार इन्हें मान ले तो आन्दोलन स्थगित किया जा सकता है। किन्तु सरकार ने गांधीजी की मांगों को ठुकरा दिया। परिणामस्वरूप ६ अप्रैल १९३० को गांधीजी ने सारे देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Civil disobedience movement) का श्रीगणेश कर दिया। यह स्वतन्त्रता संघर्ष का दूसरा पग था। इस आन्दोलन का तेजी से प्रसार हुआ। स्थान-स्थान पर नमक कानून तोड़ा गया और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। गांधीजी और अनेक नेता गिरफ्तार कर लिये गये तथा १९३१ तक लगभग ९० हजार स्त्री-पुरुषों को जेलों में ठूंस दिया गया।

जब आन्दोलन नहीं कुचला जा सका तो ब्रिटिश शासन ने इंग्लैंड में ब्रिटिश द्वारा भारतीय राजनीतिज्ञों की एक गोलमेज सभा आयोजित करने की घोषणा की जिसमें भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के उद्देश्य से भारत के लिये एक नया शासन विधान बनाने की बात कही गई। इंग्लैंड में प्रथम गोलमेज सभा हुई थी, लेकिन कांग्रेस ने उसमें भाग नहीं लिया। सरकार कांग्रेस से सुलह का प्रयास करती रही। अत में २६ जनवरी १९३१ को गांधीजी रिहा किये गये और ४ मार्च १९३१ को गांधी-इर्विन समझौता सम्पन्न हुआ जिसके फलस्वरूप सत्याग्रही जेलों से मुक्त कर दिये गये तथा भारत की राजनीतिक समस्या को गोलमेज परिषद द्वारा हल करना स्वीकार किया गया। इस समझौते के बाद द्वितीय और तृतीय गोलमेज सभायें इंग्लैंड में हुई, किन्तु इन सभाओं से कोई लाभ नहीं हुआ।

महात्मा गांधी ने भारत लौटकर पुन आज्ञा भंग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। गांधीजी व अन्य नेताओं के अतिरिक्त करीब सवा लाख व्यक्ति सरकार द्वारा कैद कर लिये गये। यह आन्दोलन लगभग दो ढाई वर्ष तक चलता रहा। इसी मध्य अगस्त १९३२ में ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मैक्डोनेल्ड ने एक निर्णय दिया जिसे साम्प्रदायिक पचाट कहते हैं। इसके कारण साम्प्रदायिकता को और भी बढ़ावा मिला। पचाट ने हरिजनों को पृथक चुनाव क्षेत्र देकर, उन्हें हिन्दुओं से पृथक करने का प्रयत्न किया। भारतीय राष्ट्रवाद के बल को निर्बल करने के लिये,

साम्प्रदायिक और वर्गीय मतभेदों से उत्तेजित ब्रिटिश नीति ब्रिटिश राजनीतिक परम्परा के अनुकूल ही थी। महात्मा गांधी ब्रिटिश शासन की इस कुचेष्टा को सहन नहीं कर सके। उन्होंने आमरण अनशन किया और अन्त में सरकार को साम्प्रदायिक पंचाट में ऐसा संशोधन करने के लिए बाध्य होना पड़ा जिससे गांधीजी सहमत थे। इस संशोधन के अनुसार हरिजनों को साम्प्रदायिक पंचाट द्वारा दिये गये स्थानों से भी अधिक स्थान दिये गये, लेकिन इन स्थानों के लिये निर्वाचन दो तरीकों से होना निश्चय हुआ, अर्थात् प्रारम्भिक निर्वाचन को अछूत पृथक निर्वाचक मंडल के आधार पर प्रत्येक स्थान के लिये ४ प्रत्याशी चुने, किन्तु अन्तिम निर्वाचन में सवर्ण हिन्दू और हरिजन सम्मिलित रूप से मतदान दें। इसके अलावा उन सारे स्थानों के लिये जो हरिजनों के लिये सुरक्षित नहीं रखे गये थे, हरिजनों को निर्वाचन में एक अतिरिक्त मत देना होगा।

सन् १९३४ में गांधीजी रिहा हुए। सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। उनके सेनापतित्व के कारण पुनः आक्षेप हुए। अतः गांधीजी ने कांग्रेस से विमुख होकर अपना सम्बन्ध हरिजन उद्धार में लगाना शुरू कर दिया तथा कुछ समय के लिये कांग्रेस का नेतृत्व पंडित नेहरू के हाथ में चला गया।

सन् १९३५ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारत के लिये एक नया शासन विधान स्वीकृत किया जिसके द्वारा प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गई। कांग्रेस ने चुनावों में बहुमत प्राप्त कर अनेक प्रान्तों में अपने मंत्रिमण्डल बनाये जो उपयोगी कार्य न कर सके क्योंकि शासन विधान द्वारा सम्पूर्ण वास्तविक शक्ति केन्द्रीय सरकार में निहित थी और गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल को असीमित मनचाही शक्ति दी

। १९३९ में जब द्वितीय महायुद्ध छिड़ा तो भारत सरकार द्वारा मित्र राष्ट्रों
ओर से युद्ध घोषणा करने पर कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने अपना त्याग पत्र दे

द्वितीय महायुद्ध को भारत के देश भक्तों ने देश की स्वतन्त्रता के लिये
र व व्यावहारिक समझा। कांग्रेस ने अंग्रेजों से सहयोग नहीं किया। ब्रिटिश
र दी तब पुनः सक्रिय हो गये और उन्होंने सशस्त्र क्रान्ति का यत्न प्रारम्भ
या। १९४२ में सर स्टैफोर्ड क्रिप्स अपनी योजना के साथ भारत आया और
। होकर यहां से भाग गया। तत्पश्चात् ९ अगस्त १९४२ को महात्मा गांधी
द "अंग्रेजो भारत छोड़ो" आन्दोलन छेड़ा। यह स्वतन्त्रता संघर्ष का तीसरा
न्तिम महान चरण था। सरकार का अमानवीय एवं बर्बर दमनचक्र चला।
। गिरफ्तार कर लिये गये और जनता पर अमानुषिक अत्याचार किये गये।
भारतवासी जेल के मेहमान बने। किन्तु गांधीजी के "करो या मरो" के
जन-आन्दोलन की चिनगारी बुझ नहीं सकी। १९४४ में गांधीजी जेल से
। इसी समय मुस्लिम लीग ने जिन्ना के नेतृत्व में "पाकिस्तान" का नारा
जून १९४५ में शिमला में राजनीतिक समस्या के हल के लिए एक सभा
परिणाम नहीं निकला। मार्च १९४६ में भारत में कैबिनेट मिशन आया
का पता प्रदान किया कि भारत के दो प्रमुख राजनीतिक दलों में

भारत की अखण्डता और विभाजन के आधारभूत प्रश्नों पर कोई समझौता हो जाए। लेकिन कैबिनेट मिशन को इस प्रयास में असफलता मिली जिसका मुख्य कारण मुस्लिम लीग की जिद थी। अपने प्रयास में असफल होने पर भी कैबिनेट मिशन ने अपनी ओर से ६ मई १९४६ को एक निर्णय दे दिया जिसकी मुख्य बातें ये थीं—

(क) भारत को एक संघ बनाया जाए। संघ सरकार के हाथों में रक्षा, विदेश नीति, यातायात और संचार के विषय रहें।

(ख) शासन के अन्य सब विषय प्रान्तीय सरकार और रियासतों की सरकार के हाथों में रहें।

(ग) प्रान्तों को उपसंघ बनाने का अधिकार हो। इस उपसंघ में कार्यकारिणी और व्यवस्थापिकाएं भी हों।

(घ) एक संविधान सभा का संगठन किया जाए जिसे भारत के सब राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। यह नये भारत का स्थायी संविधान तैयार करे।

(ङ) भारतीय राष्ट्र तथा प्रान्त समूहों के विधान में ऐसी धारा रहे जिसके द्वारा किसी भी प्रान्त को अपनी धारा सभा के बहुमत से कम से कम १० साल बाद विधान में संशोधन करने के लिये प्रस्ताव रखने का अधिकार हो।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ही ने अन्ततः इस योजना को स्वीकार कर लिया। संविधान सभा के चुनावों से स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस ही भारत की एक सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था है। कांग्रेस ने चुनाव में भारी विजय प्राप्त कर अन्तरिम सरकार की स्थापना की। लीगी सदस्यों ने अड़ंगे की नीति अपनाई। बाद में लीग भी अन्तरिम सरकार में सम्मिलित हो गई। परन्तु शीघ्र ही जिन्ना की शर्तों में पाकिस्तान की मांग को लेकर भीषण साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गए। कांग्रेस और लीग के बढ़ते हुए विरोध को तथा विकट साम्प्रदायिक स्थिति को देखकर २० फरवरी १९४७ को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री श्री एटली ने घोषणा की कि जून १९४८ तक भारत को पूर्ण स्वाधीन कर दिया जाएगा। इसी समय लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउन्टबेटन को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया और उन्हें भारत की समस्या को हल करने का पूर्ण अधिकार दिया गया। लार्ड वेवल ... ही इस नतीजे पर पहुंचे कि भारत का विभाजन अत्यन्त शीघ्र और एकदम ...यं है। ३ जून १९४७ को उन्होंने एक योजना प्रस्तुत की जिसमें भारत का ... पाकिस्तान का जन्म हुआ तथा आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान ... जुलाई १९४७ में ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतन्त्रता कानून पास ... १५ अगस्त १९४७ को भारत तथा पाकिस्तान नाम के दो स्वतन्त्र ...। इस प्रकार १८८५ से चलने वाले स्वातन्त्र्य आन्दोलन की भारत-... साथ परिणति हुई।

... आन्दोलन और उसकी देश के एकीकरण में भूमिका (Freedom ... and its role in unifying the Country)—राष्ट्रीय अथवा ... आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य

यद्यपि राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति करना था, किन्तु इसका प्रभाव सर्वव्यापी रहा और इसने राष्ट्र के आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन को एक नवीन क्रांति देकर एकता तथा सहयोग के मार्ग पर ला खड़ा किया। राष्ट्र और भारतीय जनता के एकीकरण में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के इस योगदान को हम निम्न-लिखित विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकट करेंगे।

(क) **राजनीतिक मंच और एकता**—देश में प्रशासकीय एकता लाने का श्रेय यद्यपि ब्रिटिश शासन को था, किन्तु राष्ट्र को राजनीतिक एकता प्रदान करने का श्रेय प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से स्वातन्त्र्य आन्दोलन को ही है। कांग्रेस ने अपने जन्म के कुछ ही वर्षों के भीतर एक अखिल भारतीय संगठन का रूप धारण कर लिया। दूसरी गोलमेज परिषद् के अवसर पर कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप पर बल देते हुए महात्मा गाधी ने यह सत्य ही कहा था कि "सच्चे अर्थों में कांग्रेस राष्ट्रीय है। यह किसी विशेष जाति, वर्ग अथवा हित की प्रतिनिधि नहीं है। यह समस्त भारतीय हितों और वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे अधिक प्रसन्नता की बात है कि उसकी उपज प्रारम्भ में एक अंग्रेज के मस्तिष्क में हुई। एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम को कांग्रेस के पिता के रूप में हम जानते हैं। दो महान् पारसियों–फिरोजशाह मेहता और दादा भाई नौरोजी–ने जिन्हें सारा भारत "वृद्ध पितामह" कहने में हर्ष अनुभव करता है, इसका पोषण किया। प्रारम्भ में हैं कांग्रेस में मुसलमान, ईसाई, ऐंग्लोइण्डियन आदि शामिल थे, बल्कि मुझे यो कहना चाहिये कि इसमें सब धर्मों, सम्प्रदायों और हितों का पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व था।" कांग्रेस के नेतृत्व में ही भारतवासियों ने पहली बार अखण्ड और स्वतन्त्र भारत की कल्पना की। वास्तव में कांग्रेस का इतिहास ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास के नाम से जाना गया।

स्वातन्त्र्य आन्दोलन की प्रतिमूर्ति कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में कांग्रेस का एक प्रमुख उद्देश्य यह बतलाया कि "साम्राज्य के भिन्न–भिन्न भागों में देशहित के लिये लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्टता और मित्रता बढ़ाना" तथा "समस्त देश प्रेमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री व्यवहार द्वारा वंश, धर्म और प्रांत–सम्बन्धी पूर्वाग्रहित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की भावनाओं का पोषण एवं परिवर्धन करना" इस संस्था का लक्ष्य है।

कांग्रेस आदर्शों का प्रसार तेजी से भारत के कोने–कोने में हुआ और [illegible] भी देश के स्वातन्त्र्य आंदोलन में आ कूदी। इस तरह [illegible] का एक बड़ा भाग जो अब तक पृथक्-सा था स्वातन्त्र्य आन्दोलन में [illegible] कर लिया गया। कांग्रेस अधिवेशनों ने देश को राजनीतिक दृष्टिकोण से [illegible] के अंकुर के प्रस्फुटन में योग दिया। इन अधिवेशनों ने शासन में [illegible] की सामाजिक व आर्थिक दशा में सुधार किये जाने पर [illegible] आन्दोलन के अन्तर्गत देश के बढ़ते हुए [illegible] कर दिया। परिणामस्वरूप कांग्रेस के कार्यों की [illegible] का दमन चक्र तेजी बना। लेकिन स्वातन्त्र्य

आन्दोलन के नेता देश में राष्ट्रीय चेतना और एकता का मन्त्र फूंकते रहे। परिणाम यह निकला कि ज्यों-ज्यों शासन का दमन चक्र बढ़ता गया त्यों-त्यों राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होता गया और "एक सबके लिये तथा सब एक के लिए" की भावना का संचार हुआ।

(ख) स्वातन्त्र्य आन्दोलन के विभिन्न नेताओं द्वारा एकीकरण के प्रयास—स्वातन्त्र्य आन्दोलन के सभी नेता सम्पूर्ण नेता देश में एकता और राष्ट्रीयता का संचार करने के लिये तथा भारतीय जनता एक स्वर होकर स्वातन्त्र्य संग्राम में आबद्ध करने के लिये जी-जान से जुट गई। दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया। भारत की आर्थिक समस्याओं का सीधा विश्लेषण करके ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों में असंतोष को बढ़ावा दिया और १९०५ के बंग विभाजन के विरोध में आन्दोलन कर राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को आगे बढ़ाया।

गोपालकृष्ण गोखले ने 'Servants of India Society' की स्थापना करके राष्ट्रीय एकता की दिशा में अनूठा उदाहरण उपस्थित किया। इस भारत सेवक समिति का उद्देश्य "ऐसे सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को शिक्षित करना था जो अत्यल्प पारिश्रमिक पर मातृभूमि की सेवार्थ, कठोर अनुशासन के पालनार्थ साम्राज्य के प्रति राजभक्ति के लिए वचनबद्ध थे।' समिति के विधान की प्रस्तावना में गोखले ने लिखा था, "अब हमारे देशवासियों को काफी संख्या में आगे आ जाना चाहिए और देश हित के कार्य में स्वयं को उसी भावना से समर्पित कर देना चाहिये जिस भावना से धार्मिक कृत्य किया जाता है। सार्वजनिक जीवन को आध्यात्मिकतामय होना चाहिये। देश प्रेम हृदय को इस प्रकार आप्लावित कर दे कि उसके सामने अन्य सभी वस्तुएं हेय मालूम पड़ने लगें। स्पष्ट है कि गोखले ने जनता को एक होने का आह्वान किया था। गोखले, जो स्पष्टवादी संयत भाषा में बोलते थे, अपने तर्कों द्वारा जनता को आसानी से आकर्षित कर लेते थे। जब कर्जन ने शासनकाल में कुशलता बढ़ाने के बहाने राष्ट्रीय एकता और प्रगति में रोड़े अटकाना शुरू किया तो गोखले का देश प्रेम से ओत-प्रोत हृदय विद्रोही हो गया। परिणामस्वरूप उनके भाषणों में बड़ी उग्र और लचीली भाषा का प्रयोग बढ़ने लगा और एक नये उग्रवाद का जन्म हुआ।

लोकमान्य तिलक का जीवन भारतीय नवयुवकों के लिए एकता और राष्ट्रीयता का उग्रवादी दृष्टिकोण लेकर उपस्थित हुआ। "स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा बुलन्द हुआ और भारतीय जनमानस में एक जुट होकर भारत की आजादी के लिये अपने देश और समाज के लिये 'कुछ कर गुजरने या मर मिटने' की भावना हिलोरें मारने लगी। तिलक ने अपने 'केशरी' और 'मराठा' समाचार पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना फैलाने में अभूतपूर्व कार्य किया। उन्होंने महाराष्ट्र के नवयुवकों में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और बलिदान की भावना जाग्रत करने के लिए गोवध निरोध समितियों, अखाड़ों और लाठी-क्लबों की स्थापना की। उन्होंने गणपति और शिवाजी उत्सवों को प्रारम्भ किया। इसमें उनका

उद्देश्य लोगों में मिलजुल कर कार्य करने की प्रेरणा को जागृत करना, शौर्य में शिवाजी के आदर्शों को सामने रखते हुए अंग्रेजों से मोर्चा लेना और देश को आजाद करना था। तिलक ने अपने प्रचण्ड व्यक्तित्व से राष्ट्रीय आन्दोलन को नूतन गति और नूतन दिशा दी। वे अपने साथ मध्यम वर्ग को राष्ट्रीय आन्दोलन में खींच लाये और इस तरह उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया। महात्मा गांधी ने तिलक के ही काम को आगे बढ़ाया और राष्ट्रीय आन्दोलन को न केवल जन-आन्दोलन बल्कि क्रांतिकारी आन्दोलन भी बना दिया।

विपिनचन्द्रपाल ने निष्क्रिय विरोध विचारधारा को जन्म दिया और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों का बहिष्कार आदि कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देकर क्रान्तिकारी दलों को प्रेरणा दी और भारतीय नवयुवकों में एकीकरण की भावना को जागृत किया।

लाला लाजपतराय ने स्वातन्त्र्य आन्दोलन को अद्भुत गति दी और भारतीयों में संयुक्त होकर स्वराज्य प्राप्ति के लिए मर मिटने की अद्भुत जागृति पैदा कर दी। राष्ट्र और जनता की एकता में उनका इतना प्रबल विश्वास था कि ब्रिटिश शासन की लाठियां खाने पर उन्होंने लिखा, "मुझ पर किया गया लाठी का एक-एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन में कील बन कर रहेगा।" उनके बलिदान ने जनसाधारण को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कमर कस कर प्रतिबद्ध कर दिया। सभी प्रान्त प्रतिशोध के लिए तैयार हो गये और देश एक बार फिर एकता की आवाजों से गूंज उठा।

महात्मा गांधी ने तो जनता में एकता, सहयोग और राष्ट्रीयता के प्राण ही फूंक दिये। उनके असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह आन्दोलन, सविनय अवज्ञा भंग आन्दोलन आदि ने देश की एकता को सुदृढ़ बनाया और जन-जागृति की। हरिजनों को शेष समाज से पृथक न होने देने के उनके घोर प्रयासों ने देश में एकता के नये बीज बोये। गांधीजी ने देश की बिखरी हुई जनशक्ति और बिखरे हुए नेताओं की कार्य शक्ति को किस प्रकार संयुक्त कर दिया यह सर्व विदित है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन का संदेश देश के एक-एक कोने में एक-एक किसान और एक-एक मजदूर के कानों में पहुँच गया।

भगतसिंह, गणेशशंकर विद्यार्थी, चन्द्रशेखर आजाद आदि अनेक देश भक्तों के बलिदान अमूल्य रहे। उन्होंने राष्ट्रीय एकता को जगाने में बहुमूल्य योग दिया। उनकी प्रेरणा से साम्प्रदायिकतावादियों ने भी खुले आम राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने की कमर कसी।

(ग) स्वातन्त्र्य आन्दोलन के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा राष्ट्रीय एकता—स्वातन्त्र्य आन्दोलन के अन्तर्गत विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से ऐसे विभिन्न कार्यक्रमों का समारोहण हुआ जिन्होंने राष्ट्र और जनता के एकीकरण को

और प्रान्तीय नेताओं को एक ही मंच पर काम करने की सुविधा मिली तथा प्रत्येक प्रान्त के व्यक्तियों को राष्ट्रीयता के विकास में कंधे से कंधा मिलाकर काम करने का मौका मिला।

स्वातन्त्र्य आन्दोलन के अन्तर्गत कार्यक्रमों को चलाने, विचारधाराओं का प्रचार करने, राष्ट्रीय जागरण के लिए विदेशी शासन की त्रुटियों से जनता को परिचित कराने और भारत विरोधी अनर्गल प्रलापों का मुँह तोड़ जवाब देने के लिए विभिन्न समाचार पत्रों और साहित्य का प्रकाशन हुआ जिनका तात्कालिक प्रभाव राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ता के रूप में परिलक्षित हुआ। बंकिमचन्द्र का 'आनन्द मठ' और 'वन्देमातरम्' बहुत प्रसिद्ध हुए।' आनन्द मठ' ने देश भक्ति और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना को विकसित करने में बहुत सहायता की।

स्वातन्त्र्य आन्दोलन के नेताओं ने भारतीय संस्कृति के अमूल्य ज्ञान के भंडार से जनसाधारण को अवगत कराया जिससे समस्त भारतीय जनता एक समान गौरवमय अतीत की सहभागिनी बनी। स्वातन्त्र्य आन्दोलन अंग्रेजों के अमानवीय व्यवहार असहिष्णुता, भ्रष्टाचार पूर्ण न्याय और अनुत्तरदायी कार्यों के प्रति घोर विरोध का एक रूप था। आन्दोलन के नेताओं ने सम्पूर्ण भारत की जनता को उसकी इस हेय और हीन दशा से अवगत कराया और उसमें अपने वर्तमान के प्रति घोर असंतोष की भावना भर दी। परिणामतः भारत के आबाल वृद्ध नारी एक दूसरे के निकट आये।

किसी भी देश के लोगों में राष्ट्रीयता और एकता की भावना सही अर्थों में तभी उद्बुद्ध होती है जब एक तरफ तो उन्हें अपने अतीत के गौरव का भान हो और वर्तमान के प्रति असंतोष हो तथा दूसरी तरफ भविष्य के प्रति आशाप्रद और समान आकांक्षायें हों। राष्ट्रीय भावना के इस तृतीय अंग अर्थात् भविष्य के प्रति समान आकांक्षा की पूर्ति स्वातन्त्र्य आन्दोलन द्वारा हुई। स्वातन्त्र्य आन्दोलन ने जनता को जगाकर उठाया ही नहीं प्रत्युत उसे निरन्तर बढ़ते रहने की आशामय प्रेरणा दी और भारतीय जनता के कानों में स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दों को गुंजायमान रखा—"जागो, उठो और उस समय तक रुको नहीं जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो (Awake, arise and stop not, till the goal is reached)"

स्वातन्त्र्य आंदोलन ने जाति-पाँति के भेद-भावों की अवहेलना की, छुआ-छूत के विघटनकारी तत्वों पर कठोर प्रहार किया और इस तरह भारतीय समाज को खंडित करने वाली शक्तियों से बचाकर उसे एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया। इस आंदोलन में आजादी के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए और समाज को आगे बढ़ाने के लिए जनता को आह्वान किया कि वह सामाजिक कुरीतियों और निरर्थक प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति पाने का प्रयत्न करे। स्वातन्त्र्य आंदोलन के विस्तार के साथ-साथ प्राचीन रूढ़ियों का प्रभाव कम होता गया, जाति-प्रथा के बन्धन ढीले पड़ते गये और विभिन्न वर्गों के मध्य मतभेदों की दीवारें गिरती गयीं। स्वातंत्र्य आन्दोलन में किसी भी प्रकार के भेद भाव को महत्व नहीं दिया

यद्यपि राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति करना था, किन्तु इसका प्रभाव सर्वव्यापी रहा और इसने राष्ट्र के धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन को एक नवीन शक्ति देकर एकता तथा सहयोग के मार्ग पर ला खड़ा किया। राष्ट्र और भारतीय जनता के एकीकरण में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के इस योगदान को हम निम्न-लिखित विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकट करेंगे।

(क) राजनीतिक मंच और एकता—देश में प्रशासकीय एकता लाने का श्रेय यद्यपि ब्रिटिश शासन को था, किन्तु राष्ट्र को राजनीतिक एकता प्रदान करने का श्रेय प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में स्वातन्त्र्य आन्दोलन को ही है। कांग्रेस ने अपने जन्म के कुछ ही वर्षों के भीतर एक अखिल भारतीय संगठन का रूप धारण कर लिया। दूसरी गोलमेज परिषद् के अवसर पर कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप पर बल देते हुए महात्मा गांधी ने यह सत्य ही कहा था कि "सबसे पहले तो कांग्रेस राष्ट्रीय है। यह किसी विशेष जाति, वर्ग अथवा हित की प्रतिनिधि नहीं है। यह समस्त भारतीय हितों और वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे अधिक प्रसन्नता की बात है कि उसकी उपज प्रारम्भ में एक अंग्रेज के मस्तिष्क में हुई। एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम को कांग्रेस के पिता के रूप में हम जानते हैं। दो महान् पारसियों—फिरोजशाह मेहता और दादा भाई नौरोजी—ने जिन्हें सारा भारत "वृद्ध पितामह" कहने में हर्ष अनुभव करता है, इसका पोषण किया। प्रारम्भ में ही कांग्रेस में मुसलमान, ईसाई, ऐंग्लोइण्डियन आदि शामिल थे, बल्कि मुझे यों कहना चाहिये कि इसमें सब धर्मों, सम्प्रदायों और हितों का पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व था।" कांग्रेस के नेतृत्व में ही भारतवासियों ने पहली बार अखण्ड और स्वतन्त्र भारत की कल्पना की। वास्तव में कांग्रेस का इतिहास ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास के नाम से जाना गया।

स्वातन्त्र्य आन्दोलन की प्रतिमूर्ति कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में कांग्रेस का एक प्रमुख उद्देश्य यह बतलाया कि "साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश

राष्ट्रीय आन्दोलन ने राष्ट्र और जनता के एकीकरण में जो महत्वपूर्ण भूमिका अदा की उसका परिचय हमें 'राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव' द्वारा भी मिलेगा जिसकी चर्चा आगे की गई है।

राष्ट्रीय आन्दोलन में विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियां
(Various Political trends in the Nationalist Movements)

जैसा कि बताया जा चुका है, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को ३ विशिष्ट अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है प्रथम अवस्था १८८५ से १९०५ तक की है। २० वर्षों के इस काल में उदार अथवा नर्म राष्ट्रीयता की प्रधानता रही। यही इस काल की विशेषता है। इस युग में कांग्रेस किसी भी प्रकार एक क्रान्तिकारी संस्था न थी, अपितु उसका विश्वास था कि ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्त रहने से और अंग्रेजों से यह प्रार्थना करने पर कि "वे अपनी परम्पराओं और भावनाओं के प्रति सच्चे बनें" वह भारत की राजनीतिक प्रगति प्राप्त करने में सफल होगी।

द्वितीय अवस्था १९०६ से १९१८ तक की है। यह उग्र राष्ट्रीयता की प्रधानता का युग था जिसमें कांग्रेस की बागडोर उग्र राष्ट्रवादियों के हाथों में रही। उन्होंने देखा कि हाथ जोड़कर अथवा प्रार्थनाएं करके भारत के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की जा सकती। उनका इस बात पर आग्रह रहा कि भारत के राजनीतिक उद्देश्यों को पाने के लिए कठोर और क्रांतिकारी उपायों का अवलम्बन ग्रहण करना पड़ेगा। इस युग में कांग्रेस दो पक्षों में विभाजित हो गई और दोनों ही पक्ष १९१५ तक अलग-अलग काम करते रहे।

तृतीय अवस्था १९१९ से १९४७ तक की है जिसे गांधी युग के नाम से *सम्बोधित किया जा सकता है। इस अवधि में महात्मा गांधी के गतिशील नेतृत्व में* कांग्रेस ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा के अस्त्रों से संघर्ष किया। १९१८ में नर्म दल वाले कांग्रेस से बाहर निकल गये और उन्होंने "All India Liberal Federation" का संगठन किया। इसी युग में हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव की पराकाष्ठा हो गई, मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान के लिये आन्दोलन चलाया और अन्त में अपूर्व रक्तपात एवम् बर्बरता के बीच भारत का विभाजन हुआ। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के उपर्युक्त तीनों चरणों में भारत में विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियों का विकास हुआ और वे सभी स्वातंत्र्य आन्दोलन का महत्वपूर्ण अंग बन गईं। वास्तव में यही कहना सत्य है कि स्वतन्त्रता संग्राम के युग में विकसित होने वाली विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियों ने भी भारत के भावी राजनीतिक स्वरूप का निर्माण किया।

अब अग्रिम पंक्तियों में हम स्वातंत्र्य आंदोलन का इन विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियों को पृथक पृथक शीर्षकों के अन्तर्गत दर्शायेंगे।

(१) उदारवाद या उदार राष्ट्रीयता—राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम काल में उदारवादी विचारधारा का ही अधिक बोलबाला रहा। भारत के उदारवादी नेता पश्चिम के उदार और प्रगतिशील राजनीतिज्ञों से स्वाधीनता की प्रेरणा प्राप्त करते थे। "वे साम्राज्य के भीतर नागरिकता के अधिकार की मांग रखते हुए यह आशा रखते थे कि स्वाधीनता से प्रेम करने वाली और वैधानिकता का दम भरने

न्याय में अपनी पूर्ण आस्था प्रकट की और ब्रिटिश सिंहासन के प्रति अपनी राजभक्ति की उत्साहपूर्ण घोषणा की।"

उदार राष्ट्रवादियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप ब्रिटिश संसद ने १८९२ में "The Indian Council Act" पारित किया, जिसके अनुसार केन्द्रीय विधानसभा के सदस्यों की संख्या कम से कम १० व अधिक से अधिक १६ होने की व्यवस्था की गई, विविध प्रान्तों की कौंसिलों में सदस्यों को विचार प्रकट करने का अधिकार दिया गया। उदार दलीय कांग्रेस ने सरकार से १८६८ के राजद्रोही विधायकों तथा उनमें से १९०४ के सरकारी-रहस्य-विधायकों जैसे दमनकारी कानूनों को हटा लेने के बारे में विनती की।

१९०५ तक कांग्रेस समतल पथ पर दौड़ती रही। सार्वजनिक महत्ता का ऐसा कोई भी विषय सम्भवतः नहीं था जिसने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं किया हो। विभिन्न विषयों पर पास किये गये प्रस्तावों में व्यक्त विचार उदारवादी आन्दोलन के नेताओं की राजनीतिक बुद्धिमत्ता के साक्षी थे।

उदार राष्ट्रवादियों की मनोवृत्ति और कार्य पद्धति.—उदारवादी राष्ट्र-नेता पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित थे और भारत में ब्रिटिश शासन के प्रशंसक थे। उनका विचार था कि ब्रिटिश शासन के कारण ही भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ है और देश को एकता प्राप्त हुई है। वे भी सोचते थे कि ब्रिटिश शासन ने ही भारत के सामाजिक जीवन को पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का स्पर्श देकर उसमें लोकतन्त्र व स्वतन्त्रता की भावना जागृत की है। ब्रिटिश राज्य के उपकारों के प्रति उनके हृदय में कृतज्ञता की भावना थी। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी कहा करते थे कि "इङ्गलैण्ड हमारा पथ प्रदर्शक है।" वास्तव में उदारवादी राष्ट्रवादियों के द्वारा "ब्रिटिश शासन के सूत्रपात को एक ऐसा दैवी वरदान समझा गया जो भारत को मध्ययुगीन अधोगति की दिशा से उठाकर राजनीतिक और आर्थिक उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लिए ही अवतीर्ण हुआ था। ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति की घोषणाएं करने में नर्म राष्ट्रवादियों को किसी प्रकार के संकोच या किसी हीनता के भाव का अनुभव नहीं हुआ था। दादाभाई नौरोजी ने उस समय अपने सहयोगियों की सामान्य भावना को ही व्यक्त किया था जब उन्होंने यह घोषणा की थी—

"आओ हम पुरुषों की तरह बोलें और घोषणा करें कि हम आरूढ़ राजभक्त हैं।"

ऐसे उदारवादी नेताओं से समृद्ध कांग्रेस की इच्छा थी कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों की कठिनाइयों और परेशानियों को समझकर उन्हें दूर करे और ऐसी संस्थाओं को स्थापित करे जिनमें भारतीयों का प्रतिनिधित्व हो तथा वे सरकार एवं शासन को उन्नत करने के सम्बन्ध में सुझाव दे सकें।

उदार राष्ट्रवादी संवैधानिक प्रणाली को कोई स्थान प्राप्त न था। उदारवादियों का ब्रिटिश शासन न्यायप्रियता में इतना अटल विश्वास था कि १८९६ में कांग्रेस के १२ वें अधिवेशन के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए मोहम्मद रहीम-तुल्ला सयानी ने कहा था "अंग्रेजों से बढ़कर ईमानदार और शक्ति सम्पन्न जाति इस सूर्य के तले कहीं नहीं है।" १८९१ में अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष सरदार

दयालसिंह मजीठिया ने कांग्रेस के बारे में घोषणा की कि 'यह भारत में ब्रिटिश शासन की कीर्ति का कलश है। इसी प्रकार सर टी० माधवराव ने भी कहा "कांग्रेस ब्रिटिश शासन पर सर्वोच्च यशः शिखर और ब्रिटिश जाति का कीर्ति मुकुट है।" उदार राष्ट्रवादी कांग्रेस के अधिवेशन मे भारतीय शासन मे सुधार सम्बन्धी अपनी मांगों को बड़ी विनम्र भाषा में प्रस्तावो के रूप मे ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। अपनी मांगें स्वीकार करवाने के लिए लिए वे सरकार से प्रार्थना करते थे, *सरकार द्वारा उन प्रार्थनाओ को स्वीकार न करने पर वे उन्हे पुनः दोहराते* थे और बारम्बार सरकार से अपील करते रहते थे। यदि सरकार उनकी प्रार्थनाओं को रद्दी की टोकरी मे डाल देती थी तो वे चुप होकर बैठ जाते थे और यदि सरकार की आलोचना करते भी थे तो उनकी भाषा बड़ी संयत और विनम्र होती थी। इससे आगे की कोई कार्यवाही करना उन्हे पसन्द न था। उनका तो पूर्ण विश्वास था कि यदि भारत की समस्या को स्पष्टतः और प्रबलतापूर्वक ब्रिटेन की ससद तथा जनता के समक्ष रख दिया जाए तो वह माग करेगी कि भारत की परिस्थिति में परिवर्तन होना चाहिए। फिरोजशाह मेहता ने १८६० मे विचार प्रकट किया था कि "मुझे इस बात मे कोई सदेह नही है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अन्त में जाकर हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।" सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के ये शब्द उदार राष्ट्रवादियो की मनोवृत्ति का सुन्दर परिचय देते हैं *"अंग्रेजो की न्यायप्रियता, बुद्धि और दया भावना में* दृढ आस्था है। ससार की महानतम प्रतिनिधि सभा, ससदो की जननी, ब्रिटिश लोकसभा के प्रति हमारे हृदय मे असीम श्रद्धा है। कांग्रेस ने सर्वत्र प्रतिनिधि आधार पर ही शासन की रचना की है।" उदार राष्ट्रवादी नेता बहिष्कार, असहयोग अथवा सविनय अवज्ञा आन्दोलन की तो कल्पना भी नही कर सकते थे।

वास्तव मे उदार राष्ट्रवादी ब्रिटिश शासन से सम्बन्ध विच्छेद करने की उपेक्षा मे नहीं थे। वे ब्रिटिश नौकरशाही मे त्रुटियाँ अवश्य पाते थे किन्तु उन्हें *आशा थी कि ब्रिटिश शासन अन्त मे भारतीयो की मांगो पर सहानुभूतिपूर्ण* और उदारतापूर्वक अपनी स्वीकृति की मोहर लगा देगा। उदारवादी राजनीतिज्ञ इस बात को भली भाँति जानते थे कि प्रतिनिधि-शासन के समीप वे केवल एक ही छलांग में नहीं पहुँच सकते। इसलिए उन्होने शासन से ऐसी कोई प्रार्थना नही की थी कि वह उन्हे तुरन्त ही प्रतिनिधि शासन प्रदान कर दे। व्यवस्थित विकास मे ही उनका विश्वास था। क्रमबद्धता ही उनके दर्शन की विधायक थी। हथेली पर सरसो जमाने की नीति के वे कायल नहीं थे। उस समय के कांग्रेसी नेताओ की मांग यही होती थी कि *"सरकारी-नौकरियों का दरवाजा भारतीयो के लिए बन्द नहीं होने चाहिए,* धारा सभाओं में जनता के प्रतिनिधि निर्वाचित होने चाहियें और उन्हें प्रश्न करने तथा बजट पर चर्चा करने का अधिकार मिलना चाहिये। सैनिक व्यय में कमी की जानी चाहिये, कर कम होने चाहियें, न्याय और शासन विभाग अलग-अलग होने चाहिये, प्रान्त और केन्द्र की कार्यकारिणियों तथा भारत-मंत्री की कौंसिल में भारतीयों को भी स्थान मिलना चाहिए, भारत को ब्रिटिश संसद में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये" आदि। सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में नर्म दलीय कांग्रेस ने

नमक कर में कमी करने की प्रार्थना की और सूती माल पर लगाये गये उत्पत्ति कर को अन्यायपूर्ण घोषित किया। वह इस बात की भी प्रयत्नशील रही कि सरकारी नौकरियों और विश्वविद्यालयों पर सरकार के द्वारा पुनर्गठन हो, गर्म उद्योगों का पुनरुद्धार हो तथा कृषि सम्बन्धी ऋण-ग्रस्तता से किसानों को छुटकारा मिले।

उपरोक्त विवरण के निष्कर्षस्वरूप उदारवादियों की कार्य-विधि अथवा संघर्ष प्रणाली या उनके साधनों को हम संक्षेप में इस तरह रख सकते हैं —

(क) उदार राष्ट्रवादियों का संवैधानिक तरीकों में अटूट विश्वास था। तीन चीजों का उन्होंने कड़ा निषेध कर रखा था, 'विद्रोह, विदेशी आक्रमण की सहायता करना और अपराधी को आश्रय देना। उन्होंने ऐसी प्रत्येक योजना अथवा साधन का अत्यन्त सतर्कतापूर्वक बहिष्कार किया जिसके लिए उन्हें शंका थी कि ब्रिटिश सरकार उसका विरोध करेगी। वे सरकार के कोपभाजन नहीं बनना चाहते थे।

(ख) संवैधानिक आन्दोलन द्वारा अपनी मांगों की पूर्ति करवाने में विश्वास रखते हुए वे यह मानते थे कि भारत और ब्रिटेन के हित एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं और दोनों में वैर-विरोध का सवाल नहीं है। हिंसा के प्रति उनके हृदय में घृणा की भावना थी और आन्दोलन के सभी क्रान्तिकारी साधनों को उन्होंने वर्जित कर दिया।

(ग) उदारवादियों का विश्वास था कि अंग्रेजों पर नैतिक दबाव डालकर अपनी मांगों की पूर्ति करवाई जा सकती है। इसके लिए वे भाषणों, स्मृति पत्रों, प्रस्तावों, आवेदन-पत्रों, प्रार्थनाओं, शिष्ट-मंडलों आदि के द्वारा भारतीय मांगों और कठिनाइयों की ओर ब्रिटिश शासन का ध्यान आकर्षित करना ही यथेष्ट समझते थे। आवेदन और प्रार्थनाओं पर उन्हें कितना भरोसा था और इन पर वे कितना बल देते थे यह पंडित मदनमोहन मालवीय के इन शब्दों से स्पष्ट है जो उन्होंने कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में कहे थे—यद्यपि हमें अपने प्रयत्नों में अभी तक सफलता नहीं मिली है फिर भी हमें सरकार के समीप पुनः जाना चाहिये और निवेदन करना चाहिये कि हमारी मांगों अथवा प्रार्थनाओं पर शीघ्रातिशीघ्र विचार करें।

उदार राष्ट्रवादियों का मूल्यांकन—इसमें कोई संदेह नहीं कि उदार राष्ट्रवादियों में कुछ त्रुटियां स्पष्ट रूप से विद्यमान थीं वे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के वास्तविक आधार अथवा उसकी प्रकृति समझ नहीं सके थे। उनका यह मिथ्या अनुमान था कि दोनों देशों के हित परस्पर एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। ब्रिटिश शासन के 'वरदानों के प्रति' उनकी प्रशंसा और कृतज्ञता भ्रान्तिपूर्ण थी। वे इस तथ्य को हृदयंगम करने में असफल हुए थे कि 'भारत, ब्रिटिश पूंजीवाद के लाभार्थ अंग्रेजों का एक शोषित आर्थिक उपनिवेश था और इसीलिए इंगलैण्ड के लिए यह सर्वथा स्वाभाविक ही था कि वह भारत के आर्थिक और औद्योगिक अभ्युत्थान में बाधायें उपस्थित करे और उसे अपने यहाँ के उद्योगों के लिए कच्चे माल का स्रोत तथा तैयार माल के लिए एक मण्डी बनाये रखे। यदि भारत में बड़े-बड़े सुधार कर दिये जाते, यदि जनता को अपने भाग्य-निर्माण का अधिकार दे दिया जाता, यदि भारत-निवासियों को अपने देश का प्रबन्ध अपने आप करने की स्वतन्त्रता दे दी जाती, तो

ब्रिटेन अनिश्चित काल तक भारत को धार्मिक दासता
रखता था। यह एक स्पष्ट सी बात थी, जिसे उदार र
उदार राष्ट्रवादी यह भ्रान्तिपूर्ण आशा करते थे कि ब्रिटेन
अथवा वहां की जनता की आत्मा, को, प्रार्थनाओं और आवे
के लिए प्रतिनिधि शासन प्राप्त किया जा सकता था। य
उन्होंने अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं किया, साम्राज्यवादी
दी, अपितु अपने शासकों की अनुकम्पा पर ही विश्वास किय
का यह कथन सर्वथा युक्तिसंगत है कि "तिलक और सम्भवतः
कांग्रेस के नरम नेताओं में स्वतन्त्रता के लिए व्यक्तिगत ब
आपत्तियाँ सहने को कोई तैयार नहीं था।"

वास्तव में ब्रिटिश सरकार उदारवादियों की मांगों पर क
नहीं देती थी। यदाकदा वह किसी छोटी मांग को स्वीकार भी कर
वह शासन में कोई मौलिक परिवर्तन करने और भारतीयों को शा
बनाने को तैयार नहीं हुई। कुछ लोगों का मत है कि उदारकालीन क
क्रियाशीलता का अत्यन्त अभाव था। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहि
नरम नीति के होते हुए भी और कुछ सीमा तक क्रियाशीलता का अभ
भी उदार राष्ट्रवादियों ने कुछ उपयोगी कार्य किये जिनके महत्व को कम
जा सकता। ये उपयोगी कार्य निम्नलिखित थे—

(क) उदार राष्ट्रवादियों ने प्रेस और प्लेटफार्म में राजनीतिक
डटकर प्रचार किया। फलस्वरूप शिक्षित भारतीय प्रभावित हुए और
राजनीतिक मामलों में रुचि लेने लगे। राजनीतिक चेतना का यह जागरण
स्वातन्त्र्य आन्दोलन के लिए नींव का पत्थर सिद्ध हुआ।

(ख) यद्यपि उदार राष्ट्रवादियों ने सरकारी कार्यों की नरम आलोचन
किन्तु इसके द्वारा उन्होंने शासन की त्रुटियों को प्रकट किया और जनता के स
सरकार के नग्न रूप को ला खड़ा किया।

(ग) उदार राष्ट्रवादियों ने अपनी वाणी और लेखनी द्वारा देश में राष्ट्री
चेतना को गति दी। फलतः लोगों में राष्ट्रीयता की भावनायें बेगवती होकर बढ़
जाने लगीं और वे देश की समस्याओं में रुचि लेने लगे। उदार राष्ट्रवादियों ने सभी
महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार-विमर्श के लिए एक 'रंगमंच' और शासन-सम्बन्धी
आलोचना को 'सर्चलाइट' को दिशा प्रदान करके प्रबल जनमत का संगठन किया।
उन्होंने देशवासियों को शिक्षा दी कि वे स्वराष्ट्रिक और प्रान्तीय धरातलों से ऊपर
उठें तथा अपने हृदय में सामान्य राष्ट्रीयता की भावना विकसित करें।

निष्कर्ष रूप में, गुरुमुखनिहालसिंह के ये शब्द उल्लेखनीय हैं कि "आरम्भिक
कांग्रेस ने राजभक्ति की प्रतिज्ञाओं, नरम नीति, आवेदन, आवेदन ही नहीं अपित
भिक्षावृत्ति के बावजूद भी उन दिनों राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक शिक्षा
को एकता के सूत्र में ग्रथित करने और उनमें
भावना का निर्माण करने का कार्य

रमय्या का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि प्रारम्भिक कांग्रेसियों की भीरुता और भिक्षावृत्ति को उपहास की दृष्टि से देखना बड़ा सरल है, परन्तु 'उस समय जब भारतीय राजनीतिक क्षेत्र मे कोई नहीं था, उन लोगो ने जो रूप ग्रहण किया था, उसके लिये हम उन्हे दोष नहीं दे सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में छः फीट नीचे जो ईंट, चूना और पत्थर गड़े हुए हैं क्या उन पर कोई दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वही तो हैं जिनके ऊपर सारी इमारत खड़ी हो सकी है। पहले उपनिवेशों के ढग का स्वशासन फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, इसके बाद स्वराज्य और सबके ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें एक के बाद एक बन सकी हैं।

(२) उग्र राष्ट्रवाद—कांग्रेस की स्थापना के बाद कुछ समय तक उदारवादियों का प्रभाव रहा, परन्तु धीरे-धीरे कांग्रेस मे एक नवीन उग्रवादी दल का उदय हुआ। १९वी शताब्दी के अन्त मे और २०वी शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रिटिश शासन ने भारत मे कुछ ऐसे विक्षोभकारी कार्य किये जिससे कांग्रेस मे कई लोग उदारवादी प्रयासों और उदारवादियों की नीति को निरर्थक समझने लगे। उनमे सरकार के प्रति कठोर और सक्रिय कार्यवाही करने के विचार उद्भूत हुए और इस तरह उग्रवादियों (Extremist) दल का जन्म हुआ। १९०५ मे कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में लाला लाजपतराय ने भारतीयों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए संग्राम करने को तैयार होने का आह्वान किया। १९०६ के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन मे उग्रवादी और उदारवादी दलों के मध्य मतभेद अत्यन्त तीव्र हो गया और अगले ही वर्ष १९०७ में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन मे कांग्रेस दो दलों मे विभक्त हो गई नरम दल (उदारवादी) और गर्म दल (उग्रवादी)।

कांग्रेस मे इस बढते हुए असन्तोष और फलस्वरूप उग्रवाद के उदय के अनेक कारण थे जिनमे से प्रमुख ये थे—(१) उदारवादियों के तरीकों की असफलता, (२) ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति, (३) १८८७ का भीषण अकाल, (४) बंगाल का विभाजन, (५) प्लेग का प्रकोप, (६) देश के बाहर की घटनाएँ, (७) आर्थिक [illegible] (९) धार्मिक राष्ट्रवाद।

[illegible] असफलता—१८८५ मे कांग्रेस की स्थापना [illegible] उदारवादियों का प्रभुत्व रहा, लेकिन अपने [illegible] हित न कर सके। १८९२ के अधिनियम के [illegible] थे, और कांग्रेस ने जिन विभिन्न प्रकार के [illegible] ने ठीक नहीं समझा। उदारवादियों के तरीकों [illegible] ने उग्रवादी विचारधारा को जन्म दिया।

[illegible] की प्रतिक्रियावादी नीति—ब्रिटिश शासन ने अपनी [illegible] भारतीयों को [illegible] दिया। लार्ड लैंसडाउन [illegible] (currency) सम्बन्धी [illegible] में नौकरशाही ने

बड़ा अत्याचार किया, बड़ी कठोर नीति अपनाई और दैनिक कार्यों में अन्धाधुन्ध खर्चा किया। १८९८ के अन्त में लार्ड कर्जन आया जिसने अपने ७ वर्ष के शासन में अत्यन्त क्रूर व्यवहार किया। उसने कलकत्ता कार्पोरेशन कानून, भारतीय यूनिवर्सिटी एक्ट, आफिशियल सीक्रेट्स एक्ट आदि अनेक दूषित कानून बनाकर देश में असंतोष की लहर फैला दी। उसकी क्रूर नीति के कारण कांग्रेस की आंदोलनात्मक शक्ति में वृद्धि हुई।

(iii) १८८७ का भीषण अकाल—सन् १८८७ में भारत में भीषण अकाल पड़ा जिसमें लगभग दो करोड़ व्यक्ति प्रभावित हुए। लेकिन सरकार ने ऐसे समय बेरुखी प्रदर्शित की। सरकार के इस व्यवहार के उपरान्त भी उदारवादी सरकार के प्रति निष्ठा अपनाये रहे। फलस्वरूप उनकी आलोचना होना प्रारम्भ हो गया।

(iv) बंगाल का विभाजन—लार्ड कर्जन द्वारा १९०५ में बंग-भंग ने न केवल बंगालियों में अपितु सारे देश में घोर असन्तोष और राष्ट्रीयता की प्रबल लहर को जन्म दिया। अब लोगों का उदारवादी साधनों पर से विश्वास उठ गया और उग्रवाद अंगड़ाई लेकर उठ बैठा।

(v) प्लेग का प्रकोप—अकाल के कुछ ही दिनों बाद बम्बई प्रान्त में फैलने वाले भीषण प्लेग के निवारणार्थ सरकार ने सराहनीय ढंग से कार्य नहीं किया और जब तिलक ने सरकार की निन्दा की तो उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया। इसी

[illegible]

श्रीमती एनीबीसेन्ट आदि ने धार्मिक राष्ट्रवाद का विकास किया। तिलक, लाजपत-राय, विपिनचन्द्र पाल आदि उग्रवादी नेता इस धार्मिक राष्ट्रवाद से बड़े प्रेरित हुए। उग्रवादियों और क्रान्तिकारियों को धार्मिक राष्ट्रवाद से बड़ी प्रेरणा मिली।

उग्रवादियों के सिद्धान्त और साधन—यद्यपि प्रारम्भ में कांग्रेस में प्रभुत्व तो उदार दल का ही बना रहा, लेकिन संगठन के अन्तर्गत लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और स्व विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष जैसे नेता चमके जिन्होंने भारत के राष्ट्रीय संघर्ष में नवीन प्राण फूंके। "महाराष्ट्र और बंगाल ने इन नेताओं ने कांग्रेस आंदोलन की इस रागिनी में नया स्वर भरा और नयी दिशा प्रदान की। वे उग्रवादी के नाम से विख्यात थे क्योंकि उनका दृष्टिकोण क्रान्तिकारी था और वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सक्रिय प्रतिकार पर बल देते थे।" जहां उदारवादी विश्वास करते थे कि ब्रिटिश छत्र-छाया में भारत राजनीतिक उन्नति और आर्थिक समृद्धि प्राप्त कर सकता है तथा भारत के राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विशुद्ध वैधानिक उपाय ही श्रेयस्कर है, वहां उग्रवादी "ब्रिटिश शासन का खुल्लमखुल्ला विरोध करते थे, उसे प्रतिगामी बताते थे, देश की आर्थिक अवनति और सांस्कृतिक अधोगति का उत्तरदायित्व उसके सिर मढ़ते थे। राजनीतिक भिक्षा—वृत्ति की नीति में उनकी बहुत कम आस्था थी। अंग्रेजों की कृपा के ऊपर निर्भर रहने की बजाय वे चाहते थे कि भारतीय अपनी शक्ति पर ही भरोसा करें। उन्होंने स्वराज्य का अपना लक्ष्य घोषित किया और कहा, "इस लक्ष्य को राजभक्ति व पार्लियामेण्ट के रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने सहकारिता के प्रतिकूल अवज्ञा की नीति का प्रचार किया।" उग्र और उदार दल के विरोध अथवा अन्तर पर तिलक की टिप्पणी थी कि "राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना पड़ेगा। उदार दल सोचता है कि ये अधिकार समझाने से प्राप्त हो सकते हैं।" हम सोचते हैं कि वे तीव्र दबाव से ही प्राप्त हो सकते हैं।" तिलक का यह सिद्धान्त कि "स्वाधीनता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" विदेशी शासकों के लिए एक चुनौती थी।

उग्रवादी भारत में "स्वराज्य" चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि भारतीय संस्कृति व परम्पराओं के आधार पर ही शासन संस्थाओं की रचना होनी चाहिये। उनका उद्देश्य शीघ्रातिशीघ्र भारत और इंगलैंड के मध्य स्थापित सम्बन्धों को तोड़ना था। प्रबल आन्दोलन के समर्थक उग्रवादियों की दृष्टि में उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भाषण देना, प्रस्ताव पास करना या सरकार की सेवा में प्रार्थना पत्र देना आदि निरर्थक प्रयास थे। सर हेनरी कॉटन (Sir Henry Cotton) ने उग्रवादी दल के तरीकों के विषय में कहा था "भारत में अब ऐसे राष्ट्रवादियों का एक नया दल है जो संवैधानिक आन्दोलनों से निराश हो चुका है, जिसका उद्देश्य हिंसक ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन का प्रचार करना है और अपनी शक्ति से प्रत्येक साधन से ब्रिटिश शासन को असम्भव बनाना है", किन्तु यह कहना कि उग्रवादी हिंसक साधनों के प्रयोग में निष्ठावान थे कुछ ठीक नहीं दिखाई पड़ता। सत्य तो यह है कि हिंसक साधनों के प्रयोगकर्ता नहीं वरन् क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी थे।

उग्र राष्ट्रीयता उदारवादी अथवा नरम कांग्रेसी नेताओं के विरुद्ध भी उतना

ही बडा विद्रोह था जितना कि स्वयं साम्राज्यवाद के
प्रतिकूल उग्रवादियों का विश्वास था कि भारत और इंगलै
का सम्बन्ध है और 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ चाहे कि
किया जाय, उसके द्वारा भारत अपने राजनीतिक लक्ष्य को
विपिन चन्द्रपाल का कहना था कि ब्रिटेन के आर्थिक हित
भारत पर ब्रिटिश अंकुश निरन्तर बना रहे। इसीलिये (युद्ध
होना असम्भव था। विपिन चन्द्रपाल का औपनिवेशिक स्व
नहीं था क्योंकि उनके मत से औपनिवेशिक स्वराज्य उनके
भी से कहीं अधिक अव्यवहारिक था।

उग्रवादियों और उदारवादियों के उपायों और सा
पाताल का अन्तर था। उदारवादियों के वैधानिकवाद को
समझते थे। तिलक ने ब्रिटिश साम्राज्य के साथ सहयोग क
घोषणा की कि विदेशी शासन एक अभिशाप है और न
हिलाने के लिये आत्म-निर्भर और स्वतंत्र कार्य करने को
वादियों की "राजनीतिक भिक्षा-वृत्ति" पर प्रहार करते हु
कहा था 'एक अंग्रेज को भिखारी से बड़ी घृणा और विरक्ति
है कि भिखारी है हो इस योग्य कि उससे घृणा की जाय।
है कि हम अंग्रेजों को दिखादें कि अब हम भिखारी नहीं हैं।
की अपेक्षा निष्क्रिय-प्रतिरोध (Passive-Resistance) का
रक्खा। बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन ब्रिटिश शासन के
नूतन प्राणधारा के प्रतीक थे।

उग्रवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वह
न था। अरविंद ने घोषणा की "राष्ट्रीयता एक धर्म
आता है।" उग्रवादी नेताओं के मस्तिष्कों पर हिन्
छाप थी। ए. आर. देसाई के शब्दों में "उग्रवादी नेता
चन्द्रगुप्त और अशोक के स्वर्णिम युगों, राणाप्रताप
ो तथा सन् १८५७ की नेत्री झांसी की रानी
: मान्य किया।" यह पहले ही कहा जा चुका है
ने शिवाजी और गणपति महोत्सवों का पु
, य चेतना के पुनर्जागरण की शक्ति पूजा के प्र
रविंद का कहना था "हमारे समस्त आन्दोलनों

"जब हम नरम व गरम दोनों दलों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हैं तो मालूम पड़ता है कि हमारी राष्ट्रीयता के विकास में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों हमारी राजनीति के स्वाभाविक उपकरण हैं। वस्तुतः यह एक ही आन्दोलन के दो पक्ष हैं। एक ही दीपक के दो परिणाम हैं। पहला प्रकाश का द्योतक है, दूसरा गर्मी का। पहला बुद्धिपक्ष है, दूसरा भाव पक्ष। पहला जहां कुछ सुविधायें, कुछ सहूलियतें प्राप्त करना चाहता है वहां दूसरे का उद्देश्य राष्ट्र में मानसिक परिवर्तन करना है।...सार्वजनिक जीवन में भाव-प्रवाह लाने वाले आन्दोलन का अर्थात् गर्म दल वाले का दर्जा, बुद्धिपक्ष को व्यक्त करने वाले नरम दल से कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा है। इसलिये यह भाव-प्रवाह ही जनता को बल देता है, यह पराधीनता की वेदना उत्पन्न करता है। यह उसे आत्म-बलिदान की शक्ति देता है। यह उसमें देश के लिये पागल होने का भाव उत्पन्न करता है।"

उग्रवादियों का मूल्यांकन—उग्रवादी राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाने में सफल हुए। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की वेगवती धारा में मध्यम वर्ग को समाविष्ट किया और जनसाधारण के बीच राष्ट्रीय चेतना का प्रचार करने में सहायता दी। तिलक ने तो भारतीय जनता के हृदय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। १६०८ में उनकी गिरफ्तारी ने जगह-जगह उपद्रवों और दंगों को शुरूआत कर दी तथा बम्बई की मिलों के श्रमिकों ने व्यापक हड़ताल की। लेनिन ने इस हड़ताल को भारत के श्रमिक वर्ग की पहली राजनीतिक कार्यवाही बतलाई। कांग्रेस के अन्दर रहकर उग्रवादियों ने इस बात का सफल प्रयास किया कि संगठन ब्रिटिश शासन के प्रति अपने रुख में परिवर्तन करे, कुछ उग्र रूप धारण करे और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति सक्रिय विरोध की व आत्म-निर्भरता की नीति अपनावे। उग्रवादियों के अविराम प्रयत्नों के फलस्वरूप ही कांग्रेस ने बहिष्कार और स्वदेशी का प्रोग्राम स्वीकार किया। ब्रिटिश शासन ने उग्रवादी देशभक्तों को देश-निर्वासन का दंड दिया और उनके विरुद्ध तरह-तरह के दमनकारी कानूनों का निर्माण किया। परन्तु इस नवीन राष्ट्रवादी आन्दोलन को कुचला नहीं जा सका। दमन नीति का उल्टा यह परिणाम हुआ कि राष्ट्रीय आन्दोलन ने क्रान्तिकारी रूप धारण कर लिया। हजारों नवयुवक देश और विदेश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति के लिये संगठित होने लगे और स्वदेशी तथा बहिष्कार की राजनीति बम और गोली की राजनीति में परिणत हो गई।

(३) क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद—क्रान्तिकारी अथवा आतंकवादी विचारधारा, उग्र राष्ट्रवाद का ही एक पहलू है जिसका श्रीगणेश महाराष्ट्र में हुआ, जहां १८६६ में मि० रैन्ड तथा ले० आयरेस्ट को गोली का शिकार बना दिया गया। ये दोनों अफसर महाराष्ट्र में अपनी क्रूर नीति के कारण कुख्यात थे। महाराष्ट्र में श्यामजी कृष्ण, वी० डी० सावरकर, गणेश सावरकर, और चापेकर बन्धु क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद के नेता थे। उनका कहना था "प्राण देने से पूर्व प्राण ले लो।" सावरकर बन्धुओं ने क्रान्तिकारी समाज की स्थापना की। जब गणेश सावरकर

को देश निर्वासन का दंड दिया गया तो प्रतिशोध की भावना से अभिनव भारत के एक सदस्य ने जिलाधीश मिस्टर जैक्सन को गोली का निशाना बना डाला। अभिनव भारत चार वर्षों से सक्रिय क्रियाशील था। पड़ोस के अनेक राज्यों तथा पश्चिमी भारत के बहुत से भागों में इस आतंकवादी समाज की शाखाओं का एक जाल सा बिछ गया।

महाराष्ट्र जो कि क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद का प्रारम्भिक केन्द्र अथवा जन्मस्थान बना हो, बंगाल के विभाजन ने बंगाल में भी आतंकवाद का विस्फोट कर दिया। बंगाल में क्रान्ति पहले से ही पैदा हुई थी, विभाजन ने आग में घी का काम किया। अब भावुक युवक बंगाल हिंसा-पथ के पथिक बन गए। बंगाल में आतंकवादी आन्दोलन के नेता बारीन्द्र घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे जिन्होंने हथियार उठाने और विदेशी शासन से युद्ध करने के लिये बंगाल के युवक वर्ग का आह्वान करते हुए जबरदस्त क्रांति-कारी प्रचार किया। उन्होंने घोषणा की, इस "देश में अंग्रेजों की संख्या १.५ लाख से अधिक नहीं है। प्रत्येक जिले में अंग्रेज पदाधिकारियों की संख्या कितनी है ? यदि आप अपने संकल्प में दृढ़ हैं तो एक ही दिन में ब्रिटिश शासन का अन्त कर सकते हैं। अपने प्राण दे दीजिये लेकिन पहले प्राण ले लीजिये।" उन्होंने अनुशीलन समिति का संगठन किया जिसकी शाखायें सम्पूर्ण बंगाल में फैली हुई थीं। बंगाल में आतंकवादी आन्दोलन एक समय तो इतना उग्र हो उठा कि अनेक राजनैतिक हत्यायें कर दी गई।

१९०७ में आतंकवाद की अग्नि-शाखा पंजाब में भी प्रज्वलित हो उठी। पंजाब में सरदार अजीतसिंह, भाई परमानन्द, उनके अनुज बालमुकुन्द और लाला हरदयाल ने क्रान्तिकारियों का संगठन किया। १९१२ में लार्ड हार्डिन्ज के प्राण लेने का प्रयास भी उन्हीं क्रान्तिकारियों ने किया।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद अथवा आतंकवाद या विप्लववाद केवल भारत में ही सक्रिय नहीं हुआ बल्कि विदेशों में भी इसने अपना प्रभाव जमाया। इंग्लैंड में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इण्डिया होमरूल सोसायटी' की स्थापना की और क्रांति-कारियों का एक छोटा सा सुसंगठित दल बनाया जिसका केन्द्र 'इण्डिया हाउस' था। बाद में वी. डी. सावरकर भी इंग्लैंड पहुँच गया। इंग्लैंड से भारत में क्रांति-कारियों को हथियार व क्रांतिकारी साहित्य भेजने का प्रयास किया गया। जुलाई १९०९ को क्रांतिकारी दल के एक सदस्य ने इण्डिया हाउस' के सर विलियम विली की हत्या कर डाली। ब्रिटिश अधिकारियों ने अन्त में इस छोटे से दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। श्यामजी कृष्ण वर्मा के नेतृत्व में भारतीय क्रांतिकारी यूरोप के अन्य देशों में भी क्रियाशील हुए। इन देशों के क्रांतिकारी भारत में कार्य करने वाले क्रांतिकारियों को पुस्तकें और पत्र-पत्रिकायें भेजते थे ताकि शिक्षित युवक क्रांतिकारी विचारधारा का संचार किया जा सके। लाला हरदयाल ने

में क्रान्तिकारियों का संगठन किया। १९१३ में उन्होंने सैनफ्रांसिस्को से

एक पत्र निकालना भी शुरू किया। बाद में परिस्थितिवश लालाजी

चला जाना पड़ा लेकिन अमेरिका में रहने

क्रान्तिकारी विचारधारा पनपती रही। सर वैलेन्टाइन शिरोल के अनुसार, "इण्डो-अमेरिकन एसोसियेशन" और 'यंग इण्डिया एसोसियेशन' नामक दो संस्थायें भारत की समस्त राजद्रोही संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित किये हुए थीं।

क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद की प्रकृति और साधन-प्रणाली—क्रान्तिकारी उग्र-राष्ट्रवाद का ही एक पहलू था, यद्यपि साधन-प्रणाली की दृष्टि से वह तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय के राजनीतिक उग्रवाद से सर्वथा भिन्न था। उग्रवादी उदारवादियों को 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' की नीति से असन्तुष्ट होकर ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष का प्रतिपादन करते थे। लेकिन यह संघर्ष शान्तिमय रीति से होता था, जिसमें हिंसा को प्रश्रय नहीं दिया गया था। इसके सर्वथा विपरीत क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी शान्तिपूर्ण संघर्ष को अपर्याप्त मानते हुए हिंसा और आतंकवाद में विश्वास करते थे। वैसे क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद भी उन्हीं कारणों का परिणाम था जिन्होंने राजनीतिक उग्रवाद को जन्म दिया था। क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद ने "उन भावुक युवकों को, जो उदार-राष्ट्रवादियों के ठकुरसुहाती दृष्टि-कोण से सहमत नहीं थे और साथ ही साथ लाल-बाल-पाल द्वारा प्रतिपादित शान्ति-पूर्ण आन्दोलन की साधन-प्रणाली में विश्वास नहीं रखते थे, अपनी ओर आकृष्ट किया।" क्रान्तिकारियों का यह दृढ़ विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद पाशविक बल पर आधारित है जिसे हिंसा के बिना उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है। ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रियावादी और दमन-मूलक नीति ने उनके इस विचार को पुष्ट कर दिया था। भारतीय क्रान्तिकारियों ने यूरोपियन क्रान्तिकारी आन्दोलनों की कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया। उन्होंने जारकालीन रूस के गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों की कार्य-प्रणाली से विशेष रूप से शिक्षा ग्रहण की। क्रान्तिकारी राष्ट्र-वादियों का प्रमुख कार्यक्रम हिंसक कार्यवाहियाँ और राजनीतिक हत्यायें करना था। ऐसा करने से वे समझते थे कि ब्रिटिश अधिकारियों और भारतीय पिट्ठुओं के हृदय में आतंक उत्पन्न हो जायेगा और समस्त शासनयन्त्र अस्त-व्यस्त हो जायेगा। अपने आन्दोलन को चलाने के लिए सरकारी खजाना लूट लेना और सशस्त्र डकैतियाँ डालना भी उनके कार्यक्रम में शामिल था।

पृष्ठभूमि मे हिंसा अथवा उसकी धमकी सदैव विद्यमान रही और ब्रिटिश शासन को हटाने मे उसने निर्णायक भूमिका अदा की। १९४२ की क्रांति और आजाद हिंद फौज के स्वातन्त्र्य संग्राम तथा भारतीय नौसेना के विद्रोह ने यह स्पष्ट चेतावनी दे दी कि यदि अंग्रेज स्वेच्छा से भारत छोडकर नही चले जायेंगे तो उन्हें क्रान्तिकारी विस्फोट द्वारा भारत से निकाल दिया जायेगा।

भारत मे क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्याकन हमे उसकी सफलता अथवा असफलता से नहीं अपितु क्रांतिकारियो की देशभक्ति और बलिदान से करना चाहिए। इस आन्दोलन के द्वारा राष्ट्र प्रेम की जो भावना जागृत हुई, उससे राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्तिशाली आधार प्राप्त हुआ।

गांधी युग (१९२०-१९४७)—१९१९ मे सरकार द्वारा रोलेट एक्ट जैसे असाधारण दमन कानून बनाये जाने से सम्पूर्ण देश मे व्यापक हडतालें हुई। सरकार का दमन-चक्र नृशसता-पूर्वक चल पडा। १३ अप्रैल १९१९ को सरकार की दमन नीति के विरोध मे जलियांवाला बाग मे जब एक शांतिपूर्ण सभा हो रही थी तो अंग्रेज जनरल डायर ने बिना सूचना दिये हुए लगभग २० हजार निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चला दीं, जिनमे हजारो लोग मारे गये और घायल हुए। चारों तरफ भयंकर असन्तोष व्याप्त हो गया। ऐसे समय मे महात्मा गांधी राजनीतिक मंच पर प्रकट हुए। वे दक्षिण अफ्रीका मे अपने राजनीतिक कार्यों के कारण पहले से ही काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। १ अगस्त १९२० को लोकमान्य तिलक के स्वर्गवासी होने के बाद ही देश के राजनैतिक आन्दोलन का नेतृत्व गांधी जी के हाथ में आ गया और १९४७ तक निर्विवाद रूप से वे भारतीय राजनीति के पथ-प्रदर्शक बने रहे। इस गांधी युग म ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो विभिन्न आन्दोलन हुए, वे अधो

अब नौकरशाही ने अपना दमन चक्र पूरे जोश-खरोश के साथ चलाना शुरू किया। असहयोग आन्दोलन को पूरी तरह कुचल देने के आदेश दिये गये। १९२२ के समाप्त होने के पूर्व ही, जबकि महात्मा गांधी के विश्वास के अनुसार भारत को स्वराज्य मिलने वाला था, अधिकांश नेताओं को पकड़कर जेल में ठूस दिया गया। अन्य व्यक्ति भी बहुत बड़ी संख्या में गिरफ्तार किये गये। कैदियों की संख्या शीघ्र ही लगभग ५०,००० तक पहुंच गई। सभी सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया।

सरकार की इस दमन-नीति की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। महात्माजी ने असहयोग आन्दोलन को और भी अधिक वेग से चलाने तथा "सविनय अवज्ञा-आन्दोलन" (Civil Disobedience Movement) प्रारम्भ करने का निश्चय किया। महात्मा गांधी ने वायसराय को सूचित कर दिया कि वे बारदोली और गन्तूर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करना चाहते हैं। गांधीजी ने वायसराय को भेजे गए अपने पत्र में यह भी लिखा कि यदि "सरकार उन सभी कैदियों को मुक्त कर दे जो अहिंसात्मक कार्यों के लिए जेल गये हैं" और "देश की समस्त अहिंसात्मक हलचल के सम्बन्ध में तटस्थता की घोषणा कर दे" तो "मैं नि.संकोच भाव से यह सलाह दूंगा कि दूसरे पर हिंसात्मक दबाव न डालते हुए देश अपनी निश्चित मांगों की पूर्ति के लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे।" महात्मा गांधी ने मांगें मंजूर कर लेने के लिए सरकार को सात दिन का समय दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश इसी बीच जोश में आकर जनता ने दंगे और हिंसात्मक कार्य आरम्भ कर दिये। यू०पी० के एक ग्राम चौरी चौरा (Chauri Chawra) में जनता ने जोश में आकर एक थाने को जला दिया जिसमें अनेक सिपाही मारे गये। इस हिंसात्मक वातावरण की दृष्टि से गांधीजी को बड़ा दुख हुआ और १२ फरवरी १९२२ से अनिश्चित काल के लिए असहयोग आन्दोलन बंद कर दिया गया। इससे गांधीजी की लोकप्रियता को ठेस लगी तथा उनकी आलोचना भी हुई। इस स्थिति से लाभ उठाकर सरकार ने २३ मार्च १९२२ को गांधीजी को ६ वर्ष के लिए जेल में बन्द कर दिया और साम्प्रदायिक विष खूब फैलाया। परिणामस्वरूप इसी वर्ष हिन्दू महासभा का जन्म हुआ। मुस्लिम लीग की कमान जिन्ना ने अपने हाथ में समाली और मुल्तान का भयकर हिन्दू–मुस्लिम झगड़ा हुआ।

असहयोग आन्दोलन का मूल्यांकन :—असहयोग आन्दोलन के चरमोत्कर्ष के समय उसे स्थगित कर देने से आन्दोलन के उद्देश्यों और सफलता की सम्भावनाओं को कठोर आघात पहुँचा। श्री सुभाष बोस के अनुसार "उस समय जबकि जनता का उत्साह चरमसीमा पर पहुँच रहा था, मैदान छोड़ने का आदेश दे देना राष्ट्रीय दुर्विपाक से कुछ कम न था। कांग्रेस द्वारा नियत की गई 'सविनय अवज्ञा जांच–समिति' के मत में असहयोग आन्दोलन ने बहुत कम सफलता प्राप्त की। यह आन्दोलन पंजाब और खिलाफत के अन्यायों के निवारण और स्वराज्य प्राप्त करने के ध्येयों में पूर्णतः असफल सिद्ध हुआ। मुसलमानों पर आन्दोलन की समाप्ति की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। वे कांग्रेस से खिचते गये और अब "पुनः उस विश्वास और

(७) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय। प्रत्येक घर में हाथ की कताई व बुनाई पुनर्जागृत की जाय।

महात्मा गांधी ने आन्दोलन प्रारम्भ करते समय यह स्पष्टतः कह दिया था कि आन्दोलन में अहिंसा का कठोर रूप से पालन होना चाहिए। महात्मा गांधी की आत्मबल और अहिंसा में गहरी आस्था थी और इसी शक्ति के द्वारा वे सरकार के पशुबल का सामना करना चाहते थे। उनका यह विचार था कि इस आन्दोलन द्वारा एक ही वर्ष में स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। यद्यपि उनका यह विचार सत्य सिद्ध नहीं हुआ तथापि असहयोग आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीयता में नवजीवन का संचार अवश्य कर दिया। इस आन्दोलन ने स्वतन्त्रता और निर्भीकता की एक प्रबल भावना व्याप्त की और भारतीयों के हृदय में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और आत्म-निर्भरता जागृत की। यह आन्दोलन सच्चे अर्थों में भारत का पहला जन-आन्दोलन सिद्ध हुआ। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, 'सर्वत्र हिन्दू-मुसलमान का बोलबाला था।" १९१९ तक का राष्ट्रीय आंदोलन अधिकांशतः उच्च-मध्यम वर्गीय लोगों तक ही सीमित था, किन्तु असहयोग आंदोलन ग्राम्य क्षेत्रों में भी पहुँच गया और राष्ट्रीय आंदोलन की जड़ें जनसाधारण के अन्त स्थल में जम गयी। प्रसिद्ध इतिहासकार कूपलैण्ड के कथनानुसार—"उन्होंने (गांधीजी) वह काम किया जिसे तिलक नहीं कर सके थे। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में बदल दिया। उन्होंने उसे स्वतन्त्रता के लक्ष्य की ओर बढ़ना सिखाया सरकार के ऊपर वैधानिक दबाव डालकर नहीं, वाद-विवाद और समझौते के द्वारा और शक्ति से नहीं, अहिंसा द्वारा। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को क्रान्तिकारी ही नहीं बनाया, अपितु उसे लोकप्रिय भी बना दिया। अभी तक यह नगर के बुद्धिजीवी वर्ग तक ही सीमित था, अब यह देहात की जनता तक भी पहुँच गया। इस प्रकार गांधीजी के व्यक्तित्व ने भारत के देहातों में भी जागृति पैदा कर दी।"

अब नौकरशाही ने अपना दमन चक्र पूरे जोश-खरोश के साथ चलाना शुरू किया। असहयोग आन्दोलन को पूरी तरह कुचल देने के आदेश दिये गये। १९२१ के समाप्त होने के पूर्व ही, जबकि महात्मा गांधी के विश्वास के अनुसार भारत को स्वराज्य मिलने वाला था, अधिकांश नेताओं को पकड़कर जेल में ठूस दिया गया। अन्य व्यक्ति भी बहुत बड़ी संख्या मे गिरफ्तार किये गये। कैदियों की संख्या शीघ्र ही लगभग ५०,००० तक पहुँच गई। सभी सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया।

सरकार की इस दमन-नीति की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। महात्माजी ने असहयोग आन्दोलन को और भी अधिक वेग से चलाने तथा "सविनय अवज्ञा-आन्दोलन" (Civil Disobedience Movement) प्रारम्भ करने का निश्चय किया। महात्मा गांधी ने वायसराय को सूचित कर दिया कि वे बारदोली और गन्तूर मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहते हैं। गांधीजी ने वायसराय को भेजे गए अपने पत्र मे यह भी लिखा कि यदि "सरकार उन सभी कैदियो को मुक्त कर दे जो अहिंसात्मक कार्यों के लिए जेल गये हैं" और "देश की समस्त अहिंसात्मक हलचल के सम्बन्ध मे तटस्थता की घोषणा कर दे" तो "मैं नि सकोच भाव से यह सलाह दूगा कि दूसरे पर हिंसात्मक दबाव न डालते हुए देश अपनी निश्चित मागो की पूर्ति के लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे।" महात्मा गाधी ने मागें मंजूर कर लेने के लिए सरकार को सात दिन का समय दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश इसी बीच जोश मे आकर जनता ने दगे और हिंसात्मक कार्य आरम्भ कर दिये। यू०पी० के एक ग्राम चौरी चौरा (Chauri Chawra) मे जनता ने जोश मे आकर एक थाने को जला दिया जिससे अनेक सिपाही मारे गये। इस हिंसात्मक वातावरण की दृष्टि से गाधीजी को बड़ा दुख हुआ और १२ फरवरी १९२२ से अनिश्चित काल के लिए असहयोग आन्दोलन बद कर दिया गया। इससे गांधीजी की लोकप्रियता को ठेस लगी तथा उनकी आलोचना भी हुई। इस स्थिति से लाभ उठाकर सरकार ने २३ मार्च १९२२ को गाधीजी को ६ वर्ष के लिए जेल मे बन्द कर दिया और साम्प्रदायिक विष खूब फैलाया। परिणामस्वरूप इसी वर्ष हिन्दू महासभा का जन्म हुआ। मुस्लिम लीग की कमान जिन्ना ने अपने हाथ मे समाली और मुल्तान का भयकर हिन्दू-मुस्लिम झगडा हुआ।

असहयोग आन्दोलन का मूल्यांकन :—असहयोग आन्दोलन के चरमोत्कर्ष के समय उसे स्थगित कर देने से आन्दोलन के उद्देश्यों और सफलता की सम्भावनाओं को कठोर आघात पहुँचा। श्री सुभाष बोस के अनुसार "उस समय जबकि जनता का उत्साह चरमसीमा पर पहुँच रहा था, मैदान छोड़ने का आदेश दे देना राष्ट्रीय दुर्विपाक से कुछ कम न था। कांग्रेस द्वारा नियत की गई 'सविनय अवज्ञा जांच-समिति' के मत मे असहयोग आन्दोलन ने बहुत कम सफलता प्राप्त की। यह आन्दोलन पजाब और खिलाफत के अन्यायों के निवारण और स्वराज्य प्राप्त करने के ध्येयों मे पूर्णतः असफल सिद्ध हुआ। मुसलमानों पर आन्दोलन की समाप्ति की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। वे कांग्रेस से खिचते गये और अब "पुनः उस विश्वास और

(७) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय। प्रत्येक घर में [illegible] व बुनाई पुनर्जागृत की जाय।

महात्मा गांधी ने आन्दोलन प्रारम्भ करते समय यह स्पष्टतः कह दिया था कि आन्दोलन में अहिंसा का कठोर रूप से पालन होना चाहिए। महात्मा गांधी की आत्मबल और अहिंसा में गहरी आस्था थी और इसी शक्ति के द्वारा वे सरकार के पशुबल का सामना करना चाहते थे। उनका यह विचार था कि इस आन्दोलन द्वारा एक ही वर्ष में स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। यद्यपि उनका यह विचार सत्य सिद्ध नहीं हुआ तथापि असहयोग आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीयता में नवजीवन का संचार अवश्य कर दिया। इस आन्दोलन ने स्वतन्त्रता और निर्भीकता की एक प्रबल भावना उत्पन्न की और भारतीयों के हृदय में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और आत्म-निर्भरता जागृत की। यह आन्दोलन सच्चे अर्थों में भारत का पहला जन-आन्दोलन सिद्ध हुआ। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, 'सर्वत्र हिन्दू-मुसलमान का बोलबाला था।" १९१९ तक का राष्ट्रीय आंदोलन अधिकांशतः उच्च-मध्यम वर्गीय लोगों तक ही सीमित था, किन्तु असहयोग आंदोलन ग्राम्य क्षेत्रों में भी पहुँच गया और राष्ट्रीय आंदोलन की जड़ें जनसाधारण के अन्तःस्थल में जम गयीं। प्रसिद्ध इतिहासकार कूपलैंड के कथनानुसार—"उन्होंने (गांधीजी) वह काम किया जिसे तिलक नहीं कर सके थे। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में बदल दिया। उन्होंने उसे स्वतन्त्रता के लक्ष्य की ओर बढ़ना सिखाया सरकार के ऊपर वैधानिक दबाव डालकर नहीं, वाद विवाद और समझौते के द्वारा और शक्ति से नहीं अहिंसा द्वारा। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को क्रांतिकारी ही नहीं बनाया, अपितु उसे लोकप्रिय भी बना दिया। अभी तक वह नगर के बुद्धिजीवी वर्ग तक ही सीमित था, अब वह देहात की जनता तक भी पहुँच गया। इस प्रकार गांधीजी

निर्वाचनों में पूरा भाग लेकर व्यवस्थापक मण्डलों की अधिक से अधिक सीटों पर कब्जा कर लिया जाय। इस प्रकार व्यवस्थापक मण्डलों में पहुँच जाने के उपरान्त वहाँ सरकार के प्रति असहयोग किया जाय और सरकारी नीति में "एकरूप, अविच्छिन्न और अनन्त रोड़ा" अटकाया जाय। पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजन दास ने 'अड़ंगा' शब्द को स्पष्ट करते हुए कहा था—"हमने अपने कार्य-क्रम में अड़ंगा शब्द का जो व्यवहार किया है, सो ब्रिटिश संसद के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नहीं। मातहत और सीमित अधिकारों वाली कौंसिलों में उस अर्थ में अड़ंगा डालना असम्भव है क्योंकि सुधार-कानून के अन्तर्गत असेम्बली और कौंसिल के अधिकार गिने चुने हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि हमारा विचार अड़ंगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही द्वारा डाली गई रुकावटों का मुकाबला करना अधिक है।"

स्वराजिस्टों का कहना था कि उनका कौंसिल-प्रवेश का उपरोक्त कार्यक्रम असहयोग-सिद्धान्त के अनुकूल था और यह सर्वथा उचित था कि नौकरशाही की नाक के नीचे उसके गढ़ (व्यवस्थापिका) में प्रवेश करके असहयोग का झण्डा फहराया जाय। कौंसिलों में प्रवेश करके वे बजटों को रद्द करने के पक्ष में थे और उन सब कानूनी प्रस्तावों को अस्वीकार करना चाहते थे जो नौकरशाही की स्थिति दृढ़ करने वाले हों। "अड़ंगा" स्वराज्य-दल के कार्यक्रम का विध्वंसात्मक पक्ष था। रचनात्मक पक्ष में इस दल का कार्यक्रम उन प्रस्तावों, योजनाओं और विधेयकों को प्रस्तुत करना था जो राष्ट्रीय जीवन को अधिक प्राणवान बनाने वाले हों और इस प्रकार अन्त में नौकरशाही को उखाड़ फेंकने में सहायक बनें। कौंसिलों के बाहर स्वराजिस्टों ने महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यों में सहयोग देने का वचन दिया। उन्होंने घोषणा की कि—"ज्योंही हमें मालूम पड़ेगा कि सत्याग्रह के बिना नौकरशाही की स्वार्थपूर्ण हठधर्मी का सामना करना असम्भव है, हम तत्काल कौंसिलों को छोड़ कर देश को, सत्याग्रह के लिये तैयार करने में, यदि वह स्वयं ही उस समय तक तैयार न हो सका तो, उनकी (महात्मा गांधी की) सहायता करेंगे। तब हम बिना हीले-हवाले के उनके पीछे हो लेंगे और कांग्रेस की संस्थाओं द्वारा उनके झण्डे के नीचे काम करेंगे जिससे सब मिलकर सत्याग्रह का ठोस कार्यक्रम पूरा कर सकें।"

स्वराज्य-दल का मूल्यांकन :—मोण्ट-फोर्ड सुधारों और द्वैध-शासन-प्रणाली विनष्ट करने के अपने कार्यक्रम को सामने रख कर स्वराज्य-दल ने नवम्बर १९२३ के निर्वाचनों में पूरा भाग लिया और कुछ स्थानों पर विस्मयजनक सफलता प्राप्त की। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में १४५ सीटों में से ४५ सीटें स्वराज्य-दल के कब्जे में आ गईं। राष्ट्रवादी और स्वतन्त्र उम्मीदवारों का समर्थन प्राप्त करके इस दल ने अपना काम चलाऊ बहुमत बना लिया और कई महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर सरकार को पराजित किया। उदाहरणार्थ, १९२४-२५ के बजट के मतापेक्षी भाग को अस्वीकार कर दिया गया और सरकार को उसकी, ... गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार का प्रयोग करना पड़ा। प्रान्तों में

खलीफा की प्रतिष्ठा बनाना असम्भव था जिसने कि एक बार भारत के इन दोनों महान जातियों को एकता के सूत्र में ग्रथित कर दिया था।"

इसके अतिरिक्त भारतीय राजनीति में खिलाफत के प्रश्न को सम्मिलित करना भी दुर्भाग्यपूर्ण था। पोलक के शब्दों में "खिलाफत आन्दोलन की बुनियाद गलत थी" और गलत बुनियाद पर आश्रित आन्दोलन से सहयोग करना उचित था। असहयोग आन्दोलन के आकस्मिक स्थगन से कांग्रेस-लीग मैत्री भी समाप्त हो गई। इसके बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना कुण्ठित होने लगी। आन्दोलन के समाप्त होते ही महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया और सारे देश में साम्प्रदायिक उपद्रव होने प्रारम्भ हो गये। भारतीय राजनीति में धार्मिक तत्व की यह वृद्धि आगे जाकर बड़ी खतरनाक साबित हुई।

किन्तु उपरोक्त दुर्बलताओं के होते हुए भी महत्त्वों और प्रभाव की दृष्टि से असहयोग आन्दोलन उपेक्षणीय नहीं था। यह आन्दोलन एक सच्चा और महान जन-आन्दोलन था जिसने भारत की राष्ट्रीयता में नूतन प्राण फूंके और भारतीयों में स्वतन्त्रता व निर्भीकता की भावनाएँ पैदा की। इस आन्दोलन ने जनता की नस-नस में साहस की बिजली भर दी और उनके मनों की झिझक दूर करदी।

(ग) **स्वराज्य दल** —१९२२ में कांग्रेस-राजनीति में एक नई विचारधारा का विकास हुआ जिसके नेता सर्वश्री चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू और वी॰जे॰ पटेल थे। १९२३ की शुरू साल में ही चितरंजन दास ने कांग्रेस की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया और स्वराज्य दल का संगठन करने की विधिवत् घोषणा करदी। सितम्बर १९२३ में दिल्ली के कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में स्वराज्य दल के समर्थकों ने, जिन्हें परिवर्तनवादी भी कहा जाता है, सरलता से कांग्रेस द्वारा यह अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास करा लिया कि 'जिन कांग्रेसियों को कौंसिल-प्रवेश के लिए धार्मिक या और किसी प्रकार की आपत्ति न हो, उन्हें अपने निर्वाचनों में खड़े होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की आजादी है।" महात्मा गांधी को यद्यपि स्वराज्य दल की नीति से कम सहानुभूति थी तथापि कांग्रेस में उनके बहुमत को देखकर उन्होंने उस पर अपनी "मौन" स्वीकृति दे दी।

स्वराज्यवादी असहयोग आन्दोलन को एक नई दिशा देना चाहते थे। उन लोगों का झुकाव अड़गा नीति की तरफ था। असहयोग आन्दोलन में कौंसिल का बहिष्कार भी सम्मिलित था जबकि स्वराज्य दल वाले चाहते थे कि कौंसिलों में प्रवेश करें और वहां पर असहयोग और अड़गे की नीति द्वारा मोण्टफोर्ड सुधारों को तहस-नहस कर दें। महात्मा गांधी ने कताई, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और रचनात्मक कार्यक्रम के अन्यान्य पहलुओं पर सर्वाधिक बल दिया था। स्वराजिस्टों ने [illegible] के प्रति [illegible] की निष्ठा धारण की और इसी प्रकार 'सूरत की [illegible] पुनरावृत्ति होते [illegible] टल गई।

[illegible] के [illegible]

*स्म—स्वराज्य दल का लक्ष्य 'स्वराज्य' की [illegible] के शासनतन्त्र अन्तर्गत "औपनिवेशिक [illegible] स्थापना करना था। स्वराजिस्ट चाहते थे कि

(८) भारतीय समुद्र-तट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पारित कर दिया जाय।

(९) हत्या अथवा हत्या के प्रयास में साधारण ट्रिब्यूनलों द्वारा सजा पाये हुए व्यक्तियों को छोड़ कर अन्य सभी राजनैतिक कैदी तुरन्त मुक्त कर दिये जायें और सारे राजनैतिक मुकदमे वापिस ले लिये जायें। सभी निर्वासित भारतीयों को स्वदेश लौटने दिया जाय।

(१०) खुफिया पुलिस उठा दी जाय अथवा उस पर जनता का नियंत्रण स्थापित कर दिया जाय।

(११) आत्म रक्षार्थ शस्त्र रखने की अनुमति दी जाय और उन पर जनता का नियन्त्रण रहे।

सरकार द्वारा उपरोक्त शर्तों को ठुकरा देने पर महात्मा गान्धी के समक्ष आन्दोलन छेड़ देने के अलावा और कोई मार्ग नहीं बचा। यह निश्चित किया गया कि सविनय अवज्ञा का श्रीगणेश महात्मा गान्धी और उनके ७९ चुने हुए शिक्षित कार्यकर्ता करेंगे, और आन्दोलन दण्डी-यात्रा तथा सार्वजनिक नमक-कानून-भंग के साथ प्रारम्भ होगा।

निश्चित योजना के अनुरूप १२ मार्च १९३० को गान्धीजी और उनके ७९ प्रशिक्षित कार्यकर्ता साबरमती आश्रम से समुद्र-तट की ओर चल पड़े। दो सौ मील की लम्बी यात्रा पैदल चल कर २४ दिनों में तय की गई। इस महान् यात्रा के मार्ग में सहस्रों ग्रामवासियों ने महात्मा गान्धी तथा उनके साथियों का अभिनन्दन किया और महात्माजी ने उन्हें अहिंसा व आत्म-त्याग का प्राणवान सन्देश दिया। ज्यों-ज्यों तीर्थ यात्री, प्रगति करते गए त्यों-त्यों देश भक्ति की ज्वाला तेजी से प्रज्वलित होती गई। ६ अप्रेल को प्रातःकालीन प्रार्थना के बाद महात्मा गान्धी ने समुद्र तट पर नमक बीन कर, नमक-कानून भंग किया। यह सविनय-अवज्ञा के प्रारम्भ हो जाने का संकेत-चिन्ह था। ६ अप्रेल को ही गान्धीजी ने देशवासियों का आह्वान करते हुए इस कार्यक्रम पर चलने को निमन्त्रित किया—

"गांव गांव को नमक बीनने के लिये निकल पड़ना चाहिये। बहनों को शराब, अफीम और विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देना चाहिये। विदेशी वस्त्रों को जला देना चाहिये। छात्रों को राजकीय विद्यालय छोड़ देने चाहिये और सरकारी नौकरों को अपनी नौकरी से त्याग पत्र दे देना चाहिये।"

४ मई को महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिये गये। अब 'करबन्दी' को भी उपरोक्त कार्यक्रम में जोड़ दिया गया। आन्दोलन ने शीघ्र ही विशाल और देशव्यापी रूप धारण कर लिया। स्वयंसेवकों पर वास्तविक लाठी-प्रहार किया गया किन्तु वार बचाने के लिए उन्होंने भुजा तक नहीं उठाई। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार तो विस्मयजनक रहा। अकेले बम्बई में ही अंग्रेज व्यवसाइयों की सोलह मिलें बन्द हो गई जबकि भारतीय व्यवसाइयों की मिलें दुगनी गति से काम करने लगीं। भारतीय नारियों ने सारे संकोच को तिलांजलि देकर स्वातन्त्र्य योद्धाओं के साथ

बंगाल और मध्य प्रान्त में विशेष सफलता अर्जित की। इन दोनों प्रान्तों में द्वैध शासन-प्रणाली की क्रियान्विति को बिल्कुल रोक दिया गया। बंगाल में तीन बार मन्त्रिमण्डल के निर्माण को असम्भव कर दिया गया। स्वराज्य दल की सफलता के सम्बन्ध में एच०एन० ब्रेल्सफोर्ड ने कहा—"मेरे विचार से अड़ंगा लगाने की नीति बिल्कुल सही थी क्योंकि उसने विविध अनुदार दल वालों को भी इस बात का कायल कर दिया कि द्वैध शासन-प्रणाली अव्यवहार्य है।"

१९२५ में देशबन्धु चितरंजन दास की मृत्यु के पश्चात् स्वराज्य-दल की शक्ति में शनैः शनैः ह्रास होने लगा और दल सरकार के साथ सहयोग करने की दिशा में अधिकाधिक झुकता गया। "व्यवस्थापक-मण्डलों को अन्दर से छिन्न भिन्न कर देने की नीति का स्थान क्रमशः व्यवस्थापक-मण्डलों में भाग लेने, उनका उपयोग करने और सरकार के साथ सहयोग तक करने की नीति लेने लगी।" बंगाल और मध्य प्रान्त में भी स्वराज्य दल का प्रभाव काफी घट गया। १९२६ के बाद से इस दल में फूट पैदा हो गई और वह दो दलों में विभाजित हो गया। एक दल शासन के साथ प्रतियोगी सहयोग करने की नीति का प्रतिपादक था और दूसरा असहयोग करने की नीति का। मतभेद की यह खाई चौड़ी होती गई और १९२६ का अन्त होते-होते स्वराज्य-दल अपनी अधिकांश शक्ति खो बैठा।

(ग) सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन (१९३०–३१, १९३२–३४)—ब्रिटिश शासन के पूर्ण असहयोगी और दमनकारी रुख को देखकर कांग्रेस ने अपने लाहौर-अधिवेशन दिसम्बर १९२९ में 'पूर्ण स्वराज्य के लिये संग्राम' करने का निश्चय किया और अखिल भारतीय कांग्रेस-कार्य-समिति को 'सविनय अवज्ञा' शुरू करने का अधिकार दिया। उस समय देश में चारों तरफ इतनी घोर अशान्ति और क्षोभ की गर्मी छाई हुई थी कि यदि सविनय अवज्ञा आन्दोलन का श्रीगणेश न होता तो नौकरशाही दमन-चक्र भारत में एक ऐसी क्रान्ति का सूत्रपात कर देता जिसका स्वरूप निश्चय ही अहिंसात्मक न होता।

कांग्रेस कार्य समिति द्वारा आन्दोलन के संचालन और नेतृत्व का सम्पूर्ण भार महात्मा गांधी पर ही डाला गया क्योंकि वही इसके प्रणेता और जन्मदाता थे। आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व महात्माजी ने सरकार के सम्मुख निम्नलिखित

था। स्वयं चर्चिल तक ने कहा था कि शासन की दमन-नीति गदर के बाद इस बार सबसे कठोर रही थी।

सविनय अवज्ञा आंदोलन के उपरान्त १९४२ का 'भारत छोड़ो आंदोलन' तथा आजाद हिन्द व नौ-सैनिकों के विद्रोह को महत्वपूर्ण घटनाएं हुईं जिनका आवश्यकतानुसार वर्णन पहले किया जा चुका है।

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि १८५७ से लेकर १९४७ तक एक शताब्दी के काल में भारत में जो राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ उसके फल-स्वरूप विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियां विकसित हुईं। इन सभी आन्दोलनों अथवा राजनीतिक प्रवृत्तियों के साधन यद्यपि भिन्न-भिन्न थे तथापि इन सबका लक्ष्य मातृ-भूमि को दासता के बन्धन से मुक्त करना था।

स्वतन्त्र्य अथवा राष्ट्रीय आन्दोलन पर विभिन्न प्रकार से इतना प्रकाश डालने के उपरान्त अब हम उसके सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव पर दृष्टिपात करेंगे।

(३) देश के सामाजिक-आर्थिक जीवन पर राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव

(Impact of the Nationat Movement on Socio-Economic Life in the Country)

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन केवल भारत के स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास बन कर ही नहीं रहा, इसने सम्पूर्ण राष्ट्र के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन पर क्रान्तिकारी प्रभाव डाला। यह आन्दोलन इतना सर्वव्यापी था कि भारतीय समाज का कोई भी पक्ष इससे अछूता नहीं रह सका। इस महान् आन्दोलन ने हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन को किस-किस रूप में कहां तक प्रभावित किया, यह देखना निश्चय ही प्रासंगिक एवं रोचक होगा।

(१) राष्ट्रप्रेम और देश की एकता में योगदान—राष्ट्रीय आन्दोलन विश्व-इतिहास का एक अभूतपूर्व आन्दोलन था जिसने सम्पूर्ण मानवता के छठे भाग को संसार के महानतम साम्राज्य से अहिंसात्मक साधनों द्वारा सफलतापूर्वक लोहा लेने को उत्प्रेरित किया। कांग्रेस ने भारतीय जनता के सामने सामान्य लक्ष्य प्रस्तुत किया और भारत की जनता में विद्यमान राष्ट्रप्रेम तथा राष्ट्रीयता के वृक्ष को पन-पाया। पुनर्जागरण राष्ट्रीय आन्दोलन को आवश्यक बौद्धिक एवं भावनात्मक आधार प्रदान कर ही चुका था। इन सब परिस्थितियों में सम्पूर्ण देश दासता की शृंखलाओं को तोड़ने के लिए कटिबद्ध हो उठा। देश का कोना-कोना, भारतीय भूमि का प्रत्येक कण, भारत का प्रत्येक वर्ग और समुदाय अपने पारस्परिक मतभेदों को भुलाकर और अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का लोभन कर स्वतन्त्रता के सुदूर लक्ष्य की ओर अग्रसर हो गया। मातृभूमि पर मर मिटने वाले और अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले शूर-वीरों की कमी नहीं रही। उनके बलिदान ने सम्पूर्ण जन-मानस में राष्ट्रभक्ति और देशप्रेम की भयंकर अग्नि प्रज्वलित कर दी जिसमें तप कर एक अत्यन्त शक्तिशाली और ठोस राष्ट्रीय एकता का निर्माण हुआ और आधुनिक विश्व को सम्भवतः पहली बार एक शक्तिशाली भारत राष्ट्र की अनुभूति हुई। राष्ट्रीय

मिलकर कार्य किया। सम्पूर्ण भारत नवीन जीवन से भर उठा। श्री... के अनुसार "इस महान् घटना (गांधीजी द्वारा नमक-कानून भंग करने की) के एवं उसके साथ-साथ और बाद में, जो दृश्य देखने को आये, वे इतने उत्साहपूर्ण, ... और जीवन फूंकने वाले थे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इस ... अवसर पर मनुष्यों के हृदयों में देश-प्रेम की जितनी प्रबल धारा बह रही थी ... कभी नहीं बही थी। यह एक महान् आन्दोलन का महान आरम्भ था और ... ही भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान होगा।" ... कांग्रेस के 'सम्पत्तिशाली वर्ग' ने इस महान् आन्दोलन की उपेक्षा की और ... अधिकांश मुसलमान भी इससे पृथक रहे। फिर भी पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में खुदाई खिदमतगारों ने और अन्य अनेक देशभक्त मुसलमानों ने राष्ट्रवादी शक्तियों का ... दिया। नौकरशाही के भयंकर दमनचक्र ने जनता के प्रतिरोध को दृढ़ से दृढ़तर ही बनाया।

जिस समय आन्दोलन जोरों से चल रहा था, ब्रिटिश सरकार ने ... पहली गोलमेज परिषद् की और भारत के नये संविधान के सिद्धांतों पर विचार विनिमय किया। कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने की इच्छा से सरकार ने ... गान्धी के साथ समझौता-वार्ता आरम्भ की। फलतः २६ जनवरी १९३१ को गांधीजी जेल से रिहा हो गए और ५ मार्च १९३१ को गान्धी-इरविन समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसके फलस्वरूप सत्याग्रही कैदी जेलों से मुक्त कर दिए गए, सविनय ... आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और भारत की राजनीतिक समस्या को गोलमेज परिषद् द्वारा हल करना स्वीकार किया गया।

गान्धी-इरविन समझौते के अनुसार, लन्दन में दूसरी गोलमेज परिषद् में, जो ७ सितम्बर १९३१ से शुरू हो गई, कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने भाग लिया। लेकिन उनकी उपस्थिति भी साम्प्रदायिक गतिरोध को दूर करने में असफल रही।

[illegible]गार में भी उन्हें प्रवेश नहीं मिलता था और उनकी परछाई मात्र से लोग अपने [illegible]अपवित्र मानते थे। ब्रिटिश शासन ने अपनी कूटनीतिज्ञता द्वारा समाज के इस [illegible]त–वर्ग के उद्धार का कभी कोई प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत १९३२ में साम्प्रदायिक [illegible]र्णय की घोषणा द्वारा इस वर्ग के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था रखी और [illegible]स प्रकार इस वर्ग को राजनीतिक रूप से हिन्दू जाति से पृथक कर देना चाहा। राष्ट्रीय आन्दोलन के कर्णधार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी अंग्रेजों की कूटनीति को समझ [illegible]ये। उन्होंने साम्प्रदायिक पचाट का विरोध करने के लिए जेल में ही आमरण [illegible]नशन प्रारम्भ कर दिया। उधर अछूत–संघ के चेयरमैन डा० अम्बेदकर ने [illegible]ास्तविकता से आँख मूँदते हुए गांधीजी के इस कार्य को राजनीतिक धूर्तता बताया। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता चिन्तित हो गये और सारा भारत परेशान हो उठा कि [illegible]ांधीजी की प्राणरक्षा किस प्रकार की जाय। अन्त में पूना समझौता हुआ जिसके [illegible]ारा गांधीजी ने हरिजनों को उनकी संख्या के अनुपात से अधिक सीटें निर्वाचन में देना स्वीकार कर लिया किन्तु इस बात का निषेध कर दिया गया कि समाज के इस वर्ग को हिन्दुओं से पृथक कर दिया जाय। यहीं से गांधीजी ने अछूतों को 'हरिजन' नाम दिया तथा अपने पत्र का नाम भी उन्होंने 'हरिजन' ही रखा। १९३४ ई० के बाद तो गांधीजी सक्रिय राजनीति की अपेक्षा हरिजन सेवा में ही अधिक समय लगाने लगे। कांग्रेस से भी अपने कार्यक्रम में अस्पृश्यता की समाप्ति पर विशेष बल दिया। हरिजनों को सार्वजनिक कुँओं स्कूलों, सड़कों और समस्त सार्वजनिक संस्थाओं के संबंध में समान अधिकार दिलाने के प्रयास किए जाने लगे। जब १९३७ में भारत के अधिकांश प्रांतों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने तो हरिजनों की सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य किये गये। राष्ट्रीय आन्दोलन अन्त समय तक अस्पृश्यता निवारण के कार्यक्रम को ठीक प्रकार से चलाता रहा और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्वतन्त्र भारत के संविधान में अस्पृश्यता को गैर-कानूनी ठहरा दिया गया तथा दलित वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की गई। सामाजिक क्षेत्र में भी शनैः शनैः अस्पृश्यता की भावना मिटती जा रही है। यह सब राष्ट्रीय आन्दोलन का ही दूरगामी प्रभाव है।

(५) नारी-जागरण—राष्ट्रीय आन्दोलन ने नारी-जागृति में महत्वपूर्ण योग दिया। मध्य युगीन मुस्लिम-प्रभाव के कारण भारत में नारी का क्षेत्र घर की चहारदिवारी तक ही सीमित हो गया था। वे पर्दे की पुतली बनी हुई थीं। भारतीय समाज में उन्हें बहुत नीचा दर्जा प्राप्त था और पुरुष-वर्ग नारी को पूर्णतः अपनी सेविका बल्कि पैर की जूती समझे हुआ था। आर्य-युगीन नारी इस समय बुरी तरह अपमानित-प्रताडित अवस्था में थी। पश्चिम के सम्पर्क ने और पुनर्जागरण ने नारी की स्थिति में कुछ सुधार किये। परन्तु फिर भी भारतीय समाज की परम्परागत रूढ़िवादिता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ सका। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने नारी की इस पतनोन्मुख अवस्था को राष्ट्र की प्रगति और लक्ष्य की प्राप्ति में एक बड़ी बाधा माना। उन्होंने इस बात को समझ लिया कि यदि भारतीय नारी को जगा दिया जाय तो वह चट्टान की भाँति अडिग और सशक्त सिद्ध होगी।

आन्दोलन से पूर्व अंग्रेजों और पाश्चात्य देशों की दृष्टि में भारत एक राज्य तो था, पर राष्ट्र नहीं। कांग्रेस ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध सम्पूर्ण सामाजिक शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल एवं शक्तिशाली नेतृत्व प्रदान किया। शताब्दियों से सोते हुए भारतीय समाज मे नवीन चेतना और पुनर्जागृति का एक ऐसा ज्वार आया जिसमे शोषित और पददलित भारतीय जनता को अपनी उन्नति तथा समृद्धि के भावी स्वप्नो के दर्शन हुए। इस तरह राष्ट्रीय आन्दोलन से एक नवीन भारत की अभिवृद्धि हुई। आज जब हम एक तरफ पाकिस्तान और दूसरी तरफ चीन के खतरो के बीच फसे हुए हैं तब हमारी प्रबल राष्ट्रीय भावना ही हमे उनका सफलतापूर्वक मुकाबला करने मे सक्षम बनाये हुए है। यह अवश्य दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय जनता मे कुछ लोग केवल राष्ट्रीयता की पोशाक धारण किये हुए हैं, आत्मा से वे राष्ट्रीय प्रतीत नहीं होते। हमें विश्वास करना चाहिये कि हमारी प्रबल राष्ट्रीय भावना का झंझावात उन्हे अन्ततः अपने मे आत्मसात् कर लेगा।

(२) **सामुदायिक कुरीतियों में कमी**—धर्म सुधार और समाज सुधार आंदोलनो ने सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध जो अभियान प्रारम्भ किया था, राष्ट्रीय आंदोलन ने उसे और भी शक्तिशाली बनाया। इस आंदोलन ने एक स्वस्थ तथा प्रगतिशील समाज की नींव डाल कर राष्ट्र को पुनरुत्थान के मार्ग पर अग्रसर किया। राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने आजादी के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए और समाज ो आगे बढाने के लिए देश की जनता को आह्वान किया कि वह सामाजिक कुरीतियों ौर निरर्थक प्राचीन रूढियो से मुक्ति पाने का प्रयत्न करे। फलतः राष्ट्रीय आंदो- न के विस्तार के साथ-साथ प्राचीन रूढ़ियों का प्रभाव कम होता गया, जाति-प्रथा बन्धन ढीले पड़ते गये और विभिन्न वर्गों के मध्य मतभेदो की दीवारें गिरती । कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम में समाज सुधार को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

(३) **असमानता का अन्त**—भारत के राष्ट्रीय आंदोलन ने असमानता को करने मे पर्याप्त सफलता अर्जित की। फ्रांस के क्रान्तिकारियो ने विश्व को ता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व के आदर्श विश्व को दिए। भारत के राष्ट्रीय लन ने इन आदर्शों को अपनाया और देश मे व्याप्त हर प्रकार की असमानता रोध किया। ब्रिटिश शासकों ने अपने हितों की रक्षा के लिए भारतीयों में च की गम्भीर मनोवृत्ति पैदा कर रखी थी तथा मध्ययुगीन जागीरदारी प्रथा रण दे रखा था। राष्ट्रीय आन्दोलन ने न केवल साम्राज्यवादी शासन का किया अपितु इन संस्थाओं का भी विरोध किया। इसी का अन्त मे यह निकला कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ ही ऊँच-नीच की मनोवृत्ति पैदा ी तथा असमानता को आसमान पर चढ़ाये रखने वाली प्रतिक्रियावादी की समाप्ति हो गयी।

) **अस्पृश्यता का अन्त**—राष्ट्रीय आन्दोलन की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन छूतपन अथवा अस्पृश्यता के अभिशाप को मिटाना है। अस्पृश्यता भारत क जीवन का दुष्ट रोग था। समाज के एक वर्ग को घोर घृणा की दृष्टि था, उसे ... के योग्य नहीं समझा जाता था, भगवान

लिये महात्मा गांधी भी गांव-गांव में शिक्षा के प्रसार के इच्छुक थे, किन्तु वे अंग्रेजों द्वारा दी जाने वाली आधुनिक शिक्षा-प्रणाली को अत्यन्त दोषपूर्ण मानते थे। इसीलिए असहयोग-आन्दोलन में अंग्रेजी स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार किया गया और राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थायें स्थापित की गई। गांधीजी शिक्षा का ध्येय व्यक्ति का चरित्र-निर्माण मानते थे, अतः उन्होंने नैतिक शिक्षा पर अधिक बल दिया। वे छात्रों को सत्य, अहिंसा आदि नैतिक सिद्धान्तों का ज्ञान कराने के पक्ष में थे। उन्होंने शिक्षा के बारे में एक योजना प्रस्तुत की जिसे 'बुनियादी तालीम' कहते हैं। इसमें छात्रों में आत्म निर्भरता और श्रम की भावना का विकास किया जाता है। सन् १९३९ में प्रान्तीय कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने अशिक्षा के उन्मूलन के लिए महात्मा गांधी की 'बुनियादी तालीम' (Basic Education) को अपनाया लेकिन दुर्भाग्यवश द्वितीय महायुद्ध के सूत्रपात पर कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद कांग्रेस सरकार ने पुनः 'बुनियादी शिक्षा' को ही देश की शिक्षा प्रणाली का आधार बनाया। यह राष्ट्रीय आन्दोलन का दूरगामी परिणाम है कि कांग्रेस ने लोकतन्त्र को अपनाकर शिक्षा के महत्व को गम्भीर रूप से स्वीकार किया है।

(७) ग्रामराज्य तथा विकेन्द्रित व्यवस्था—राष्ट्रीय आन्दोलन में प्राण फूंकने वाले राष्ट्रपिता गांधीजी कहा करते थे कि भारत का निवास गांवों में है। वे प्रत्येक गांव को अपने में एक पूर्ण इकाई समझते हुए चाहते थे कि हर गांव पूर्ण रूप से सम्पन्न बने, आत्म-निर्भर बने और स्वावलम्बी बने। ग्रामवासियों को प्रत्येक प्रकार की वस्तु के लिये नगरों की ओर न झांकना पड़े। गांधीजी तो प्रत्येक गांव की शासन-व्यवस्था तक अलग चाहते थे। ग्राम-विवादों को सुलझाने के लिए वे पंचायतों की स्थापना के पक्ष में थे। गांधीजी ने विकेन्द्रित व्यवस्था का सदैव ही प्रबल पक्ष लिया और हमारी वर्तमान सरकार भी इसी नीति का समर्थन करती है। लोकतन्त्रात्मक विकेन्द्रीयकरण की व्यवस्था भारतीय संघ के अधिकांश राज्यों में अपनाई गई है और गांवों को स्वावलम्बी बनाने का भरसक प्रयास किया जा रहा है।

स्वातन्त्र्य संघर्ष के दौरान में राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने ग्रामीणों के कष्टों को दूर करने का पूरा प्रयास किया। चम्पारन में नील की खेती होती थी और अंग्रेज मालिक-किसानों पर अत्याचार करते थे। महात्मा गांधी बिहार गये और सन् १९१७ में उन्होंने डा० राजेन्द्रप्रसाद के सहयोग से उनका कष्ट दूर किया। गुजरात के किसानों ने भी गांधीजी के नेतृत्व में कर-मुक्ति के लिये आन्दोलन किया और उनको सफलता मिली। १९२८ में बारदोली के किसानों ने सरकार द्वारा लगान बढ़ाये जाने के विरुद्ध सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में सत्याग्रह-आन्दोलन चलाया। गांधीजी ने अखिल-भारतीय-ग्राम-उद्योग सभा की स्थापना की। सन् १९३७ में स्थापित कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों ने भी ग्राम-सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये।

आर्थिक प्रभाव (स्वदेशी आन्दोलन, नमक-कर, मद्य-निषेध, ग्रामोद्योग-भू-प्रणाली आदि)—ब्रिटिश शासनकाल में भारत की आर्थिक स्थिति पूर्णतः पतनोन्मुख थी और जीविकोपार्जन के साधन अत्यन्त नगण्य थे। कृषि पिछड़ी और कम उत्पादक

एक होकर संघर्ष के लिये तैयार किया। इसी का यह परिणाम हुआ कि आगे चल कर देश की विभिन्न आर्थिक समस्याएँ बड़ी रुचि के साथ राजनीतिक आन्दोलनों के कार्यक्रमों में विचार-विमर्श के लिये सम्मिलित की जाने लगीं। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण करने की विचारधारा को प्रोत्साहन मिला ताकि उद्योगों का लाभ सामान्य जनता तक पहुँच सके। महात्मा गांधी ने राष्ट्र को आर्थिक दृष्टिकोण से सबल बनाने के लिये १४ सूत्री कार्यक्रम रखा और स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि अब यह पुराना विचार तेजी से मिटने लगा कि राजनीति को प्रथम स्थान दो और सामाजिक तथा आर्थिक प्रश्नों पर बाद में विचार करो।

राष्ट्रीय आंदोलन के नेता यह जानते थे कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या निर्धनता की होगी, इसीलिए प्रारम्भ से ही उन्होंने देश को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयत्न किया।

राष्ट्रीय आंदोलन ने हमारे आर्थिक जीवन को और भी अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया। गांधीजी मार्क्स के विपरीत वर्ग-सहयोग के पक्षपाती थे, अहिंसा के उपासक होने के कारण हृदय-परिवर्तन में अधिक विश्वास करते थे। वे पूँजीपतियों को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे, वरन् उन्हें समाज का अभिभावक बनने के लिये प्रेरित करते थे और चाहते थे कि पूँजीपति अपनी सम्पत्ति को समाज का ट्रस्ट समझें और उसे समाज-कल्याण में लगायें। उनका यह विश्वास था कि पूँजीपति समाज के ट्रस्टी के रूप में अधिक उपयोगी कार्य करेंगे। गांधीजी चाहते थे कि श्रमिकों को भी उद्योगों के नियंत्रण में भाग मिलना चाहिये। वे श्रमिकों के लिये उचित पारिश्रमिक-व्यवस्था के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि उन्हें पर्याप्त अवकाश और अच्छा वेतन मिले। सन् १९१८ में अहमदाबाद के मिल-मजदूरों के वेतन-वृद्धि के आंदोलन को जब मिल-मालिकों ने ठुकरा दिया तो गांधीजी ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अंत में मजदूरों की शर्तें स्वीकार हो गई और उनके वेतन में वृद्धि हो गई। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस ने जिस समाजवादी व्यवस्था के आदर्श को अपनाया है, वह गांधी- विचारधारा पर ही आधारित है और हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की देन है।

राष्ट्रीय आंदोलन ने जीवन के आर्थिक पक्ष के प्रत्येक पहलू को स्पर्श किया। गोखले ने नमक-कर का खंडन किया था क्योंकि उनके अनुसार यह कर निर्धन और शोषित कृषक-वर्ग के ऊपर विशेष बोझ था। किसान नमक का उपयोग अधिक करते हैं क्योंकि नमक की आवश्यकता उनके मवेशियों को भी है। स्पष्टतः यह कर अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। महात्मा गांधी ने नमक-कर कानून को तोड़ने के लिये आन्दोलन किया और स्वतंत्रता मिलने पर नेहरू सरकार ने इस कर को हटा दिया।

इस तरह हम देखते हैं कि सम्पूर्ण *राष्ट्रीय आन्दोलन ने इस निश्चित सत्य का* दर्शन कराया कि शासन व्यक्ति के लिये है न कि व्यक्ति शासन के लिए। राष्ट्रीय आन्दोलन की भारतीय जीवन को यह एक अत्यन्त मूल्यवान देन है। यदि आज हम सरकारी संस्थानों पर यह लिखा हुआ देखते हैं कि 'सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है',

थी। कुटीर-व्यवसाय, दस्तकारी के काम धंधे आदि सब चौपट हो चुके थे। बेरोजगारी और बेकारी की प्रथा अपनी चरम सीमा पर थी। अंग्रेजों के इस प्रकार के आर्थिक शोषण के विरुद्ध भारत में जो प्रतिक्रिया हुई उसने राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया। इससे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आधार पूँजीवाद को गहरा आघात पहुँचा। मैनचैस्टर और लीवरपूल के विशाल कारखाने ठप हो गये। स्वदेशी आन्दोलन एक शोषित राष्ट्र की शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया थी जिससे भारत का आर्थिक पुनर्जीवन हुआ। भारतीयों ने भारत की बनी हुई वस्तुओं को अपनाना प्रारम्भ किया जिससे उन वस्तुओं का निर्माण देशों में ही होने लगा और राष्ट्र के औद्योगीकरण में सहायता मिली।

गांधीयुग में देश की आर्थिक आत्म-निर्भरता पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा। ग्रामोद्योग कार्यक्रमों के अन्तर्गत कुटीर-व्यवसायों को, जो देश की अर्थ-व्यवस्था में प्रमुख स्थान बनाये हुए थे, पुनर्जीवित किया गया। सहकारिता की भावना को जागृत कर सहकारी समितियों की स्थापना हुई। इससे एकीकरण हुआ और कृषि तथा कुटीर-व्यवसायों में उन्नति की आशा का प्रस्फुरण हुआ। कुटीर-व्यवसायों को कृषि के साथ जोड़कर कृषकों की आय को परिपूरित किया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतृत्व में किये गये विभिन्न प्रयासों के फलस्वरूप कृषि-क्षेत्र में सारा की व्यवस्था के लिए महाजनों द्वारा दिये गये ऋणों के सम्बन्ध में नैतिक तथा कानूनी तरीकों का सहारा लिया गया। उन्नत बीज, सिंचाई की व्यवस्था आदि के प्रति जागृत होकर जनता ने सरकार से अपने अधिकारों की मांग की। भारतीय कृषि में व्यापारीकरण के लिए उत्पादन होने लगा और भारतीय कृषि तथा उत्पादनों का विश्व-अर्थ-

(n) "Impact of Nationalist Movement on Socio-Economic life of India."
"राष्ट्रीय आन्दोलन का देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर प्रभाव।"

(o) "Swarajya Party."
"स्वराज्य दल।"

BRIEF NOTES
(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

१. निम्नलिखित में से प्रत्येक पर लगभग २०० शब्दों में टिप्पणी लिखिए:—

(a) भारत में एकता की समस्या।
(b) राष्ट्रीय एकीकरण में स्वातन्त्र्य आन्दोलन के प्रमुख नेताओं का योग।
(c) राष्ट्रीय और एकीकरण के विकास में १८५७ की क्रांति की भूमिका।
(d) महात्मा गांधी और एकीकरण की दिशा में उनके प्रयास।
(e) एकीकरण के विकास के लिए स्वातन्त्र्य आन्दोलन के अन्तर्गत किए गए विभिन्न प्रमुख कार्यक्रम।
(f) राष्ट्रीयता के विकास में नारियों का योगदान।
(g) उदार राष्ट्रवाद।
(h) उग्र राष्ट्रवाद।
(i) क्रांतिकारी राष्ट्रवाद।
(j) सविनय अवज्ञा आन्दोलन।
(k) स्वराज्य दल।
(l) खिलाफत आन्दोलन।
(m) १९४२ का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन।
(n) उग्रवादी राष्ट्रवाद के उदय के कारण।
(o) क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का उत्तरकाल।
(p) उदारवादी राष्ट्रवादियों की कार्य प्रणाली या उनके साधन।
(q) उदारवाद और उग्रवाद में अन्तर।
(r) असहयोग आन्दोलन के अन्तर्गत अपनाये गये कार्यक्रम।
(s) उदार राष्ट्रवाद की सफलताएं और असफलताएं।
(t) उग्र राष्ट्रवाद की सफलताएँ और असफलताएं।
(u) असहयोग आन्दोलन का महत्व।
(v) राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा लाये गये सामाजिक परिवर्तन।
(w) राष्ट्रीय आन्दोलन और आर्थिक प्रगति।
(x) गांधीजी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रभाव।
(y) स्वातन्त्र्य आन्दोलन के कुछ प्रमुख नेता।
(z) १९४६ का नौसैनिकों का विद्रोह।

२. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:—

(a) होमरूल आन्दोलन।

तो इसे हमें राष्ट्रीय आन्दोलन का ही प्रभाव समझना चाहिए। स्वतन्त्र भारत की सरकार बहुत कुछ उन्हीं कार्यक्रमों पर चल रही है जिनकी आधारभूमि राष्ट्रीय आन्दोलन ने तैयार कर दी थी।

TOPICS FOR ESSAYS
(निबन्ध के विषय)

I Write an essay on the following —

(a) "The Role of the Freedom Movement in unifying country and its People"
"देश और देश की जनता के एकीकरण में स्वातन्त्र्य आन्दोलन भूमिका।"

(b) The Freedom Movement
स्वातन्त्र्य आन्दोलन।

(c) "Unity amidst diversities"
"विभिन्नता में एकता।"

(d) Indian Leaders and their efforts for Unity
भारतीय नेता और एकता के लिये उनके प्रयास।

(e) "Political Trends and Nationalist Movement"
"राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ।"

(f) Liberal Nationalism in India.
भारत में उदार राष्ट्रीयवाद।

(g) "The Extremist School of Thought in Indian
"भारतीय राजनीति में उग्रवादी विचारधारा।"

(h) "Gandhian Age in Indian History"
"भारतीय इतिहास में गांधी युग।"

Non Co-operation Movement
असहयोग आन्दोलन।

Civil Disobedience Movement.
अवज्ञा आन्दोलन।

The Rise and Fall of ...
... in In...

(b) स्वदेशी आन्दोलन।
(c) भारत के बाहर स्वतन्त्रता-प्रयास।
(d) भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राष्ट्रीय एकता पर प्रभाव।
(e) राष्ट्रीय आन्दोलन और समाजवादी विचारधारा।
(f) राष्ट्रीय आन्दोलन और शिक्षा का पुनर्गठन।
(g) उपसंहार।

OBJECTIVE TYPE QUESTIONS

(नवीन शैली के प्रश्न)

१. 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिये।

(क) भारतीय जीवन विविधता से परिपूर्ण है।
(ख) सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रीय एकता के मार्ग को कण्टकमय बन
(ग) भक्ति-आन्दोलन ने राष्ट्रीय एकीकरण में सराहनीय योग दिया।
(घ) असहयोग आन्दोलन ने एकता की भावना में नूतन प्राणों का सचार किय
(ङ) लोकमान्य तिलक के पत्रों 'केसरी' और 'मराठा' ने राष्ट्रीय एकता। भावना को ठेस पहुँचाई।
(च) कांग्रेस में गर्म दल का आरम्भ १८८५ से हुआ।
(छ) मिण्टो-मोर्ले सुधारों ने देश में नई आशा का सचार किया।
(ज) १९१९ में कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गई।
(झ) बंगाल का विभाजन लार्ड लिटन ने किया।
(ञ) प्रथम गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने भाग

[illegible] ोलमेज परिषद में कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने भाग लिया
[illegible] पश्चात ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली ने घोषित किया।
[illegible] से १९०५ तक कांग्रेस का नेतृत्व उदारवादियों के हाथों में रहा।
[illegible] राष्ट्रवादी उच्चकोटि के देशभक्त थे।
[illegible] बनर्जी कट्टर उदारपन्थी थे।
[illegible] उदवार का ही एक दूसरा रूप था।
[illegible] सर्वप्रथम महाराष्ट्र में उद्भूत हुई।
[illegible] चितरंजन दास ने गणपति उत्सव पुनः प्रारम्भ किया।
१८०२ में तिलक ने शिवाजी उत्सव प्रारम्भ किया।
[illegible] १९०५ में कांग्रेस की 'सूरत की फूट' एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी।
[illegible] पाल एक आदर्श उदारवादी कांग्रेसी थे।
[illegible] क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का प्रारम्भिक केन्द्र महाराष्ट्र था।
[illegible] गांधी ने अगस्त १९१८ में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया।
[illegible] का जन्म १९३२ में हुआ।
[illegible] का कहना था—'इंग्लैंड हमारा पथ-प्रदर्शक है।

(ठ) रैण्ड हत्याकाण्ड	१९४६
(ड) दण्डी यात्रा	१९०८
(ढ) चौरी-चौरा काण्ड	१९२०
(ण) नौ-सेना विद्रोह	१९१६
(त) द्वितीय गोलमेज परिषद्	१९३०
(थ) लाला लाजपत राय की मृत्यु	१९११
(द) साइमन कमीशन का भारत आगमन	१८९७
(ध) सूरत-विच्छेद	१९२२
(न) भारत छोड़ो आन्दोलन	१९०५

B. Contemporary Problems
समकालीन समस्याएं

५. आर्थिक पुनर्निर्माण एक चुनौती–भारत की आवश्यकताएं और उसके साधन, भारत के आर्थिक विकास में नियोजन की समस्या–विशेषकर कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में, पंचवर्षीय योजनाएं।

६ भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता की समस्याए–समकालीन भारतीय समाज में ऐक्यकारी शक्तियों का अध्ययन।

७. भारतीय कला वास्तुकला, मूर्तिकला चित्रकला संगीत और साहित्य–की प्रमुख विशेषताएं।

५

आर्थिक पुनर्निर्माण की चुनौती–भारत की आवश्यकताएं और उसके साधन, भारत के आर्थिक विकास मे नियोजन की समस्या-विशेषकर कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में, पंचवर्षीय योजनाएं

(THE CHALLENGE OF ECONOMIC REGENERATION INDIA'S NEEDS AND RESOURCES, PROBLEMS OF PLANNING IN ECONOMIC DEVELOPMENT OF PLANNING IN ECONOMIC DEVELOPMENT OF INDIA—ESPECIALLY THAT OF AGRICULTURE AND INDUSTRY, FIVE YEAR PLANS)

[१] आर्थिक पुनर्निर्माण की चुनौती
(The Challenge of Economic Regeneration)

आर्थिक पुनर्निर्माण की समस्या आज हमारे सामने एक प्रबल चुनौती के रूप में उपस्थित है। विश्व महान् वैज्ञानिक एवं अन्य उपलब्धियां प्राप्त कर चुका है किन्तु फिर भी उसकी जनसख्या के एक बहुत बडे भाग के पास जीवन-निर्वाह की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साधन भी नहीं हैं। विश्व की लगभग २/३ जनता गम्भीर आर्थिक पिछडेपन से पीडित है और उसे विश्व की कुल आय का अनुमानत. केवल १/६ भाग मिलता है।

आर्थिक पुनर्निर्माण की समस्या अत्यन्त गम्भीर रूप मे द्वितीय महायुद्ध के बाद से लेकर आज तक हमारे सामने एक विकट प्रश्न-चिन्ह बन कर खडी हुयी है। महायुद्ध के बाद अनेक छोटे-बडे नवीन राष्ट्रों का जन्म हुआ। "साम्राज्यवाद द्वारा चूस कर फेंके गये" इन राष्ट्रों ने यह भली प्रकार बता दिया है कि जब तक इनकी अर्थ-व्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण नहीं हो जाता और इनके नागरिक मानवीय रहन-सहन के स्तर को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक ससार मे शांति की स्थापना एक दूर का कभी पूरा न हो सकने वाला सपना है। इन राष्ट्रों की आर्थिक अशांति ही आज के सारे राजनीतिक विस्फोटों का मूल कारण बनी हुई है। इस स्थिति को समझते हुए ही सयुक्त राष्ट्र संघ के नेतृत्व में और पृथक मे भी ससार के विकसित एवं आर्थिक दृष्टि से समृद्ध देश आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए देशों के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये सचेष्ट हैं, यद्यपि उनके इन प्रयासों मे बहुत कुछ उनका अपना स्वार्थ निहित है।

आर्थिक पुनर्निर्माण, अथवा आर्थिक विकास की एकदम स्पष्ट परिभाषा करना अवश्य ही कठिन है, तथापि संक्षेप में और मोटे तौर पर यह कहा जा सकता

है कि 'आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक लम्बे समय के दौरान एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।" आर्थिक पुनर्निर्माण या आर्थिक विकास की चर्चा करने से हमारा अभिप्राय वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से होता है। वर्तमान काल में विश्व के सभी देश इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो क्योंकि यदि ऐसा होगा तो स्वभावतः प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में भी वृद्धि होगी। सभी देश चाहते हैं कि बढ़ने वाली आय का समाज के सभी वर्गों में समान या लगभग समान वितरण हो और इस आय को उत्पन्न करने वाले साधनों, विशेषकर मानव-साधनों, की स्थिति में सुधार हो। ऐसा होने पर ही आर्थिक कल्याण के साथ-साथ सामाजिक कल्याण सम्भव हो सकता है।

किसी भी देश का आर्थिक पुनर्निर्माण उस देश के वातावरण से प्रभावित होता है। यह वातावरण भौगोलिक धार्मिक, राजनीति अथवा सामाजिक परम्पराओं के रूप में अविरल रूप से आर्थिक विकास की गति को प्रभावित करता रहता है। भौगोलिक धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाने पर कोई भी देश निर्बाध गति से आर्थिक पुनर्निर्माण या विकास कर सकता है, जबकि इनकी प्रतिकूलता आर्थिक विकास में प्रतिरोध उत्पन्न करती है।

आज विश्व में आर्थिक दृष्टि से हमें अत्यधिक विषमता दिखाई देती है। एक तरफ कनाडा, न्यूजीलैण्ड, संयुक्तराज्य अमेरिका, इंग्लैंड तथा पश्चिमी-केन्द्रीय यूरोप के कुछ ऐसे देश हैं जहाँ आर्थिक समृद्धि की थाह नहीं है और वहाँ के निवासियों को जीवन-निर्वाह के प्रचुर साधन उपलब्ध हैं, दूसरी तरफ अफ्रीका, लेटिन अमेरिका और एशिया के अनेक देश ऐसे भी हैं जहाँ भुखमरी, बेकारी एवं निर्धनता का साम्राज्य है। प्रथम समूह के विकसित देशों में निवासी सुखी, सम्पन्न और रोग-मुक्त दिखाई देते हैं, जबकि द्वितीय समूह के देशों में करोड़ों व्यक्तियों को जीवन-यापन के मूल साधन भी ठीक प्रकार से उपलब्ध नहीं हैं। प्रथम समूह के देशों में सम्पूर्ण संसार की जनसंख्या का केवल १८ प्रतिशत निवास करता है लेकिन समस्त विश्व की आय का ६७ प्रतिशत इनके पास जाता है। द्वितीय समूह के देश आर्थिक पुनर्निर्माण के चुनौती भरे क्षेत्र हैं।

आज के उन्नत और सभ्य विश्व के आर्थिक क्षेत्र की वास्तव में यह अत्यन्त शोचनीय तस्वीर है कि मानवता का दो तिहाई भाग अमानवीय परिस्थितियों में जीवन काट रहा है। विश्व की जनसंख्या का लगभग ६७% भाग विश्व की कुल आय का केवल १५% ही प्राप्त कर पाता है। विश्व की इस दो तिहाई जनसंख्या का आर्थिक पुनर्निर्माण अथवा आर्थिक विकास २० वीं शताब्दी को सर्वाधिक ललकारती हुई समस्या है। संसार के सभी नागरिक और राजनीतिज्ञ यह भली भाँति जानते हैं कि गरीबी और भुखमरी ही क्रान्ति के विस्फोटों को जन्म देती है और यदि युद्धों तथा क्रान्तियों से बचना है तो प्रत्येक नागरिक को अपने दलित भाइयों के आर्थिक पुनर्निर्माण की चुनौती को स्वीकार करना पड़ेगा। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े अल्पविकसित या अर्द्ध-

विकसित ये राष्ट्र अपने आर्थिक उत्थान के कार्यक्रमों में जुटे हुये हैं और इस विश्वास से परिपूर्ण हैं कि वे गरीबी, भुखमरी, रोगों और अन्य प्रताड़नाओं का अन्त कर सकेंगे। अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों ने स्वयं अपने आर्थिक पुनर्निर्माण की चुनौती स्वीकार की है और संसार के प्रत्येक विकसित राष्ट्र का यह कर्त्तव्य है कि वह इस चुनौती का मुकाबला करने में उनकी सहायता करे। इसमें विकसित राष्ट्रों की स्वयं की सुरक्षा निहित है।

भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देशों के प्रमुख लक्षण—अल्पविकसित या अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों द्वारा स्वीकार की गई आर्थिक पुनर्निर्माण की चुनौती का अनुमान हम तभी लगा सकते हैं जब हमें ऐसे राष्ट्रों की अविकसित अर्थ व्यवस्थाओं और समस्याओं के कुछ मूल-भूत लक्षणों का अनुमान हो। इन लक्षणों के आधार पर ही हम यह जान सकेंगे कि भारत एक अल्प-विकसित देश है अथवा नहीं, और यदि है तो उस अल्प-विकास की सीमा कहां तक है ? दूसरे शब्दों में हम इस बात का पता लगा सकेंगे कि भारत की अधिक आवश्यकतायें और उसके साधन क्या हैं।

अल्प—विकसित देशों के मुख्य लक्षण ये हैं :—

(१) निर्धनता—यह अल्प-विकास का सबसे बड़ा लक्षण है। विकसित और अल्प-विकसित देशों के मध्य एक बहुत बड़ी खाई निर्धनता की ही होती है क्योंकि विकसित देशों के लोगों की औसत आयु अपेक्षाकृत अधिक होती है। दिसम्बर १६४७ में अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक तथा वित्तीय समस्याओं से सम्बद्ध राष्ट्रीय-परामर्श-दात्री परिषद् ने एक अध्ययन के पश्चात् विश्व के प्रमुख देशों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया। प्रथम श्रेणी में अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन आदि देश सम्मिलित किये गये, जहां प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय २०० डालर से अधिक है। द्वितीय श्रेणी में अर्द्ध—परिपक्व देश दक्षिणी अफ्रीका, फिनलैण्ड, जापान, इटली, आस्ट्रेलिया यूनान आदि लिए गए जहां औसत वार्षिक आय १०० से २०० डालर तक आकी गई। अंतिम श्रेणी में भारत, लेटिन अमेरिका के अधिकांश देश, बर्मा, लंका, चीन, इन्डोनेशिया आदि देश शामिल किये गए जहां प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १०० डालर अथवा उससे भी कम अनुमानित की गई। आज स्थिति यह है कि प्रथम श्रेणी के देशों में प्रति व्यक्ति आय औसतन ६१५ डालर या इससे भी अधिक है। अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति आय १६०७ डालर के लगभग है। अर्जेन्टाइना, पूर्वी यूरोपीय देश, रूस, दक्षिणी अफ्रीका, इसराइल, इटली आदि द्वितीय श्रेणी के देशों में प्रति व्यक्ति आय औसतन ३१० डालर या उससे कुछ अधिक है। किन्तु तृतीय श्रेणी के देशों में प्रति व्यक्ति आय औसतन ५० से १२५ डालर तक के मध्य झूलती रही है। इन देशों की आर्थिक दशा सभ्यता के माथे पर एक कलंक है। इनका आर्थिक पुनरुद्धार होना परम आवश्यक है।

(२) कृषि पर अत्यधिक निर्भरता—अल्प-विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि पर निर्भर करता है; उदाहरणार्थ, भारत की लगभ

हो पाती। अमेरिका, जापान अथवा जर्मनी अपने निवासियों के साहस के कारण ही आज विश्व के अग्रणी औद्योगिक राष्ट्रों की श्रेणी में हैं।

अल्प विकसित राष्ट्रों के नागरिकों में तो साहस का अभाव होता ही है, इन देशों की राज्य नीति सक्रियतापूर्ण न होकर उदासीनतापूर्ण होती है और फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। प्रो० निकोलस केल्डार ने यह सच ही लिखा है कि पिछले दो वर्षों में विश्व के कुछ देशों में जो चमत्कारिक आर्थिक विकास हुआ है उसका मुख्य कारण लोगों के रूढ़िवादी दृष्टिकोण के स्थान पर साहस की नवीन भावना का उदय ही है। साहस के अभाव के कारण ही विश्व के अनेक देश पिछड़े हुये ही रह गये हैं।

(६) सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना का अभाव—अल्प विकसित देशों में सामाजिक संस्थाएं इस रूप में होती है कि उनसे आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध रहती है। धर्म और जाति की परम्पराओं, अंध-विश्वास तथा भाग्यवादी दृष्टिकोण आदि के कारण जनता समृद्धि के पथ पर अग्रसर नहीं हो पाती और इन सबका कारण है इन देशों में व्याप्त अशिक्षा। विकसित देशों में जहां दस वर्ष से ऊपर की आयु के लगभग ६५% व्यक्ति शिक्षित हैं वहां अल्प विकसित देशों में विशेषकर मीक्, इण्डोनेशिया और भारत में ८२ प्रतिशत से ६२ प्रतिशत तक व्यक्ति अशिक्षित हैं। अशिक्षा के कारण सहकारिता और नवीन प्राविधियों के प्रति लोगों की अभिरुचि जागृत नहीं हो पाती। राजनैतिक चेतना का अभाव इन देशों में नागरिकों को अपने कर्तव्यों और अधिकारों का सही-सही बोध नहीं करा पाता और इस तरह वे अपने आर्थिक अधिकारों के प्रति पूर्ण जागरूक नहीं होते। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज के अल्प-विकसित देशों के पिछड़ेपन का बड़ा कारण राजनैतिक परतंत्रता रहा है।

(७) कुचक्रों का प्रभाव—अल्प विकसित देशों में अधिकांशतः निर्धनता तथा बीमारी वृत्त के रूप में चलती रहती हैं। वहां स्त्री और पुरुष रुग्ण इसलिये हैं कि वे निर्धन हैं और वे निर्धन इसलिये हैं कि वे रुग्ण हैं तथा ठीक से काम नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्त साधनों का अल्पविकास व पिछड़ापन परस्पर कारण और प्रभाव के रूप में कार्य करते हैं। मिरर तथा बाल्डविन के अनुसार इनके फलस्वरूप उत्पादकता कम होती है, जिससे वास्तविक आय कम होती है और इसके कारण बचत और मांग का स्तर भी नीचा होता है। मांग कम होने के कारण विनियोग भी कम होता है और पूंजी की कमी के कारण अल्पविकास बना रहता है।

(८) बाजार की अपूर्णताएं—अल्पविकसित देशों में आर्थिक शक्तियों में उस लोच और गतिशीलता का अभाव रहता है जो द्रुत आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है। उत्पादन के साधनों की गतिशीलता और मूल्यों के लोच के कारण उत्पादन के क्षेत्र में विशिष्टीकरण नहीं हो पाता; साथ ही बाजार की परिस्थितियां भी सामान्य आर्थिक विकास के अनुकूल नहीं होतीं। इन सब कारणों से उत्पादन के साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास के सबसे बड़े शत्रु सामाजिक तथा आर्थिक रूढ़िवाद का भी अल्पविकसित देशों में पर्याप्त प्रभाव रहता है।

(९) जनसंख्या में वृद्धि—अर्द्ध विकसित या अल्पविकसित देशों के बारे में यह कहना सही है कि यदि वहाँ किसी क्षेत्र में उत्पादन की गति क्षीण नहीं है तो वह है, 'मानव-उत्पादन'। इन देशो मे जनाधिक्य की समस्या आर्थिक विकास के मार्ग को अवरुद्ध किये हुए है। विभिन्न प्रयासो के फलस्वरूप जहाँ मृत्यु दर घटी है, वहा किसी नियोजित नियन्त्रण के अभाव मे जन्म-दर बढती जा रही है। परिणामत एक तरफ को बेरोजगारी बढती जा रही है और दूसरी तरफ जनसख्या के एक बडे भाग को पूर्ण तथा पौष्टिक भोजन भी नहीं मिल पा रहा है। अल्पविकसित देशो मे जनसख्या का एक बडा अनुपात १५ वर्ष से कम बालको के रूप मे है और दूसरी तरफ औसत आयु कम है। इस तरह जहाँ एक ओर अल्पविकसित देशो में श्रमिको का अनुपात कम रहता है, वहाँ दूसरी ओर श्रमिक अधिक लम्बे समय तक उत्पादन कार्य नहीं कर पाते। अल्पविकसित देशो मे उत्पादन के शेष साधन तो प्रायः पूर्ववत रहते हैं या कम बढते हैं, किन्तु जनसख्या-वृद्धि के कारण पुराने उद्योगों मे ही नये-नये लोगो के आगमन से उत्पादन मे वृद्धि नहीं होती और सीमान्त उत्पादकता नगण्य रहती है। जनसख्या-वृद्धि के कारण अदृश्य बेकारी और अर्द्ध बेकारी की समस्या भयकर रूप से विद्यमान है। जिस कार्य को किसी परिवार के तीन सदस्य कर सकते हैं उसी के लिए पाँच-छः सदस्य जुट जाते हैं और फिर भी कुल उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि नहीं हो पाती। सयुक्त राष्ट्रसघ के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत व पाकिस्तान तथा फिलिपाइन्स एव हिन्देशिया के कुछ क्षेत्रों में २० प्रतिशत से लेकर २५ प्रतिशत तक कृषको की सीमान्त उत्पादकता शून्य है तथा इन श्रमिकों को कृषि-उपज मे बिना ह्रास के दूसरे व्यवसायो मे प्रवृत्त किया जा सकता है।

(१०) अन्य लक्षण—उपरोक्त लक्षणो के अतिरिक्त अल्प विकसित देशों की और भी विशेषताएं हैं जो उनके आर्थिक पुनर्निर्माण के प्रयासों में बाधक हैं। , इन देशो की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति (आर्थिक दृष्टि से) महत्वपूर्ण नहीं होती। अतः विकसित देश इनमें पूंजी का विनियोग इस शर्त पर करते हैं कि ये देश ज अथवा कच्चे माल का विकसित देशों को निर्यात करके उनसे तैयार वस्तुएँ आयात करेंगे। इस प्रकार अल्पविकसित देशों की सौदा करने की शक्ति ... हो जाती है और व्यापार की शर्तें उनके प्रतिकूल रहती हैं। दूसरे इन देशों में यातायात के साधनों के अल्पल्प होने से एक तो उद्योगों का विकास कठिन होता और फिर कृषि व उद्योगों द्वारा उत्पन्न की गई वस्तुओं के विनिमय में भी कठिनाई है। अल्पविकसित देशों मे मौद्रिक विनिमय सोर्वत्रिक नहीं होता और अर्थव्यवस्था छोटी-छोटी स्वावलम्बी इकाइयों में विभाजित होती है।

इस प्रकार "अल्पविकसित देशों में प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता होते हुए भी उपरोक्त कारणों से इन साधनों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता, ... जनता अधिकतम रूप से निर्धनता और अभाव से प्रभावित ...

पुनर्निर्माण अथवा विकास की विभिन्न दशाएं—अमेरिका के

नीति-आयोजन परिषद् के अध्यक्ष प्रो० रोस्टव ने आर्थिक विकास की पांच दशाएं बतायी हैं।

प्रथम दशा परम्परागत समाज की है। इसमें प्री-न्यूटोनियन युग की प्राविधियों तथा प्रणालियों को प्रयोग में लाया जाता है और सामान्यत उद्योगों व कृषि की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसी अर्थ-व्यवस्था में विनिमय-व्यवस्था अत्यन्त सीमित रहती है।

दूसरी दशा ऐसे समाज की है जिसमें परम्परागत वातावरण के स्थान पर एक नवीन समाज का निर्माण प्रारम्भ होता है। प्राचीन रूढ़ियों को विनष्ट करके उनके स्थान पर यातायात के साधनों का विकास किया जाता है, बैंकों, बीमा-कम्पनियों और व्यावसायिक-कम्पनियों की स्थापना होने लगती है। इस दशा में बाहरी देशों की पूंजी की उपलब्धि भी सम्भव है। उद्योगों का विकास बृहत्-स्तर पर होना इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है।

तीसरी दशा स्वचालित अर्थ-व्यवस्था की है। इस स्थिति में देश में बचत और विनियोग की सभी आवश्यकताएं आन्तरिक स्रोतों से ही पूरी कर ली जाती हैं और आर्थिक विकास एवं सामान्य प्रवाह बन जाता है। "भारत इस दृष्टि से स्वचालन की स्थिति तक अभी नहीं पहुंच सका है, क्योंकि इस स्थिति के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय का १५ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक पुनरुत्पादन के विनियोग हेतु प्रयुक्त किया जाना चाहिये, जबकि वर्तमान समय में भारत की राष्ट्रीय आय का केवल १२ प्रतिशत विनियोग के लिए प्रयुक्त होता है और आन्तरिक बचत तो इसमें से केवल ८-६ प्रतिशत ही है। शेष राशि भारत को विदेशी सहायता के रूप में प्राप्त होती है।"

चौथी दशा "परिपक्वता की स्थिति में प्रगति की मानी गई है।" प्रो० रोस्टव का अनुमान है कि स्वचालित अर्थ-व्यवस्था लगभग ६० वर्ष में पूर्ण परिपक्वता की स्थिति तक पहुंच पाती है। इस दशा में स्थायी रूप से राष्ट्रीय आय का लगभग २० प्रतिशत पूंजी-निर्माण में प्रयुक्त होता है और देश के आर्थिक विकास की गति जन संख्या की वृद्धि की तुलना में बहुत अधिक बढ़ जाती है।

पांचवी और अन्तिम दशा उच्च स्तरीय उपभोग की है। इस स्थिति में देश के लगभग सभी व्यक्तियों का जीवन-स्तर काफी ऊंचा हो जाता है। प्रथम तीन दशाओं में जिन वस्तुओं के उपभोग को विलासिता कहा जाता है, वे ही वस्तुएं आवश्यकता की श्रेणी में आ जाती हैं।

संसार के विभिन्न देशों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के अधिकांश देश आर्थिक पुनर्निर्माण अथवा विकास की प्रथम या द्वितीय अवस्था तक पहुंच सके हैं और भारत, मिस्र, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान लंका, ईरान आदि देश दृढ़तापूर्वक स्व-संचालन की स्थिति तक पहुंचने का प्रयास कर रहे हैं।

(२) भारत की आवश्यकताएं और साधन
(India's Needs & Resources)

भारत की आर्थिक स्थिति एवं आवश्यकताएं (Needs):—भारत की स्थि
की समीक्षा करने पर स्पष्ट होता है कि भारत की आवश्यकताएं अविकासतः अल-
विकसित देशों की आवश्यकताओं के समान अभावमूलक (Scarcity Oriented) हैं,
यद्यपि वह दृढ़तापूर्वक स्व-सचालन की स्थिति तक पहुंचने को प्रयत्नशील है और
सम्भवतः अगले एक दशक तक पहुंच भी जायगा। आर्थिक विकास एवं
की दृष्टि से भारत की मूलभूत आवश्यकताएं संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

(१) उपभोग के स्तर को ऊंचा उठाना—भारत की प्रथम आवश्य
है कि उपभोग के स्तर को ऊंचा उठाया जाय। १९५४-५५ के एक अध्य
अनुसार विश्व के विकसित देशों मे प्रति व्यक्ति को दैनिक खुराक ३०००
से भी अधिक मिलती है, मिश्र, टर्की, रोडेशिया और यूनान जैसे अल्पविकसित
मे भी औसतन २,६०० कैलोरी प्रतिदिन के भोजन में एक व्यक्ति प्राप्त
है, परन्तु भारत मे यह औसत सबसे कम लगभग १८४० कैलोरी प्रतिदिन
व्यक्ति है। अमेरिका मे एक व्यक्ति औसतन २५·३ पौंड साबुन प्रति वर्ष काम
लाता है जबकि भारत मे १·१ पौण्ड प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष औसत है। अमेरि
और इङ्गलैंड में ५ व्यक्ति १ वर्ष मे क्रमश १८ व १४ जोडी जूतो का उपयोग करते
हैं, भारत मे औसतन ४ व्यक्ति १ जोडा जूतो का। अमेरिका मे ८० प्रतिश
व्यक्तियो के पास और ब्रिटेन मे लगभग ५० प्रतिशत व्यक्तियो के पास रेडियो सैट
है जबकि भारत मे ३०० व्यक्तियो के पीछे १ रेडियो सैट पाया जाता है। इसी
उपयोग की वस्तुओं का औसत भारत मे बहुत ही कम है। विद्युत-शक्ति का उत्पाद
भारत मे प्रति १०० व्यक्तियो के पीछे १३,००० किलोवाट होता है जबकि
इङ्गलैंड और अमेरिका मे यह औसत क्रमश. १०·३ लाख तथा २३ लाख किलोवाट
एक अन्य अनुमान के अनुसार प्रति व्यक्ति भारत की अपेक्षा अमेरिका में ४०
, कनाडा में ३७॥ तथा ब्रिटेन मे २५ गुना कोयला एक वर्ष मे उपयोग में लिया
है। इस्पात के उपयोग मे तो लंका और मलाया तक मे भारत से दुगुने
गुने अधिक इस्पात का उपयोग औसतन किया जाता है।

इस प्रकार जीवन-स्तर की दृष्टि से भारत एक अत्यन्त निर्धन देश है इस
और इसे ऊपर उठाना भारत के लिए एक अनिवार्यता है।

(२) आय-व्यय तथा बचत के स्तर को बढ़ाना—भारत में प्रति व्यक्ति
, व्यय व बचत का स्तर बहुत निम्न है। प्रति व्यक्ति औसत आय भारत में
-६५ के आंकड़ों पर आधारित) लगभग ४२० रुपये है और राष्ट्रीय आय
की सहायता को मिलाकर) केवल १२ प्रतिशत भाग पूंजी-निर्माण में
ता है। आन्तरिक बचत के रूप में भी राष्ट्रीय आय का लगभग ८ प्रतिशत
योग हेतु उपलब्ध हो पाता है, सरकारी सूत्रों के अनुसार २७ करोड़ भारतीयों
व्यय-क्षमता लगभग ८ आना प्रतिदिन है। बढ़ते हुए मूल्यों की तुलना में १०

प्रतिशत से भी अधिक व्यक्तियों का जीवन-स्तर गिरता जा रहा हैं। भारत में विकास की वर्तमान दर केवल ५.५ प्रतिशत से ६ प्रतिशत तक ही है। देश में प्रचलित आय और सम्पत्ति के वितरण की विषमता को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत में निर्धनता बहुत अधिक है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के ७० लाख परिवार अत्यन्त निर्धन हैं जबकि ४.२ करोड़ परिवार जीवन-निर्वाह के स्तर से भी पीछे हैं। वास्तव में आय-व्यय और बचत का स्तर भारत में बड़ा नीचा है जिसे बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक है। देश में बचत बढ़ाने के लिए साख-संस्थाओं का विस्तार होना चाहिये, राष्ट्रीय आय के समान वितरण के प्रयत्न किये जाने चाहियें और घरेलू बचतों के प्रत्येक मार्ग को अपनाना चाहिये।

(३) कृषि व उद्योग का सन्तुलित विकास—भारत की तीसरी प्रधान आवश्यकता है देश में कृषि व उद्योगों का सन्तुलित विकास करना। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में कृषि और उद्योग दोनों समान रूप से सम्पन्न एवं विकसित थे। उस समय इनमें काम करने वालों का अनुपात क्रमशः ५१ ४६ था। बाद में कृषि और उद्योगों में हुए अनवरत पतन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को गरीबी और अर्ध विकास की दशाओं में ला पटका। आज कृषि व उद्योगों पर अवलम्बित लोगों की संख्या क्रमशः लगभग ६५ प्रतिशत और १२ प्रतिशत है। कृषि भारत का प्रधान व्यवसाय तथा जीवन-निर्वाह का साधन है तथापि इसका पिछड़ापन और खाद्यान्नों के लिये हमारी भिक्षावृत्ति हमारे लिये ग्लानि का विषय है। भारतीय अर्थ-व्यवस्था में कृषि का इतना महत्व है कि इसके पिछड़ेपन के बावजूद कुल राष्ट्रीय आय का लगभग ४५ प्रतिशत केवल कृषि से प्राप्त होता है। विदेशी व्यापार में भी कृषि-पदार्थों का उपयोग और आवागमन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

स्पष्ट है कि कृषि के पिछड़ेपन को शीघ्रातिशीघ्र मिटाना भारतीय अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ता के लिए नितान्त आवश्यक है। हमें केवल खाद्यान्नों के क्षेत्र में ही आत्म-निर्भर नहीं होना है, अपितु औद्योगिक विकास के लिए कृषि जनित कच्ची सामग्री का उत्पादन भी बढ़ाना है। भूमि-सुधारों में यथार्थवादी एवं प्रभावकारी प्रयास होना जरूरी है।

(४) औद्योगिक विकास—उद्योग एक विकासमान अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ है। जनता के जीवन स्तर को उत्पादन और उपभोग की दृष्टि से ऊंचा उठाने का एक मात्र उपयोगी मार्ग औद्योगीकरण ही है। औद्योगिक विकास जहां कृषि में छिपे बेरोजगारों को काम देता है वहां कृषि के विकास के लिए यांत्रिक और प्राविधिक सहायता भी उपलब्ध कराता है। भारत में उद्योगों की आज भी शोचनीय अवस्था है। उद्योगों व खानों आदि से राष्ट्रीय आय का लगभग १६ प्रतिशत या २० प्रतिशत भाग ही मिलता है। उद्योगों में केवल वस्त्र-उद्योग, लोहा व इस्पात और जूट व शक्कर उद्योगों का ही मुख्यतः विकास हो पाया है। सामान्य इंजीनियरिंग उद्योगों का भी विकास सन्तोषजनक गति से होने लगा है। कुछ मिलाकर भारी व बड़े उद्योगों के क्षेत्र में भारत अभी काफी पिछड़ा हुआ है। उद्योगों का समुचित विकास ही भारतीय अर्थव्यवस्था को प्राणवान बना सकता है।

(५) **आधुनिक प्रविधियों तथा व्यावसायिक सुविधाओं का विकास**—भारतीय अर्थ-व्यवस्था के विकास की एक आवश्यकता यह है कि आधुनिक प्रविधियों और व्यावसायिक सुविधाओं को समुन्नत एवं विकसित किया जाय। भारत में उनका उपयोग बहुत ही सीमित है। उदाहरणार्थ यहाँ २०,४०० एकड पर औसतन १ ट्रैक्टर का उपभोग किया जाता है, जबकि अमेरिका तथा कनाडा में १ ट्रैक्टर का औसतन ११६ एव २४७ एकड क्षेत्र में उपयोग होता है। भारत में जोतें भी छोटी-छोटी हैं, अतः ट्रैक्टरों का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। इसी प्रकार बैंकों, बीमा-कम्पनियों टेलीफोन, तार, या अन्य व्यावसायिक सुविधाओं का भी भारत मे उपयोग अत्यन्त सीमित है। आर्थिक विकास को गतिमान बनाने के लिए इनका त्वरित विकास अनिवार्य है।

(६) **यातायात के साधनों और सिंचाई साधनों का विस्तार**—कृषि और औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं मे उत्पन्न आवश्यकताएं हैं—यातायात तथा सिंचाई के साधनों का तथा विकास के लिए आवश्यक प्राथमिक साधनो का विस्तार। भारत यातायात की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ देश है। भारत के १२'५ लाख मील वर्गमील क्षेत्र तथा ५० करोड जनता के पीछे केवल लगभग ४'२५ लाख मील लम्बी सडकें हैं तथा ३५,००० मील लम्बे रेल मार्ग हैं। देश की विशालता को देखते हुए यह व्यवस्था अपर्याप्त है। यह भी स्मरणीय है कि आज भी भारत में ६० प्रतिशत सडकें पक्की नहीं हैं। नागरिक उड्डयन भारत में अभी शैशवावस्था मे ही है। सिंचाई के साधनो का विकास भी जितना होना चाहिये उसकी तुलना में बहुत कम है।

(७) **प्राकृतिक साधनों के पूर्ण उपयोग की आवश्यकता**—प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से भारत एक धनी देश है, किन्तु उनका समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। कुछ वर्षों पूर्व तक तो भारत कच्चे माल (खनिज) का पर्याप्त मात्रा मे निर्यात करता था। जल-सम्पदा और वन-सम्पदा का भी भारत मे समुचित उपयोग नहीं हो रहा है। इन्हीं कारणों से कहा जाता है कि 'भारत एक धनी देश है जहां निर्धन बसते हैं।' भारत के आर्थिक निर्माण के लिए यह अनिवार्य है कि साधनों का उचित रूप में उपयोग हो।

(८) **जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता**—भारत जैसे अल्पविकसित राष्ट्र में वृद्धि एक गम्भीरतम समस्या है और उसकी रोकथाम भारत के जीवन की एक अनिवार्यता। १९६१ की जनगणना में भारत की जनसंख्या ४३,९२,०० कूती गई थी जो १९६७ मे अब अनुमानतः लगभग ५० करोड़ के आसपास हो गई है। १९७१ तक यह अनुमानतः ५५ करोड ५० लाख हो जायगी। इसका अर्थ यह है कि जो कुछ हम अपने खाने-पीने, रहन-सहन आदि के लिए उसे खाने वाले नए लोग हड़प कर जायेंगे। जनसंख्या के आधिक्य के कारण ही बेकारी, अदृश्य बेकारी, अर्ध-बेकारी और भुखमरी जैसी में बढ़ती जा रही है। भारत में बीमारियां भी अधिक इसीलिये हैं कि जनाधिक्य के कारण गरीब और अधिकांश लोगों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता।

योजना-आयोग का भी स्पष्ट मत है कि "अधिकांश जनता के जीवन-स्तर पर गहरी छाप छोड़ने के लिये आर्थिक विकास की गति बढ़ानी चाहिये और जनसंख्या में वृद्धि की गति को कम करने के लिये विशेष प्रयत्न करने चाहियें।"

(६) शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता—आर्थिक विकास की दृष्टि से भारत की एक प्रमुखतम आवश्यकता 'शिक्षा का प्रसार' है। आर्थिक निर्माण का बीड़ा उठाने पर यह आवश्यक हो जाता है कि नागरिकों में विभिन्न कार्यों को करने की योग्यता व क्षमता का विकास हो और प्रत्येक नागरिक आर्थिक निर्माण के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली बाधाओं का निराकरण करने के लिए जागृत हो उठे। यह कार्य केवल तभी समुचित रूप में हो सकता है जबकि देशवासी शिक्षित हों। शिक्षा-प्रसार से ही सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवादी मान्यताओं का प्रभाव कम किया जा सकता है। भारत में प्राविधिक शिक्षा प्राप्त विशिष्ट कर्मचारियों की तो अत्यन्त ही कमी है और मूलभूत उद्योगों के निर्माण के लिए हमें विदेशी इन्जीनियरों तथा टैक्नीशियनों पर निर्भर रहना पड़ रहा है।

(१०) साधनों के उपयोग की रफ्तार तीव्र करने की आवश्यकता—भारत की आर्थिक प्रगति की एक बाधा "साधनों के उपयोग की धीमी रफ्तार" को मिटाना भी बड़ा आवश्यक है। लगभग तीन वर्ष पूर्व ही एक कमेटी ने बताया था विदेशों से प्राप्त होने वाली सहायता में से केवल ५५–५६ का ही उपयोग किया जाता है। दूसरी ओर मशीनों की मात्रा में पाचसाला वृद्धि भारत-इग्लैण्ड के बराबर होने पर भी भारत की उत्पादन की वास्तविक वृद्धि इंग्लैंड की अपेक्षा बहुत कम है। इस विषमता के कारण भारत में अभाव-ग्रस्त जीवन-यापन का प्रसार ही होता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था समस्याओं से पूर्ण है और उसकी आवश्यकताएं (needs) बड़ी जटिल एवं व्यापक हैं। लेकिन यह प्रसन्नता की बात है कि भारत सरकार इन आवश्यकताओं के प्रति जागरूक है।

साधन (Resources)—हम सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि किसी भी देश का आर्थिक विकास उस देश की प्राकृतिक स्थिति एवं प्रकृति द्वारा दिए गए भौतिक तथा अभौतिक साधनों पर निर्भर करता है। डा० बोरा एन्स्टे का यह लिखना सर्वथा उपयुक्त है कि ये साधन ही प्रमुखतः किसी देश की उपज, लोगों के व्यवसाय एवं जनसंख्या के घनत्व तथा वितरण को निर्धारित करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, इंगलैण्ड, सोवियत रूस, जर्मनी आदि राष्ट्र अपने प्राकृतिक एवं भौतिक साधनों की प्रचुरता एवं अनुकूलता के कारण ही इतने विकसित व समृद्ध हो सके हैं और विश्व के अग्रणी राष्ट्र गिने जाते हैं। भारत, अफ्रीका के देश, ब्राजील आदि अल्प विकसित राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर होने के लिये आर्थिक नियोजन का इसलिये आश्रय ले रहे हैं कि इन देशों में भी प्रकृति उदार है। आज तक ये देश अल्प या अर्ध-विकसित इसी कारण रहे हैं कि प्रतिकूल राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने इन्हें आर्थिक समृद्धि के द्वार खोलने का अवसर ही प्रदान नहीं किया था। किन्तु अब निश्चय ही इनके विकास की सम्भावनाएं उज्ज्वल हो उठी हैं।

२७०१ करोड़ टन लोहा भरा पड़ा है। लौह-क्षेत्रों का महत्व इसलिये भी बहुत अधिक है कि लोहे की खानों के बिल्कुल समीप कोयला व मैंगनीज भी प्राप्त हो जाते हैं। मैदान होने के कारण यातायात के साधन भी पर्याप्त हैं। शासन की उपेक्षा और पूँजी के अभाव के कारण लोहे की खानों का समुचित उपयोग स्वतन्त्रता के पूर्व तक सम्भव नहीं हो सका था। किन्तु स्वतन्त्र भारत में इस तरफ पूरा ध्यान दिया जा रहा है।

(ख) कोयला—भारत में कुल कोयले का भण्डार अनुमानतः ६०,०० करोड़ टन है, जिसमें से केवल ५ प्रतिशत कोक बनाने योग्य है। भूगर्भवेत्ताओं का अनुमान है कि अच्छे किस्म का कोयला सब मिलाकर ५०० करोड़ टन से अधिक नहीं है। कोयला उत्पादन की दृष्टि से भारत का विश्व में आठवां स्थान है। भारत में कोयला निकालने के तरीके बहुत पुराने होने के कारण उत्पादन-लागत बहुत अधिक आती है और काफी कोयला व्यर्थ चला जाता है, फिर भी कोयला-उद्योग का तेजी से विकास किया जा रहा है और आज वह न केवल प्रगतिशील उद्योगों तथा यातायात के साधनों की जरूरतें पूरी कर रहा है, बल्कि विदेशों में कोयले का निर्यात करके विदेशी विनिमय भी प्राप्त कर रहा है।

(ग) खनिज तेल—खनिज-तेल अथवा पैट्रोल का औद्योगिक एवं सामरिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है। भारत के प्रति पैट्रोल की दृष्टि से प्रकृति अत्यन्त ही अनुदार रही है। पृथ्वी के कुल खनिज तेल का अनुमान लगभग ४३०० करोड़ बैरल में ६५०० करोड़ बैरल तक है (१ बैरल = ४२ गैलन), जिसमें केवल ६० करोड़ बैरल पैट्रोल भारत में है। भारत में अधिकाधिक पैट्रोल की खोज के लिये सरकार प्रयत्नशील है।

(घ) मैंगनीज—इस्पात निर्माण के लिये अत्यन्त आवश्यक मैंगनीज के उत्पादन में भारत का स्थान विश्व में द्वितीय है। भारत में मैंगनीज की अधिकांश खानें मध्यप्रदेश में हैं। इसके अलावा मद्रास, बंगाल, बम्बई, उड़ीसा और बिहार में भी यह पाया जाता है। मैंगनीज की दृष्टि से भारत न केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, वरन् निर्यात करके विदेशी विनिमय भी प्राप्त करता है।

(ङ) अन्य खनिज—उपरोक्त खनिज पदार्थों के अतिरिक्त अभ्रक, ताम्बा, सोना, जिप्सम आदि उल्लेखनीय हैं। औद्योगिक प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाले खनिजों में अभ्रक महत्वपूर्ण है। भारत में अभ्रक के विपुल भंडार बिहार के हजारी बाग व गया जिलों में तथा मद्रास के नेलोर जिले में विद्यमान हैं। बिहार की 'अभ्रक की पट्टी', जो विश्व के उत्तम किस्म के अभ्रक का ८० प्रतिशत भाग उत्पन्न करती है, लगभग ६० मील लम्बी और १२ मील चौड़ी है। राजस्थान के अजमेर व भीलवाड़ा जिलों में भी अभ्रक उत्पन्न होता है। विश्व की अभ्रक की मांग का ६० प्रतिशत भारत द्वारा पूरा किया जाता है। स्वतन्त्रता के बाद भी आशानुरूप प्रोत्साहन नहीं मिलने से अभ्रक खनिज-उद्योग का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है।

दुर्भाग्यवश भारत में औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण जनशक्ति का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है और काफी बड़ी मात्रा में बेकारी, अदृश्य बेकारी और अर्द्ध-बेकारी छायी हुई है। गैस तथा आणविक शक्ति का उपयोग भारतीय उद्योगों और कृषि में लगभग अज्ञान है। भारत शांतिपूर्ण और रचनात्मक कार्यों के लिये अणुशक्ति की खोज में संलग्न है। लकड़ी, कोयला, खनिज-तेल और जल-विद्युत का उपयोग यहां लोकप्रिय है। चूंकि भारत में खनिज-तैल और कोयले के भंडार सीमित हैं, अतः भावी औद्योगीकरण के लिये एकमात्र शक्ति-स्रोत जल-विद्युत ही है। स्वतन्त्रता के बाद से ही भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अनेक बहुमुखी योजनाएं बनायी जा रही हैं और इस बात की पूरी आशा है कि भविष्य में जल-विद्युत का अत्यन्त व्यापक उपयोग हो सकेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के लिये प्रकृति अत्यन्त उदार है। साधनों की दृष्टि से भारत एक धनी देश है, किन्तु विभिन्न कारणों से इन साधनों का समुचित विकास न हो पाने के कारण ही भारत अभी तक निर्धनता की सीढ़ियों पर खड़ा है। साधनों के सुनियोजित उपयोग द्वारा ही भारत आर्थिक विकास के शिखर पर पहुँच सकता है।

अब हम भारत के आर्थिक विकास में नियोजन की चर्चा करेंगे।

(३) भारत के आर्थिक विकास में नियोजन की समस्याएं

(Problems of Planning in Economic Development of India)

नियोजन का अभिप्राय और उसकी आवश्यकता—आर्थिक नियोजन का शाब्दिक अर्थ है पहले से व्यवस्था करना। इसका वास्तविक उद्देश्य नियंत्रित रूप से देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों तथा श्रम का इष्टतम उपयोग करके राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना तथा जनता के सामान्य जीवन-स्तर को ऊंचा उठाना है। भावी कठिनाइयों का पहले से ही समाधान कर लेने के लिये आर्थिक नियोजन किया जाता है। इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए प्रो० डिकिन्सन ने लिखा है—"यह एक ऐसी व्यवस्था का रूप है जो विशेषकर उत्पादन और वितरण से सम्बन्धित होती है। क्या और कितना उत्पादन किया जाय, कहां, कैसे और कब उत्पादन किया जाय तथा उसका बंटवारा किससे किया जाय-के विषय में निश्चित अधिकारी द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था की व्यापक परीक्षा के बाद सचेत महत्वपूर्ण निर्णय को आर्थिक नियोजन कहते हैं।" भारतीय योजना आयोग ने नियोजन की परिभाषा देते हुए लिखा है—"नियोजन साधनों के संगठन की एक विधि है जिसके माध्यम से साधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग निर्धारित सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु किया जाता है।" स्वर्गीय श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से सन् १६३८ में इसका अर्थ बताते हुए कहा था—"प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली में देश का प्रतिनिधित्व करने वाली सामाजिक संस्थाओं द्वारा उपयोग,उत्पादन, सम्पत्ति का विनियोग, व्यापार एवं उत्पादन का विभाजन आदि बातों में सामंजस्य स्थापित करना ही नियोजन है।"

आज के युग में ऐसा कोई देश नहीं है जो अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त नहीं करना चाहता है और यह भी एक सर्वमान्य तथ्य है कि आर्थिक व सामाजिक

विकास आर्थिक नियोजन से ही हो सकता है—चाहे कोई राष्ट्र उन्नत हो या अल्प-विकसित देश न केवल अपने आर्थिक विकास की दर को बढ़ाना चाहते हैं, सामाजिक कल्याण को बढ़ाना भी उनका उद्देश्य होता है। हो सकता है कि ऐसा हुआ हो कि गिने-चुने पूंजीपतियों अथवा उच्चवर्गीय लोगों की आय में ही तीव्र वृद्धि हो और राष्ट्रीय आय में वृद्धि दृष्टिगोचर हो, जबकि जनसंख्या के बड़े भाग का जीवन-स्तर स्थिर रहे या घटती जाये। ऐसी परिस्थितियों को टालने के लिये सरकारें इस ढंग से पूंजी का विनियोग करती हैं ताकि जन-जीवन का अधिकतम भाग अधिक समृद्ध व विविध प्रकार का जीवन व्यतीत करने का अवसर पाए, उपलब्ध मानवीय और भौतिक साधनों का सर्वोत्तम उपयोग होकर आर्थिक विषमता दूर हो और अन्ततः लोगों को काम तथा रोजी मिले। इसमें कोई सन्देह नहीं कि "एक सच्ची नियोजन-पद्धति देश में आर्थिक विकास की दर को बढ़ाती है, भावी उन्नति के लाभों को इस प्रकार बांटने की व्यवस्था करती है और जनता के कल्याण में भी वृद्धि हो।"

आर्थिक नियोजन राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है। मानव जीवन की शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति द्वारा जीवन को सुखी और समृद्ध बनाना आर्थिक नियोजन का वास्तविक कार्य-क्षेत्र है। यह नियोजन सर्वोत्तम रूप से सरकार द्वारा ही किया जा सकता है, निजी क्षेत्र द्वारा नहीं।

स्वतन्त्र भारत में आर्थिक नियोजन का सूत्रपात—स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व विदेशी शासन होने के कारण भारत के आर्थिक विकास हेतु योजनाएं बनाने की काफी समय तक कोई कल्पना भी नहीं की गई। सर्वप्रथम १९३४ में सर एम. विश्वेश्वरैया ने अपनी एक पुस्तक में आर्थिक विकास की एक दसवर्षीय योजना प्रस्तुत की। इसके कुछ ही समय बाद प० जवाहरलाल नेहरू ने एक राष्ट्रीय-योजना-समिति की राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्तर्गत स्थापना की। विपरीत परिस्थितियों के कारण ये सभी योजनाएं कार्यान्वित नहीं हो सकीं। द्वितीय महायुद्ध के बाद सन् १९४४ में देश के प्रमुख उद्योगपतियों ने १०,००० करोड़ रुपये की पंद्रह-वर्षीय योजना प्रस्तुत की जिसे 'बम्बई योजना' कहा जाता है। इसी के समानान्तर १४ हजार करोड़ रुपये की एक दस वर्षीय योजना विख्यात श्रमिक नेता एम. एन. राय द्वारा प्रस्तुत की गई जो 'जनयोजना' (People's Plan) के नाम से सम्बोधित की गई। इसी प्रकार के अन्य भी कार्यक्रम अनेक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गये। फलस्वरूप १९४४ में सरकार ने योजना और विकास-विभाग की स्थापना की, किन्तु इस विभाग ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व तक कोई कार्य नहीं किया।

सदियों की गुलामी के बाद जब देश स्वतन्त्र हुआ तो देश की विकटतम व हीन आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए राष्ट्रीय सरकार ने मार्च १९५० में योजना आयोग (Planning Commission) की स्थापना की, जिसने पंचवर्षीय योजना नियोजनाओं का श्रीगणेश किया।

और सामाजिक जागृति के क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं, अत: वे योजनाओं के उद्दे
महत्त्व को भली प्रकार नहीं समझ पाते और उन्हें योजना की सफलता या असफ
की समस्या किसी प्रकार चिन्तित नहीं करती। उदाहरणार्थ, सामुदायिक वि
कार्यक्रम जनता का कार्यक्रम है, लेकिन परिस्थितियोंवश अभी तक यह सर
सहायता प्राप्त जन-कार्यक्रम बना हुआ है। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के
जिस प्रशिक्षण और समाज-सेवा-भावना की आवश्यकता है, वह सरकार अभी
अपने कर्मचारियों में पैदा नहीं कर पाई है। सरकारी कर्मचारियों की नौकर
और प्रतिनिधियों की अकुशलता सामुदायिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी सम
है। इस क्षेत्र की असफलता देश के किसी भी आर्थिक नियोजन की सफलता के लि
घातक है।

से ही विदेशी राष्ट्रों की सहायता पर अवलम्बित रहने की नीति अपनाये हुए हैं। योजनाएँ इतनी अधिक महत्वाकांक्षी बनाई जाती हैं कि जिन्हें हमारा अर्थ-तन्त्र सफल नहीं बना सकता। विदेशों से आवश्यक सहायता न मिल पाने पर अथवा विलम्ब से सहायता मिलने पर हमारी अनेक योजनाएँ अधूरी रह जाती हैं अथवा उनकी पूर्ति लम्बे समय के लिए रुक जाती है। इसका प्रभाव दूसरी योजनाओं पर भी पड़ता है। इससे धन और श्रम दोनों की हानि होती है।

(६) जन-संख्या वृद्धि की समस्या—जन-संख्या-वृद्धि नियोजन के मार्ग में एक अन्य गम्भीरतम समस्या है जो बेकारी, अदृश्य बेकारी, अर्ध-बेकारी और भुखमरी को जन्म देती है। किसी भी अल्प विकसित राष्ट्र में जनसंख्या-वृद्धि वहाँ की आर्थिक समृद्धि के लिए एक महामारी होती है। स्वतन्त्र भारत की सरकार जन-संख्या की वृद्धि रोकने में काफी तरह असफल रही है। परिवार-नियोजन-कार्यक्रम की असफलता ने देश की आर्थिक योजनाओं और प्रगति पर कुप्रभाव डाला है। जनसंख्या की वृद्धि के कारण हमारे अनेक अनुमान गलत निकल जाते हैं जिससे रोजगार की समस्या का सही समाधान नहीं हो पाता है।

(७) योजनाओं के मूल्यांकन की समस्या—नियोजन के मार्ग में मूल्यांकन की गम्भीर समस्या आती है। भारतीय योजनाओं की एक प्रमुख आलोचना इस आधार पर की जाती है कि वे केवल खर्च की मदों का संकलन मात्र हैं। खर्च की राशि निश्चित करने से पहले न तो वास्तविक आवश्यकताओं का सही मूल्यांकन किया जाता है और न ही राशि को खर्च करने के बाद अगली योजना शुरू होने से पहिले उसकी सफलता का उचित ढंग से मूल्यांकन हो पाता है। इस दुर्बलता का कारण प्रशासकीय ढीलापन और संस्थागत मशीनरी का अभाव है। राज्यों में ग्राम और समुदाय स्तर पर नियोजन क्रियाओं पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। यदि प्रारम्भिक अनुमानों की गलती के कारण किसी मद पर कम या अधिक खर्च का प्रावधान हो तो इसका शुद्धीकरण नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप ठीक-ठीक लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती।

(८) प्रशासकीय कमजोरी से पूँजी का अपव्यय और दुरुपयोग की समस्या—किसी भी नियोजन अथवा योजना की सफलता के लिए प्रशासकीय ढाँचे का कुशल और सुदृढ़ होना आवश्यक होता है। दुर्भाग्यवश स्वतन्त्र भारत का प्रशासकीय ढाँचा अनुशासन और कुशलता की दृष्टि से ढीला-ढाला है, अतः सार्वजनिक पूँजी के एक बड़े भाग का अपव्यय और दुरुपयोग होता है। बड़ी-बड़ी योजनायें बना ली जाती हैं, उनका निर्माण कार्य पूरा कर लिया जाता है लेकिन उन निर्माण कार्यों के ध्वस्त होने में भी समय नहीं लगता। आज बाँध बनकर तैयार होता है, कल उसमें दरार पड़ जाती है, परसों उसकी मरम्मत होती है, दो दिन बाद फिर कोई न कोई हिस्सा कमजोर हो जाता है और टूट जाता है तथा इस तरह जन-धन की हानि होती रहती है। आये दिन ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते हैं। यह प्रशासन की कमजोरी है कि पूरा धन खर्च करके भी न तो माल ही ढोया जाता है और न माल खरीदने वालों और बनाने वालों पर ही उचित निगरानी रखी जाती है। वास्तव में योजना को

तक हस्तकला और व्यापार की सम्पन्न स्थिति के कारण कृषि ही जीविका की एक मात्र स्रोत न थी, किन्तु २०० वर्षों की बदलती हुई राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों ने कृषि पर निर्भरता को प्रोत्साहन दिया और परिणामस्वरूप आज भारत एक कृषि-प्रधान देश के रूप में प्रसिद्ध है। भारतीय अर्थ व्यवस्था में कृषि का कितना महत्व है, यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कृषि पर आज भी लगभग ६५ प्रतिशत व्यक्ति प्रत्यक्षतः निर्भर हैं, राष्ट्रीय आय का लगभग ४५ से ४८ प्रतिशत भाग कृषि और उससे सम्बन्धित व्यवसायों से प्राप्त होता है, लघु औ वृहद् उद्योगों में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है, कृषि पदार्थ विदेशी व्यापा की एक महत्वपूर्ण कुंजी है और भारतीय जन-जीवन का कृषि प्राण है। कृ राज्यों की आय में भू-राजस्व के रूप में महत्वपूर्ण योगदान देती है। प्रान्ती बजटों में करों से प्राप्त आय का ४५-५० प्रतिशत अंश तथा कुल आय लगभग ७ वाँ भाग भू-राजस्व अथवा मालगुजारी से प्राप्त होता है। भारत जै अल्प विकसित देश की अकिंचन जनता अधिकांश आय का उपयोग अनिवार्यतः विशेष रूप से खाद्यान्नों पर करती है। रेलों, मोटरों और परिवहन के अन्य साधन से प्राप्त होने वाली आय में कृषि पदार्थों के स्थानान्तरण से प्राप्त आय का अत्यः महत्वपूर्ण स्थान है। स्पष्ट है कि देश की सम्पत्ति में कृषि-सम्पत्ति एक अनुप स्थान रखती है।

तो अब हमें देखना चाहिए कि भारत के प्राण इस कृषि की उन्नति के मार में क्या प्रमुख बाधायें अथवा समस्यायें हैं।

कृषि सम्बन्धी समस्यायें—भारतीय कृषि की प्रमुख समस्यायें निम्न लिखित हैं.—

(१) **प्रकृति पर निर्भरता**—भारतीय कृषि मानसून का जुआ है। कुल कृ योग्य भूमि में २० प्रतिशत को कृत्रिम साधनों से सिंचाई की जाती है तथा ८ प्रतिशत भूमि को प्रकृति पर छोड़ दिया जाता है, और यह नहीं कहा जा सकता कि प्रकृति प्रतिकूल होगी या अनुकूल। वर्षा मानसून द्वारा होती है और मानसून का देर से आता है, कभी जल्दी। इसके अतिरिक्त कभी अतिवृष्टि होती है और का अनावृष्टि के कारण अकाल की स्थिति हो जाती है। साथ ही सर्वत्र वर्षा एक ह समय और एक ही समान भी नहीं होती। हर वर्ष आने वाली भयंकर बाढ़ और पड़ने वाले सूखे से भारतीय कृषि का इतिहास भरा पड़ा है। यद्यपि विग वर्षों में शासन के प्रयासों के फलस्वरूप, सिंचाई-क्षेत्रों का विस्तार हुआ है, तथा कृषि पर हमारी निर्भरता अब भी आश्चर्यजनक है।

(२) **कृषि-जोतों का छोटा और अलाभकारी होना**:—भारत में कृषि-जो अत्यन्त छोटी होने से कृषि का समुचित विकास नहीं हो पाता। देश में प्रति व्यक्ति औसत जोत लगभग ६ एकड़ से भी कम है तो प्रत्येक परिवार [illegible] भुमा लगभग ४.७ एकड़ लगाया गया है। कृषि की जोतें न केवल छोटे-छोटे खेतों के रूप में दूर-दूर भी बिखरी हुई हैं। जोत" का अभाव है। दूसरे शब्दों में अधिकांश किसानों जिस पर एक जोड़ी बैल और कुटुम्ब के खर्च

तक हस्तकला और व्यापार की सम्पन्न स्थिति के कारण कृषि ही जीविका की एक मात्र स्रोत न थी, किन्तु २०० वर्षों की बदलती हुई राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों ने कृषि पर निर्भरता को प्रोत्साहन दिया और परिणामस्वरूप आज भारत एक कृषि-प्रधान देश के रूप मे प्रसिद्ध है। भारतीय अर्थ व्यवस्था मे कृषि का कितना महत्त्व है, यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कृषि पर आज भी लगभग ६५ प्रतिशत व्यक्ति प्रत्यक्षत निर्भर है, राष्ट्रीय आय का लगभग ४५ से ४८ प्रतिशत भाग कृषि और उससे सम्बन्धित व्यवसायों से प्राप्त होता है, लघु और वृहद् उद्योगों में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है, कृषि पदार्थ विदेशी व्यापार की एक महत्वपूर्ण कुंजी है और भारतीय जन-जीवन का कृषि प्राण है। कृषि राज्यों की आय मे भू-राजस्व के रूप मे महत्वपूर्ण योगदान देती है। प्रान्तीय बजटों मे करों से प्राप्त आय का ४५-५० प्रतिशत अश तथा कुल आय मे लगभग ७ वाँ भाग भू-राजस्व अथवा मालगुजारी मे प्राप्त होता है। भारत जैसे ल्प विकसित देश की अकिंचन जनता अधिकांश आय का उपयोग अनिवार्यताओं शेष रूप से खाद्यान्नो पर करती है। रेलों, मोटरों और परिवहन के अन्य साधनों प्राप्त होने वाली आय मे कृषि पदार्थों के स्थानान्तरण से प्राप्त आय का अत्यन्त हत्वपूर्ण स्थान है। स्पष्ट है कि देश की सम्पत्ति में कृषि-सम्पत्ति एक अनुपम थान रखती है।

तो अब हमें देखना चाहिए कि भारत के प्राण इस कृषि की उन्नति के मार्ग में क्या प्रमुख बाधायें अथवा समस्यायें हैं।

कृषि सम्बन्धी समस्यायें—भारतीय कृषि की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित है.—

(१) प्रकृति पर निर्भरता:—भारतीय कृषि मानसून का जुआ है। कुल कृषि योग्य भूमि में २० प्रतिशत को कृत्रिम साधनो से सिंचाई की जाती है तथा ८० प्रतिशत भूमि को प्रकृति पर छोड दिया जाता है, और यह नहीं कहा जा सकता कि प्रकृति प्रतिकूल होगी या अनुकूल। वर्षा मानसून द्वारा होती है और मानसून कभी देर से आता है, कभी जल्दी। इसके अतिरिक्त कभी अतिवृष्टि होती है और कभी अनावृष्टि के कारण अकाल की स्थिति हो जाती है। साथ ही सर्वत्र वर्षा एक ही समय और एक ही समान भी नहीं होती। हर वर्ष आने वाली भयंकर बाढ़ों और पडने वाले सूखे से भारतीय कृषि का इतिहास भरा पडा है। यद्यपि विगत वर्षों में शासन के प्रयासों के फलस्वरूप सिंचाई-क्षेत्रों का विस्तार हुआ है, तथापि कृषि पर हमारी निर्भरता अब भी आश्चर्यजनक है।

(२) कृषि-जोतों का छोटा और असाभकार —भारत मे कृषि-जोतों का समुचित विकास न... ... । देश में प्रति व्यक्ति

...न हो सके तो एक परिवार का पालन किया जा सके। फलतः, छोटे छोटे खेतों
...को उचित प्रयोग नहीं हो पाता, सिंचाई की ठीक व्यवस्था नहीं हो पाती
...पशु व साधनों का उचित उपयोग नहीं हो सकता। वस्तुतः छोटे, [illegible]
...तों तथा मशीनों के प्रयोग की असम्भावनाओं के कारण यहाँ के कृषि का
...विकास नहीं हो पाता।

(३) भूमि का असंतुलित वितरण — भारतीय कृषि की दूसरी समस्या कृषि भूमि का कृषकों में संतुलित रूप से वितरण न होना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कृषि करने वालों में लगभग [illegible] परिवार सिंचाई पर भूमि का ...लाभ करते हैं। आँकड़े बताते हैं कि लगभग ३० प्रतिशत परिवारों के पास भूमि ...है अर्थात् ६२ प्रतिशत परिवारों के पास एक एकड़ से भी कम भूमि है और ...प्रतिशत खेतिहर परिवारों में प्रत्येक के पास लगभग ५ एकड़ या इससे भी कम ...है। केवल १६ या २० प्रतिशत परिवारों के पास ५ से १५ एकड़ के खेत हैं। ...सुधार-कानून लागू होने के बाद भी देश में छिपी हुई जमींदारी मौजूद है। ...तया भारत की कुल खेती योग्य भूमि का ५० प्रतिशत केवल १० प्रतिशत ...लोगों के हाथ में है।

(४) कृषि में व्याप्त अर्ध-बेकारी—संयुक्त राष्ट्रसंघ के एक विशेष दल द्वारा बताया गया है कि भारत जैसे अल्प विकसित देशों में अर्ध-बेकारी की समस्या ...मुख्य समस्या है जो कृषि में विशेष रूप से इसलिए उत्पन्न हो जाती है कि कृषि ...तुलना में जनसंख्या बहुत अधिक है तथा छोटे छोटे खेतों में बहुत से व्यक्ति काम ...ते हैं। न केवल भूमि पर जनसंख्या का भार होने से ही अर्ध-बेकारी उत्पन्न होती ...किन्तु भारतीय कृषि की विशेष परम्पराओं के कारण देश के विभिन्न भागों में ...१५० दिन से लेकर २७० दिन तक बेकार-से रहते हैं। उन्हें केवल रबी तथा ...फ की फसलों के समय ही काम मिल पाता है। वास्तव में भारतीय कृषि की ...एक गम्भीर समस्या है कि इसमें आवश्यकता से अधिक व्यक्ति संलग्न हैं और ...ों को आवश्यकता से बहुत कम काम मिल पाता है।

(५) दोषयुक्त प्रारम्भिक तैयारियाँ—भारतीय कृषि की एक समस्या यह ...सामान्यतः भारतीय कृषक जुताई से पहिले खेत की उचित ढंग से सफाई नहीं ..., अतः घास और गहरी जड़ों वाले पौधे खेतों में यथावत् रहते हैं। इस कारण ...की जुताई ठीक ढंग से नहीं हो पाती और उपज भी कम होती है।

(६) जुताई के प्राचीन तरीके—भारतीय कृषि की एक अन्य समस्या पुरातन ...ई है। भारतीय खेतों की जुताई में प्रयुक्त लकड़ी के हल गहरी जुताई नहीं कर ...और न ही भूमि में स्थित काँटों या प्राकृतिक जड़ों को समूल नष्ट कर पाते हैं। ...अतिरिक्त वैज्ञानिक यंत्रों के प्रयोग की भी कम गुंजायश है, क्योंकि भारत के ...छोटे खेतों में ट्रैक्टर तथा बड़े यंत्र काम नहीं दे सकते। दुर्बल पशु भी भारतीय ...के लिए एक समस्या है क्योंकि वे गहरी जुताई में असमर्थ रहते हैं। ...मामोरिया के मतानुसार भारतीय पशुओं की उत्पादकता बहुत कम है और

(७) भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास—भारतीय कृषि के लिए यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि भारत की मिट्टियों में नाइट्रोजन का बड़ा अभाव है और साथ ही निरन्तर घटने वाली उर्वरा शक्ति में वृद्धि करने के लिए भारतीय कृषक सजग नहीं हैं। हड्डी, रक्त और मछली की खाद का उपयोग प्रायः धार्मिक विश्वासों के कारण नहीं किया जाता तथा हरी खाद आदि के विषय में भारतीय कृषक अनभिज्ञ हैं। खली की खाद और रासायनिक खाद महंगी पड़ती है अतः केवल बड़े खेतों में, विशेष रूप से व्यापारिक फसलों के लिए, इस खाद का प्रयोग किया जाता है।

(८) कीड़ों, टिड्डियों और कीटाणुओं द्वारा क्षति—भारत में कृषि-सम्बन्धी एक गम्भीर समस्या कीड़ों, टिड्डियों और अन्य कीटाणुओं द्वारा फसलों को पहुँचाई जाने वाली क्षति की है। इनके द्वारा प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों के मूल्य की फसल नष्ट कर दी जाती है। शाही कृषि-आयोग ने केवल बम्बई में वन्य पशुओं द्वारा नष्ट कृषि-उपज का मूल्य ७० लाख रुपया बताया था, जबकि आयोग के मत में उत्तर-प्रदेश में व मध्यप्रदेश में यह क्षति कहीं ज्यादा थी। ऐसा अनुमान है कि भारत में प्रतिवर्ष १० प्रतिशत कृषि-उपज कीड़ों द्वारा नष्ट कर दी जाती है। वुड हैड कमीशन के मतानुसार करीब १८० करोड़ रुपयों के मूल्यों की फसलें इस तरह प्रतिवर्ष नष्ट हो जाती हैं।

(९) उत्तम बीजों का अभाव—श्रीमती वीरा एन्स्टे भारतीय कृषि की प्रमुख समस्याओं में अच्छे बीजों के अभाव को सर्वोपरि मानती हैं। उनके मतानुसार भारतीय कृषक साधारणतया बीजों के चुनाव में लापरवाही बरतते हैं तथा घटिया किस्म के बीजों का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त बीज बोने का तरीका भी पुराना और रूढ़िगत है जिससे उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बीज पुराने और घुन लगे हुए होने से उपज बहुत कम होती है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से राज्य द्वारा अच्छे बीजों का वितरण किया जाने लगा है पर फिर भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती।

(१०) ऋण-ग्रस्तता—ऋण ग्रस्तता का अभिशाप भारतीय कृषि के विकास की सबसे बड़ी समस्या है। ऋणी होने के कारण अधिकांश कृषक अग्रिम रूप से अपनी उपज महाजन को बेचने के लिए वचनबद्ध हो जाता है और इस तरह कृषि में उनकी रुचि और उत्साह को ठेस पहुँचती रहती है। धंधे के लिए पूंजी उधार लेना बुरी बात नहीं है, लेकिन दुर्भाग्यवश भारत में ग्रामीण ऋण अनुत्पादक हैं और भारत का ग्रामीण आर्थिक दृष्टि से महाजन का दास बना रहता है। ऋण-ग्रस्तता के कारण कृषक नवीन उपकरणों, बीजों और खाद आदि का उपयोग करने में प्रायः असमर्थ रहते हैं। उनकी आय का एक बड़ा भाग केवल ऋण तथा ब्याज चुकाने में व्यय हो जाता है। फलस्वरूप वे उपज बढ़ाने तथा कृषि-प्रणाली में सुधार करने योग्य नहीं हो पाते।

(११) भूमि पर बढ़ती हुई जनसंख्या का भार—भारतीय कृषि के लिए एक अभिशाप जनसंख्या की तीव्र वृद्धि है। भारत में जनसंख्या की वृद्धि से कृषि योग्य भूमि पर भार बढ़ता जा रहा है। विगत १० वर्षों में जहाँ जनसंख्या में लगभग

७ करोड़ की वृद्धि हुई है वहाँ कृषि योग्य भूमि की मात्रा में केवल ३ करोड़ एकड़ की बढ़ोतरी ही हो पाई है। जनसंख्या बढ़ने से न केवल प्रति व्यक्ति भूमि की मात्रा २·२५ एकड़ से कम होकर लगभग १·८ एकड़ रह गई है, बल्कि खेती योग्य भूमि भी प्रति व्यक्ति घटती जा रही है और यह ·८१ से घटकर लगभग ·७४ एकड़ रह गई है। इस तरह कृषि लोगों के लिये अनार्थिक और अनाकर्षक बनती जा रही है। साथ ही एक गम्भीर तथ्य यह भी है कि अब कृषि योग्य भूमि में वृद्धि की सम्भावना भी अधिक नहीं रही है।

(१२) कृषि की अनार्थिकता—भारतीय कृषि की दुर्दशा का एक कारण यह है कि भारतीय कृषक इसे व्यावसायिक दृष्टि से नहीं, अपितु जीवनयापन की पद्धति के रूप में अपनाए हुए हैं। भारतीय कृषि का स्वरूप भी कुछ ऐसा है कि किसान उसमें जितने समय व्यस्त रहता है, उतने समय के श्रम का प्रतिफल उसे बहुत कम मिलता है। इसके कारण प्रति एकड़ कम उपज, सिंचाई-बीज-खाद तथा साख की सुविधाओं का अभाव और क्रय-व्यवस्था की दोषपूर्ण अवस्था आदि हैं। कृषि की आय कम होने के कारण स्वभावतः कृषकों को अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण लेने की आवश्यकता पड़ती है। यह हर्ष की बात है कि अब शनैः शनैः कृषि की अनार्थिकता का दोष मिटता जा रहा है।

(१३) अन्य तत्व—उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त भारतीय कृषि इसलिए भी पिछड़ी हुई है कि भारतीय कृषक महत्वाकांक्षी नहीं है और धर्म तथा जातिगत मान्यताओं ने उन्हें भाग्यवादी बना दिया है। फसलों के हेरफेर के विषय में भी वे आवश्यक रुचि नहीं लेते और प्रकृति पर निर्भर रहना ही उपयुक्त समझते हैं।

कृषि सुधार—भारतीय कृषि की समस्याओं को निम्नलिखित उपायों द्वारा बहुत कुछ हल किया जा सकता है—

(१) कृषि का आधुनिकरण—कृषि के पिछड़ेपन को मिटाने के लिए कृषि-यंत्रों का प्रयोग करके आधुनिक वैज्ञानिक कृषि को अधिकाधिक अपनाना होगा। यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि-सम्बन्धी यन्त्रों के प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है तथापि छोटे-छोटे ट्रैक्टरों, आधुनिक तरीकों के नये हलों, पम्पिंग सैटों आदि कृषि-यन्त्रों की बड़ी कमी है।

(२) कृषि-शिक्षा का प्रसार—भारतीय कृषि का उद्धार तभी संभव हो सकेगा जबकि सभी कृषकों को कृषि के आधुनिक तरीकों में भली प्रकार प्रशिक्षित कर दिया जायगा और उनमें वैज्ञानिक कृषि के प्रति पूरी रुचि जाग्रत कर दी जायगी। देश में अभी तक खोले गए कृषि-प्रशिक्षणालय संख्या में बहुत ही अपर्याप्त [illegible]। अतः आवश्यक है कि अधिक से अधिक कृषि-विद्यालय खोले जाएँ। इन में से ही अथवा पृथक रूप से कुछ घूमते-फिरते प्रशिक्षणालय भी आरम्भ [illegible] जायें जो प्रत्येक गाँव में आकर कृषकों को कृषि का व्यावहारिक प्रशिक्षण दें। [illegible]रिक्त कृषि-सम्बन्धी प्रदर्शनियों का प्रभावशाली ढंग से आयोजन हो।

(३) खेतों का बिखरा होना समाप्त किया जाय—कृषि उपज को बढ़ाने के वैज्ञानिक यन्त्रों के उपयोग के लिए बड़े-बड़े खेतों का होना आवश्यक है।

(४) कानून द्वारा खेतों का निम्नतम क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाय,

(ख) भूमि की प्रभावशाली चकबन्दी की जाए जो सहकारी समितियों या कानून द्वारा हो और (ग) सहकारी खेतों का अधिकाधिक प्रचार किया जाय।

(४) भूमि की अधिकतम सीमा निश्चित की जाय—यह भी आवश्यक है कि कानून द्वारा खेतों की अधिकतम सीमा निश्चित कर दी जाय ताकि बड़े-बड़े जमींदार और पैसेवाले भूमि के विशाल क्षेत्रों पर अपना स्वामित्व स्थापित न कर सकें। योजनाओं में भी इस सम्बन्ध में सुझाव दिए गए हैं और विभिन्न राज्यों में भूमि की अधिकतम सीमा ३० से ५० एकड़ तक की सुझाई गई है।

(५) सामूहिक कृषि को प्रोत्साहन—कृषि द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से सहकारी अथवा सामूहिक खेती को अत्यधिक प्रोत्साहन देना चाहिये। यदि सम्भव हो तो कुछ परिस्थितियों में कानून द्वारा इसे अनिवार्य घोषित कर देना चाहिए। तब राजकीय संरक्षण में खेती करवा के लाभ का उचित वितरण राज्य द्वारा किया जाना चाहिए। इस रीति से छोटे-छोटे किसानों को विशेष राहत मिल सकेगी।

(६) कृषि पर जनसंख्या के भार को कम किया जाय—कृषि पर जनसंख्या का भार कम किया जाना नितान्त आवश्यक है। इस दिशा में विशेष प्रयत्न करके ग्रामीण जनसंख्या के एक अच्छे प्रतिशत को अन्य उद्योग-धन्धों में लगाया जाना चाहिए ताकि एक तो कृषि लाभकारी बने और दूसरे ग्रामीण ऋण-ग्रस्तता कम हो।

(७) भूमि का उचित वितरण—आज जो भूमि किसानों के पास है, उसका उचित वितरण ठीक प्रकार से होना चाहिए ताकि काम करने वालों को आवश्यक भूमि मिल सके और वे अपना तथा कृषि का स्तर बढ़ाने में सफल हो सकें।

(८) बंजर भूमि का उपयोग—भारत में काफी मात्रा में भूमि बंजर पड़ी है जहां पर कोई काम नहीं होता। ऐसी भूमि को उपजाऊ बनाकर उसका उचित उपयोग करने के अधिकाधिक प्रयत्न किये जाने चाहियें।

(९) सिंचाई का विस्तार—भारतीय कृषि क्षेत्र में लगभग चौथाई से भी कम भाग को सिंचाई की पूर्ण सुविधायें प्राप्त है। वर्षा की अनिश्चितता एवं असमानता के कारण भारतीय कृषि को सदैव बड़ी हानि का सामना करना पड़ता है। अतः कुओं, नलकूपों, नहरों, बांधों, तालाबों आदि का द्रुत गति से निर्माण करके देश में सिंचाई-सुविधाओं का जाल बिछा देना चाहिये। निश्चित ही सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है और पंचवर्षीय योजनाओं में काफी भूमि सिंचाई के अन्तर्गत लाई जा चुकी है।

(१०) उत्तम खाद व बीज की व्यवस्था—उत्तम खाद उत्तम अन्न पैदा करती है और उत्तम बीज उत्तम फल। अतः सुन्दर फसल और सुन्दर फल प्राप्त करने के लिए खाद व बीज का श्रेष्ठ होना आवश्यक है। भूमि की उर्वरता की दृष्टि से गोबर सर्वोत्तम खाद है जिसे भारतीय किसान जलाकर नष्ट कर देते हैं। सरकार को कानून द्वारा इसके दुरुपयोग पर प्रभावशाली रोक लगा देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त तिलहन, हड्डियों, पशुओं के मूत्र, तथा मछली आदि की खाद को भी प्रोत्साहन देना चाहिए। उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक खाद का अधिकाधिक

(ख) भूमि की प्रभावशाली चकबन्दी की जाए जो सहकारी समितियों या कानून द्वारा हो और (ग) सहकारी खेतों का अधिकाधिक प्रचार किया जाय।

(४) भूमि की अधिकतम सीमा निश्चित की जाय—यह भी आवश्यक है कि कानून द्वारा खेतों की अधिकतम सीमा निश्चित कर दी जाय ताकि बड़े-बड़े जमींदार और पैसेवाले भूमि के विशाल क्षेत्रो पर अपना स्वामित्व स्थापित न कर सकें। योजनाओं में भी इस सम्बन्ध मे सुझाव दिए गए हैं और विभिन्न राज्यों में भूमि की अधिकतम सीमा ३० से ५० एकड़ तक की सुझाई गई है।

(५) सामूहिक कृषि को प्रोत्साहन—कृषि द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से सहकारी अथवा सामूहिक खेती को अत्यधिक प्रोत्साहन देना चाहिये। यदि सम्भव हो तो कुछ परिस्थितियों में कानून द्वारा इसे अनिवार्य घोषित कर देना चाहिए। सब राजकीय संरक्षण में मेनी करवा के लाभ का उचित वितरण राज्य द्वारा किया जाना चाहिए। इस रीति से छोटे-छोटे किसानों को विशेष राहत मिल सकेगी।

(६) कृषि पर जनसंख्या के भार को कम किया जाय—कृषि पर जनसंख्या का भार कम किया जाना नितान्त आवश्यक है। इस दिशा में विशेष प्रयत्न करके ग्रामीण जनसंख्या के एक अच्छे प्रतिशत को अन्य उद्योग-धन्धों में लगाया जाना चाहिए ताकि एक तो कृषि लाभकारी बने और दूसरे ग्रामीण ऋण-ग्रस्तता कम हो।

(७) भूमि का उचित वितरण—आज जो भूमि किसानों के पास है, उसका उचित वितरण ठीक प्रकार से होना चाहिए ताकि काम करने वालों को आवश्यक भूमि मिल सके और वे अपना तथा कृषि का स्तर बढ़ाने में सफल हो सकें।

(८) बंजर भूमि का उपयोग—भारत में काफी मात्रा मे भूमि बंजर पड़ी है जहां पर कोई काम नहीं होता। ऐसी भूमि को उपजाऊ बनाकर उसका उचित उपयोग करने के अधिकाधिक प्रयत्न किये जाने चाहिये।

(९) सिंचाई का विस्तार—भारतीय कृषि क्षेत्र में लगभग चौथाई से भी कम भाग को सिंचाई की पूर्ण सुविधाएं प्राप्त हैं। वर्षा की अनिश्चितता एवं असमानता के कारण भारतीय कृषि को सदैव बड़ी हानि का सामना करना पड़ता है। अतः कुओं, नलकूपों, नहरों, बांधों, तालाबों आदि का द्रुत गति से निर्माण करके देश में सिंचाई-सुविधाओं का जाल बिछा देना चाहिये। निश्चित ही सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है और पंचवर्षीय योजनाओं में काफी भूमि सिंच.ई के अन्तर्गत लाई जा चुकी है।

(१०) उत्तम खाद व बीज की व्यवस्था—उत्तम खाद उत्तम अन्न पैदा करती है और उत्तम बीज उत्तम फल। अतः सुन्दर फसल और सुन्दर फल प्राप्त करने के लिए खाद व बीज का श्रेष्ठ होना आवश्यक है। भूमि की उर्वरता की [illegible]

उत्पादन होना भी जरूरी है। प्रसन्नता की बात है कि रासायनिक उत्पादन के लिए सरकार सराहनीय प्रयास कर रही है। उत्तम बीजों के लिए भी सरकार ने विशेष कदम उठाये हैं लेकिन प्रशासन की अनुशासन-हीनता और ढिलाई के कारण व्यवस्था प्रभावशाली ढंग से नहीं हो पारही है। बीजों की रक्षा और वितरण के प्रति अत्यधिक सजगता की आवश्यकता है। उत्तम बीज उत्पादन के लिए बड़ी संख्या में बीज-फार्म खोले जाने चाहियें।

(११) गहरी खेती पर बल—भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाकर अधिक उत्पादन करने की अपेक्षा कम भूमि पर अधिकतम उत्पादन के लिए गहरी खेती को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

(१२) पशुओं की क्षति को रोकने का प्रयत्न—ग्रामों में पशु चिकित्सालय खोले जाने चाहिए और स्थान-स्थान पर बड़े चरागाहों की स्थापना की जानी चाहिए। पशुधन की कमजोरी को हटाने के लिए पशुओं के नस्ल-सुधार पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(१३) भूमि का मालिक किसान—खेती करने वाला ही खेत का मालिक हो, ऐसा नियम सरकार को बनाना चाहिये ताकि किसान जमीन से बेदखल नहीं किया जाये व खेती पर कुप्रभाव नहीं पड़े।

(१४) किसानों को आर्थिक सहायता देना—समय-समय पर किसानों को आर्थिक सहायता देनी चाहिए ताकि वे अपनी स्थिति सुदृढ़ बना सकें जिससे खेती का विकास हो। भारत सरकार इस ओर प्रयत्नशील है, इसमें सन्देह नहीं।

(१५) अधिक उत्पादन करने वालों को पारितोषिक—अधिक उत्पादन करने के लिए यह आवश्यक है कि किसानों को प्रोत्साहित किया जाय। यह प्रोत्साहन कई रूप से प्रदान किया जा सकता है, जैसे किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य दिलवाकर, गांव और मण्डियों को सड़कों द्वारा जोड़कर तथा कई प्रकार पुरस्कार, इनाम और उपाधियां देकर। यह संतोष की बात है कि सरकार इस दिशा में जागरूक है, सर्वश्रेष्ठ किसानों को पुरस्कार और उपाधियां दी जाती हैं और समय-समय पर जिलास्तरीय, राज्यस्तरीय और अखिल देश-स्तरीय प्रतियोगिताएँ होती हैं।

(१६) किसान का मानसिक परिवर्तन किया जाना चाहिये—भारतीय किसान हमेशा भाग्यवादी रहा है और उसमें हीन भाव आ गया है। अस्तु, समाज-शिक्षण द्वारा उसका मानसिक परिवर्तन करना चाहिये।

कृषि की पिछड़ी हुई दशा को सुधारने के लिए भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में एक बहुत बड़ी राशि व्यय की जा चुकी है। कृषि पर इन योजनाओं में कितना खर्च किया गया है और इस दिशा में कितने प्रयास किये गए हैं, इसका विवरण अगले पृष्ठों में पंचवर्षीय योजनाओं के वर्णन से भली प्रकार स्पष्ट हो जायगा। खाद्य-समस्या को हल करने के लिए जनवरी १९६५ में खाद्य-व्यापार निगम की स्थापना की गई है जिसमें १०० करोड़ रुपयों की राशि कृषि-विकास के लिये रखी गई है। इसके माध्यम से सरकार किसानों से अनाज खरीदकर और उस अनाज को समय-समय पर उचित मूल्यों में बेचकर अनाज के भावों को ऊँचा न जाने देने को

प्रयत्नशील है, यद्यपि इस दिशा में अभी तक विशेष सफलता नहीं मिली है। इसके अतिरिक्त एक कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की गई है। जब व्यापारिक फसल के भाव बढ़ जाते हैं तो किसान उनको अधिक उत्पन्न करने लगता है और खाद्यान्नों को कम। अतः दोनों में सन्तुलन बनाये रखने के लिए कृषि-मूल्य-आयोग की स्थापना की गई।

भारतीय आर्थिक विकास में उद्योग सम्बन्धी समस्यायें
(Problems of Industry in Indian Economics)

समस्याएं —उद्योग किसी भी देश के आर्थिक विकास की जीवन शक्ति होते हैं। इसे साधारणतया दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है-बड़े उद्योग और लघु उद्योग। बड़े उद्योगों में उन औद्योगिक इकाइयों को सम्मिलित किया जाता है जिनके अन्तर्गत उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर होता है तथा पूंजी और शक्ति द्वारा सचालित यंत्रों का व्यापक रूप में उपयोग होता है। इसके विपरीत लघु उद्योग में उत्पादन का स्तर तो छोटा होता ही है, पूंजी एवम् शक्ति का उपयोग भी अत्यन्त सीमित रहता है। भारत जैसे देश में, जहाँ २/३ से अधिक व्यक्ति छोटे पैमाने पर खेती करते हैं, एक और भी उद्योग महत्वपूर्ण रहा है और वह है कुटीर उद्योग। सदियों से भारतीय कृषक और ग्रामीण वर्ग सहायक आय की प्राप्ति के लिए इन उद्योगों में संलग्न रहे हैं और आज भी ये लाखों व्यक्तियों को जीविका प्रदान कर रहे हैं।

(क) कुटीर एवं लघु उद्योग —स्वतन्त्र भारत से पूर्व ब्रिटिश शासनकाल में भारत के कुटीर एवम् लघु उद्योगों की दशा नितान्त शोचनीय थी, किन्तु स्वतन्त्रता के उपरान्त इन उद्योगों के विकास और संरक्षण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। फिर भी जिस गति से इनका विकास होना चाहिये था, उस गति से वह नहीं हो सका। इसका कारण भारतीय कुटीर उद्योग के मार्ग में उपस्थित विभिन्न समस्यायें अथवा बाधायें हैं। यद्यपि विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योगों और लघु उद्योगों की विभिन्न समस्याएं हैं, तथापि उनमें से कुछ समस्याएं सामान्य हैं और उन्हें हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं :—

(१) अच्छे कच्चे माल की कठिनाइयां :—कुटीर और लघु उद्योगों की स्थापना तथा विकास के लिए उन्नत श्रेणी का और आवश्यक कच्चा माल अत्यन्त कठिनाई तथा विलम्ब के बाद प्राप्त हो पाता है। इसके अतिरिक्त कारीगर कच्चा माल अधिकांशतः व्यापारियों से खरीदते हैं, अतः माल का उन्हें अधिक मूल्य देना पड़ता है और वस्तु भी अच्छी नहीं मिलती। देश का अधिकांश कच्चा माल बड़े-बड़े कारखानों में ही खप जाता है। बुनकर को सूत, लुहारों को लोहा इस प्रकार अन्य कारीगरों को दूसरा सामान उचित मूल्य पर तथा आवश्यक मात्रा में नहीं मिल पाता।

(२) पूंजी का अभाव :—भारतीय कारीगर निर्धन हैं। न उनके पास कच्चा माल खरीदने को पैसा है और न उनकी इतनी सामर्थ्य है कि माल बनने के बाद थोड़े भावों का इन्तजार कर सकें। माल तैयार करते ही उन्हें बेचना पड़ता है चाहे भाव अनुकूल हों या प्रतिकूल। इन लोगों को अधिकांशतः महाजनों से ऊंची ब्याज

दर पर ऋण लेना पड़ता है जो इनका शोषण करते हैं। यद्यपि लघु उद्योगों के लिए कुछ सीमा तक पूंजी की व्यवस्था राज्य द्वारा की जा रही है, तथापि विक्रय हेतु आवश्यक पूंजी की व्यवस्था की स्थिति बड़ी असंतोषप्रद है। न बैंकों से और न ही सहकारी समितियों से कुटीर उद्योगों को पर्याप्त संतोष है।

(३) **विक्रय की कठिनाइयां** :—कुटीर और लघु उद्योगों द्वारा निर्मित माल की विक्रय-प्रणाली भी दोषपूर्ण है। कारीगरों को कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है और वे विक्रय-संबंधी अवसरों का सही अनुमान लगाने में भी असमर्थ रहते हैं। इन उद्योगों के माल को उचित कीमत पर देशी या विदेशी बाजारों में बेचने की विपणन सुविधायें नहीं हैं। सरकार के इस दिशा में प्रयास नाकाफी हैं।

(४) **अशिक्षा, रूढ़िवादिता और प्रशिक्षण का अभाव** :—अधिकांश कुटीर कारीगर अशिक्षित हैं। ये नवीन औजारों और तरीकों को काम में नहीं लाते और न ही ऐसा प्रयत्न करते हैं कि उनके माल में नवीनता आवे। उनमें अनुसंधान व प्रशिक्षण प्रवृत्ति का अभाव है। योजना आयोग ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि नवीन प्राविधियों के प्रति भारतीय शिल्पकारों का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण नहीं है।

(५) **वैज्ञानिक यंत्रों का अभाव और दूषित निर्माण विधि** :—कुटीर कारीगरों के औजार घटिया और पुराने हैं जिससे उनकी उत्पादन-क्षमता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त कारीगर उत्पादन की पुरातन रीतियों का ही पालन करता है।

(६) **खरीददार की पसन्द में परिवर्तन** —कुटीर और लघु उद्योगों के समक्ष एक गम्भीर समस्या यह है कि आज खरीददार की पसन्द बदल गई है। नये-नये डिजाइनों और नमूनों की बाजार में मांग है। अधिकांश कारीगर पुराने डिजाइन और नमूने की वस्तुएं बनाना जानते हैं, अतः यन्त्र-निर्मित पदार्थों की स्पर्धा में वे टिक नहीं पाते।

(७) वाडिया मर्चेन्ट के मत में श्रमिकों के सहयोग तथा सहकारिता का अभाव भी कुटीर और लघु उद्योगों के विकास में बाधक हो रहा है।

(८) कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुओं की बिक्री के लिये खादी और ग्रामोद्योग संघों द्वारा सराहनीय प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन इन वस्तुओं की ऊंची उत्पादन-लागत और अधिक ऊंची कीमतों ने इन्हें सामान्य जनता के उपभोग की वस्तुओं की अपेक्षा धनियों की कोठियों में विलासिता-प्रदर्शन की वस्तुएं बना दी हैं।

बम्बई की औद्योगिक और आर्थिक जांच समिति ने कुटीर व लघु उद्योगों के विकास से सम्बन्धित ६ समस्याएं अथवा बाधाएं बतलाई हैं :—

(अ) कच्चे माल का अभाव, (आ) निर्माण की पिछड़ी हुई प्राविधियां, (इ) वित्त का अभाव, (ई) बिक्री की अव्यवस्था, (उ) लघु उद्योगों पर लगे हुए उत्पादन कर जिनसे कि लागत बढ़ जाती है एवम् (ऊ) उद्योगों से संबंधित अन्य कठिनाइयां।

[illegible] के [illegible] का अभाव :—[illegible] कुटीर उद्योगों के भावी

(१) सहकारी उद्योग समितियाँ—कुटीर उद्योगों की अपनी सहकारी समितियां हों जो उन्हें कच्चा माल लाकर दें और उनके द्वारा निर्मित माल बेचने का प्रबन्ध करें। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस प्रकार की समितियों की स्थापना की जा रही है, तथापि इस दिशा में और भी तेजी से प्रयास किया जाना आवश्यक है।

(२) शिक्षा और अनुसंधान का प्रसार—कुटीर-कारीगरों मे शिक्षा का प्रसार किया जाय और उनकी अनुसंधान-प्रवृत्ति को जगाया जाए। इसके लिए उचित है कि प्राइमरी स्कूलों मे अनिवार्य रूप से इस संबंध में शिक्षा दी जाए, यांत्रिक शिक्षा के केन्द्र खोले जाएं, उत्पादन नये ढंग से नवीन औजारों द्वारा किया जाए, व्यावहारिक शिक्षा के लिए प्रदर्शन केन्द्र खोले जाएं, और जेलों तथा सुधार-संस्थाओं में औद्योगिक दस्तकारी सिखाई जाए। इस क्षेत्र मे किये जाने वाले सरकारी प्रयासों को अधिक प्रभावी बनाया जाना चाहिये।

(३) संरक्षण—सरकार कुटीर उद्योगों को अधिकाधिक संरक्षण प्रदान करे। बड़े कारखानों और कुटीर उद्योगों के उत्पादन क्षेत्र को सुरक्षित कर दिया जाए। वस्तु की अधिक बढ़ने वाली मांग को कुटीर उद्योग द्वारा ही पूरा किया जाए। इन उद्योगों को उत्पादन करों से मुक्त रखा जाए तथा कल-कारखानों के माल पर अधिक कर लगाया जाए। इसके अतिरिक्त कुटीर उद्योगों को कच्चा माल मिलने की पर्याप्त सुविधायें प्रदान की जाएं।

(४) आर्थिक सहायता—सरकार का कर्तव्य है कि कुटीर कारीगरों को अधिकाधिक सस्ते दामों पर कच्चा माल देकर और उधार देकर तथा तैयार माल की बिक्री का उचित प्रबन्ध कराके उनकी हर सम्भव सहायता करे। पूंजी की पूर्ति के लिए सहकारी बैंकों की अधिकाधिक स्थापना की जाए जो शिल्पकारों को अल्प तथा मध्यमकालीन ऋण दे सकें।

(५) नवीन छोटे यंत्रों व नवीन विधियों का उपयोग:—यह आवश्यक है कि भारतीय कुटीर एवम् लघु उद्योगों मे उत्पादन विधि को सुधारा जाए और नवीन विधियों को लोकप्रिय बनाकर कारीगरों को उन्हें अपनाने की प्रेरणा दी जाए। शिल्पकारों को नवीन प्रविधियों से साथ बनाये जाएं। सरकार कारीगरों को आधुनिक यन्त्र आसान किस्तों पर दे और यह जांच करे कि वे उनका प्रयोग करते हैं या नहीं। पर्याप्त संख्या में सरकारी मिस्त्री नियुक्त किए जाएं जो इन यन्त्रों के उपयोग का समुचित प्रशिक्षण दें।

(६) विद्युत शक्ति का सीमित प्रयोग—यदि कुटीर और लघु उद्योगों में विद्युत एंजिन के सीमित प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाए तो उत्पादन व्यय भी कम हो जाएगा और माल भी अच्छा तैयार हो सकेगा।

(७) उपभोक्ता सहकारी भण्डारों तथा कुटीर एवम् लघु उद्योगों की इकाईयों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किए जाएं ताकि उचित मूल्यों पर उपभोक्ता आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कर सकें। इससे इनकी लोकप्रियता में वृद्धि होगी और इनके विकास की गति बढ़ेगी।

(८) मलेनबॉडर के मत में लघु उद्योगों, विशेषकर छोटी औद्योगिक बस्तियों

के लिए [illegible] के कठिनाइयों को ध्यान में रखकर उपचार किये [illegible]
गई हैं। उपर्युक्त कदमों का अनुसरण किया जाए।

(ग) भारतीय जनता के लिए भी यह आवश्यक है कि वह "स्वदेशी [illegible] उपभोग" को तथा कुटीर और लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का [illegible] प्रयोग बढ़ाये। ऐसा करने से बहुत ही भारतीय हस्तकला पुनः जीवित हो [illegible]

यह सन्तोष का विषय है कि भारत सरकार कुटीर और लघु उद्योगों के लिए सभी आवश्यक कदम यथासमय उठा रही है। आवश्यकता इस बात की है कि इन कदमों की गति को तेज किया जाए।

(ख) बृहत् उद्योगों की समस्यायें—आधुनिक युग में केवल वही देश स्वतंत्र और शक्तिशाली माना जाता है जो औद्योगीकरण के क्षेत्र में अग्रणी हो जहाँ बड़े पैमाने के उद्योग अधिक से अधिक हों। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय उद्योगों को नष्ट करने की दिशा में सामान्य प्रयास हुए, स्वतंत्र भारत में औद्योगिक विकास के लिये भरसक चेष्टा की जा रही है, फिर भी भारत अभी भी औद्योगिक विकास की किशोरावस्था में है। भारत के प्रमुख उद्योग सूती वस्त्र, [illegible] इस्पात और लोहा, जूट, कोयला, सीमेंट, खनिज-तेल, कागज आदि से सम्बन्धित हैं। रासायनिक उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग और देश की सुरक्षा-सामग्री बनाने के उद्योग भी भारत के बृहत् उद्योगों की श्रेणी में आते हैं।

उपरोक्त सभी उद्योगों की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ और समस्याएँ हैं जिनके कारण चाहने पर भी अपना समुचित विकास नहीं कर पा रहे हैं। अनेक समस्याएँ ऐसी हैं जो सामान्य रूप से सभी उद्योगों के समक्ष उपस्थित हैं। हम यहाँ पर ऐसी ही सामान्य समस्याओं और कुछ अन्य प्रमुख समस्याओं का उल्लेख करेंगे।

(१) पूंजी की कमी—औद्योगिक विकास में भारी-भारी आधारभूत उद्योगों की स्थापना के लिये अरबों रुपया चाहिये। भारतीय पूंजीपति कम मुनाफा वाले उद्योगों में अपनी पूंजी लगाना नहीं चाहते और अन्य उद्योगों में भी उन्हें यह डर रहता है कि कहीं सरकार कोई कर लगाकर पूंजी जब्त न कर ले। इसके अतिरिक्त भारत की अधिकांश जनता गरीब है अतः सरकारी अन्य समिति है। स्वतन्त्रता के बाद एक पर एक आने वाली कठिनाइयों का सामना करने में भारत सरकार की अधि[illegible]
खतरों एवं नाना [illegible]
व्यय भी बढ़ाना प[illegible]
भारत को विदेशी ऋण की आशा में मुहताज बना रहना पड़ता है।

स्वतंत्रता के बाद विदेशी सहायता के आधार पर ही हमारे महत्त्वपूर्ण उद्योगों का विकास हो सका है और जब तक देश की जनता औद्योगिक विकास हेतु पूंजी लगाने को तत्पर नहीं होगी, भारत को विदेशों पर निर्भरता चलती रहेगी।

(२) उद्योगपतियों की शोषणवृत्ति—उद्योगपति मजदूरों के लिए स्वास्थ्यप्रद मकान, वेतन, छुट्टी, न्यायपूर्ण व्यवहार आदि की सुविधा नहीं देते। अतः मजदूर [illegible] परवाह नहीं रखता। वे धीरे-धीरे काम करते हैं। साथ ही

(३) उद्योगों के केन्द्रीयकरण की समस्या—यह एक गम्भीर समस्या है कि भारत में उद्योगो के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति है। प्रारम्भ मे अनेक प्रमुख उद्योग बन्दरगाहों के किनारे अर्थात् कलकत्ता, बम्बई और मद्रास मे केन्द्रित हुये। इसके बाद जमशेदपुर, शोलापुर, कानपुर, अहमदाबाद आदि मे केन्द्रित हो गये। क्षेत्रीय वितरण की दृष्टि से उद्योगों का वितरण निश्चय ही दोषपूर्ण है। यह एक अच्छी बात है कि योजनाओं में केन्द्रीयकरण की समस्या को हल करने के लिये विभिन्न स्थानों पर औद्योगिक केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं। उदाहरण के लिए इस्पात के कारखाने भिलाई (मध्य प्रदेश), रूरकेला (उड़ीसा), दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल) आदि में लगाये गये हैं तो इंजीनियरिंग के अनेक उद्योग देश के दक्षिणी भाग में स्थित हैं लेकिन फिर भी ऐसे अनेक क्षेत्र विद्यमान हैं जो यातायात के साधनो की कमी के कारण पिछड़े हुये हैं यद्यपि वहा कच्चा माल उपलब्ध है।

(४) कच्चे माल की कमी—भारत का अधिकांश औद्योगिक उत्पादन, विशेष रूप से सूती वस्त्र, चीनी, जूट और खाद्य पदार्थों का उत्पादन, कृषि पर निर्भर है। लेकिन भारतीय कृषि प्राकृतिक प्रकोप से पीड़ित रहती है, अतः कारखानों को नियमित रूप से कच्चा माल नहीं मिल पाता और इसीलिये मूल्यों में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं।

(५) पूंजीगत उद्योगों का कम महत्व—भारतीय उद्योगो मे पूंजीगत उद्योगों का महत्व उपभोग्य वस्तुओं से सम्बन्धित उद्योगो की अपेक्षा बहुत कम है। भारत में मुख्यत उपभोग्य वस्तुए बनाने वाले उद्योगो की ही प्रधानता रही है। १९६५ में कुल देशभर के १३,१६३ बड़े कारखानो मे लगभग २९.३५ लाख व्यक्ति काम कर रहे थे, जिनमें से वस्त्र-उद्योग व खाद्य उद्योगों के कारखानों की संख्या लगभग चार हजार चार सौ थी और इनमें १५.५० लाख व्यक्ति संलग्न थे। भारत में केवल लगभग १५ प्रतिशत श्रमिक जनता धातु और इंजीनियरिंग उद्योगो मे सम्मिलित है जबकि इंगलैण्ड में यह अनुपात लगभग ५० प्रतिशत है। जापान, स्वीटजरलैण्ड और इटली जैसे छोटे देशो मे भी भारत की अपेक्षा अधिक जनसंख्या धातु व इंजीनियरिंग उद्योगों में संलग्न है।

(६) सुसंगठित बाजार का अभाव—उद्योगो के विकास में एक प्रमुख बाधक समस्या अथवा कठिनाई किसी संगठित बाजार का न होना है। साथ ही उत्पादन लागत अधिक होने से वस्तुओं के मूल्य इतने बढ़ जाते हैं कि विदेशो से प्रतियोगिता करना मुश्किल हो जाता है।

(७) प्रशिक्षित अधिकारियों की कमी—उद्योगों की एक प्रमुख समस्या प्रशिक्षित एवं कुशल अधिकारियों की अत्यधिक कमी होना है। देश मे नए-नए उद्योगों की स्थापना और उनके संचालन के लिये हमारी मांग के बराबर प्रशिक्षित अधिकारी देश मे उपलब्ध नहीं होते और इस बारे में भी विदेशी विशेषज्ञों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। सरकार एवं निजी क्षेत्र चुने हुए अधिकारियों को प्रशिक्षण के लिए सोवियत रूस, अमेरिका, इंगलैण्ड, जर्मनी आदि भेजते हैं, लेकिन विदेश

मुद्रा की कमी के कारण ये प्रयत्न भी सीमित स्तर तक ही हो पाते हैं। कुशल श्रमिकों और प्राविधिक ज्ञानवान व्यक्तियों के अभाव के कारण एक ओर तो विद्यमान औद्योगिक क्षमता का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है, और दूसरी ओर नवीन उद्योगों की स्थापना में रुकावटें आ रही हैं। मेनसबर्ग इन कमजोरी और कमियों का कारण मुख्यतः लोगों की गरीबी, धार्मिक एवं सांस्कृतिक बन्धनों एवं सदियों से चली आ रही संकुचित विचारधारा को मानते हैं। उनके अनुसार इसीलिये भारत में औद्योगिक प्रबन्ध हेतु योग्य व्यक्ति नहीं मिल पाते।

(८) कृषकों की निर्धनता—भारतीय उद्योगों के विकास की एक अन्य समस्या कृषकों की निर्धनता है, क्योंकि उन्हीं की क्रयशक्ति पर उद्योगों का विकास निर्भर करता है। श्रमिकों की अनियमित वृत्ति (अनुपस्थितिवाद) तथा आधारभूत उद्योगों की कमी भी औद्योगीकरण की धीमी गति के लिये उत्तरदायी है।

(९) आयात निर्यात की समस्या—भारतीय उद्योगों के समक्ष एक कठिन समस्या आयात-निर्यात की है। अवमूल्यन के कारण अब आयात की जाने वाली मशीनें आदि और भी महंगी हो गई हैं, अतः विदेशी विक्रेताओं को भुगतान की विकट समस्या खड़ी हो जाती है। जहाँ तक निर्यात का प्रश्न है, उत्पादन-व्यय अधिक होने से विदेशों में प्रतियोगिता में खड़ा रहना मुश्किल हो जाता है।

(१०) सस्ती शक्ति का अभाव—कुछ ही औद्योगिक नगरों को छोड़कर अन्यत्र विद्युत् शक्ति बड़ी महंगी है, अतः भिन्न-भिन्न स्थानों पर उद्योग स्थापित करने में बड़ी कठिनाई होती है।

कृषि व उद्योगों की समस्याओं को हल करके ही हम देश के आर्थिक विकास की महान् प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान कर सकते हैं और इन दोनों क्षेत्रों के विकास के आधार पर ही भारत 'अल्प या अर्ध विकसित अवस्था' से ऊपर उठकर 'सम्पूर्ण विकास की अवस्था' को पहुँच सकता है। आजादी के बाद सरकार की विवेकपूर्ण औद्योगिक नीति ने औद्योगिक प्रगति के लिए एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर दिया है। भारी और आधारभूत उद्योगों का सार्वजनिक क्षेत्र में विकास किया जा रहा है और द्रुत औद्योगिक विकास का हमारा स्वप्न साकार होना दिखाई दे रहा है। प्रो० मेलनबॉम के शब्दों में अनेक कमियाँ होने के बावजूद 'औद्योगिक विकास की सम्भावनाएं आर्थिक सुधार के कार्यों में रत भारत सरकार के नियन्त्रण में स्वतन्त्रता

प्रथम पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य (१) उत्पादन में वृद्धि—देश में अधिक धन की वृद्धि की जावे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृषि एवं उद्योग धन्धों के स की व्यवस्था की जावे तथा राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि कर प्रति व्यक्ति आय ने का प्रयत्न हो।

(२) आर्थिक समानता—देश मे आर्थिक समानता लाने का प्रयत्न किया अर्थात् राष्ट्रीय आय का न्यायपूर्ण वितरण हो। इस काम को शनैः शनैः पूर्वक करना ही योजना का लक्ष्य था।

(३) सामाजिक न्याय की स्थापना—योजना का एक प्रमुख लक्ष्य देश सामाजिक न्याय की स्थापना का प्रयत्न था। इसका अर्थ यह हुआ कि देश हर आदमी को अपनी क्षमता के अनुरूप पूरा विकास करने की सुविधा है।

(४) बेकारी का निवारण—बढ़ती हुई बेकारी को रोका जाए तथा इसके ए अधिकाधिक लोगों को अपनी क्षमता के अनुरूप पूरा विकास करने की सुविधा ने।

(५) शक्ति में वृद्धि—विद्युत शक्ति के उत्पादन मे वृद्धि की जाए ताकि गेग एवं कारखाने सुचारु रूप से चल सकें। शक्ति के अन्य स्रोतों के विकास के प्रयत्न किए जावें।

(६) शिक्षा का प्रसार—शिक्षा के प्रसार की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा एवं च शिक्षा के विकास के लिए यथासम्भव प्रयत्न किए जावें। देश से अशिक्षा और रक्षरता मिटाने की ओर दृढ़ कदम उठाए जाएं।

(७) स्वास्थ्य रक्षा—नागरिकों के स्वास्थ्य के सुधार के लिए उन्हें सन्तुलित जन मिल सके तथा रोगों से मुक्ति के लिए चिकित्सा के उत्तम व विस्तृत साधन प्त हो सकें।

(८) अन्यान्य उद्देश्य—इन सब के अतिरिक्त सड़कों तथा यातायात के साधनों विकास किया जाए एवं देश को स्वावलम्बी बनाने की दिशा में यथासम्भव सभी वश्यक कदम उठाए जाएं।

आवश्यक साधन—उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आयोग ने निम्न धनों को अपनाने का निश्चय किया—

(१) विदेशों से आर्थिक सहायता कर्ज के रूप में ली जाए जो शर्तों के नुसार वापिस लौटा दी जाए।

(२) राज्य सरकारों, नगरपालिकाओं एवं इसी प्रकार की अन्यान्य संस्थाओं से सहयोग प्राप्त किया जावे।

(३) योजना के व्यय का सामना करने के लिए कुछ केन्द्रीय तथा कुछ राज्यों के बजट में से भी खर्च किया जाय।

योजना पर व्यय—प्रथम पंचवर्षीय योजना पर कुल व्यय २,३६६ करोड़ रुपये का होना था जो निम्न तालिका के अनुसार बांटा गया—

में प्रति वर्ष कुछ न कुछ प्रगति की गई जिसके फलस्वरूप सिंचाई तथा विद्युत का प्रबन्ध हुआ।

(५) शक्ति साधनों में वृद्धि—शक्ति के उत्पादन का लक्ष्य भी लगभग पूर्ण हो गया। विद्युत उत्पादन क्षमता २३ लाख किलोवाट से बढ़कर लगभग ३५ लाख किलोवाट हो गई। सन् १९५०-५१ में जहां लगभग ६५७.५ करोड़ यूनिट विद्युत पैदा हुई थी वहां ५५-५६ में लगभग ११०० करोड़ यूनिट पैदा की गई। इस प्रकार प्रथम योजना में लगभग ६७% विद्युत उत्पादन अधिक हुआ।

(६) सामुदायिक विकास योजनाएं—योजना के अन्त में, १२०० विकास खण्डों में लगभग १,२२,६५७ गांवों की ७ करोड़ ६० लाख जनसंख्या सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत आ गई जबकि लक्ष्य केवल ७ करोड़ ४० लाख जनसंख्या का ही इन योजनाओं के अन्तर्गत लाने का था।

(७) कुटीर उद्योगों का विकास—इस योजना काल में कुटीर उद्योगों का बहुत विकास हुआ। विकास के लिए सरकार ने नाना बोर्ड स्थापित कर दिए, जैसे खादी ग्रामोद्योग बोर्ड, रेशम बोर्ड, हाथ दस्तकारी बोर्ड आदि।

(८) यातायात के साधनों का विकास—भारत के अनेक भागों में यातायात के साधनों के आवागमन की सुविधा के लिए नई सड़कें बनवाई गईं। रेलवे लाइन तथा रेलवे डिब्बों के निर्माण में हमने योजनानुसार सफलता प्राप्त कर ली। रेल एञ्जिनों तथा जहाजों कारखानों की स्थापना हुई।

(९) अन्य सफलताएं—प्रथम पंचवर्षीय योजना द्वारा हमने मुद्राप्रसार पर विजय प्राप्त की। इससे हमारी आर्थिक स्थिति में दृढ़ता व स्थायित्व आया, देश का वैदेशिक हिसाब-किताब भी बहुत कुछ सन्तुलित हुआ, देश में डाक व तार विभाग का विकास हुआ, अनेक स्थानों पर आकाशवाणी के स्टेशनों की स्थापना की गई तथा संदेशवाहन के साधनों को बढ़ाया गया, ग्रामों में शिक्षा-प्रसार हुआ तथा प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करने का प्रयत्न हुआ, और शिक्षा को बल मिला, स्वास्थ्य सुधार के लिए चिकित्सा साधनों का बहुत कुछ विकास हुआ, कृषि की उन्नति के लिए आधुनिक यन्त्रों, मशीनों और ट्रैक्टरों का प्रचार किया जाकर कृषकों को हर सम्भव सहायता दी गई तथा ग्रामों में सहकारी समितियों की स्थापना की गई।

कहने का तात्पर्य यह है कि आर्थिक आत्म-निर्भरता की ओर जो हमने प्रथम महान् पग उठाया और उसमें जो लक्ष्य रखे उनमें हमने लगभग पूर्ण सफलता प्राप्त की। योजना के अधिकांश लक्ष्य प्राप्त कर लिए गए। इस योजना की सफलता से प्रोत्साहित होकर हमने दूसरी राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना सफलतापूर्वक सम्पन्न की।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में २,३५६ करोड़ के स्थान पर २,११४ करोड़ रुपए ही व्यय हुए।

प्रति वर्ष कुछ न कुछ प्रगति की गई जिसके फलस्वरूप सिंचाई तथा विद्युत का बन्ध हुआ।

(५) शक्ति साधनों में वृद्धि—शक्ति के उत्पादन का लक्ष्य भी लगभग पूर्ण हो गया। विद्युत उत्पादन क्षमता २३ लाख किलोवाट से बढ़कर लगभग ३४ लाख किलोवाट हो गई। सन् १९५०-५१ में जहां लगभग ६५७.५ करोड़ यूनिट विद्युत पैदा हुई थी वहां ५५-५६ में लगभग ११०० करोड़ यूनिट पैदा की गई। इस प्रकार प्रथम योजना में लगभग ६७% विद्युत उत्पादन अधिक हुआ।

(६) सामुदायिक विकास योजनाएं—योजना के अन्त में, १२०० विकास खण्डों में लगभग १,२२,६५७ गांवों की ७ करोड़ ६० लाख जनसंख्या सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत आ गई जबकि लक्ष्य केवल ७ करोड़ ४० लाख जनसंख्या को ही इन योजनाओं के अन्तर्गत लाने का था।

(७) कुटीर उद्योगों का विकास—इस योजना काल में कुटीर उद्योगों का विकास हुआ। विकास के लिए सरकार ने नाना बोर्ड स्थापित किए, जैसे खादी ग्रामोद्योग बोर्ड, रेशम बोर्ड, हाथ दस्तकारी बोर्ड आदि।

(८) यातायात के साधनों का विकास—भारत के अनेक भागों में यातायात साधनों के आवागमन की सुविधा के लिए नई सड़कें बनवाई गईं। रेलवे लाइन तथा रेलवे डिब्बों के निर्माण में हमने योजनानुसार सफलता प्राप्त कर ली। रेल डिब्बों तथा जहाजों कारखानों की स्थापना हुई।

(९) अन्य सफलताएं—प्रथम पंचवर्षीय योजना द्वारा हमने मुद्राप्रसार पर नियंत्रण प्राप्त की। इससे हमारी आर्थिक स्थिति में दृढ़ता व स्थायित्व आया, देश के वैदेशिक हिसाब-किताब भी बहुत कुछ सन्तुलित हुआ, देश में डाक व तार व्यवस्था का विकास हुआ, अनेक स्थानों पर आकाशवाणी के स्टेशनों की स्थापना की गई तथा सन्देशवाहन के साधनों को बढ़ाया गया, ग्रामों में शिक्षा-प्रसार हुआ तथा प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करने का प्रयत्न हुआ, प्रौढ़ शिक्षा को बल मिला, स्वास्थ्य सुधार के लिए चिकित्सा साधनों का बहुत कुछ विकास हुआ, कृषि की उन्नति के लिए आधुनिक यन्त्रों, मशीनों और ट्रैक्टरों का प्रचार किया जाकर कृषकों को हर सम्भव सहायता दी गई तथा ग्रामों में सहकारी समितियों की स्थापना की गई।

कहने का तात्पर्य यह है कि आर्थिक आत्म-निर्भरता की ओर जो हमने प्रथम महान् पग उठाया और उसके जो लक्ष्य रखे उनमें हमने लगभग पूर्ण सफलता प्राप्त की। योजना के अधिकांश लक्ष्य प्राप्त कर लिए गए। इस योजना की सफलता से आशान्वित होकर हमने दूसरी राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना सफलतापूर्वक आरम्भ की।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३,३५६ करोड़ के स्थान पर २,३५४ करो

(ख) द्वितीय पंचवर्षीय योजना

जब १९५६ में प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्त हुई तो दूसरी पंचवर्षीय योजना तैयार हो चुकी थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना बड़े धैर्य एवं सोच-विचार के बाद तैयार की गई थी अतः शीघ्रता मे तैयार की गई प्रथम पंचवर्षीय योजना की कमियां उसमे नही आई और वह एक सम्पूर्ण योजना सिद्ध हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए—

दूसरी योजना के उद्देश्य—(१) राष्ट्रीय आय में वृद्धि—राष्ट्रीय आय में लगभग २५ प्रतिशत वृद्धि करना जिससे देशवासियों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाया जा सके। इसके लिए यह निर्धारित किया गया कि फरवरी १९६१ तक जब दूसरी पंचवर्षीय योजना समाप्त हो, राष्ट्रीय आय १३,००० करोड़ रुपये हो जाए।

(२) देश का द्रुत औद्योगीकरण—मूल और भारी उद्योगों के विकास पर जोर देते हुए देश मे तेजी से औद्योगीकरण किया जावे।

(३) रोजगार का विस्तार—रोजगार के अवसरों का अधिक प्रभावशाली विस्तार किए जाएं और लगभग ८० लाख से अधिक जनसंख्या को काम देने की व्यवस्था की जावे।

(४) आय व धन की विषमता का निराकरण—आय तथा धन के असमान वितरण को कम किया जाए तथा आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण हो।

ये उपरोक्त लक्ष्य या उद्देश्य परस्पर सम्बन्धित हैं एवं एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। इनके द्वारा देश मे समाजवाद की स्थापना करने का प्रयत्न करना है जहां आर्थिक एवं सामाजिक असमानताएं कम से कम हों।

दूसरी योजना पर कुल व्यय

दूसरी योजना का कुल व्यय ७२०० करोड़ रुपये निर्धारित किया गया। उसमे से ४८०० करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र अर्थात् सरकारी क्षेत्र मे और २४०० करोड़ रुपये निजी क्षेत्र में व्यय होने वाले थे। ४८०० करोड़ रु० का बटवारा निम्न प्रकार से किया गया—

मद	कुल व्यय (करोड़ रुपये में)	कुल व्यय का प्रतिशत
१. कृषि एवं सामुदायिक विकास	५६८	११.८
२. सिंचाई और शक्ति	९१३	१९.०
३. यातायात तथा संचार-वहन	१३८४	२८.९
४. सामाजिक सेवाएं (शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, समाज-कल्याण, पुनर्वास आदि	९४५	१९.७
५. उद्योग-धन्धे तथा खनिज	८९१	१८.५
६. विविध	९९	२.१
योग	४८००	१००

दूसरी योजना की सफलता :—द्वितीय पंचवर्षीय योजना १९५६ में प्रारम्भ होकर फरवरी १९६१ में समाप्त हो गई। इस योजना को अपने उद्देश्यों में जो सफलता प्राप्त हुई उसका संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(१) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि** :—द्वितीय पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में २५ प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था किन्तु वास्तविक वृद्धि २० प्रतिशत के लगभग हुई।

(२) **रोजगार में वृद्धि** :—इस योजना का लक्ष्य लगभग ८० लाख व्यक्तियों को रोजगार देने का था किन्तु केवल ६५ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल पाया।

(३) **कृषि-उत्पादन** —अनाज, तिलहन, गन्ना, गुड़, कपास, जूट आदि में जो उत्पादन-लक्ष्य रखे गए थे लगभग पूरे हो गए, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

उत्पादन	लक्ष्य	६०-६१ का संभावित उत्पादन
अनाज	७५० (लाख टनों में)	७५०
तिलहन	७० ,,	७२
गन्ना गुड़	७१ ,	७२
कपास	५५ (लाख गाँठ)	५४
जूट	५० ,,	५५

यद्यपि अनाज का लक्ष्य योजना प्रारम्भ होने के बाद बढ़ाकर ड्योढ़ा कर दिया गया था, किन्तु बढ़ा हुआ लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया। हाँ, पहले का लक्ष्य पूरा हो गया।

(४) **सामुदायिक विकास** :—सम्मानित अनुमान के अनुसार योजना के अन्त तक सामुदायिक विकास का कार्य ३१०० विकास खण्डों तक फैल गया और इस प्रकार लगभग ४ लाख गाँव तथा २० करोड़ जनसंख्या ने उनसे लाभ उठाया।

(५) **सिंचाई** :—योजना के अन्त में (६०-६१) लगभग ७ करोड़ एकड़ भूमि पर सिंचाई होने लगी। सिंचाई की विभिन्न योजनाएं समाप्ति के अन्तिम चरण पर आ गई और लाखों एकड़ नई भूमि की सिंचाई होने लगी।

(६) **बंजर भूमि** :—बंजर भूमि को खेती योग्य बनाने का जो लक्ष्य था वह पूरा नहीं हुआ। दूसरी योजना के अन्त तक कुल १६ लाख एकड़ नई भूमि को खेती योग्य बनाया जा सका।

(७) **औद्योगिक उत्पादन** :—औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से इस्पात, अमुमोनियम, सीमेंट, कोयला एवं कागज में लक्ष्य की पूर्ति सम्भव नहीं हो सकी। दूसरी योजना में इस्पात [illegible] २ लाख टन, अमुमोनियम का २५ हजार टन सीमेंट [illegible] ने का ६०० लाख टन एवं कागज का ३५० [illegible] गया था, किन्तु १९६०-६१ को इन वस्तुओं [illegible] टन, १७ हजार टन, ८८ लाख [illegible] । किन्तु जो कुछ भी [illegible] ों के निर्माण का । जहाँ १२ [illegible] आनुमानिक उत्पादन ३६

हजार का था। शक्कर, कच्चा लोहा, सूती कपड़ा आदि उद्योगों का लक्ष्य लगभग प्राप्त कर लिया गया। इन उद्योगों के अलावा अनेक दूसरे उद्योग देश में प्रथम बार स्थापित हुए और देश औद्योगीकरण की दिशा में आत्मनिर्भरता की ओर आगे बढ़ा।

(८) कुटीर उद्योग —बड़े उद्योगों के बनिस्बत छोटे तथा कुटीर उद्योगों का तेजी से विस्तार हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में हाथ कर्घे जहां ७४ करोड़ २० लाख गज कपड़ा बनाते थे वहां १९६०-६१ में लगभग २ अरब १२ करोड़ ५० लाख गज कपड़ा बुना गया। इसी प्रकार ७० लाख गज खादी से ऊपर से ऊपर उठ कर यह संख्या ६०-६१ में लगभग ८ करोड़ गज तक पहुंच गई। कच्चे रेशम का उत्पादन भी लगभग दुगुना हो गया।

(९) छोटे कारखाने —छोटे-छोटे कारखानों का तेजी से विकास हुआ। पहिले से स्थापित कारखाने आगे बढ़े और नए कारखानों की स्थापना हुई। देश में लगभग ६० औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित हुई जिनमें ७०० के लगभग छोटे कारखाने थे।

(१०) विद्युत शक्ति-उत्पादन में वृद्धि —योजना के अन्त तक लगभग ५५ लाख किलोवाट विद्युत उत्पादन हुआ। जहां १९५०-५१ में लगभग ३,६८७ शहरों व कस्बों में बिजली थी, वहां द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक यह संख्या लगभग १९,००० शहरों, कस्बों और गांवों में पहुंच गई।

(११) अन्य सफलताएं —उपरोक्त सफलताओं के अतिरिक्त इस योजना में यातायात एवं संचार साधनों का भी बड़ा विकास हुआ। डाक, तार व टेलीफोन की सुविधा का बहुत विस्तार हुआ तथा शिक्षा प्रसार का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया। योजना के अन्तर्गत भिलाई, रूरकेला और दुर्गापुर में इस्पात के कारखाने खोले गए।

द्वितीय योजना में औद्योगिक विकास का महत्व :—द्वितीय योजना प्रथम पंचवर्षीय योजना के विकास क्रम की ही एक कड़ी थी किन्तु इस योजना में देश के औद्योगीकरण पर अत्यधिक बल दिया गया था। विशेष रूप से भारी उद्योगों के विकास तथा यातायात एवं संचार-परिवहन के साधनों की वृद्धि को योजना का महत्वपूर्ण अंग माना गया था। उपरोक्त तालिकाओं के अध्ययन से ही स्पष्ट हो जाता है कि पहली योजना कृषि-प्रधान थी और दूसरी योजना उद्योग प्रधान। पहली योजना में कृषि, सामुदायिक विकास और सिंचाई को प्राथमिकता दी गई थी परन्तु दूसरी योजना में इनका प्रतिशत व्यय ४.१ प्रतिशत घटा दिया गया। सिंचाई और शक्ति के लिए भी ९.१ प्रतिशत की कमी हुई। किन्तु उद्योग तथा खनिज पर प्रथम योजना से अधिक पूंजी लगाने की व्यवस्था की गई। जहां प्रथम योजना में इस मद पर व्यय ७.६ प्रतिशत था वहां उसे बढ़ा कर द्वितीय योजना में १८.५ प्रतिशत कर दिया। छोटे [illegible] ओं की भी उपेक्षा नहीं की गई। सार में योजना के कुल व्यय का लगभग ५० [illegible] केवल उद्योग तथा खनिज एवं यातायात व संचार के विकास के लिए [illegible] किया गया। द्वितीय योजना में औद्योगिक उत्पादन के रखे गए कुछ लक्ष्य

प्रधान थी—जहाज़—८० प्र०, रेल इंजिन—७६ प्र०, मोटर-कार—१४८ प्र०, सीमेंट १०८ प्र०, कागज़ ४६० प्र०, विद्युत मोटर १५० प्र०, शोधा पेट्रोल ५२ प्र०, कच्चा लोहा ६७ प्र०, तैयार लोहा १३६ प्र०, डीजल इंजिन १०५ प्र०, अल्युमीनियम २३३ प्र० आदि।

औद्योगिक विकास को महत्व देने के कारण

अब स्वभावतः प्रश्न उठता है कि औद्योगिक विकास को ही सर्वाधिक महत्व क्यों दिया गया? संक्षेप में इसके कुछ प्रमुख कारण निम्न प्रकार से दर्शाए जा सकते हैं—

(१) कृषि पर जनसंख्या के भार को कम करना — भारत की लगभग ७०% जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। फलस्वरूप प्रति किसान के पास न औसत में कृषि योग्य अधिक भूमि है और न उसकी आर्थिक दशा ही सुधर पाती है। इसी दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि कृषि पर से जनसंख्या के कुछ प्रतिशत को हटाकर अन्यान्य उद्योगों में लगाया जाये ताकि न केवल कृषि का वरन् देश के अन्य आर्थिक साधनों का सन्तुलित उपयोग व विकास हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु देश के औद्योगिक विकास को महत्व दिया गया।

(२) बढ़ती हुई बेकारी की समस्या को हल करना।—जीवन-निर्वाह की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति और रोजगार की प्राप्ति के उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकते हैं जबकि देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नत हो। भारी उद्योगों व कुटीर उद्योगों में लाखों व्यक्तियों को रोजगार मिलता है तथा बेकारी कम होने में अत्यधिक सहायता मिलती है। मानव-श्रम का अधिक उपयोग प्राप्त होता है।

(३) आत्म-निर्भरता एवं आर्थिक सुदृढ़ता —जिस देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं होती और जिस देश की जनता व अर्थ-व्यवस्था सम्पन्न नहीं होती वह देश सदा निर्बल रहता है। उद्योग-धन्धे देश में आत्म-निर्भरता और आर्थिक स्थायित्व लाते हैं। इनके द्वारा समस्त आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन देश में ही होने लगता है। इस प्रकार विदेशों से आयात पर जो करोड़ों और अरबों की राशि बाहरी देशों को जाती है वह देश में ही रह जाती है और देश अधिक धनी एवं समृद्ध बन जाता है। अतिरिक्त उत्पादन का निर्यात कर हम धन एवं विदेशी मुद्रा कमा सकते हैं। उद्योग-धन्धों के अभाव में देश के अन्य साधनों की उन्नति नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि हम रेलों का विकास करना चाहते हैं तो रेलों के समस्त आवश्यक सामान, इंजिन एवं डिब्बे आदि की तैयारी के लिए कारखाने स्थापित करने होंगे या इनका विदेशों से आयात करना होगा। कृषि की उन्नति के लिए देश में ही कृषि-यन्त्रों के निर्माण के लिए उद्योग खोलने होंगे। इस दृष्टि से सैनिक तौर पर भी अपना देश भी सुदृढ़ नहीं बना रह सकता, क्योंकि उसे मशीनों एवं अस्त्र-शस्त्रों के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ेगा। औद्योगिक विकास के द्वारा हम देश को सर्वांगीण विकास कर सकते हैं।

(४) देश की संकटपूर्ण स्थिति का मुकाबला :—किसी भी देश की रक्षा का

विकास उसकी औद्योगिक प्रगति पर निर्भर करता है। भारत में ऐसे आधारभूत उद्योगों का सर्वथा अभाव था जिनसे हम मशीनें तैयार कर सकते हों, कल कारखाने बैठा सकते हों, लोहा, कोयला, इस्पात और खनिज पदार्थों का उत्पादन बढ़ा सकते हों। इन आधारभूत उद्योगों के अभाव में कोई देश उन्नति नहीं कर सकता और संकट काल में आयात बन्द हो जाने पर असुरक्षित तथा निर्बल रह जाता है। यही कारण है कि सरकार ने औद्योगिक विकास को सर्वाधिक महत्व दिया।

(५) कृषि पर अनुकूल प्रभाव —कृषि पर निर्भर आवश्यकता से अधिक जनसंख्या को औद्योगिक केन्द्रों में रोजगार मिलता है और इस प्रकार कृषि के यंत्रीकरण में सहायता मिलती है।

(६) राष्ट्रीय आय में वृद्धि :—औद्योगीकरण द्वारा राष्ट्रीय आय में शीघ्रता से वृद्धि सम्भव होती है और गरीब देश भी थोड़े ही समय में ऊंचा उठा पाते हैं।

(ग) तृतीय पंचवर्षीय योजना
(The Third Five Year Plan)

तीसरी पंचवर्षीय योजना एक अप्रैल सन् १९६१ को प्रारम्भ हुई एवं मार्च १९६६ को यह योजना समाप्त हो गई। जहां प्रथम पंचवर्षीय योजना पर कुल व्यय २,३५६ करोड़ रुपये हुआ था और दूसरी पंचवर्षीय योजना में ... करोड़ निर्धारित किया गया था वहां तृतीय पंचवर्षीय योजना पर खर्च की जाने वाली राशि दोनों योजनाओं के सम्मिलित धन से भी अधिक निश्चित की गई। इस योजना में ११,६०० करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा गया जिसमें से ७५०० करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में व ४१०० करोड़ रुपये निजी क्षेत्र में। इसका विवरण निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायेगा—

सरकारी क्षेत्र	कुल व्यय (करोड़ रुपये में)	प्रतिशत
कृषि व सामुदायिक विकास	१०६८	१४
बड़ी व मध्यम सिंचाई योजनाएं	६५०	९
बिजली (शक्ति)	१०१२	१३
ग्राम एवं लघु उद्योग	२६४	४
उद्योग व खनिज	१५२०	२०
यातायात व संचार	१४८६	२०
समाज सेवा व विविध	१३००	१७
कच्चा, व तैयार माल	२००	३
योग	७५००	१००
निजी क्षेत्र	४१००	

कुल ११६[illegible]

यद्यपि सरकारी क्षेत्र मे ७५०० करोड रुपये की लागत का अनुमान राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने पेश किया गया तथापि परिषद ने यह मत प्रकट किया कि ७५०० करोड रुपया ही नही, योजना के कार्यक्रमो को पूरा करने के लिए ८,००० करोड रुपये तक के साधन जुटाने के पूरे प्रयत्न किए जाने चाहिए।

योजना के उद्देश्य—तृतीय योजना के मोटे रूप मे निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए गए—

(१) योजना कार्यान्वित होने तक राष्ट्रीय आय मे ३० प्रतिशत की वृद्धि और प्रति व्यक्ति की आय मे १७ प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिये।

(२) योजना के अन्त तक देश को कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बना दिया जाए।

(३) खेती के उत्पादन मे इतनी वृद्धि हो जाए कि उससे देश के उद्योगो को कच्चा माल मिल सके और विदेशो को निर्यात हो सके। आधारभूत उद्योग-धन्धों का इतना विस्तार कर दिया जावे कि अगले १० वर्षों मे आगे का औद्योगीकरण देश के अपने साधनो से ही सके।

(४) जन-शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग किया जावे और रोजगार की सम्भावनाओ को बढ़ाया जावे। यह सोचा गया कि योजना काल मे लगभग १ करोड ४० लाख व्यक्तियो को नये काम दिए जाए।

(५) आर्थिक क्षमता को दूर किया जाए और आर्थिक शक्ति का समान वितरण हो।

योजना का मूल्यांकन—तृतीय योजना में विनियोजन की इतनी विशाल राशि को देखकर ही लोगो को इस योजना की सफलता के विषय मे सन्देह हो गया था। इसको अधिकांश विद्वानों ने और जन साधारण के एक बड़े भाग ने महत्वाकांक्षी योजना कहा था। वास्तव मे यह कथन कोई अतिशयोक्तिपूर्ण न था, क्योंकि हमारी आर्थिक व्यवस्था मे विनियोजन का इतना भार वहन करने की सामर्थ्य नहीं थी।

दुर्भाग्यवश तृतीय योजना का प्रारम्भ भी शुभ मुहूर्त मे नहीं हुआ। शुरू से ही बाढ़, जनसंख्या, बेकारी, विदेशी विनिमय, औद्योगिक उत्पादन की समस्या, चीन-पाक-गठबन्धन आदि समस्याओं ने योजना के लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उपस्थित की। परिस्थितिवश हमें अपनी योजना में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन भी करने पड़े।

तृतीय योजना में हमारा लक्ष्य राष्ट्रीय आय की ५ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का था (अर्थात योजना काल मे कुल मिलाकर ३० प्रतिशत वृद्धि), लेकिन यह वृद्धि योजना काल मे २.३ प्रतिशत दर से हुई। योजना के अन्त तक यह अनुमान लगाया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति की आय ३८५ रु. हो जायेगी लेकिन वास्तव में यह ३६२ रु० प्रति व्यक्ति ही हो पाई। इस सम्बन्ध मे असफलता का एक विशेष कारण यह भी था कि जनसंख्या मे २ प्रतिशत की दर से वार्षिक वृद्धि हुई। परिवार-

यद्यपि सरकारी क्षेत्र में ७५०० करोड़ रुपये की लागत का अनुमान राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने पेश किया गया तथापि परिषद ने यह मत प्रकट किया कि ७,५०० करोड़ रुपया ही नहीं, योजना के कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए ८,००० करोड़ रुपये तक के साधन जुटाने के पूरे प्रयत्न किए जाने चाहिए।

योजना के उद्देश्य—तृतीय योजना के मोटे रूप में निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए गए—

(१) योजना कार्यान्वित होने तक राष्ट्रीय आय में ३० प्रतिशत की वृद्धि और प्रति व्यक्ति की आय में १७ प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिये।

(२) योजना के अन्त तक देश को कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बना दिया जाए।

(३) खेती के उत्पादन में इतनी वृद्धि हो जाए कि उससे देश के उद्योगों को कच्चा माल मिल सके और विदेशों को निर्यात हो सके। आधारभूत उद्योग-धन्धों का इतना विस्तार कर दिया जावे कि अगले १० वर्षों में आगे का औद्योगीकरण देश के अपने साधनों से हो सके।

(४) जन-शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग किया जावे और रोजगार की सम्भावनाओं को बढ़ाया जावे। यह सोचा गया कि योजना काल में लगभग १ करोड़ ४० लाख व्यक्तियों को नये काम दिए जाएं।

(५) आर्थिक क्षमता को दूर किया जाए और आर्थिक शक्ति का समान वितरण हो।

योजना का मूल्यांकन—तृतीय योजना में विनियोजन की इतनी विशाल मात्रा को देखकर ही लोगों को इस योजना की सफलता के विषय में सन्देह हो गया था। इसको अधिकांश विद्वानों ने और जन साधारण के एक बड़े भाग ने महत्त्वाकांक्षी योजना कहा था। वास्तव में यह कथन कोई अतिशयोक्तिपूर्ण न था, क्योंकि हमारी आर्थिक व्यवस्था में विनियोजन का इतना भार वहन करने की सामर्थ्य नहीं थी।

दुर्भाग्यवश तृतीय योजना का प्रारम्भ भी शुभ मुहूर्त में नहीं हुआ। शुरू से ही खाद्य, जनसंख्या, बेकारी, विदेशी विनिमय, औद्योगिक उत्पादन की समस्या, कीमत-यातायात-गठबन्धन आदि समस्याओं ने योजना के लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उपस्थित की। परिस्थितिवश हमें अपनी योजना में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन भी करने पड़े।

तृतीय योजना में हमारा लक्ष्य राष्ट्रीय आय की ५ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का था (अर्थात योजना काल में कुल मिलाकर ३० प्रतिशत वृद्धि), लेकिन यह वृद्धि योजना काल में २.३ प्रतिशत दर से हुई। योजना के अन्त तक यह अनुमान लगाया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति की आय ३८५ रु. हो जावेगी लेकिन वास्तव में यह ३१२ रु० प्रति व्यक्ति ही हो पाई। इस क्षेत्र में असफलता का एक विशेष कारण यह भी था कि जनसंख्या में २ प्रतिशत की दर से वार्षिक वृद्धि हुई। परिवार-

नियोजन-कार्यक्रमों पर २५ करोड़ रुपये के लगभग खर्च करने पर भी इस क्षेत्र में वास्तविक सफलता नहीं मिल सकी।

तृतीय योजना में खाद्यान्न के उत्पादन का लक्ष्य ७६ मिलियन टन से बढ़कर १०० मिलियन टन करने का रखा गया था। लेकिन योजना के अन्त तक अर्थात् १९६५-६६ तक ८२ मिलियन टन ही औसत वार्षिक उत्पादन हो सका। खाद्यान्नों में कमी को अमरीका और अन्य देशों से खाद्यान्न आयात करके पूरा करने का प्रयत्न किया गया।

औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में योजना का लक्ष्य ११ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का था। लेकिन वास्तव में वृद्धि ८.५ प्रतिशत की दर से ही हुई। यह उल्लेखनीय है कि सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों की अपेक्षा निजी क्षेत्र के उद्योगों ने सन्तोषजनक कार्य किया है। औद्योगिक उत्पादन में कमी का प्रमुख कारण कच्चे माल की कमी रही है।

तृतीय योजना में ५५० करोड़ रुपये की घाटे की आर्थिक व्यवस्था का लक्ष्य था लेकिन वास्तव में घाटे की आर्थिक व्यवस्था ६२४ करोड़ रुपये की हुई।

तृतीय योजना में प्रमुखतम समस्या यही रही कि दैनिक उपयोग की वस्तुओं के मूल्यों में लगातार वृद्धि होती रही। अप्रैल ६२ से मूल्य स्तर बढ़ने लगे जो आज तक तेजी से बढ़ रहे हैं। १९६२-६३ में मूल्य-स्तर-वृद्धि ३ प्रतिशत, १९६३-६४ में १२.८ प्रतिशत, १९६४-६५ में १९.७ प्रतिशत और १९६५-६६ में २३.९ प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। यदि जन-साधारण के दृष्टिकोण से पता लगाने की चेष्टा की जाय तो महगाई में वृद्धि का प्रतिशत इससे कहीं बहुत अधिक है।

खाद्यान्नो के मूल्यो में वृद्धि सबसे बड़ी समस्या थी। इसको रोकने के लिए सरकार ने आवश्यक खाद्यान्नो के सम्बन्ध में राशनिंग व्यवस्था प्रारम्भ कर दी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सहकारी समितियो और लाइसेंस प्राप्त व्यापारियों द्वारा ही, और सरकार द्वारा, निश्चित की गई कीमत पर ही खाद्यान्नो का विक्रय किया जाता है। सरकार ने खाद्यान्नो की मूल्य-वृद्धि को रोकने के लिए और खाद्यान्नों की जमाखोरी को मिटाने के लिए और भी कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। लेकिन अभी तक कोई आशानुकूल प्रभाव सामने नहीं आया है।

तृतीय योजना में बेरोजगारी को दूर करने का जो लक्ष्य था उसमें आंशिक सफलता ही हाथ लगी। योजना में १३ मिलियन व्यक्तियों को कृषि और गैर कृषि-कार्यक्रमों के अन्तर्गत रोजगार दिलाने का लक्ष्य था। लेकिन योजना में लगभग ९ मिलियन व्यक्तियो को ही रोजगार दिया जा सका।

तृतीय योजना काल मे विभिन्न योजना-कार्यक्रमो को चलाने के लिए २ ... करोड़ रुपये की विदेशी सहायता का अनुमान था। लेकिन यह केवल २३०० ... मिल सकी। योजना काल में औसतन ६०० करोड़ रुपये प्रति ... की मद पर खर्च किए गए। इसका स्वाभाविक एवं प्रत्यक्ष ... अन्य मदों पर खर्च कम करना पड़ा।

तृतीय योजना काल में मुद्रा प्रसार की विशेष प्रवृत्ति रही। इसको रोकने के लिए सरकार ने सुरक्षा-बोण्ड, यूनिट ट्रस्ट स्कीम, प्राइज बोण्ड स्कीम एवं अन्य अल्प बचत योजनाएं प्रारम्भ की। लेकिन इससे नाम मात्र की ही सफलता हाथ लगी।

तृतीय योजना की सफलता-असफलता के इस सम्पूर्ण आलोचनात्मक विवरण का सार यही है कि हम इस योजना को सफल योजना नहीं कह सकते। विभिन्न कारणों से हम इस योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। भूतपूर्व योजना मन्त्री श्री बलीराम का कहना सही है कि 'योजना की प्रगति में कुछ धुंधला पन है और वास्तविक प्राप्तियां संतोषजनक कहे जाने वाले स्तरों से काफी नीची रही हैं।'

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना
(Fourth Five Year Plan)

प्रारम्भ एवं व्यय—मार्च १९६६ से चतुर्थ नियोजन लागू हो गया। इस योजना काल में, राष्ट्रीय विकास परिषद् ने प्रगति का लक्ष्य कम से कम छः प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा है। कृषि की प्रगति का लक्ष्य कम से कम पांच प्रतिशत रखा गया है। परिषद् का यह विचार है कि तृतीय योजना की कमियों के कारण दीर्घकालीन लक्ष्यों की पूर्ति कठिन हो गई है और प्रगति के निम्नतम लक्ष्यों की पूर्ति के लिए विकास की गति लगभग ७ से ८ प्रति वर्ष होनी चाहिए।

चतुर्थ नियोजन में पहले अनुमान २,१५,००० करोड़ से २२,६०० करोड़ रुपये का व्यय कूता गया था जिसमें निजी क्षेत्र का हिस्सा ६,६८० करोड़ रुपये के होने का अनुमान लगाया गया था। किन्तु भारत सरकार द्वारा किए गये रुपये के अवमूल्यन के परिणामस्वरूप व्यय की उपरोक्त राशियों में काफी वृद्धि हो जाने का भय है। चूं कि अभी तक अन्तिम अनुमान नहीं लगाया जा सका है, अतः हम प्रारम्भ में परिषद् द्वारा अनुमानित आंकड़ों को ही लेकर चलेंगे। योजना आयोग के प्रस्तावों के अनुसार सरकारी क्षेत्र का व्यय निम्नलिखित रूप में बांटा जाएगा—

राज्यों तथा केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों के लिए ८,०६५ करोड़ रुपये तथा केन्द्र के लिए ७,५२५ करोड़ रुपये। केन्द्र की मदद से उद्योग को ३,०६० करोड़, परिवहन और यातायात को [illegible] करोड़, बिजली को ३०० करोड़, लघु उद्योगों को १३० करोड़ रुपया

(२) खाद्य के सम्बन्ध में आत्मनिर्भरता तथा आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति म वृद्धि।

(३) मानवीय साधनों के विकास द्वारा उत्पादन क्षमता में वृद्धि।

(४) शक्ति, सिंचाई, यातायात तथा वायु के क्षेत्रों मे निरन्तर विकास

(५) भवन निर्माण क लिए उचित सामग्री जुटाना।

(६) रोजगार एव सामाजिक न्याय में वृद्धि।

(७) परिवार नियोजन को व्यापक पैमाने पर लागू करना।

रोजगार सम्बन्धी व्यवस्था—योजना आयोग द्वारा यह अनुमान लगाया है कि चतुर्थ योजना के प्रारम्भ क समय देश मे बेकारों की सख्या लगभग १ ... २० लाख तक पहुच गई है और आने ५ वर्ष मे अर्थात् १९६९-७१ में २ ... ३० लाख लोगों क लिए रोजगार दिलाने की समस्या उठ खडी होगी। इस ... रोजगार सम्बन्धी बीमारी के निदान के लिये चतुर्थ योजना काल मे लगभग ... करोड ५० लाख लोगों के लिये काम की व्यवस्था करनी पडेगी। आयोग के अनु... से रोजगार व्यवस्था के इस लक्ष्य तक पहुच पाना बडा कठिन है और इस... केवल २ करोड ३० लाख लोगो के लिये ही योजना काल की अवधि मे रोज... का प्रबन्ध हो सकेगा और इस तरह फिर भी एक बडी सख्या मे लोग बेकारी ग्रस्त रहेंगे।

मूल्य—योजना आयोग एव राष्ट्रीय विकास परिषद ने चतुर्थ योजना निर्माण के समय इस तथ्य को भुलाया नही है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से देश मे दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ के दाम निरन्तर बढते रहे है और वर्तमान मे तो महगाई लगभग चरम सीमा पर पहुच गई है। बढती हुई महगाई को ध्यान मे रखते हुए यह व्यवस्था की गई है कि योजना काल मे दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ के दाम मे स्थायित्व लाने के लिये नाना वित्तीय एव प्रशासकीय कदम उठाये जायेगे। उदाहरणार्थ—अनावश्यक क्षेत्रो में पूजी न लगाना, उत्पादन व्यय मे कमी लाना, ऐसी योजनाए शुरू करना जिनसे शीघ्र लाभ होने लगे, उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति मे वृद्धि, सरकारी नियन्त्रण द्वारा उचित वितरण की व्यवस्था, बचत की दर मे वृद्धि, आय की विषमता मे कमी, प्रशासकीय मशीनरी को अधिक गतिशील तथा दृढ करना आदि।

चतुर्थ नियोजन अथवा योजना के मेमोरेण्डम के आठ अध्याय हैं—(१) लक्ष्य एव कार्य-नीति, (२) पूंजी का आकार एव पद्धति (३) नियोजन के लिये वित्तीय साधन, (४) रोजगार, (५) विकास कार्यक्रम, (६) विकास के कुछ पक्ष, (७) प्रशासन एव कार्यान्वयन, और निष्कर्ष। विकास कार्यक्रम को अनेक भागो में विभाजित करके प्रत्येक भाग मे विभिन्न क्षेत्रों में विकास की रूपरेखा बताई गई है।

(चतुर्थ योजना के उपरोक्त समस्त आंकड़े वे हैं जो प्रारम्भ में अनुमानित किये गये थे। आर्थिक परिस्थितियों के कारण योजना के व्यय और उद्देश्यों आदि पर [illegible] रहा है।)

चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष की रूपरेखा—देश पर छाई हुई युद्ध की घटाओं और देश के वित्तीय सकट को देखते हुए योजना आयोग ने चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष की रूपरेखा तैयार की थी। योजना के प्रथम वर्ष में अर्थात् १९६६–६७ मे केन्द्रीय एवं राजकीय क्षेत्रों के लिये २,०८० करोड़ रु. की मद निर्धारित की गई थी। यह धन तृतीय योजना के वर्ष की मद की तुलना में १७६ करोड़ रुपये कम थी। यहाँ यह स्मरणीय है कि रुपये के अवमूल्यन के फलस्वरूप (जिससे कि रुपये की कीमत पहले की अपेक्षा घटा दी गई है) उपरोक्त व्यय मे काफी वृद्धि हो गई और बढ़कर लगभग २२५० करोड़ रुपये हो गया।

योजना बनाते समय इस बात को प्राथमिकता दी गई कि जिन योजनाओं का काम पहले से जारी है, उन्हीं को प्राथमिकता दी जायेगी और उनमे भी उन पर विशेष ध्यान दिया जायगा जो देश की प्रतिरक्षा के औद्योगिक आधार मे सहायक और आवश्यक हो तथा जिनसे खाद्य उत्पादन को प्रत्यक्ष सहायता मिलती है। राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद ने सितम्बर १९६५ मे यद्यपि चतुर्थ पचवर्षीय योजना के आकार-प्रकार को स्वीकृति दे दी, तथापि अपने अध्यक्ष प्रधानमन्त्री को इस बात का अधिकार भी दिया कि वह नई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए योजना में संशोधन, परिवर्तन आदि कर सकती है।

चौथी योजना के प्रथम वर्ष का कार्यक्रम स्वय स्फूर्त आर्थिक विकास का सुदृढ़ आधार तैयार करने, रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध करने, देश के प्रत्येक परिवार के लिए एक न्यूनतम जीवन-स्तर आश्वस्त करने और आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लक्ष्य की पूर्ति की दिशा मे एक छोटा सा कदम है। स्मरण रहे कि चौथी योजना का श्रीगणेश ऐसे समय हो रहा है जबकि तीसरी योजना के लक्ष्यों की पूर्ति भी कई अंशों में अधूरी रह गई है।

योजना आयोग ने देश के सम्मुख उपस्थित कठिनाइयों को दृष्टि मे रखते हुए एक वर्षीय योजना का सन्तुलित ढांचा प्रस्तुत किया। आयोग ने इस योजना में ऊँचे लक्ष्य न रखकर व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की चेष्टा की। यह तय किया गया कि अधिकांश व्यय जारी परियोजनाओं पर किया जायेगा। केन्द्रीय योजना पर ११५१ करोड़ रुपये और राज्यों की योजनाओं पर ९३० करोड़ रुपये (रुपये के अवमूल्यन से पहले के अनुसार) खर्च करने की व्यवस्था की गई है।

प्रथम वर्ष के लक्ष्य—१९६६–६७ की वार्षिक योजना में कृषि को स[illegible] प्राथमिकता दी गई। इस योजना मे कृषि-विकास के लिये ३२३ करोड़ रुप[illegible] व्यवस्था की गई, जो कि १९६५-६६ की राशि के मुकाबले में ३६ करो[illegible] अधिक है। सिंचाई और विद्युत शक्ति के लिए ४६४ करोड़ रुपये के खर्च की व्य[illegible] की गई। आयोग ने देश को अन्न के मामले में यथासम्भव स्वावलिम्बी बन[illegible] आवश्यकता को ध्यान में रखकर कृषि को इस योजना में सर्वोच्च महत्व दि[illegible] दिया। खेती की उपज बढ़ाने के लिए कृषि के सहायक उद्योगों को प्र[illegible]

पर्याप्त नहीं की गई। इसीलिए रासायनिक खाद के लिए १५ करो
व्यवस्था रखी गई।

१९६६-६७ की इस योजना में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देते
उद्योग और खनिज उद्योगों के लिए भी काफी धनराशि की व्यवस्था
भारत में औद्योगिक विकास देश का निर्यात-व्यापार बढ़ाने के लिए बहुत

इस एक वर्षीय योजना की एक विशेषता यह है कि सामाजिक
लिए भी कृषि के बराबर ही रकम रखी गई।

किसी भी योजना की सफलता उसके कार्यक्रमों के सफल संचालन
करती है। योजना आयोग ने बिजली की सप्लाई, परिवहन की प्रगति, उर्वर
उन्नत औजारों की सप्लाई आदि पर जो बल दिया है उससे कृषि को
लाभ पहुँचने की आशा है। यह एक वर्षीय योजना यदि अपने लक्ष्यों में स
और निर्यात-व्यापार को बढ़ाकर विदेशी मुद्रा की कठिनाई को दूर करने
रही तो चौथी योजना की मंजिल आसानी से तय हो सकेगी। चौथी योजना
पिछली किसी भी योजना से छोटी नहीं हो सकती—और इसके लिए नींव
करते हुए ही बढ़ना होगा। भारतीय वाणिज्य व उद्योग मण्डल संघ
इन्दिरा गांधी द्वारा कहे गये ये शब्द निश्चय ही आशा और विश्वास
स्रोत हैं—

"हम हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। हमें खतरे मोल लेने होंगे तथा
साथ आगे बढ़ना होगा। यह सही है कि जितनी प्रगति होनी चाहिए थी,
किन्तु इससे निराश होने की जरूरत नहीं है। हमें अपनी जिम्मेदारी
निभानी होगी। लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाना तथा जीवन का न्यून
ऊँचा करने के लिए अकथ परिश्रम करना होगा। इस स्थिति में चौथ
छोटी नहीं हो सकती।"

यह उल्लेखनीय है कि १९६६-६७ में योजना आयोग के कार्य की रि
१९६७-६८ के लिए वार्षिक योजना की रूपरेखा संसद के सम्मुख अब प्र
जायेगी। वर्तमान संकेतों के अनुसार १९६७-६८ की वार्षिक योजना प
२२३० करोड़ रुपये की होगी।

TOPICS FOR ESSAYS

(निबन्ध के विषय)

1. Write an essay on each of the following subjects.—
   निम्नलिखित विषयों में से प्रत्येक पर एक निबन्ध लिखिये:—
   - (a) The Challenge of Economic Regeneration.
     आर्थिक पुनर्निर्माण की चुनौती।
   - (b) India's Needs and Resources.
     भारत की आवश्यकतायें और उनके साधन।
   - (c) Problems of Planning in Economic Developm
     India.

भारत के आर्थिक विकास मे नियोजन की समस्यायें।

(d) Problems of Planning concerning Agriculture.
कृषि से सम्बन्धित नियोजन की समस्यायें।

(e) Problems of Indian Industries.
भारतीय उद्योगों की समस्याएँ।

(f) Problems of Indian Cottage and Small Industries.
भारतीय कुटीर एव लघु उद्योग की समस्यायें।

(g) Economic Inequalities in India.
भारत में आर्थिक असमानतायें।

(h) Problems of Under developed Countries.
अविकसित देशों की समस्यायें।

(i) Measures to develop underdeveloped economy
अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्था को विकसित करने के साधन।

(j) The First Five Year Plan and its Achievements.
प्रथम पंचवर्षीय योजना और उसकी उपलब्धियाँ।

(k) Aims and Achievements of the Second Five Year Plan.
द्वितीय पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य और उसकी उपलब्धियां।

(l) Aims and Achievements of The Third Five Year Plan.
तृतीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और उसकी उपलब्धियां।

What were the objects of the First Five Year Plan? Was it essentially an agricultural plan?
प्रथम पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य क्या थे? क्या यह मुख्यतया एक कृषि योजना थी?

. "The Third Five Year Plan suffered from serious drawbacks" Comment.
"तृतीय पंचवर्षीय योजना गम्भीर कमियों से ग्रस्त थी।" विवेचना कीजिए।

. Write a short essay on "A decade of Economic Planning in India."
"भारत में आर्थिक नियोजन की एक दशाब्दि" पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

5. Attempt an essay on "Industry during Five Year Plans."
"पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत उद्योग" पर एक निबन्ध प्रस्तुत कीजिए।

5. Write a short essay on "The First Year of the Fourth Year Plan."
"चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष" पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

7. What do you mean by Economic Planning? Why its was necessary for India? To what extent has it been successful in achieving its aims?

आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं ? इसकी भारत में आव-
श्यकता थी ? यह अपने उद्देश्य की पूर्ति में कहां तक सफल हुआ

BRIEF NOTES
(संक्षिप्त टिप्पणियां)

१. निम्नलिखित में से प्रत्येक पर २६० शब्दों में टिप्पणी लिखिए—

(a) आर्थिक पुनर्निर्माण से आप क्या समझते हैं ?
(b) क्या भारत एक अल्प विकसित देश है ?
(c) "कृषि पर अत्यधिक भार" से क्या आशय है
(d) आर्थिक पुनर्निर्माण की विभिन्न दशायें
(e) भारत की आर्थिक आवश्यकतायें
(f) भारत की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के सा
(g) भारत में खनिज सम्पदा
(h) भारत की वन सम्पदा
(i) भारत में शक्ति-साधन
(j) नियोजन का अभिप्राय और उसकी आवश्यकता
(k) भारत में आर्थिक नियोजन का सूत्रपात
(l) भारत में नियोजन की समस्यायें
(m) भारतीय कुटीर और लघु उद्योगों की समस्यायें
(n) भारत में वृहत उद्योगों की समस्यायें
(o) भारतीय कृषि के पिछड़ेपन के कारण अथवा भा
समस्यायें
(p) अर्द्ध विकसित राष्ट्र और आयोजन
(q) अर्द्ध विकसित राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति के साधन
(r) प्रथम पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य
(s) चतुर्थ योजना के उद्देश्य
(t) द्वितीय योजना में औद्योगीकरण का महत्व
(u) योजनाओं के लिए वित्तीय साधन
(v) राष्ट्रीय योजना ...

(d) जन शक्ति और आर्थिक विकास
(e) योजना और जन सहयोग
(f) भारत जैसे एक अर्द्ध विकसित देश के विकास के लिए कृषि और उद्योग उसकी दो टांगो (legs) के समान है।
(g) कृषि के विकास के लिए आवश्यक प्रारम्भिक साधन।
(h) "भारत में भारी उद्योगों की अपेक्षा लघु उद्योगो पर अधिक ध्यान देना चाहिये।"

OBJECTIVE TYPE QUESTIONS
(नवीन शैली के प्रश्न)

'हां' या 'ना' मे उत्तर दीजिए।

(a) भारत एक विकसित देश है।
(b) भारत मे प्राकृतिक साधनों की बहुत कमी है।
(c) भारत मे मानवीय-साधनों की विपुलता है।
(d) भारत मे जन्म दर मृत्यु दर की अपेक्षा अधिक है।
(e) कृषि पर अवलम्बन विकसित अर्थ व्यवस्था का लक्षण है।
(f) भारत में आर्थिक असमानतायें नहीं हैं।
(g) किसी भी देश का आर्थिक पुनर्निर्माण उस देश के वातावरण से प्रभावित होता है।
(h) भारतीय प्रशासकों और उद्योगपतियों में साहस का अभाव है।
(i) जनसख्या की वृद्धि भारत जैसे विशाल राष्ट्र के हित मे है।
(j) भारत "स्वचालित अर्थ व्यवस्था" की स्थिति में पहुँच चुका है।
(k) भारत "उच्चस्तरीय उपभोग" की सीमा छूने लगा है।
(l) भारत में उद्योगों का सन्तुलित विकास हो रहा है।
(m) भारत की मिट्टियां विश्व में सर्वाधिक उपजाऊ हैं।
(n) भारत की मिट्टियों मे नाइट्रोजन पर्याप्त मात्रा में मिलता है।
(o) भारत में उत्तम किस्म के लोहे के भण्डार की कमी है।
(p) भारत विदेशों से मेंगनीज का आयात करता है।
(q) खनिज-तेल-उत्पादक राष्ट्रों मे भारत अग्रणी है।
(r) भारत मे अच्छे किस्म के कोयले का विश्व मे सबसे बड़ा भण्डार है।
(s) भारत मे वन सम्पदा का विशेष महत्व नहीं है।
(t) भारत के लिए प्रकृति साधनों की दृष्टि से अत्यन्त उदार है।
(u) भारत औद्योगिक दृष्टिकोण से आगे है।
(v) भारत की प्रथम योजना कृषि-प्रधान योजना थी।
(w) भारत की द्वितीय योजना कृषि-प्रधान योजना थी।
(x) तृतीय योजना में घाटे की अर्थव्यवस्था को त्याग दिया गया।

(y) भारत में आर्थिक नियोजन का सूत्रपात ब्रिटिश शासन काल में हुआ था।

(z) भारतीय उद्योगों में पूंजीगत उद्योगों का महत्व उपभोग वस्तु सम्बन्धित उद्योगों की अपेक्षा कम है।

२. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये (जहां कोष्टक में दो शब्द दिये गये हैं उनमें से सही शब्द चुन कर भरना है)—

(a) तृतीय पंचवर्षीय योजना सर्वाधिक·······योजना थी। [सफल/ध

(b) भारत में उचित योजना की····है। [कमी/पर्याप्तता]

(c) प्रथम पंचवर्षीय योजना ' से प्रारम्भ की गई थी।

(d) तृतीय योजना··· से प्रारम्भ की गई थी।

(e) द्वितीय पंचवर्षीय योजना····करोड़ो रुपयों की थी।

(f) चतुर्थ योजना के प्रथम वर्ष में····को प्राथमिकता दी गई है।

(g) १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी····है।

(h) भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना पर वास्तव में····रुपये खर्च हुए

(i) आर्थिक विकास के लिए एक देश को अपनी राष्ट्रीय आय का ··· प्रतिशत बचाना चाहिए।

(j) भारतीय योजना आयोग का गठन सन्····" में किया गया था।

(k) भारत मे आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ सर्वप्रथम " ····सन् मे हुआ

(l) खाद्यान्न व्यापार–निगम की स्थापना सन् ····मे हुई। [१९६४/१९ १९६६]

३. निम्नलिखित वाक्यों की पूर्ति कीजिए :—

(a), अर्द्ध विकसित राष्ट्रों की कुछ आधारभूत समस्यायें ये हैं—
[१]··· [२] ·· [३] [४] ···

(b) भारत अर्द्ध विकसित देश है क्योंकि उसमे निम्नलिखित लक्षण उप हैं—
[१] ··· [२]··· [३] ··· [४]··· [५]····

(c) भारतीय कृषि की समस्यायें निम्नलिखित हैं—
[१] ·· [२]··· [३]··· [४]··· [५]····

(d) भारतीय औद्योगिक पिछड़ेपन के कुछ कारण ये हैं—
[१]····[२]··· [३]··· [४]····

भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता की समस्याएँ समकालीन भारतीय समाज में ऐक्यकारी शक्तियों और उनके उपाय का अध्ययन

[PROBLEMS OF EMOTIONAL INTEGRATION AND NATIONAL UNITY, A STUDY OF THE DEVICES AND HARMONISING FORCES IN CONTEMPORARY INDIAN SOCIETY

भारत में ऐसे अनेक तत्व विद्यमान हैं, जो इस विशाल देश में अनेक प्रकार से विभिन्नताओं को उत्पन्न करते हैं। इस देश की भौगोलिक दशा सर्वत्र एक समान नहीं है। इस देश में अनेक नस्लों और जातियों के लोगों का निवास है। यहां विभिन्न बोलियों की सत्ता है। धर्म की दृष्टि से भी इस देश में विभिन्नता है। संक्षेप में भारत में [illegible]

[illegible]

संक्षेप में समझ लेना चाहिये।[b]

भावनात्मक एकता का अभिप्राय—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, भावात्मक एकता का सम्बन्ध मन अथवा हृदय की एकता से है। सभी भारतवासियों को चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई हों या पारसी, बौद्ध हों या जैन, यह अनुभूति रखनी चाहिये कि वे सब भारत माता की सन्तान हैं, भारत उनका राष्ट्र है जिसका गौरव उनका गौरव है और जिसका अपमान उनका अपमान। उन्हें सदैव यह स्मरण रखना चाहिये कि चाहे भाषा, धर्म, जाति, खान-पान और रहन-सहन आदि की दृष्टि से उनमें बाहरी भिन्नता विद्यमान हों, परन्तु अपने हृदयों में वे एक दूसरे से आबद्ध हैं और अपने वतन भारत के प्रति निष्ठावान हैं। मन की संकुचित मनोवृत्तियों को [illegible] के प्रति हृदय में प्रेम, सद्भावना और बन्धुत्व की

यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रीय एकता के निर्माण के लिये किसी देश में सभी तत्व विद्यमान हों। थोड़े से तत्व मिलकर ही राष्ट्रीयता का निर्माण करते हैं। किसी देश में किसी एक तत्व का महत्व अधिक होता है तो किसी देश में दूसरे का। अतः सब तत्वों का अपना-अपना महत्व है जो देश की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। राष्ट्र बनता ही तब है जब राष्ट्रीयता अपने आप को संगठित कर लेती है। राज्य और राष्ट्रीयता के योग से राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्रीयता एक ऐसी आत्मिक शक्ति है जो लोगों में एक संगठन और आत्मीयता की भावना पैदा करती है। राष्ट्रीयता के निर्माण में 'एक विचार की शक्ति' निर्णायक भूमिका अदा करती है। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय एकता के लिए मनोवैज्ञानिक एकता होना परमावश्यक है। राष्ट्रीयता की परिभाषा विभिन्न लेखकों ने अलग-अलग ढंग से की है। नीचे दी गई कुछ परिभाषाएं राष्ट्रीय एकता के स्वरूप को स्पष्ट करती हैं—

"राष्ट्रीयता की परिभाषा नहीं हो सकती। इसे तो केवल देखकर पहचाना जा सकता है। राष्ट्रीयता ऐसे लोगों को कहते हैं जो भाषा, साहित्य, विचार, रीति-रिवाज और परम्पराओं जैसे विशेष बन्धनों से इस प्रकार बंधे हुये हैं कि वे उस प्रकार के बंधनों से बंधे हुए अन्य लोगों से भिन्न अपना एक सम्बद्ध समाज अनुभव करते हैं।" (Bryce)

"राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक भावना है। यह उन लोगों में उत्पन्न होती है जो एक प्रजाति से सम्बद्ध हैं तथा एक प्रदेश में रहते हैं, और जिनकी भाषा, इतिहास, परम्पराएँ, हित, समुदाय तथा राजनैतिक आदर्श समान हैं। (Gilchrist)

उपरोक्त परिभाषाओं में जो किंचित संकुचित विचार प्रतीत होता है वह राष्ट्रीयता की इस परिभाषा से दूर हो जाता है—

"राष्ट्रीय धर्म से राष्ट्रीयता उत्पन्न हुई। राष्ट्रीय धर्म वह भावना है जिस भावना से प्रेरित होकर मनुष्य कहता है कि मैं अमुक देश का हूँ, मुझे सदैव प्रयत्न करना चाहिये कि मैं अपने देश का विकास करूँ तथा उसकी रक्षा के लिये तत्पर रहूँ। इस प्रकार की भावना वाला मनुष्य राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत समझा जाता है। राष्ट्रीयता का अर्थ है राष्ट्र का हित अन्य समस्त हितों से ऊपर है, राष्ट्र के हित के लिये यदि हमें अन्य हितों का बलिदान करना पड़े तो हमें तैयार रहना चाहिये, यही सच्ची राष्ट्रीयता है।"

राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता हमें अपने राष्ट्र के लिए जीना और मरना सिखाती है, उसके लिए हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाना सिखाती है। राष्ट्रवाद हमें अपने परिवार, नगर, जिला, जाति, धर्म, समुदाय और प्रांत से ऊपर उठकर जीवन को राष्ट्र के साथ एकाकार करना सिखाता है। लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जब राष्ट्रीय भावना की अति हो जाती है तो वह न केवल राष्ट्र अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए घातक सिद्ध होती है।

भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता के अभिप्राय को समझने के उपरान्त हमें देखना चाहिए कि भारत में एकता की यह समस्या क्यों है।

भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता की समस्या
(Problem of Emotional Integration and National Unity)

भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, प्रशासनिक दृष्टियों से भारत में भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता की समस्या के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं—

(१) भौगोलिक स्थिति की असमानता—भारत देश की भौगोलिक दशा सर्वत्र सदृश नहीं है। ३२,८७,५०० वर्ग किलोमीटर या १२,६१,५९७ वर्ग मील का भारत का क्षेत्रफल भूमध्य रेखा के उत्तर में ८° से ३७° अक्षांश की रेखाओं और ६८° से ९७° पूर्वी देशान्तर रेखाओं के बीच स्थित है। विस्तार दृष्टि से विश्व में सातवां स्थान रखने वाले इस देश के विविध प्रदेशों में कहीं समतल मैदान हैं, तो कहीं पर्वतीय प्रदेश, घाटियां व पठार भी विद्यमान हैं। कहीं अत्यन्त सूखे रेगिस्तान हैं, तो कहीं ऐसे भी प्रदेश हैं जहां साल में कई सौ इंच वर्षा पड़ती है। कहीं घने जंगल हैं, तो कहीं ऊसर भूमि। प्राकृतिक दृष्टि से देखने पर पूर्वी बंगाल और राजपूताना में व कूर्मान्चल और काशी में भारी भेद दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार की भौगोलिक विशालता तथा विभिन्नता के कारण भारत में भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता के विकास में सदैव एक बाधा उपस्थित होती रही है और अनेक बार विदेशी लोगों का प्रचार भी इस प्रकार का रहा है कि भारत एक विशाल देश न रह कर छोटे-छोटे क्षेत्रीय टुकड़ों में विभाजित हो जाय।

भारतीय भिन्न प्रजातीय समूह का है, फिर भी प्रजातिवाद की भावनाएं यदाकदा तेजी से उभड़ती रहती हैं, उदाहरणार्थ दक्षिण भारतीय अपने आप को उत्तर भारतीय से भिन्न प्रजाति का मानते हैं। प्रजातिवाद के आधार पर लोगों में मनोमालिन्य होता से घरेलू तनाव को मिलता है। एक प्रजाति दूसरी प्रजाति को अपने से निम्न समझ विभाग मानकर समाज में विषमता फैलाती है, सामाजिक सम्बन्धों में कटुता पैदा करती है। प्रजातिवाद से राष्ट्रीय एकता और भावनात्मक समीपता के मार्ग में अनेक बाधायें अथवा रुकावटें खड़ी होती रही हैं। श्री चौधरी के शब्दों में "मानव मात्र में प्रेम और सहिष्णुता के स्थान पर घृणा और हीनता की भावना उत्पन्न हुई। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को, एक समूह दूसरे समूह को, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र में अपने हित में दूसरों को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील है और आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह तय हो चुका है कि इस प्रकार से कोई प्रजाति निम्न और उच्च नहीं है, अत: इस भावना को समाप्त कर देना चाहिए। इसी में मानव जाति का कल्याण निहित है और "वसुधैव कुटुम्बकम की विशाल प्रेरणा।"

(४) क्षेत्रीयता—क्षेत्रीय भावनायें भारत की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता में सदैव से बाधक रही हैं। प्राचीन हिन्दू राजा अधिकांशत: अपने तुच्छ क्षेत्रीय स्वार्थों पर ही बल देते थे। सम्पूर्ण राष्ट्र का हित-चिन्तन वे बहुत कम करते थे। जब भारत में ब्रिटिश शासकों ने अपने पैर जमा लिये तो उन्होंने हमारी इस दुर्बलता से लाभ उठाते हुए निरन्तर एक ऐसी नीति का अनुसरण किया कि हम क्षेत्रीय भावनाओं में उलझे रहे और अंग्रेजों की "फूट डालो और शासन करो" की नीति सफल होती रही। ब्रिटिश शासकों ने क्षेत्रीयता की जिन भावनाओं को प्रोत्साहन दिया, स्वतन्त्र भारत में वे भावनाएँ मिटी नहीं प्रत्युत स्वार्थी नेताओं ने भाषा, वर्ग और धर्म-गत विभिन्नताओं का सहारा लेकर उनका पोषण ही किया। इसी के फलस्वरूप १९५५-५६ में राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न को लेकर क्षेत्रीय भावना का ऐसा प्रबल भूचाल आया जिसने सम्पूर्ण भारत की एकता और स्थिरता को एकबारगी ही डाँवाडोल कर दिया। आज क्षेत्रीय भावनाओं का प्रश्रय पाकर ही मिजो, नागा, सिख आदि अपने अपने क्षेत्रीय राज्यों की माँग करके भारत की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचा रहे हैं। शासन का यह कर्त्तव्य है कि वह क्षेत्रीय भावनाओं को सिर न उठाने दे और ऐसी भावनाओं के पोषकों के प्रति कठोर रुख ग्रहण करे।

(५) भाषा सम्बन्धी विभिन्नता—भारत में अनेक नस्लों और जातियों के लोगों का निवास है। आर्य, द्रविड़, मुण्ड, किरात आदि कितनी ही जातियों के लोग यहाँ बसते हैं। हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैन आदि धर्मावलम्बी यहाँ निवास करते हैं। वे सभी अपनी भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं। इस देश में हिन्दी, गुजराती, मराठी, तेलुगू, तामिल, बंगला, कन्नड़, मलयालम, उड़िया आदि अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं। यहाँ बारह से अधिक समुन्नत भाषायें और सैकड़ों की संख्या में बोलियों की सत्ता है। अनुमानत: भारत में ८४५ प्रान्तीय भाषाएँ और ६१

। सैकड़ों भाषीय समुदायों में

ा हुआ है और उनकी स्वयं की विभिन्न उप-संस्कृतियाँ हैं। भाषा सम्बन्धी यह
भिन्नता भारत की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता के लिए एक गम्भीर समस्या
इस विभिन्नता ने ही राष्ट्र विरोधी अर्थात् साम्प्रदायिक तत्वों को प्रोत्साहन
ा। यदि उत्तरी भारत के निवासी हिन्दी को राज-भाषा बनाने के पक्ष में हैं तो
ण के व्यक्ति इस बात के घोर विरोधी हैं। वहाँ का उच्च शिक्षित वर्ग अंग्रेजी
ही प्रमुख स्थान देने का पक्ष-पोषक है। भाषा सम्बन्धी समस्या राष्ट्रीय एकता
बाँध में दरारें डाल रही है। प्रादेशिक भाषाएँ भी अपना-अपना महत्व बताये
ने के लिए अनुचित तरीके से देश की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता का उपहास
र रही हैं। भाषाओं के नाम पर कभी-कभी ऐसे व्यापक आन्दोलन हो उठते हैं
हमको अपने देश-वासियों की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और राष्ट्र-प्रेम पर सन्देह
ने लगता है। भाषा-प्रेम के प्रवाह में इतना बह जाना अवश्य अशुभ और खतर-
क है कि हमारे देश की अखण्डता को ही आघात पहुँचने लगे।

(६) धार्मिक तथा साम्प्रदायिक विभिन्नता—जैसा कि उल्लेख किया जा
का है, भारत में अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। इनके
द्धान्त, नियम तथा इनकी दैनिक क्रियाएँ एक दूसरे से पृथक हैं। ये पृथकताएँ
रतीय जनता की भावनात्मक और फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधाओं
रूप में कार्य करती हैं। भारत में विघटनकारी तत्वों को प्रोत्साहन अधिकांशतः
विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के द्वारा ही प्राप्त होता है। धर्म और सम्प्रदाय
विवादात्मक हैं अतः राष्ट्रीय एकता की दिशा में समय-समय पर अवरोध उपस्थित
ते रहते हैं। धर्म के कारण ही भारत को १६४७ में विभाजन का दुर्दिन देखना
ड़ा और सम्प्रदायवाद ने खून की होली खेली। आज भारत में जनसंख्या लगभग
५ प्रतिशत हिन्दुओं, १० प्रतिशत मुसलमानों, २.३० प्रतिशत ईसाईयों, १.७५
तिशत सिक्खों और शेष जैनों तथा अन्य धार्मिक मतावलम्बियों में विभाजित है।
र्म के ये विभिन्न समुदाय अपने धर्मावलम्बियों से पृथक भक्ति (Loyalty) चाहते
। इस कारण रह-रह कर राष्ट्र में विघटन के तत्व सिर उठाते रहते हैं। धर्मों के
ति अन्ध आस्था साम्प्रदायिक तनाव में वृद्धि करके राष्ट्रीय एकता का हनन करती
। देश में अनेकों राजनीतिक दल धर्म के आधार पर ही संगठित हैं। मुस्लिम लीग,
ो एक विशुद्ध धार्मिक संस्था है और जो भारत के दो टुकड़े कराने के लिए उत्तर-
ायी थी, आज भी जीवित है। साम्प्रदायिक तत्वों को कम करने के लिए भारतीय
विधान की धारा १५ और १६ में व्यवस्था की गई है, किन्तु यह विशेष प्रभाव-
ाली सिद्ध नहीं हुई है। ब्रिटिश शासन द्वारा गहरा बोया गया साम्प्रदायवाद का
विष-बीज वृक्ष का रूप धर के अपनी विनाशकारी शाखाएं स्वतन्त्र भारत में सर्वत्र
बिखेरे हुए है। जब तक इस विष वृक्ष को समूल नष्ट नहीं कर दिया जायगा, भारत
की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता की समस्या विद्यमान रहेगी।

(७) गरीबी, अज्ञानता एवं अशिक्षा—भारतीय जन-जीवन में गरीबी
अज्ञानता और अशिक्षा की यह तीन बुराइयाँ दीर्घकाल से पैर रोपे हुए हैं। इनके

कारण भी भारत के निवासी राष्ट्रीय एकता के महत्व को अन्य देशों के निवासियों के समान महत्व नहीं दे पाये हैं। देश में व्याप्त घोर आर्थिक विषमता भावनात्मक एकता के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है। असमानता और अशिक्षा के कारण स्वार्थ-प्रवृत्ति इतनी बढ़ी हुई है कि राष्ट्रीय एकता के महत्व की उपेक्षा की जा रही है।

उपरोक्त सभी परिस्थितियाँ संयुक्त रूप में भारत में भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता की गम्भीर समस्या को मूर्त रूप प्रदान किए हुए हैं।

विविधता या एकता में अनेकता

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में विभिन्नताओं को उत्पन्न करने वाले अनेक तत्व विद्यमान हैं। किन्तु अधिक गम्भीर दृष्टि से विचार करने पर अनेक विविधताओं के होते हुए भी भारत की आधारभूत एकता को समझने में कठिनाई नहीं होगी। जो तत्व भारत में एक प्रकार की आधारभूत एकता को स्थापित करते हैं, उनका यहाँ संक्षेप में उल्लेख करना उपयोगी है—

(१) भौगोलिक एकता—प्रकृति ने भारत को एक अत्यन्त और स्वाभाविक सीमा प्रदान की है। इसके उत्तर में हिमालय की ऊंची और दुर्गम पर्वत शृंखला है। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में यह महा समुद्र से घिरा हुआ है। प्रकृति ने भारत को समुद्रों और पर्वतों से घिरे हुए एक विशाल दुर्ग के समान बनाया है। भारत के निवासी इस दुर्ग में रहते हुए एक प्रकार की एकानुभूति अनुभव करते रहे हैं। उन्होंने भारत को अपनी मातृभूमि और देव भूमि माना है। वे भारत के पर्वतों, वनों और सरिताओं को पवित्र मानते रहे हैं। उन्होंने यहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक तीर्थ और देव स्थानों की स्थापना की है। मुसलमानों ने स्थान-स्थान पर अपनी दरगाहें और मस्जिदें स्थापित कीं। उनके पीरों और औलियों की स्मृति भारत के विभिन्न स्थानों के साथ जुड़ी हुई है। भारत में वैदिक नेता भारत की भौगोलिक एकता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते रहे हैं। इसीलिए तो केरल देश में उत्पन्न हुए आचार्य शंकराचार्य ने अपने विभिन्न मठों की स्थापना उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सर्वत्र की थी।

(२) जातीय एकता—यद्यपि भारत में अनेक जातियों के लोग निवास करते हैं पर इन विविध जातियों में सम्मिश्रण भी खूब हुआ है। इस समय भारत के अधिकतर जनसंख्या आर्यों और द्रविड़ों का सम्मिश्रण ही है। भारत में जिन विदेशी जातियों का प्रवेश हुआ, वे हिन्दू समाज में अब इतनी घुल मिल गयी हैं कि उनमें से अनेक का अस्तित्व ही लुप्त सा हो गया है। यदि कोई, आज भी बहुसंख्यक ईसाई और मुसलमान भारत में विद्यमान हैं वे प्राचीन हिन्दुओं की ही सन्तान हैं। जिन्होंने बलपूर्वक अथवा धर्म-परिवर्तन कर लिया था। यही कारण है कि

अन्य धर्मावलम्बी हिन्दुओं के रीति-रिवाजों और रूढ़ियों को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयता की नवीन विचार-धाराओं के फलस्वरूप देश की एक ही शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत लोगों ने नागरिकता प्राप्त की है। इससे न केवल पारस्परिक जातीय-भेद-भाव घटे हैं बल्कि राष्ट्रीय और मानवीय भावों का उदय भी हुआ है। वास्तव में नस्ल और भाषा की विभिन्नता के होते हुए भी प्रायः सम्पूर्ण भारत के निवासी एक ही प्रकार की सामाजिक रचना रखते हैं। सर्वत्र वर्णाश्रम-व्यवस्था का एक समान रूप है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का भेद दक्षिण भारत में भी वैसा ही है, जैसा कि उत्तर-भारत में। आश्रम-मर्यादा का भी सारे भारत में एक समान रूप से पालन किया जाता है।

(३) भाषा की एकता—भारत में भाषाओं की भिन्नता अवश्य है, पर यहाँ की प्रायः सभी भाषायें एक ही साँचे में ढली हैं। भारत की अनेक द्रविड़-भाषाओं तक ने आर्यों की वर्णमालाओं को अपना लिया है। आर्यों और द्रविड़ों का इतना अधिक सामंजस्य हो गया है कि आज प्रायः समग्र भारत की एक वर्णमाला है, और एक वाङ्मय है। न केवल वैदिक और संस्कृत साहित्य सारे भारत में समान रूप से आदरणीय हैं, अपितु मध्यकालीन सन्तों और चिन्तकों के विचार भी भारत को समान रूप से प्रभावित किए हैं। संस्कृत के ग्रंथ रुचि-पूर्वक आज भी समस्त देश में पढ़े जाते हैं। रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रंथ सम्पूर्ण देश में सम्माननीय हैं। प्राचीन युग में समस्त देश के विद्वत्-समाज को एक सूत्र में पिरोने का कार्य प्रथम संस्कृत, फिर प्राकृत से हुआ और बाद में अंग्रेजी और हिन्दी से पूर्ण हो रहा है।

(४) सांस्कृतिक एकता—भारत में सांस्कृतिक एकता प्राचीन काल से रही है। सम्पूर्ण देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का मौलिक आधार एक सा है। इस देश के न केवल हिन्दू अपितु मुसलमान, पारसी और ईसाई भी एक ही संस्कृति के रंग में रँगे हुये हैं। यह संस्कृति वैदिक, बौद्ध, जैन, हिन्दू, मुस्लिम और आधुनिक संस्कृतियों के सम्मिश्रण से हुई। भारत में सर्वत्र जाति-भेद, वर्ण-व्यवस्था, संस्कार, अनुष्ठान, आदि समान रूप से प्रचलित हैं। प्रोफेसर हुमायूं कबीर ने ठीक ही कहा है कि "भारतीय संस्कृति की कहानी, एकता और समाधानों का समन्वय है तथा प्राचीन परम्पराओं और नवीन मानों के पूर्ण संयोग की उन्नति की कहानी है। यह प्राचीन काल में रही है और जब तक यह विश्व रहेगा तब तक सदैव रहेगी। दूसरी संस्कृतियाँ नष्ट हो गयीं परन्तु भारतीय संस्कृति व इसकी एकता अमर है।"

(५) राजनीतिक एकता—यद्यपि प्राचीन भारत में अनेक छोटे-बड़े राज्य विद्यमान थे किन्तु सभी राजाओं की मनोकामना दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट होने की रहती थी। इस प्रकार यह विचार विद्यमान था कि भारत में एक ही राजनीतिक शक्ति का शासन होना चाहिये। चन्द्रगुप्त, अशोक तथा समुद्रगुप्त के समय देश का शासन-संचालन केन्द्र से होता था और देश में राजनीतिक एकता विद्यमान थी। मध्ययुग में मुस्लिम और मुगल शासकों ने भारत को राजनीतिक दृष्टि से एक

कुछ एक किया। स्पष्टतः प्राचीन समय में यह अनुभूति प्रबल रूप से विद्यमान रही कि यह "यह एक देश है, और इसमें जो धार्मिक, साहित्यिक व सांस्कृतिक एकता है वह राजनीतिक क्षेत्र मे भी अभिव्यक्त होना चाहिये।" ब्रिटिश शासनकाल में भारत की राजनीतिक एकता पूर्णरूप से स्थापित हो गयी और आज स्वतन्त्र भारत भी राजनीतिक एकीकरण का आदर्श रूप है। यद्यपि यहां आज भी अनेक प्रकार की विभिन्नतायें विद्यमान हैं, तथापि इन विभिन्नताओं मे भी इस देश मे एक आधारभूत एकता की सत्ता है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। भारतीय शासन का ढांचा बाहर से संघात्मक किन्तु आत्मा से एकात्मक है (Indian Constitution is federal in structure but unitary in spirit)।

(६) धार्मिक एकता—विभिन्नताओं का देश भारत अपने में विविध धर्मों को समेटे हुए भी धार्मिक एकता रखे हुए है। भारत के विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय भारत के मूल प्राचीन आध्यात्मिक तत्वों और सिद्धान्तों से ही निकले हैं। सभी के दार्शनिक और नैतिक सिद्धान्त समान हैं। एकेश्वरवाद, आत्मा का अमरत्व, कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष भक्ति आदि सभी धर्मों की समान निधि है। धार्मिक संस्कारों और कर्मकाण्डों मे भी समानता है। भारत के सभी हिन्दू राम और कृष्ण, वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण आदि के प्रति श्रद्धा रखते हैं तथा गौ गंगा और गायत्री को पवित्र मानते हैं। ब्रह्मा, विष्णु महेश, पार्वती आदि पुराण प्रतिपादित देवी-देवताओं की पूजा सर्वत्र होती है। भारत मे स्थित तीर्थ स्थानों की यात्रा करना प्रत्येक हिन्दू अपना पवित्र धार्मिक कृत्य समझता है। हिन्दुओं की दैनिक प्रार्थना मे देश के उत्तरी और दक्षिणी भाग मे बहने वाली नदियों की गणना होती है। मध्ययुग और वर्तमान युग मे धार्मिक सुधारकों ने सभी धर्मों और सम्प्रदायों की आन्तरिक समानता और शाश्वत सत्यता पर प्रकाश डाला है। इन सब बातों से देश की विशालता का ओर ही ध्यान आकृष्ट नहीं होता अपितु यहां के निवासियों की अखंड मौलिक एकता का भी आभास मिलता है।

(७) आर्थिक एकता—भारतवर्ष में सर्वत्र जलवायु एकसी नहीं है, इसलिये आर्थिक दशा में भी भिन्नता है। कोई भाग अत्यन्त उपजाऊ है तो कोई निर्जन सूना। कहीं खाद्य पदार्थ काफी मात्रा मे होते हैं तो कहीं खनिज पदार्थ की बहुलता है। किसी भाग में कृषि प्रमुख धन्धा है तो कहीं कला-कौशल जीविकोपार्जन का साधन है। इस प्रकार की आर्थिक विभिन्नताओं के होने हुये भी भारत आर्थिक दृष्टिकोण से सदा इकाई के रूप मे ही रहा है। कृषि प्रधान भाग, कला-कौशल वाले भागों को कला-कौशल सम्बन्धी सामग्री के विनिमय में खाद्य देते हैं। इस प्रकार देश में आर्थिक एकता बनी रहती है।

इस प्रकार भारत में विभिन्नता के बीच भी एकता का सिद्धान्त प्रकट वर्तमान रहा है। यह एकता भौगोलिक, सांस्कृतिक या रक्त सम्बन्धी विभिन्नता स्वीकार भी करती है। विभिन्नता में यह एकता ही भारत के समझे हुए इतिहास की थाती है

की पृष्ठभूमि के आधार पर भारतीय सभ्यता के विविध अंगों के उनके

हुए इतिहास को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। श्री राधा कुमुद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक भारत की मौलिक एकता (Fundamental Unity of India) में लिखा है कि "प्राकृतिक और भौगोलिक विशेषताओं ऐतिहासिक अनुभवों, धार्मिक [illegible] भाव का विकास [illegible]।"

देश की भावनात्मक एवं राष्ट्रीय एकता के उपाय

हम देख चुके हैं कि भारत में विविधताओं के मध्य एकता विद्यमान है। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि विविधताओं अथवा विभिन्नताओं की कोई समस्या ही विद्यमान नहीं है। यह समस्या कैसी और कितनी गम्भीर है, इसका विवेचन अध्याय के प्रारम्भ में ही किया जा चुका है। अतः अब हमें यह देखना चाहिये कि इस समस्या का समाधान करने के लिए किन उपायों को अपनाना श्रेयस्कर है।

(१) भौगोलिक एकता पर बल—प्रत्येक भारतीय को देश की भौगोलिक एकता के प्रति निष्ठा रखनी चाहिये। उसे यह समझना चाहिये कि चाहे वह भारत के किसी भी भाग में निवास क्यों न करता हो, वह भारत का नागरिक है और कुमारी अन्तरीप से लद्दाख तक तथा मिजो पहाड़ियों से लेकर कच्छ की खाड़ी तक विशाल भारत एक है और सदैव एक रहेगा। किसी भी आन्तरिक अथवा बाह्य शक्ति द्वारा भारत की इस एकता और अखंडता को विनष्ट करने के प्रयासों को सफल नहीं होने दिया जाये। भौगोलिक एकता में निष्ठा न रखने के कारण ही आज मिज़ो समस्या सिर उठाये हुए हैं। सरकार को भौगोलिक एकता के विनष्ट करने के किसी भी प्रयास को कठोरता से दबा देना चाहिये।

(२) शिक्षा और सहयोग की भावनाओं का प्रसार—भारत की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता को दृढ़ बनाने के लिए राष्ट्रीय पारस्परिक सहयोग की शिक्षा का तेजी से प्रसार किया जाना चाहिये। पाठ्य-पुस्तकों में राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता के विषयों को सर्वोच्च स्थान देना चाहिये। प्रत्येक शिक्षणालय में एक पीरियड ऐसा अनिवार्य कर देना चाहिए जिसमें छात्रों को एकता के महत्व और उसके आदर्शों का ज्ञान कराया जाये और उनमें एकता के भावों को जगाया जाय। शिक्षकों का और प्रबंधकों का यह कर्तव्य है कि वे शिक्षणालयों में एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करें जिसमें मधुरता और एकरसता का बीज हो और छात्र अपने को एक दूसरे के अत्यन्त निकट समझें। राष्ट्रीयता पर आधारित शिक्षा-संस्थाओं, समाचार पत्रों, साहित्य, आकाशवाणी, चलचित्र और पंचवर्षीय योजनाओं की सफल प्रगति देश के राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकीकरण के प्रति बहुत सहायक सिद्ध होगी।

(३) राष्ट्रीय भाषा और साहित्य का विकास—भाषा और साहित्य सदैव भावनाओं के महान् पोषक तथा पथ-प्रदर्शक रहे हैं। भाषा मनुष्य के मनोभावों की अभिव्यक्ति करती है और साहित्य मनोभावों का मार्ग-दर्शन करता है। महान् शेक्सपियर के इन शब्दों को "इंगलैंडवासी कभी भी किसी देश के गुलाम नहीं रहेंगे" पढ़कर प्रत्येक इंगलैण्ड निवासी का मस्तक गर्व से ऊंचा उठ जाता है। साहित्य

विन से बिल्कुल निकाल फेंके। राज्य का भी यह कर्तव्य है कि वह साम्प्रदायिक विचारों और राष्ट्र-विरोधी धार्मिक कार्य-कलापों के विरुद्ध कठोर अनुशासनात्मक र्यवाही करते हुए उन्हें प्रोत्साहित होने का अवसर न दे।

(६) *सांस्कृतिक व कलात्मक समन्वय*—*भारत एक विशाल देश है जिसके* वासियों में उद्योग, व्यवसाय, रहन-सहन, रीति-रिवाज, कलाओं आदि की भिन्नता ाई जाती है। यद्यपि भारतीय संस्कृति की आधारभूत एकता इन विभिन्नताओं भी विद्यमान है तथापि भावनात्मक एकता की सुदृढ़ता के लिए यह आवश्यक कि भारतीय संस्कृति का पूर्ण समन्वय स्थापित किया जावे—भारत की छोटी ड़ी सभी कलाओं में एक प्रकार की एकरसता स्थापित हो, भारतीय जनजातियों ी *सांस्कृतिक धाराओं को संयुक्त किया जाय और साथ लिया जाय, जन-जातियों* क विविध कलात्मक प्रदर्शनों में सामञ्जस्य उत्पन्न किया जाय और ऐसे सभी प्रयासों ो समर्थन मिले कि भारतीय जनता का कोई भी अंग अपने को भारतीय सांस्कृतिक ारा से विलग न समझे।

(७) भारतीय राजनीति और नेतृत्व—देश की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए यह जरूरी है कि भारत के संविधान में समाविष्ट समानता *स्वतन्त्रता और बन्धुत्व के सिद्धान्तों के अनुसार राजनीतिक और सामाजिक* ढाँचे को परिवर्तित किया जाय। भारत की राजनीति में स्वार्थ-लोलुपता और नेतृत्व की होड़ इतनी गहरी हो चुकी है कि उससे देश की एकता और अखण्डता को खतरा पहुंचने लगा है। स्वार्थी और संकुचित भावना वाले नेता देश की भावनात्मक एकता के मार्ग में सबसे बड़े कंटक हैं। आज देश को आवश्यकता है त्यागी और जनसेवी नेताओं की। भारत पाक-युद्ध के समय १९६५ में स्वर्गीय शास्त्री के नेतृत्व में *भारत में भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता का जो स्वरूप* देखने में आया था वह भी वास्तव में आदर्श है। हम राजनीति के चाहे किसी भी वाद या सिद्धान्त में विश्वास क्यों न करते हों, हम देश में चाहे किसी भी दल के समर्थक क्यों न हों, किन्तु भारतीय जनता, भारत देश और भारत के संविधान की उपेक्षा या विरोधी हमें कभी नहीं करना चाहिये। राजनीतिक दलों का निर्माण स्वस्थ आर्थिक और राजनीतिक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिये उनमें स्वस्थ प्रतियोगिता होनी चाहिये और उन्हें 'प्रचार-अहिंसा' का पालन करना चाहिये। यदि भारतीय राजनीति और नेतृत्व में राष्ट्रीय एकता समाविष्ट हो जायगी तो सम्पूर्ण देश राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता की लहरों में डुबकियां लगाने लगेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

(८) संचार और आवागमन की सुगम सुविधायें—यद्यपि स्वतन्त्र भारत में संचार और आवागमन की सुविधाओं का तेजी से प्रसार किया जा रहा है, तथापि इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना बाकी है। देश के अनेक भाग-विशेषकर पर्वतीय प्रदेश और शहरों से आने-जाने निकले हुए दूरस्थ गांव संचार और आवागमन की सुविधाओं से परे हैं। देश में भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता के प्रसार के लिए यह आवश्यक है कि संचार और आवागमन के साधनों का ऐसा जाल बिछा दिया

जाय जिससे देश का कोई गाँव और कोई भी प्रदेश स्वयं को अलग-थलग पड़ा हुआ न समझे। विचार-विनिमय और पारस्परिक सम्पर्क का जितना अधिक विस्तार होगा, उतनी ही अधिक देश की एकता सुदृढ़ होगी।

(६) आर्थिक विषमता और असंतोष की समाप्ति—देश की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए यह परमावश्यक है कि देश से गरीबी और आर्थिक उत्पीडन की दशायें शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हों। आज देश के आर्थिक विकास कार्य जिस ढंग से हो रहा है, उसमें गरीब अधिक गरीब और धनवान अधिक धन-वान बन रहे हैं। इस तरह दोनों ही वर्ग विद्वेष के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। आर्थिक विकास को लेकर विभिन्न प्रान्तों में द्वेष की भावनायें बढ़ रही हैं। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का प्रयास यह है कि पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत स्थापित किये जाने वाले उद्योग उन्हीं के प्रान्तीय क्षेत्र में स्थापित हों जिससे उस प्रान्त के अधिकाधिक व्यक्तियों को रोजगार मिल सके और उस प्रान्त की विशेष आर्थिक समृद्धि हो। वस्तुतः राष्ट्र के आर्थिक विकास के प्रयासों को ऐसा आकार और दिया जाना चाहिये कि प्रान्तीय आर्थिक प्रतियोगितायें राष्ट्रीय आर्थिक हितों को सशक्त बनाने वाली हों, आर्थिक विषमता निरन्तर घटे, मूल्यों में निरन्तर बढ़ती हुई मूल्यवृद्धि रुके और कम हो तथा देश की जनता को आर्थिक सन्तोष प्राप्त हो। जब तक देश में आर्थिक संतोष का वातावरण व्याप्त न होगा और देश के समस्त भागों का सन्तुलित आर्थिक विकास न होगा, तब तक वांछित राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता स्थापित न हो सकेगी।

भारत की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता किसी कानून द्वारा स्थापित नहीं हो सकती और न ही नारे लगाकर इसे स्थापित किया जा सकता है। इसे स्थापित करने का सरल और सर्वोत्तम मार्ग यही है कि हमारे जीवन की प्रत्येक विचारधारा और प्रत्येक क्रिया के पीछे यही भावना काम करे कि इसमें हमारे बंधुओं का, हमारे देश का, हमारे समाज का हित है। एकता का प्रयास व्यक्तिगत नहीं अपितु सामूहिक है—यह हमें भली प्रकार समझना चाहिये।

समकालीन समाज के संदर्भ में राष्ट्रीय एकता की शक्तियाँ

(Harmonising Forces in Contemporary Indian Society)

प्रस्तुत संदर्भ में एक दृष्टि हमें राष्ट्रीय एकता की उन शक्तियों पर डाल लेनी चाहिये जो हमारे समकालीन समाज में विद्यमान हैं। ये ऐक्यकारी शक्तियाँ हैं विभिन्न संस्थायें और शक्तियाँ हैं जो अपने-अपने ढंग से राष्ट्रीय तथा भावनात्मक एकता के लिए सक्रिय हैं। ये निम्न लिखित हैं—

(१) भारत सेवक समाज—यह सरकारी प्रेरणा व उपक्रम से स्थापित एक नया राष्ट्रीय संगठन है। यह देश के पुनर्निर्माण के लिए सब देशभक्तों को मिल कर काम करने का आह्वान करता है। यह राजनीतिक संस्था नहीं है। यह सभी भिन्न दलों के लोगों को भी इस काम में आमन्त्रित करती है। हाँ, हिंसात्मक ढंग से वर्तमान व्यवस्था का अन्त करने वालों और साम्प्रदायिकों के लिए इसमें नहीं है।

(२) सर्वोदय समाज—गांधीजी के आदर्शों और सिद्धान्तों में विश्वास करने वालों का यह आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में बनाया गया 'समाज' है। यह संस्था पक्ष नहीं है। यह गांधीजी की विचारधारा और उनके कार्यक्रम में विश्वास करने वालों का स्वैच्छापूर्ण भ्रातृत्व का परिवार है। समाज का मुख्य काम, भूदान यज्ञ को सफल बनाना, खादी प्रचार, हरिजन व आदिम जातियों की सेवा, कुष्ठ-रोगियों की सेवा, साम्प्रदायिकता का अन्त करना है।

(३) राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ—इसकी स्थापना १९२५ में की गई थी। इसका लक्ष्य है हिन्दुओं को सैनिक शिक्षा देना, सामाजिक चेतना को उद्‌बुद्ध करना, शारीरिक प्रशिक्षण देना। इसका ध्येय भारत में हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना है। संघ ने अपना लक्ष्य हिन्दू संस्कृति का पुनरुद्धार करना घोषित किया है। श्री गोलवलकर (गुरुजी) इसके सरसंघ संचालक हैं।

(४) आर्य समाज—स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज बहुत दीर्घकाल से (१८७५ से) एकता की दिशा में किया जाने वाला महान् प्रयास है। इसने हिन्दू जाति को विघटित होने से ही नहीं बचाया है, अपितु जिन हिन्दुओं को मुसलमान या ईसाई बना दिया गया है, उन्हें वापिस हिन्दू समाज में हिन्दू बनाने के महान् प्रयास में भी यह सफलतापूर्वक संलग्न है। आर्य समाज एक ऐसी संस्था है जो हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों और कुप्रथाओं पर साधातिक आघात करके एकीकरण की भावनाओं के प्रसार हेतु प्रयत्नशील है। भारतवासियों में इस संस्था ने देश प्रेम की महान् भावनाओं का संचार किया है और उनमें अपनी संस्कृति के प्रति विश्वास और सम्मान की भावनायें पैदा की हैं। अपने सामाजिक और शैक्षणिक कार्यक्रमों द्वारा आर्य समाज "सामंजस्य और एकता" की भावनाओं का प्रचार करता है।

(५) रामकृष्ण मिशन—भारत में अपने गुरु के नाम पर स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित इस मिशन की विभिन्न शाखायें राष्ट्रीय एकीकरण और सहयोग की भावनाओं के प्रचार में संलग्न है। जन सेवा हेतु इसने विभिन्न शिक्षणालय, चिकित्सालय आदि खुलवाये हैं। राष्ट्रीयता और हिन्दू सभ्यता की शक्ति में वृद्धि का यह मिशन पोषक है।

(६) सहकारी और सामुदायिक विकास योजनायें—स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय 'जन समूह' को समान रूप से उठाकर 'एक सबके लिए और सब एक के लिए' की भावना का लक्ष्य सामने रखकर बड़े पैमाने पर सहकारी समितियों और सामुदायिक विकास योजनाओं का आयोजन किया गया है। इनका प्रमुख उद्देश्य देश का आर्थिक विकास करके देश में व्याप्त आर्थिक विषमताओं को समाप्त करना है। आर्थिक समस्याओं को सहयोग और सहकारिता के आधार पर निपटाना इनका लक्ष्य है। सहकारी और सामुदायिक आन्दोलन भारत के ग्राम्य जीवन में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता है, जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बदलना चाहता है, और ग्रामीण जन-जीवन को सक्रिय, प्रभावशील तथा प्रगतिशील बनाना चाहता है।

ल परिषदें बिना किसी भेद-भाव के खेलकूदों द्वारा भावनात्मक और राष्ट्रीय कता को प्रोत्साहन देती हैं। "The National Institute of Sports" जैसी स्थायें एकीकरण की दिशा में बड़ी सहायक हो रही हैं।

स्पष्ट है कि हमारे समकालीन समाज में ऐसी शक्तियां सक्रिय हैं जो विघटन ारी तत्वों को समूल नष्ट करके देश की भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता का विकास करना चाहती हैं।

TOPICS FOR ESSAYS

(निबन्ध के विषय)

Write a short essay on each of the following subjects—

निम्नलिखित में से प्रत्येक विषय पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये—

(a) "Emotional Integration in India,"
"भारत में भावनात्मक एकता।"

(b) "National Integration in India"
"भारत में राष्ट्रीय एकता।"

(c) Problem of Emotion Integration in India.
भारत में भावनात्मक एकता की समस्याएं।

(d) "Efforts made by the Government in solving the Problem of Emotional Integration"
"भावनात्मक समस्या के हल के लिए सरकार द्वारा किये गये प्रयत्न।"

(e) "The Role of Contemporary Society in the field of Emotional Integration.,"
"भावनात्मक एकता के क्षेत्र में समकालीन समाज के योग।"

BRIEF NOTES

(संक्षिप्त टिप्पणियां)

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये—

(a) भारत और उसकी विविधताएं।

(b) [illegible]

OBJECTIVE TYPE QUESTIONS

(नवीन शैली के प्रश्न)

१ 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिये—

(a) भारत में भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता जैसी कोई समस्या नहीं है।

(b) भारत को अपनी एक मात्र भाषा, धर्म और जाति पर अभिमान है।

(c) भारत विविधताओं का देश है।

(d) समकालीन समाज ने भावनात्मक और राष्ट्रीय ऐक्य की समस्या के हल में सहयोग दिया है।

(e) भारत में विघटन और पृथकता की समस्या पुनर्जीवित हो उठी है।

(f) भारतीय भूगोल ने भी एकता में योगदान दिया है।

२. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—

(a) भावनात्मक एकता का अर्थ·········है।

(b) भारत में अनेक ····· के मानने वाले व्यक्ति रहते हैं।

(c) वर्तमान में भारत को ······की आवश्यकता है।

(d) भारत का आधुनिक इतिहास अधिकांशतः ······ने लिखा है।

(e) प्रत्येक राज्य अपनी शिक्षा-प्रणाली में ······और ·······पर ब करता है।

भारतीय कला-वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं साहित्य की प्रमुख विशेषताएं
(SALIENT FEATURES OF INDIAN ART-ARCHITECTURE, SCULPTURE, PAINTING, MUSIC AND LITERATURE)

कला जीवन का और संस्कृति का प्राण है। विश्व कला के क्षेत्र में भारतीय कला का अभूतपूर्व स्थान रहा है क्योंकि कला और जीवन का जितना सुन्दर समन्वय भारत में हुआ है उतना अन्यत्र कहीं नहीं। भारतीय कला का इतिहास आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यता से प्रारम्भ हुआ माना जाता है। सबसे प्राचीनतम भारत स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत और साहित्य कला का क्रीडास्थल रहा है और इन सभी कलाओं का रूप प्रत्येक परिवर्तन के साथ किसी न किसी रूप में निखरता रहा है। अग्रिम पृष्ठों में हम भारतीय कला की इन विभिन्न धाराओं का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन करेंगे जिनके द्वारा इन कलाओं के स्वरूप और विशिष्टताओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा।

स्थापत्य कला
(Architecture)

सिंधु युग—भारतीय स्थापत्य कला को ऐतिहासिक रूप में हम सिंधु घाटी की सभ्यता के समय से लेते हैं। सिंधु सभ्यता की नगर-निर्माण प्रणाली बड़ी सुविकसित एवं प्रौढ़ थी। सड़कें चौड़ी थीं, गलियां और मकान सुनिश्चित योजना के अनुसार बने हुए थे, सफाई के लिए नाली प्रणाली थी, बड़े-बड़े स्नानगृह और सोचगृह बने हुए थे, इमारतें प्रायः दो मंजिल की थीं जिनमें पकाई हुई ईंटें प्रयोग में लायी गई थीं, दीवारों पर पलस्तर मिट्टी का होता था, छतें पीटी हुई मिट्टी अथवा कच्ची या पकी हुई ईंटों की होती थीं और ईंटें बड़ी सफाई के साथ चुनी गई थीं।

पूर्व मौर्य युग—सिंधु सभ्यता के पतन के बाद से लेकर चौथी शताब्दी ई० पू० तक का स्थापत्य कला का इतिहास अन्धकारमय एवं अस्पष्ट है। इस युग के कोई अवशेष उपलब्ध नहीं हैं। तत्कालीन साहित्य के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि इस युग के भवन साधारण एवं घासफूस के बने होते थे। कालान्तर में आर्यों ने किलों का निर्माण करना और नगरों की सुरक्षा के लिए सुरक्षात्मक

ग भोग लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि महाकाव्य काल तक आर्य कला में काफी आगे बढ़ चुके थे। रामायण, महाभारत तथा बौद्ध
र सुन्दर नगरों और विशाल प्रासादों से इस अनुमान की पुष्टि

मौर्ययुग (३२२-१८४ ई पू)—इस युग से स्थापत्य कला के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले प्रमाण पुनः उपलब्ध होने लगते हैं। मौर्यकालीन शासक चन्द्रगुप्त और अशोक बड़े कलाप्रेमी थे और उनके द्वारा निर्मित नमूने आज भी भारतीय कला के सर्वोत्कृष्ट चिन्ह माने जाते हैं। मौर्यकालीन कला-कृतियाँ रचना के दृष्टिकोण से स्मारक के रूप में हैं और कठोर, चुनार के गुलाबी पत्थर की बनी हुई हैं। चौथी शताब्दी ई० पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य के राजदरबार में आने वाले यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के विवरण से पता चलता है कि पाटलीपुत्र नगर बड़े सुन्दर ढंग से निर्मित था। चन्द्रगुप्त के भवन, राज-प्रासाद और स्मारक लकड़ी के होने के कारण नष्ट हो गये, परन्तु अशोक के पाषाण-स्मारक काल के क्रूर हाथों से बचकर आज भी मौर्यकालीन स्थापत्यकला को गौरवान्वित कर रहे हैं। इस युग की भारतीय पाषाण कृतियों की विशिष्टता कला के सुविकसित रूप को प्रकट करती हैं। इस समय की स्थापत्य कला को हम चार भागों में बाँट सकते हैं—स्तूप, स्तम्भ, राजप्रासाद और गुफाएं।

स्तूप ईंट या पत्थर के ठोस गुम्बद के आकार के होते थे। इनके चारों ओर पाषाण की अलंकृत बाड़ (Railing) लगायी जाती थी जिसमें एक या एक से अधिक तोरणद्वार होते थे। ये तोरणद्वार बड़े विशाल और अनेक प्रकार की कला-कृतियों से अलंकृत होते थे। स्तूप के चारों ओर के घेरे को प्रदक्षिणा का रूप दे दिया जाता था। बुद्ध या अन्य प्रसिद्ध बौद्ध संतों के अवशेषों पर समाधि बनाना या किसी पवित्र स्थान को चिरस्मरणीय बनाना, स्तूप निर्माण का प्रमुख उद्देश्य होता था। अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक ने भारत और अफगानिस्तान में ८४,००० स्तूपों का निर्माण कराया था। आज भारत में साँची के पास का विशाल स्तूप अशोकयुगीन स्थापत्यकला का जीता-जागता प्रमाण है। इसका व्यास १२१॥ फुट, ऊँचाई ७७॥ फुट और विशाल पाषाण की चहारदिवारी ११ फुट ऊँची है।

स्तम्भ या लाट अशोककालीन स्थापत्य कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। [illegible]

और आदर्शवाद का सफलतापूर्वक समन्वय हुआ हो और जिनमे प्रत्येक बात का पृथक-पृथक सविस्तृत प्रदर्शन हुआ हो, पाना दुष्कर है।

महल भी बडे भव्य थे। फाह्यान ने जो अशोक के लगभग ७०० वर्ष बाद भारत में आया था, अशोक के महल को देखकर कहा था कि उसका निर्माण मनुष्यो ने नही देवताओ ने किया होगा। थोडे समय पूर्व की गई खुदाइयो से जो भग्नावशेष प्रकट हुए हैं उनमे सबसे असाधारण अवशेष १०० स्तम्भ वाला एक विशाल सभा भवन है।

गुफाएं कठोर चट्टानो में से काटी गई थी। उनकी भीतरी दीवारो पर ऐसी बढिया पालिश की गई थी कि वे दर्पण के समान चमकती थीं। ये गुफाए भिक्षुओ का निवास-स्थान थीं और सभा-भवन तथा उपासनागृह के लिए भी उनका उपयोग होता था।"

मौर्योत्तर (गुप्तकाल से पूर्व तक) युग – अशोक के पश्चात भारतीय स्थापत्य-कला निरन्तर विकास करती रही। इस मौर्योत्तर युग की अनेक मूर्तियाँ, गुफा-मन्दिर और स्तूप उपलब्ध हैं जिनसे इस समय की वास्तुकला और मूर्तिकला पर अच्छा प्रकाश पडता है। भरहुत का वह प्रसिद्ध स्तूप, जिसके तोरणो और जंगलो के अवशेष कलकत्ता संग्रहालय मे संग्रहित हैं, इस युग की वास्तुकला का श्रेष्ठ उदाहरण है। सांची के सुविख्यात स्तूप इसी काल मे बने। सांची के स्तूप की स्थापत्यकला विकासोन्मुखी प्रवृत्ति का सजीव उदाहरण है। श्री रायकृष्णदास ने लिखा है— "यहाँ (सांची मे) अशोककालीन बडे स्तूप का चारो दिशाओ वाले तोरण और उसकी परिक्रमा वाली दोहरी वेदिका दर्शनीय है। यह सारी प्रस्तर शिल्प शाल-वाहनों का बनवाया हुआ है एवं शुगकाल के प्रारम्भ का उससे तनिक पूर्व का जान पडता है। उक्त तोरणो मे चौपहल खम्भे हैं जो चौदह फुट ऊंचे हैं। उन पर तिहरी बड़ेरिया हैं जो बीच में से तनिक कमानदार है। बड़ेरियो के ऊपर सिंह, हाथी, धर्मचक्र, यक्ष और त्रिरत्न आदि बने हैं। समूचे तोरण की ऊंचाई ३४ फुट है। इसी से इसकी भव्यता का अनुमान किया जा सकता है। तोरणो पर चारों ओर बुद्ध की जीवनी के और उनके पूर्वजन्मों के दृश्य बड़ी सजीवता से अंकित हैं। बड़ेरियों में इधर-उधर हाथी, मोर, पदवाले सिंह, बैल, ऊंट और हिरन के जोड़ जिनके मुंह विरुद्ध दिशाओं में हैं बड़ी सफाई और वास्तविकता से बने हैं। खम्भे के निचले अंश में अगल-बगल ऊँचे द्वार रक्षक यक्ष हैं। जहाँ खम्भा पूरा होता है वहा ऊपर की बड़ेरियों का बोझ झेलने के लिये चौमुखी हाथी बने हैं तथा इनके बाहरी ओर मानो और सहारा देने के लिए वृक्ष पर रहने वाली यक्षिणियां बनी हैं। इनकी भाव-भंगिमा बड़ी सहज है। ये तोरण उस युग की संस्कृति एवं जीवन व्यापारों के विश्वकोष हैं।" इस युग में स्तूपकला का चरम विकास अमरावती मे हुआ। अमरावती के विशाल स्तूप ईंटों से बने हुए थे जिन पर बड़ी-बड़ी मूर्तियों को तराशकर बनाया गया था। ये स्तूप स्थापत्यकला के क्षेत्र में आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं।

गुप्त युग (३२०-६३० ई०)—भारतीय स्थापत्य कला का सर्वोत्कृष्ट रूप गुप्तकाल में दिखाई देता है। गुप्तकाल में सृजनात्मक प्रोत्साहन की लहर

हतियों के सम्मेलन के फलस्वरूप भारतीय वास्तु–कला के स्वरूप मे परिवर्तन ने लगा और एक नई शैली विकसित होने लगी। हिन्दू-मुस्लिम तत्वो के सयोग कला का जो समन्वयात्मक रूप निखरा उसका विस्तार से विवेचन इस पुस्तक अध्याय २ में किया जा चुका है, अत यहाँ पुनरावृत्ति करना अनावश्यक है।

ब्रिटिश शासन काल में स्थापत्य कला—मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत की विषम राजनीतिक स्थिति मे कला की प्रगति अवरुद्ध सी हो गई। अग्रेजो के भारत मे आगमन के बाद स्थापत्य कला पर से राजकीय संरक्षण समाप्त हो गया। अग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही इस देश मे पाश्चात्य वास्तु–कला ने प्रवेश किया और भारतीय परम्परागत स्थापत्य शैली की उपेक्षा होने लगी पाश्चात्य शैली की कुछ विशेषताए जैसे ऊचे स्तम्भ, त्रिकोणात्मक छज्जे, दरवाजों की लम्बी पक्तिया आदि लोकप्रिय बन गई और सार्वजनिक इमारतो मे इनका प्रयोग किया जाने लगा। पाश्चात्य शैली ने भारतीय स्थापत्य कला को कितना प्रभावित किया, इसका वर्णन भी इस पुस्तक के अध्याय ३ मे "पश्चिम का प्रभाव" शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहा इतना ही लिखना पर्याप्त है कि १८वीं शताब्दी के भवनो से प्रकट होता है कि जहा एक ओर मुगल स्थापत्य शैली की परम्पराओ को जीवित बनाये रखने की चेष्टा की जा रही थी वहीं दूसरी ओर स्थापत्य कला मे अलकरण का आधिक्य, योजना की कमी आदि दोष घर करने लगे थे। किन्तु कला के इस पतन काल मे भी आमेर के राजा सवाई जयसिंह ने सन् १७२८ में एक सुव्यवस्थित योजना के अनुसार जयपुर नगर की नींव डाली जिसके भवनो मे दिल्ली, आगरा और बगाल की स्थापत्य शैलियों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। १९वीं शताब्दी मे दिल्ली, आगरा, लखनऊ, बनारस आदि नगरों मे जो भवन निर्मित किये गये उनमे प्राचीन भारतीय परम्पराओ और विदेशी शैली का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय आन्दोलन के जोश मे बहती हुई जनता ने सार्वजनिक इमारतो मे भारतीय शैली का प्रयोग करने की मांग उठाना शुरू कर दिया। फलस्वरूप कुछ सार्वजनिक इमारतों मे भारतीय स्थापत्य कला की ऊपरी विशेषताएं शामिल कर ली गईं। इसके उदाहरण कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल, बम्बई का जनरल पोस्ट ऑफिस आदि हैं। इन उल-जलूल प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि नवीन भारतीय शैली के नाम पर जो भवन निर्मित किये गये, वे विदेशी कला के भद्दे अनुकरण मात्र बन कर रह गये। कलाकारों ने इनमें मेहराबो, खिड़कियों, दरवाजो आदि के मनचाहे नमूने बना कर भवन निर्माण करना शुरू कर दिया। फलस्वरूप भारतीय स्थापत्य शैली विकृत होकर पतन की ओर

भारतीय मूर्तिकला के इतिहास को निम्नलिखित युगों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) सिन्धु घाटी की सभ्यता में मूर्तिकला—स्थापत्य कला की भाँति भारतीय मूर्तिकला का इतिहास भी लगभग ५००० वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्रारम्भ होता है। खुदाई के फलस्वरूप सिन्धु प्रान्त में सैकड़ों मृण्मूर्तियां (मिट्टी की मूर्तियां) प्राप्त हुई हैं। अनेक मुद्रायें तथा ताबीज प्राप्त हुए हैं एवं असंख्य मिट्टी के बर्तन जिन पर सुन्दर पोलिश किया हुआ है। ये मिट्टी की मूर्तियां विशेषतः बच्चों के खिलौने और मंदिरों और देवताओं को भेंट की जाने वाली तथा पूजा की ही मूर्तियां हैं। देवताओं की मूर्तियों में अधिकतर "मातृदेवी" की मूर्ति मिली है। मिट्टी के बर्तनों की कला बहुत विकसित तथा सुन्दर थी। मिट्टी के बर्तन दो प्रकार के थे—एक वर्ग के बर्तनों पर पतले, हल्के, लाल रंग की पोलिश होती थी। इन पर रेखा-गणित के वृत्तों या कोणों की कारीगरी की हुई है। दूसरे वर्ग के बर्तन अच्छी तरह पकाई चमकीली मिट्टी के होते थे। बर्तनों पर चित्रकारी बहुत ही सुन्दर है। चित्रकारी में विशेषतः बेल-बूटे, पशु-पक्षी, पेड़-पत्तियों की आकृतियां चित्रित की गई हैं। मिश्र तथा सूसा तथा सुमेर के मिट्टी के बर्तनों पर विशेषतः मनुष्य आकृति का चित्रण हुआ है। मिट्टी के बर्तनों की यह कला जितनी उस काल में सुन्दर थी वैसी तो आजकल भी देखने को बहुत कम मिलती है।

मोहनजोदड़ो में एक पत्थर की मूर्ति भी प्राप्त हुई है जिसे कुछ पुरातत्ववेत्ता पुजारी की मूर्ति बतलाते हैं एवं कुछ अन्य पुरातत्ववेत्ता किसी योगी की मूर्ति। इस पुजारी या योगी की मूर्ति की शक्ल बेबीलोन के पुरोहित से मिलती है। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिल्प की दो मूर्तियां हड़प्पा से प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक लाल और दूसरी नीले काले पत्थर की है। इन मूर्तियों का शरीर सौष्ठव यूनान की मूर्तियों से कम आकर्षक नहीं। यहां की खुदाइयों में कुछ पीतल की नर्तकियों की भी मूर्तियां मिली हैं—जिससे ज्ञात होता है कि इन लोगों में नृत्य कला का भी प्रचलन था और यह नृत्यकला काफी विकसित थी। किन्तु नृत्य का उस काल में क्या ध्येय था, यह ज्ञात नहीं। मोहनजोदड़ो में थोड़ी अलकृत लाल गोमेदा की वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। सिन्धु प्रान्त की मुद्राओं तथा पट्टियों पर अंकित आकृतियां सिन्धु कला के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। इन मुद्राओं पर बैल, भैंस तथा नीलगाय के चित्र बहुत ही यथार्थ और सुन्दर हैं।

(२) आर्य कालीन मूर्तिकला—आर्य जाति ने भारत में मूर्तिकला को अपनाया अथवा नहीं, यह विवादास्पद है। आर्यों के समय की मूर्तियों का अभी तक पता नहीं लगा है, अतः अधिकांश विद्वानों की यही मान्यता है कि आर्य मूर्तियां नहीं बनाते थे। "वैदिक काल में मूर्तिकला नहीं थी," यह आधुनिक मत है। डा० स्वामी का कहना है कि इस समय मूर्तियाँ नहीं थीं, जबकि मैकडोनेल की मान्यता है कि, "वैदिक काल में मूर्तियां बनती थीं।"

(३) रामायण और महाभारत काल की मूर्तिकला—रामायण काल में आर्य जिन देवताओं की पूजा करते थे, उनकी मूर्तियाँ अवश्य बनाई जाती थीं। इन्द्र और

एक ही शैली की मूर्तियाँ हैं जिनमें बहुत कुछ वास्तविकता के चिह्न पाये जाते हैं। इनमें प्रकृति की छाप भी साफ दिखाई देती है।

(६) मौर्य काल (३२२ ई० पूर्व से १८५ ई० पूर्व) के समय की मूर्ति कला-मौर्य-युग में मूर्तिकला उन्नति के शिखर पर थी। इस युग की मूर्तियों में मथुरा के पास परखम में प्राप्त हुई यक्ष-मूर्ति, भेलसा (बेसनगर) में मिली एक स्त्री मूर्ति और दीदारगंज में उपलब्ध हुई मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। इस समय के मूर्तिकारों ने जो मूर्तियाँ बनाई थी उनमें से जो मूर्तियाँ मिल गई हैं उन्हें देखने से पता चलता है कि मूर्तिकारों ने मनुष्य, नारी, देवी-देवताओं तथा राजाओं के अलावा फूल, जानवर और चिड़ियों की मूर्तियाँ भी बनाई जो आज भी अपना जोड़ नहीं रखती हैं। उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप अश्वत्थामा पहाड़ी की चट्टान पर सम्राट् अशोक की जो धर्मलिपि खुदी है उसके ऊपर हाथी के सामने के भाग की मूर्ति बड़े सुन्दर ढंग से गढ़ी गई है। लौरियानंदगढ़ की चौकी पर उभाड़दार उड़ते हुये हंसों की मूर्तियाँ देखकर ऐसा मालूम होता है कि मूर्तिकारों को हंसों का अच्छा अभ्यास था। मूर्तियों के अंगों में सही अनुपात है और चाल तथा पंजों को बड़ी सुन्दरता से तराशा गया है। इलाहाबाद सकीसा तथा रामपुरवा के बैल वाले स्तम्भ पर पंकज, कमल, मुकुन्द आदि बड़ी सजीवता और सुन्दरता से बने हैं। शेर, हाथी, बैल, घोड़ा इनकी बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं। सारनाथ के कटहरे की चौकी पर यही चारों जानवर पहियों के बीच में उभार कर बहुत ही सुन्दर बनाये गये हैं। सारनाथ स्तम्भ की चौकी पर चार धर्मचक्र के चिन्ह हैं। शेर पीठ से पीठ मिलाये चारों दिशाओं में बड़े सुन्दर ढंग से बैठे हैं। मौर्य-काल शक्ति, गति, और गुरुता के गुणों से पूर्ण थी। "भारत का राष्ट्र चिन्ह सारनाथ स्तम्भ का सिंह मस्तक है। यह सिंह मस्तक शक्ति और भाव अभिव्यक्ति का अनुपम उदाहरण है। मूर्ति के चारों सिंहों के नीचे चार पशु चक्रों के अन्तर से दौड़ते दिखाये गये हैं। स्पष्ट है कि शक्ति के प्रतीक सिंह, गति के प्रतीक दौड़ते हुये पशु, और मानव-भाग्य की परिवर्तित स्थितियों के प्रतीक चक्र बनाकर मौर्य कालीन मूर्तिकारों ने जीवन में कर्मशक्ति और भाग्य शक्ति के समन्वय के जीवन-दर्शन को बड़े गहरे किन्तु बड़े सुलभ ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है। सिंह, पशु और चक्र का आधार एक अधोमुखी पंखड़ियों वाला कमल है। विश्व की मूर्तिकला में यह 'अशोक-स्तम्भ' अपना विशेष स्थान रखता है। पटना के पास एक सोने की मौर्यकालीन मूर्ति मिली है जो ठप्पों से बनाई गई थी। असीम शक्ति के प्रतीक यक्ष और यक्षियों की मूर्तियाँ मौर्यकालीन मानसिक आशावाद और भावुकता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

मौर्य काल की मूर्तियों में कहीं पर भी भद्दापन, मोटापन और अनुपातहीनता दिखाई नहीं देती। हर काम में बारीकी और समानता है। 'मौर्य' युग के कड़े पत्थरों की तथा मुलायम पत्थरों की छोटी गोल चकियाँ मिली हैं जिनमें किसी में छेद भी दिखाई देता है। इनकी नक्काशी बड़ी सुन्दर है जो उभरी हुई है। मौर्यकालीन नारियों की मूर्तियाँ सुन्दरता और ठीक अनुपात से अनुपम हैं। पटना संग्रहालय में संग्रहीत दीदारगंज से मिलने वाली स्त्री मूर्ति "रूप की अभिव्यक्ति" आकृति की

पूर्ण देना और कला-कुशलता का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत करती है। इसकी
गोरे काल के सुन्दरतम नमूनों में से है।"

मौर्यकालीन मूर्तिकला के बारे में इस तथ्य का ज्ञान आवश्यक है कि य
मूर्तिकला को राजकीय संरक्षण प्राप्त था तथापि जन कला इस युग में अपना वि
स्थान रखती थी। इस कला में ही जनता ने अपने भय, विश्वास और आकांक्षा
की अभिव्यक्ति की।

(७) ब्राह्मण साम्राज्य की मूर्तिकला – १८४ ई० पू० से २७ ई० पू० तक
भारत में चार महान् शक्तियां आधिपत्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहीं—शु
और कण्व, सातवाहन, चेट, यवन। इस काल की मूर्तिकला के सुन्दर नमूने सां
और भरहुत में मिलते हैं। सांची की मूर्तिकला का चित्रण पूर्ववर्ती पृष्ठों में स्थाप
कला सम्बन्धी रायकृष्णदास के एक कथन से किया जा चुका है। सांची और मथु
के स्तूपों के जंगलों और तोरणों में पत्थर काट-काटकर बहुत सी मूर्तियां बनाई गई हैं।
गुहा-मन्दिरों की दीवारों पर भी खोदकर बनाई गई मूर्तियां पाई जाती हैं। सांची
के तोरणों पर कहीं बोधिवृक्ष अभिवादन करने के लिये सारा जंगल जगत, समू
हाथी, मृग, नाग आदि उमड़ पड़े हैं तो कहीं बुद्ध स्तूप की अर्चना के लिये गज
कमल पुष्प लिये चला आ रहा है। भरहुत में एक बड़े बौद्ध स्तूप का अवशेष मिला
है जिसकी तली का व्यास ६८ फुट था। इसके चारों ओर पत्थर की बाड़ थी जो
अद्भुत मूर्ति-शिल्प से अलंकृत थी। भरहुत की मूर्तियों के विषय विभिन्न हैं। इनमें
जातकों के दृश्य हैं और बुद्ध-सम्बन्धी ऐतिहासिक दृश्य हैं। महत्व की बात यह भी
है कि इनमें से अनेक पर मूर्ति के विषय निर्देशक लेख अंकित हैं। एक मूर्ति में
जेतवन के क्रय और दान का आकर्षक दृश्य है। ४० के लगभग यक्ष, यक्षिणियों,
देवता और नागराज की बड़ी मूर्तियां मिली हैं जिनमें से अनेक पर उनके नाम खुदे
हुए हैं। जानवरों की भी अनेक मूर्तियां हैं जिनमें से कुछ बड़ी सजीव और स्वाभाविक
कला से परिपूर्ण हैं। यही हाल पक्षों की मूर्तियों का है। मानव-जीवन में उपयोगी
अनेक वस्तुओं की आकृतियां भी मौजूद हैं। भरहुत की कला लोक-कला जान पड़ती
है। उसमें वह सुथरापन नहीं है जो अशोककालीन स्तम्भों और सांची के तोरण में
है। ब्राह्मण साम्राज्य काल की मूर्तियां चपटी हैं, पूरे भद्दे भी हैं। कुछ मूर्तियां इस
विधि से बनाई गई हैं कि पहले टिकरे पर चित्र बना लिया फिर उसको खोद लिया।
मूर्तियों को सफाई के साथ गढ़ा हुआ है।

(८) सातवाहन और शक युग की मूर्तिकला – मूर्तिकला की दृष्टि से यह
काल बड़े मार्के का है। इस युग में मूर्तिकला की बड़ी प्रगति हुई है। अजन्ता की
गुफाओं में अधिकांश मूर्तियां महात्मा बुद्ध की मिली हैं जो उनके पूर्व जन्म तथा
उनके धर्म प्रचार से सम्बन्ध रखती हैं। इन मूर्तियों में बौद्ध मूर्ति शैली की सरलता
दिखाई देती है और वे भावपूर्ण भी हैं। यहां की मूर्तियां भी पर्याप्त संख्या में
कम होती हैं। कुछ गुफाओं की दीवारों को खोदकर मूर्तियां बनाई गई हैं। बुद्ध
के जीवन के साथ सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की मूर्तियां सजीव बनी हुई
देती हैं, जो देखने में आँखों को भली लगती हैं।

न युग में गांधार शैली का प्रारम्भ हुआ। यवनों ने गांधार मे जो अपने
म किये थे उनके कारण यूनानियों और भारतीयों का परस्पर सम्बन्ध
ष्ट हो गया था। गांधार के यवन बाद मे बौद्ध तथा अन्य भारतीय धर्मो
यी हो गये थे। यूनानी और भारतीय मूर्तिकला के सम्मिश्रण से जिस
र मूर्तिकला का प्रारम्भ हुआ उसे गान्धारी शैली कहते हैं। इस शैली
बहुत सुन्दर और परिमार्जित हैं। गांधार शैली का विषय बौद्ध धर्म है,
की टेकनीक यूनानी है। मूर्तिकारों ने उन्हीं कथाओं को मूर्ति का रूप दिया
भ्यास वे जातक से कर चुके थे। इस शैली की अनेक मूर्तियां हाथी-दांत
हुई मिली हैं। मूर्तियों पर भारतीय कला की स्पष्ट छाप है। मूर्तियों की
तीय आंखों की भांति हैं और पलकें तथा भौं हैं भी भारतीय दिखाई देती
-जगह अलंकरण मे भी भारतीय रंग दिखाई पड़ता है। गांधार देश में
भूरे रंग के पत्थरों का गांधार शैली की मूर्तियों में प्रयोग हुआ है। यवन
होते हुए भी इन मूर्तियों पर भारतीय आध्यात्मिकता की गहरी छाप है।
ख मण्डल पर अनुपम तेज प्रदर्शित किया गया है जिसकी अनुभूति निर्वाण
से ही हो सकती है।

शावर से गांधार शैली की कला भारत मे फैली। यह कला मथुरा पहुंची
-शैली का विकास हुआ। जो मूर्तियां मथुरा शैली की मिली हैं वे सब
बौद्ध मूर्तियों से टेकनीक में मिलती हैं। इस शैली ने गांधार शैली की उन्नति
दी। फिर भी गांधार शैली का प्रभाव अवश्य है। "मथुरा के आर्य-शिल्पियों
की रचनाओं को दृष्टि में रखकर एक मौलिक शैली का विकास किया था,
और आभ्यंतर दोनों दृष्टियों से शुद्ध आर्य-प्रतिभा की प्रतीक थी। भारतीय
एक परमयोगी के मुख पर जो दैवी भावना होनी चाहिये उसकी वृत्ति
र अन्तर्मुखी होनी चाहिये और उपासक के हृदय मे अपने उपास्यदेव का
कोत्तर रूप होना चाहिये—इस सबको पत्थर की मूर्ति में उतार कर मथुरा
भी चिर यश के भागी हुए हैं। मथुरा मे जो मूर्तियां बनीं, वे अनेक प्रकार
इस युग की एक मूर्ति काशी के कला-भवन मे सुरक्षित है। यह मूर्ति एक
की है जिसका मुख गंभीर, प्रसन्न व सुन्दर है। नेत्रों मे विमल चंचलता
ग-प्रत्यंग अत्यन्त सुडौल हैं और खड़े होने का ढंग बहुत सरल तथा
है।"

स काल मे मद्रास के समीप अमरावती नामक कस्बे मे भी मूर्तिकला की
ति हुई। अमरावती की मूर्तिकला के बारे में एक विद्वान् ने इस प्रकार लिखा
रावती की कला भक्तिभाव से भरी हुई है। जहां बुद्ध के चरण-चिन्ह के
ासिकाएं मस्त हो रही हैं वह देखते ही बनता है। कहीं-कहीं हास्य रस के
है और [illegible]

[illegible] बहुत ही मिलती है। खेद है कि अमरावती शिल्प का बहुत
चूना बनाने के लिए प्रायः सौ वर्ष पहले फूंक दिया गया था।"

(६) गुप्तकालीन मूर्तिकला (३२०—६६६ ई०) – गुप्तकाल भारतीय मूर्ति
कला का स्वर्णयुग माना जाता है। इस युग की कला में एक मात्र भावुकता है,
गाम्भीर्य और रमणीयता है। मूर्तियों में सुन्दर शिल्पकारी का काम देखने को मिलता
है। इस काल की एक विशेषता मिट्टी की मूर्तियां हैं जो अनुपम सौंदर्य की प्रतिनि
और रूपों की होती थीं। गृहों, मन्दिरों और स्तूपों में प्रदर्शित की जाती थीं
उत्सवों के समय इनकी मांग अत्यधिक रहती थी। ये मूर्तियां तीन प्रकार की होती
थीं – (अ) देवी-देवताओं की, (ब) पुरुष और स्त्रियों की, (स) पशु-पक्षियों एवं दूसरी
वस्तुओं की। इनका सौंदर्य और सजीवता धातु की मूर्तियों से भी बढ़ी-चढ़ी होती
थी। ऐसी छोटी मूर्तियां राजघाट, अहिच्छत्र और भित्त में प्राप्त हुई हैं। गुप्त
कालीन मूर्तियों में भौतिक सौंदर्य के साथ-साथ आन्तरिक शान्ति, और
आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति मिलती है। मूर्तियों के अतिरिक्त खिलौने व मिट्टी
के बैल, हाथी, घोड़े व अन्य छोटे-छोटे प्राणी भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं।

मूर्तिकला के नाते गुप्त और वाकाटक राजाओं के सिक्के बहुत ही अच्छे हैं।
सब सिक्कों की मूर्तियां बहुत ही सजीव हैं और मूर्तिकला की सब विशेषताओं को
लिये हुए हैं। गुप्तकाल की अधिक कलाकृतियां मुस्लिम आततायियों द्वारा छिन्न
कर दी गई थीं। अवशिष्ट नमूनों में सुन्दरतम मथुरा, सारनाथ और अजन्ता में
प्राप्त बुद्ध की मूर्तियां हैं।

मूर्तियों में प्रासेट करती हुई सुन्दर रमणी की मूर्ति तथा 'कृष्ण' की मूर्ति अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

चोलवंश (१०वीं–१३वीं शताब्दी) के अन्तर्गत दक्षिण भारत में ही धातु मूर्तियां भी काफी सुन्दर बनाई जाने लगीं। इनमें सबसे सुन्दर "शिव–ताण्डव" की मूर्ति है जिसके बारे में डा० कुमार स्वामी का कहना है—"भारतीय कला में नटराज की कल्पना एक महान् कृति है।"

उत्तर मध्यकालीन राजपूत राज्यों (११वीं-१२वीं शताब्दी) के मन्दिरों की मूर्तिकला भी अत्यन्त आकर्षक है। इस काल के मूर्तिकारों ने वास्तव में मूर्तियों के सभी अंगों पर ध्यान दिया है। देवताओं के हाथ बहुसंख्यक बनाये गये हैं जिनमें उन देवताओं का सामर्थ्य प्रकट करने के लिये नाना प्रकार के आयुध दिये गये हैं। नाना प्रकार की मूर्तियां तराश कर बनाई गई हैं जिनके चेहरे पर अभिव्यक्ति की छाप दिखाई देती है। चेहरे की पलकें और भौहें उभार कर बनाई गई हैं। होंठ कुछ मोटे मोटे हैं किन्तु बड़ी सुन्दरता से बनाये गये है। बल खाती हुई देह का इतना अतिरंजन होता है कि वास्तविकता से सम्बन्ध हटता सा प्रतीत होता है। इस काल की मूर्तियों के बनाने में किसी प्रकार का महापन नहीं है। नृत्य के अंगों और नायिका-भेद की बड़ी सुभग मूर्तियाँ बनी हैं।

(११) दिल्ली के सुल्तानों के काल की मूर्तिकला (१२०६ से १५२६ ई० तक) – मुगलों से पहले दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठने वाले सभी बादशाह दिल्ली के सुल्तानों के नाम से पुकारे जाते हैं। मुगल राज्य से पहले दिल्ली में पांच वंशों ने राज्य किया—गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश और लोदी वंश। इस सल्तनत युग में मूर्तिकला की विशेष उन्नति नहीं हुई, उल्टे उसका पराभव शुरू हो गया। मुसलमान मूर्तिपूजा के विरोधी थे। उन्होंने भारत में न केवल मूर्तिकला के प्राचीन नमूनों को नष्ट किया बल्कि नई मूर्तियों का निर्माण भी रोक दिया। फिर भी चोरी छिपे कुछ कलाकार थोड़ा बहुत निर्माण-कार्य करते रहे। इस समय जो मूर्तियां बनीं वे सब मन्दिरों में बनाई गईं और उनमें नवीनता या मौलिकता की कोई छाप नहीं थी। हां, यह अवश्य है कि सजावट की इकाइयाँ फूल-पत्तों की थीं। कला-कृतियों के निर्माण का अधिक अवसर न मिलने के कारण कलाकार सिद्ध-हस्त न हो सके और भारतीय मूर्तिकला का स्वरूप बिगड़ता चला गया।

(१२) मुगल राज्य में मूर्तिकला (१५२६ से १८५८ ई० तक)—मुगल काल में हिन्दुओं के कला प्रेम को नष्ट करने की नीति का बहुत कुछ परित्याग कर दिया गया। इस युग में अनेक मन्दिर बने जिनमें मूर्तिकला का उत्तम प्रदर्शन किया गया है। विजय नगर के मन्दिर में गोपुरों के प्रवेश द्वार और कोण-अलंकरण बड़े सौंदर्य पूर्ण हैं। राजा तिरूमल्लनायक (१६२१–१६२७) द्वारा निर्मित मदुरा का एक अत्यंत वैभवशाली मन्दिर है जिसकी आराहदरियाँ और स्तम्भ उल्लेखनीय हैं। १६२३ से १६४५ के मध्य बने हुए मन्दिरों के स्तम्भों के बीच में हाथियों को रौंदते हुए शार्दूल खड़े हैं और कहीं-कहीं अश्वारोही भी स्थित हैं। अश्वों के खुरों को पदातियों की ढालें सम्भाले हैं। अश्वारोही कहीं शत्रुओं का हनन करते दिखाये गये हैं तो कहीं

सिंह का शिकार करते हुए। चित्तौड के कीर्ति-स्तम्भ, स्मृति-स्तम्भ, जैन-म
मीरा मन्दिर आदि स्थानों की मूर्तियों को ध्यान से देखने पर प्रतीत होता है
मूर्तियां अधिकतर देवी-देवताओं की और नर-नारियों की हैं। जैन-मन्दि
मूर्तियों का गठन-कौशल उच्चकोटि का है। भाव-प्रकाशन में ये अद्वितीय हैं।
मूर्तियों के शारीरिक माप-दण्ड में किंचित भी भूल नहीं है। छन्द में कमनीय
मुद्रा-प्रकाशन में वैचित्र्य है। अधिकांश मूर्तियां देव, नर्तकी, और मां-शिशु की
वस्तु पर आधारित है। महाराणा कुम्भा का बनवाया हुआ विशाल मन्दिर
प्रसिद्ध है। मूर्तियों में शरीर के प्रत्येक छोटे से छोटे अंग को बनाके दिखाया गया
इस युग में देवी-देवताओं की मूर्तियों के अलावा पशुओं की मूर्तियां भी बनाई
थी जिनमें घोड़े की दो मूर्तियां अब भी आगरे में देखी जा सकती हैं। दक्षिण भ
में जो मूर्तियां इस युग में बनी उनमें शिव और विष्णु की मूर्तियां अधिक सत्या
इनके अतिरिक्त देवियों की मूर्तियां भी बनाई गई जिनमें दुर्गा और लक्ष्मी की मू
अधिक सुन्दर है। राम, नृसिंह, नृत्य गोपाल, वेणु-गोपाल, हनुमान आदि की मू
भी देखी गई है। दक्षिण में धातु की उत्कृष्ट व्यक्ति-मूर्तियां भी बनाई गई। नट
की मूर्तियां तांबे और पीतल की बनाई गईं। इन मूर्तियों में "नटराज के अंग-
से गति और स्फूर्ति छिटक रही है। प्रगाढ़ पुष्प-मण्डल ताल का स्वर देता जान पर
है। भगवान की जटा और उत्तरवस्त्र फहरा रहे हैं, उनके नाग भूषण लहरा रहे
शक्ति का निदर्शन बांया पैर नृत्य की गति में ऊपर उठ रहा है और सीधा मूर्ति
तमस्मृत को कुचल रहा है। उनके चारों हाथों में से सीधे हाथ में सृष्टि का
डमरू डिमक रहा है और बायें में अशिव दाहक अग्नि को लिए उठ रही
अभय और वरद देने को पल्लव की तरह हवा में लहरा रहे हैं। जिस तरह न
हुई बिजली की गति अब अपनी पूर्णता का पहुँच जाती है, ठीक यही भावना
मूर्ति को देखकर होती है।" शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी नृसिंह का दुग्ध मूर्ति

परिवर्तन हुआ। पाश्चात्य सभ्यता के आगमन के कारण भारतीय मूर्तिकारों ने यूरो की मूर्तियों को देखा और उनका अनुकरण किया। शनैः शनैः प्राचीन मूर्ति कला क विशेषतायें भुलाई जाने लगीं और साथ ही नई विधियों का उचित उपार्जन भी नह हुआ। परिणामस्वरूप उच्च मूर्तिकला की रुचि और परख की योग्यता बहुत कम ह गयी। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज भारत की अनेक प्राचीन सुन्दर मूर्तियाँ इंगलैण्ड ले गये जो आज भी वहा के संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही है।

भारत के विभिन्न नगरों में ब्रिटिश शासकों की आदमकद मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। ये सभी मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं। ग्वालियर में एडवर्ड सप्तम को घोड़े पर बैठ हुआ दिखाया गया है। मूर्तिकार ने घोड़े को भागते हुए बड़ी सुन्दरता से तराशा है ब्रिटिश-कालीन अनेक मूर्तियों में मालन, माता-पुत्र और स्त्रियों की तथा शेर चीतें और हिरनों की सुन्दर मूर्तियाँ बनाई गयीं। स्वातन्त्र्य आन्दोलन ने भारत की प्राचीन मूर्तिकला में पुनः प्राण फूंके। राष्ट्रीय नेताओं की संगमरमर की सुन्दर मूर्तियाँ बनायीं गयीं। फिर भी कुल मिलाकर ब्रिटिश शासन काल में मूर्तिकला की अवनति ही हुई।

(१४) स्वतन्त्र भारत में मूर्तिकला—यह हर्ष की बात है कि स्वतन्त्र भारत में सरकार भारत की परम्परागत कलाओं के पुनरुद्धार के लिए प्रयत्नशील है। स्वतन्त्र भारत में राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, कश्मीर, बम्बई, दक्षिण-भारत में विभिन्न मूर्ति केन्द्र है जो मूर्तिकला की दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखते हैं। राजस्थान में मूर्तियाँ विशेषकर पत्थर की बनाई जाती हैं जिन पर सुन्दर सजावट भी होती है। राजस्थानी मूर्तियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सब भावपूर्ण होती हैं और साथ ही साथ अपने समय के समाज का दर्पण भी हैं। दिल्ली में चपटी, उभरी सब प्रकार की सब धातुओं की, पत्थर व हाथी-दांत की दर्शनीय मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। उड़ीसा के मूर्तिकार अपनी मूर्तियों को प्राचीन मूर्तियों के समान बनाते हैं। इनमें प्रायः वही विशेषतायें है जो हम भुवनेश्वर मन्दिर की मूर्तियों में देखते हैं। बिहार की मूर्तियाँ भावपूर्ण हैं और उनमें किसी प्रकार का भद्दापन नहीं दिखाई देता। दक्षिण भारत की मूर्तियाँ अपनी सुन्दरता और सजीवता के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें मूर्तिकला की प्राचीन परम्परा दिखाई देती है और साथ ही आधुनिक मूर्तिकला के दृष्टिकोण से भी यह अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

भारत के आधुनिक प्रसिद्ध मूर्तिकार हिरण्मय चौधरी, डी० पी० चौधरी, नन्दलाल बसु, सुधीर खास्तगीर, गिरीश भट्ट, श्री कर्माकर, शखो चौधरी, श्री एस० धावड़ा, श्री के० के० हेबर, श्री एन० एम० बेन्द्रे, अमर नाथ सहगल, धनराज भगत, एस० बी० सान्याल, रामकिंकर, फड़के और मात्रे आदि हैं।

चित्रकला (Painting)

भारत में चित्रकला का प्रारम्भ भी, ऐतिहासिक दृष्टि से और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर, सम्भवतः सिन्धुघाटी की सभ्यता से हुआ। सिन्धु-सभ्यता के दो नगरों मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अवशेषों से विदित होता है कि उस युग में चित्रकला विकसित रूप में थी। इस सभ्यता के चित्रकार अपनी कृतियाँ मिट्टी के बर्तनों तथा पत्थर के टुकड़ों पर बनाते थे। चित्रकारों को रेखाओं का अच्छा ज्ञान

था। इनको बनाने में कोण, आयत और वृत्तों आदि का सुन्दर ढंग से प्रयोग किया गया था। भारत में प्रागैतिहासिक काल के चित्रकला के कुछ उदाहरण मिले हैं इनमें अधिकांश चित्र शिकार करते हुए दृश्यों के हैं। ये चित्र बेतुके और बेढंगे जिनमें किसी नियम का पालन नहीं किया गया है। मौर्य एवं गुप्त युग में का विकास हुआ। मध्य युग में तुर्क आक्रान्ताओं के कारण चित्रकला का विकास रुक गया, परन्तु अकबर तथा अन्य मुगल शासकों का संरक्षण पाकर चित्रकला पुनः फलने-फूलने लगी और अपने विकास की चरम सीमा छूने लगी। औरंगजेब ने कला के प्रति कठोर उपेक्षा का रुख अपनाया। फलतः अन्य कलाओं के साथ चित्रकला की भी अवनति होने लगी। ब्रिटिश शासनकाल में चित्रकला का विकास लगभग रुक सा गया। तत्पश्चात् रवीन्द्रनाथ टैगोर और हैवल के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय चित्रकला पुनः जागी और प्रगति करने लगी।

स्थान एवं कालभेद के अनुसार भारतीय चित्रकला अजन्ता शैली, पाल शैली गुजरात शैली, राजस्थानी शैली, हिमालय शैली, मुगल शैली, आधुनिक शैली आदि में विभाजित की जाती है। इन सभी शैलियों में हमें भारतीय चित्रकला और संस्कृति की आत्मा के दर्शन होते हैं। आगे हम संक्षेप में इन सभी चित्र शैलियों की प्रमुख विशेषताओं को प्रकट करेंगे।

अजन्ता चित्र शैली—अजन्ता चित्र शैली का काल ई० पू० एक सदी से लेकर ईसा बाद ७वीं सदी तक माना जाता है। अजन्ता और एलोरा की गुफाओं की दीवारों पर सुन्दर रंगों के मिश्रण से इन चित्रों का निर्माण हुआ है। ये चित्र अति उत्तम और प्रशंसा करने योग्य हैं। इनकी शैली सरल और अकुण्ठित है। मानव आकृतियाँ पुष्ट और सजीव हैं। दृश्यों का संयोजन सुन्दर है। हाथों का भावपूर्ण चित्रण देखते ही बनता है। अजन्ता के भीत्ति-चित्रों को बनाने वाले कलाकार बौद्ध धर्मावलम्बी थे, इसलिए बुद्ध एवं बोधि सत्वों के जीवन से सम्बन्धित चित्रों की यहां बहुलता है। इनके अतिरिक्त इन चित्रों में राजा-रानी, अमीर-गरीब, त्यागी-भोगी, नगर-वन, महल-पर्वत आदि का सुन्दर चित्रण मिलता है। प्रेमालाप के भी चित्रों का अंकन किया हुआ है। फूल तथा पशुओं के चित्र भी बड़े सुन्दर हैं। गुफा नं० १, २, ९, १०, १६, १७, २१ और २७ के चित्र देखने योग्य हैं। प्राचीन जातियों के मनुष्यों के चित्रों का बड़ा ही मनोहर चित्रण हुआ है। ऐसे चित्रों का मुख्य विषय राज दम्पति, उनके पुत्र और आस-पास खड़े हुए अंगरक्षकों का संयोजन है। चित्रों में जीवन की विविध स्थितियों का सुन्दर दिग्दर्शन है। मैत्री, करुणा, दया, क्रोध, प्रेम, लज्जा, चिन्ता, घृणा आदि मानव-हृदय की भावनाओं का प्राणवान चित्रण है। भगवान बुद्ध के जीवन-मरण की कथाओं का अनेक चित्रों में बड़े सुन्दर ढंग से अंकन हुआ है। गुफा नं० १६ में दो चित्र बड़े आकर्षक हैं—एक चित्र महात्मा बुद्ध के गृह त्याग का और दूसरा एक राजकुमारी का है। बुद्ध गृह त्याग कर रहे हैं और उनकी पत्नी यशोधरा अपने प्रिय पुत्र राहुल के संग सो रही है। दासियां भी घोर निद्रा में पड़ी हैं। बुद्ध के मुख-मुद्रा पर तनिक भी मोह-माया नहीं है। दूसरा चित्र मरणोन्मुख राजकुमारी का है जिसे देखने से मालूम होता है कि उसकी आगामी आशायें नष्ट हो

ुती हैं। उसकी मुद्राओं के व्याकुल भाव हृदय को रुला देते हैं। एक चित्र मे युद्ध
ा दृश्य बड़ी कुशलता पूर्वक दिखलाया गया है।

कलात्मक और भावनात्मक दृष्टि से अजन्ता के चित्र अद्वितीय हैं। इन चित्र
ं महानता और विशालता, शैली की सरलता, स्वाभाविकता और कल्पना ऐसी बातें
ं जो इन चित्रो की महानता बढाती हैं। दृश्य संयोजन मे केन्द्रत्व का बहुत अधिक
यान रखा गया है जिसमें उनकी सुन्दरता बढ गई है। चित्र मे अंकित महान्
ात्माओं का सम्पूर्ण सम्यक् चित्रण हुआ है। आकृतियो की सीमा रेखायें बड़ी
ुन्दर हैं। चित्रों के विषय धार्मिक भी हैं, सामाजिक और पार्थिव भी। शरीर के
त्येक अंग प्रत्यंग को रेखाओ द्वारा बड़ी कुशलता से बनाया गया है। चित्रकारो
 अपनी गतिशील रेखाओ से गोलाई, प्रकाश, छाया-प्रभाव उभार, स्थिति जनित
घुता आदि सब कुछ दिया है। अजन्ता के चित्रों के रंग साधारण व अमिश्रित
ोने पर भी चमकीले हैं। सभी चित्रो मे रंग का एक ही लेपन किया हुआ दिखाई
ेता है। अजन्ता की चित्र शैली न केवल भारत मे लोकप्रिय हुई बल्कि मध्य एशिया,
र्मा, लंका, चीन, जापान आदि देशो की चित्रकला पर भी इसका गहरा प्रभाव
ड़ा है। चित्रकला के एक विशेषज्ञ ने अजन्ता की चित्रकला के विषय मे कहा है—
"यह कला इतनी पूर्ण, परम्परा मे इतनी निर्दोष, अभिप्राय मे इतनी सजीव तथा
विविध, आकृति एवं वर्ण के सौन्दर्य में इतनी प्रसन्न है कि बरबस ही सर्वोत्तम
कलाकृतियो मे गिनी जाती है।"

६ - पाल शैली—८ वीं शताब्दी से भारत मे अजन्ता शैली के भित्ति-चित्रो की
था कम होने लग गई और उसके स्थान पर ताल पत्रों और भोज पत्रो पर लिखित
न्थों के विवरणो के आधार पर छोटे चित्रो की प्रथा प्रारम्भ हुई। इस चित्र शैली
का विकास ६ वी से १२ वीं शताब्दी के मध्य पालवंशीय शासकों के काल मे हुआ,
सीलिए इसे 'पाल शैली' कहा जाता है। इन चित्रों के विषय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित
ैं। सादगी और रेखांकन की सजीवता इनकी विशेषता है। 'प्रज्ञा पारमिता' के

से लेकर १६ वीं शताब्दी के अन्त तक बताया जाता है, यद्यपि १६ वीं सदी में ही इस शैली का पतन प्रारम्भ हो गया था। राजपूत शैली की उन्नति राजपूतों के राज्यों की उन्नति के साथ-साथ हुई। इस शैली के मुख्य स्थान काश्मीर, पंजाब, राजस्थान, बुन्देलखण्ड आदि राजपूत रियासतें थीं। राजपूत चित्र शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं ये हैं—चित्र कथाओं के आधार पर बने हैं, कृष्ण लीलाओं के तथा अन्य देवी-देवताओं के चित्र अंकित किये गये हैं, व्यक्ति-चित्रों का भाग कम है तथा जन-साधारण के नित्य के जीवन की मनोरम घटनाओं का सुन्दरतम चित्रण हुआ है। चित्रों का अधिकांश विषय धार्मिक है। भावों की अपेक्षा बाह्य रूप की प्रधानता है जो अधिक भावात्मक और काव्यमय दिखाई पड़ती है। भावों एवं क्रिया की प्रधानता भी है। मुद्राओं का सफल अंकन हुआ है जिसमें जीवन की गति और प्रवाह है। पशुओं का चित्रण भावपूर्ण है। इस शैली का रंग-विधान आकर्षक है और उसमें सादेपन की छाप है। हिन्दू देवी-देवताओं और राग-रागिनियों के चित्र बड़े सजीव तथा आकर्षक हैं।

राजपूतों की रियासतें भारत के भिन्न-भिन्न भागों में थीं अत राजपूत शैली की भिन्न-भिन्न शाखाएं हुईं जिनके नाम ये हैं — राजस्थानी शैली, नागौर, मालवा शैली तथा मेवाड़ शैली। राजस्थानी शैली का जन्म राजस्थान में हुआ, जयपुर इसका मुख्य केन्द्र था। इस शैली के रागरागनियाँ अथवा धार्मिक कहानियों के चित्र दर्शनीय हैं। चित्रों में प्राकृतिक रंग भरा है। राजस्थानी शैली की टेकनीक मुगल तथा ईरानी शैलियों की भांति है जिसमें भारतीय सुन्दरता पायी जाती है। चित्रकारोंने मनुष्यों के धार्मिक सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला है। 'भारत के घरेलू जीवन के चित्र जितने सुन्दर और चित्ताकर्षक इस शैली के हैं उतने किसी शैली के नहीं मिलते हैं। गाँव के बाजार, पनघट घरेलू काम, खेत तथा शिल्पकारी के काम इस शैली के मुख्य विषय हैं। एक चित्र में कालीन बुनने वाला अपने कार्य में व्यस्त है, दूसरा चित्र एक ग्वाले का है जो गायों को जुटा रहा है, उसका अन्य सामान इधर-उधर पड़ा है; एक अन्य चित्र में एक शिल्पकार अपने पुत्र को शिल्पकारी की शिक्षा दे रहा है, उसका लघुभ्राता उसके समीप खड़ा है, दो नारियाँ भी वहीं खड़ी हैं उनमें से एक नारी गोद में बच्चा उसके गले के हार से खेल रहा है।' यात्रा-चित्र तथा ठहरने के स्थानों का चित्र बनाने में राजस्थानी शैली के चित्रकारों ने बड़ी चतुरता दिखाई है। यात्रियों के विश्राम करने के ढंग का भली प्रकार प्रदर्शन किया गया है। गावों की पगडंडियों के दृश्य अति सुन्दर ढंग से चित्रित किये गये हैं। राजस्थानी शैली पर अजन्ता के भित्ति चित्रों का गहरा प्रभाव पड़ा है। यह अजन्ता शैली का पुनर्जीवन है। दोनों शैलियाँ एक समान प्रतीत होती हैं। अजन्ता के चित्रकारों को बुद्ध का जीवन-चरित्र विषय रूप में मिल गया था, राजस्थानी शैली को विषय रूप में अन्य देवी-देवताओं का अवलम्बन मिल गया। इस शैली की आयु का एक बड़ा भाग रामायण और महाभारत की कथाओं के चित्रण में लगा है। पशुओं के चित्र भी इस शैली के मुख्य विषय हैं। श्री कृष्ण के साथ-साथ उनकी गा मनुष्यों के आवेग के

चित्र बड़े सुन्दर हैं। व्यक्ति चित्र भी बनाये गये हैं, लेकिन केवल कुछ ही चित्रों को छोड़ कर शेष चित्र बेतुके हैं। राजस्थानी चित्र शैली में नागोर शैली में दीवारों पर पौराणिक दृश्य तथा बेल बूटों के बीच अगणित किन्नरियां अंकित हैं। विभिन्न मुद्राओं और भवनों में नारियों के चित्र देखने को मिलते हैं। आकृतियों में लम्बाई-चौड़ाई का तो मान है पर मोटाई का नहीं। मालवा शैली के चित्रों की विशेषता गहरे तथा तर रंग हैं। घटनाओं और भावों के चित्र प्राकृतिक तथा सूक्ष्म ब्योरों का क्रमिक विकास दिखलाते हुए किया गया है। इस शैली के चित्र चमत्कारिक रीति से बने हैं।

राजपूत चित्र शैली वास्तव में विश्वरूपा है जिसकी अनेक शाखायें हैं। प्रत्येक राज्य की जैसी अदा और आन-बान थी वैसी ही चित्र शैली भी, जिसमें राजपूत एक सूत्र होते हुए भी अपना निजी अस्तित्व रखते थे। इनकी शाखाओं की पहचान पगड़ी के द्वारा हो सकती है, क्योंकि प्रत्येक राज्य तथा मुख्य-मुख्य ठिकानों की अपनी अपनी पगड़ियां होती थीं।

हिमालय शैली—राजस्थानी शैली से मिलती जुलती हिमालय शैली है जिसे पहाड़ी चित्र शैली भी कहा जाता है। इस शैली का विकास हिमालय प्रदेश, जम्मू, चम्बा नुरपुर, कांगड़ा, कुल्लू, गढ़वाल आदि स्थानों में हुआ। कांगड़ में इस शैली के बहुसंख्यक चित्र प्राप्त हुए हैं अतः इसे कांगड़ा शैली भी कहा जाता है। हिमालय शैली का मुख्य विषय कृष्ण लीला और राधा है। दिनकर ने लिखा है कि "यमुना के कोमल पक्षों का निरूपण पर्वतीय शैली के अन्तर्गत नायिका-भेद के चित्रों में मिलेगा वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। आलिंगन की कोमलता, आकृतियों की मृदुलता, हल्के और आकर्षक वर्ण विधान, रेखाओं की सजीवता—ये सब यदि एक साथ ही कहीं मिलते हैं तो पहाड़ी चित्रों में।" हिमालय शैली या कांगड़ा चित्र शैली में निष्कपट मन के भाव मिलते हैं। इनकी सहज छटा कुछ ऐसी है जैसे पुराने 'राग-गीत' जिनका मिठास हृदय में घर कर लेता है। संसार की कला में यह बेजोड़ बात है। पाश्चात्य कलाकार श्री नॉरिस ने कांगड़ा चित्र शैली की प्रशंसा में लिखा है—"जो अपूर्व सुख मैंने कांगड़ा प्रदेश के चित्रों को प्रथम देख कर अनुभव किया उसे मैं कभी नहीं भूल सकता हूं। एक रेखाचित्र ने जिसमें रंग भरा हुआ नहीं था, पूरी तरह मेरे हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।" कांगड़ा चित्र शैली का ध्रुव बिन्दु सुन्दर नारी है। उसी के चारों ओर आलम्ब पूरा हुआ है। नारी का जो मध्यमान और बारहमासी जीवन है उसी के ताने-बाने से पहाड़ी चित्र शैली के चित्र बनाये गये हैं। प्रेम और शृंगार, वियोग और संयोग इस चित्र शैली को सजाते हैं। कांगड़ा चित्र कला के नमूने हृदय पर अंकित से हो जाते हैं। पुरुषों का अस्तित्व नारी के जीवन को विकसित करने के लिए है। चित्रकार पुरुष के रूप में संपादन का उत्सुक नहीं जान पड़ता और न पुरुष की किसी भव्य आकृति का संस्कार कांगड़ा चित्र अपने पीछे छोड़ता है।

ब्रिटिश शासनकाल में हिमालय शैली की चित्रकला का भी ह्रास आरम्भ हो गया और चित्रकार अपने पैतृक धंधे को छोड़कर नौकरी करने लगे। १६०५ में

[illegible] हो गया। इसके साथ ही चित्रकारों की स्वतन्त्र [illegible] भी नष्ट हो गई।

मुगल चित्र शैली—मुगलकाल में चित्रकला का खूब विकास हुआ। [illegible] चित्रकला के [illegible] अकबर के [illegible] चित्रकला के [illegible] का प्रभाव था। [illegible] चित्रों से [illegible] है। [illegible] प्रभाव [illegible] हुआ। [illegible] मुगल चित्रकला [illegible] दरबार के दरबार में लगभग १०० चित्रकार [illegible] हिन्दू थे। दरबार कालीन चित्रकार [illegible] दीवारों को विभूषित करते, [illegible] चित्रित करते थे। अकबर के [illegible] रामायण, महाभारत, नल-दमयन्ती आदि विभिन्न ग्रन्थों को चित्रों द्वारा विभूषित किया। अकबर के प्रयत्नों के फलस्वरूप फारसी और हिन्दू चित्र शैली का सुन्दर समन्वय हुआ। जहांगीर के समय में भी चित्रकला उन्नति करती गई। जहांगीर का काल चित्रकला का स्वर्णकाल था जिसमें चित्रकारों ने चित्रकला में नवीनता, स्वाभाविकता, गतिशीलता और सजीवता का उत्कृष्ट समावेश किया। जहांगीर की मृत्यु के बाद चित्रकला पतन की ओर जाने लगी। शाहजहां को चित्रकला से प्रेम तो था परन्तु उसकी रुचि वास्तुकला की ओर थी। औरंगजेब के समय सभी कलाओं की उन्नति बिल्कुल रुक गई।

मुगल शैली की चित्रकला के मुख्य विषय ये हैं—कथाएँ, ऐतिहासिक चित्र मानव चित्र। बहुत से चित्र शिकार, दरबारी जीवन, पक्षियों, पशुओं, पेड़-पौधों और धार्मिक दृश्यों के हैं। मुगल युग के चित्रकारों का सबसे प्रिय विषय राज-दरबार का ऐश्वर्य था। इसी कारण वे अमीर-उमराओं के ऐश्वर्य, रत्नजड़ित वस्त्रों और बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को अपने चित्रों में अंकित करने पर विशेष ध्यान देते थे। वे अपने चित्रों में रंगों का इतने कलात्मक रूप से प्रयोग करते थे कि उनको देखकर यह लगता था मानों उनमें रंगों के स्थान पर मणि-माणिक्यों का प्रयोग किया गया है।

चित्रकला का पुनरुत्थान और आधुनिक चित्रकला—ब्रिटिश शासन काल में जहां एक भारतीय कला का पतन हुआ वहां दूसरी तरफ एक नूतन शैली का विकास भी हुआ। सर्वप्रथम बंगाल में इस शैली का प्रादुर्भाव हुआ, क्योंकि सबसे पहिले बंगाल ही अंग्रेजों के अधिकार में आया था। सन् १८५४ ई० में कलकत्ते में "स्कूल आफ आर्टस" की स्थापना की गई। इस समय तक भारत के चित्रकार अपनी प्राचीन परम्परा को भूल चुके थे। भारतीय चित्रकारों को पुनः परम्परागत पथ की ओर अग्रसर करने और चित्रकला के स्तर को ऊंचा उठाने का श्रेय श्री ई० बी० [illegible] "स्कूल आफ आर्टस" के प्रधानाचार्य [illegible]

भारतीय कलाओं के गम्भीर मर्मज्ञ थे। उनके ग्रन्थ एक नया प्रकाश देते हैं। अवनींद्रनाथ टैगोर ने भी, जो पाश्चात्य चित्रकला के पण्डित थे, हैवेल के सम्पर्क में आकर प्राचीन एवं मध्यकालीन चित्रकला का अध्ययन किया तथा उनके प्रमुख तत्वों को अपनी कला में समवेत कर ऐसी शैली को प्रवर्तित किया जो कलाकारों के लिए आदर्श और अनुकरणीय है। उनकी चित्रकला भारत के उस पुनरुत्थान की प्रगति का प्रतीक है जिसके द्वारा भारत के पुजारी प्राचीनता और नवीनता का समन्वय करके अपने देश और समाज को संसार में सम्मानित कर रहे हैं। अवनीन्द्रनाथ ने कलकत्ता में "इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियण्टल आर्ट" नाम की संस्था कायम की। इस संस्था का उद्देश्य भारत की प्राचीन चित्रकला का पुनरुद्धार करना था। विदेशियों का ध्यान भारत की चित्रकला की ओर आकृष्ट करने में आनन्दकुमार स्वामी ने बड़ा काम किया। अमेरिका और यूरोप में उन्होंने इस विषय पर अनेक व्याख्यान दिये और अत्यन्त गम्भीर अध्ययन से युक्त ग्रन्थ लिखे। इनके अलावा, उस युग के प्रसिद्ध चित्रकारों में श्री नन्दलाल बोस, अब्दुर रहमान चगताई, देवी प्रसाद चौधरी आदि का नाम आता है। इन कलाकारों ने "वाटर कलर" (Water Colour) का प्रयोग किया और चीनी, ईरानी व जापानी कला से भी प्रेरणा ली। चौधरी ने पूर्वी व पश्चिमी कला का समन्वय किया। पुलिन बिहारी मित्र ने सिद्धार्थ और 'मीरा' को चित्रित किया। प्रमोदकुमार चटर्जी ने हिमालय की शरण ली। इनकी प्रेरणा से सारे देश में नवीन कलाकारों का उदय हुआ।

आधुनिक चित्रकला का मुख्य केन्द्र बम्बई है। "बम्बई स्कूल आफ आर्टस" और "जे जे स्कूल आफ आर्टस" इसके मुख्य क्षेत्र हैं। प्राचीन व नवीन कला के समन्वय का श्रेय इसी कलाकेन्द्र को है। प्रकृति, अजन्ता, मुगल और पश्चिमी देशों की कला की परम्परा इस कलाकेन्द्र ने बनाये रखी। बम्बई स्कूल आफ आर्टस के प्रधानाचार्य श्री ग्लान ग्रिफिथ ने इस परम्परा को बनाए रखने में बहुत योग दिया। उनकी देख-रेख में विद्यार्थियों ने अजन्ता के भित्ति-चित्रों की सुन्दर नकल की है। दिल्ली के सचिवालय भवन की दीवारों पर जो सुन्दर चित्रकारी है, वह इसी स्कूल के छात्रों की देन है।

आधुनिक भारतीय चित्रकला के प्रवर्तकों में श्री गगेन्द्रनाथ टैगोर, श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री जैमिनीराय और श्रीमती अमृत शेरगिल मुख्य हैं। स्वतन्त्र भारत के प्राचीन एवं मध्यकालीन चित्रकला की परम्परा को बनाए रखने तथा नूतन शैली को विकसित करने की दृष्टि से ललितकला अकादमी की स्थापना की गई है। राजस्थान में भी प्रान्तीय स्तर पर ललितकला अकादमी की स्थापना हो चुकी है।

भारतीय चित्रकला की विशेषताओं के सम्बन्ध में प्रो० एम. के. वर्मा के निम्नलिखित शब्द भी उल्लेखनीय हैं—

"भारत की चित्रकला चित्रकार के लिए पवित्र साधना है, उसकी रस अवस्था का अलौकिक आनन्द है। यूरोप के चित्रकारों तथा साधारण जनता के लिए

यह एकदम लौकिक है, उसकी सौंदर्य-लिप्सा का एक उपकरण तथा मनोरंजन का अङ्ग बनाई जाती है।

भारतीय चित्रकला भारत के चित्रकार के लिए प्रकाशन होने के कारण काल्पनिक है। भारतीय चित्रों में अलंकारिता की छाप है। सत्य के साथ उसमें सुन्दरता भी है। भारतीय चित्रकला में उपमाओं का प्रयोग इसका एक उदाहरण है। इसमें आँखें कमल की पखड़ी के समान, कमर सिंह की भांति बनाई जाती है।

भारतीय कला में दर्शकों को जीते-जागते चित्र मिलेंगे। इसका दृश्य-विधान काल्पनिक होता है। भारतीय चित्रकार दृश्य-रचना एक विशेष दृष्टि बिन्दु से न करके अनेक दृश्य बिन्दुओं से दृश्य को खूब घूम-फिरकर देखकर करता है।

भारतीय चित्रकला की सबसे बड़ी विशेषता उसकी रेखायें हैं। इनमें भाव हैं तथा वे सर्व शक्तिमान होती हैं। इन्हीं के द्वारा प्रत्येक मुद्रा को अच्छे ढंग से अंकित किया गया है, जिनमें एक प्रकार की सूक्ष्मता बनी रहती है।

भारतीय चित्रकला का रंग विधान सादा है। रंग लेप के समान चढ़ाये जाते हैं तथा उनमें छाया प्रकाश के नियमों का भी पालन होता है। स्थायी गोलाई भी उत्पन्न की जाती है।

भारतीय चित्रकला का धर्म से अभिन्न सम्बन्ध है''

भारतीय संगीत
(Indian Music)

भारतीय संगीत की उत्पत्ति कब और किस प्रकार हुई, यह प्रश्न आज भी रहस्य के गर्भ में है। इस सम्बन्ध में कोई तर्कयुक्त वैज्ञानिक बात नहीं कही जा सकती। इस प्रश्न पर भारतीय देवी-देवताओं और ऋषियों से सम्बन्धित अनेकानेक जनश्रुतियां ही प्रचलित हैं।

पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के अनुसार संगीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान हुई है। जिस प्रकार एक बालक रोना, चिल्लाना, हँसना आदि क्रियायें स्वयं सीख जाता है उसी प्रकार संगीत का उद्भव और विकास भी मनुष्य में मनोविज्ञान के आधार पर स्वतः ही हुआ है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "भारतीय संगीत की सृष्टि वैदिकयुग में ऋचाओं के ही संगीतमय परायण के रूप में ऋषियों द्वारा हुई।" प्राप्य सामग्री के अनुसार भारतीय संगीत के इतिहास को ४ कालों में विभक्त किया जा सकता है —

(१) वैदिक काल (अति प्राचीन काल)—२०० ई० पू० से १००० ई० पू० तक।

(२) प्राचीन काल (वैदिक काल के पश्चात्)—१००० ई० पू० से ८००ई० तक।

(३) मध्य काल—८०० ई० से १८०० ई० तक।

(४) आधुनिक काल – १८०० ई० से १९५० तक।

(५) अति-आधुनिक काल—१६४७ ई० से वर्तमान समय तक।

वैदिक काल—सामवेद को भारतीय संगीत की प्रथम संहिता और सामगान को भारतीय संगीत का प्रथम चरण माना गया। वेदों में विभिन्न संगीत-वाद्यों का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में ही वीणा, वंशी, मृदंग, डमरू आदि का उल्लेख है। सामवेद गायन में सर्वप्रथम केवल उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन स्वरों का ही प्रयोग होता था। किन्तु कालान्तर में, वैदिक काल में ही एक-एक स्वर की वृद्धि होती गयी और "सप्त स्वराति गीयते" के अनुसार संगीत में सात स्वरों का प्रयोग आरम्भ हो गया था। इस काल में गायन के साथ-साथ नृत्यकला का भी सम्यक् प्रचार था।

प्राचीन काल—इस काल के मुख्यतः दो भाग किये जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं —

(अ) बौद्ध काल—१००० ई० पू० से सन् १ ई० तक।

(आ) भरत काल – १ ई० से ८०० ई० तक।

बौद्ध काल में संगीत का प्रचार तो अवश्य था, किन्तु इस समय की संगीत सम्बन्धी कोई प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध न होने के कारण कुछ इतिहासकारों ने इसका नाम 'संदिग्ध काल' रखा है। बौद्ध युग में गणिकाओं का होना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि उस समय संगीत का प्रचार था।

आधुनिक काल के दो ग्रन्थों महाभारत और रामायण का रचनाकाल क्रमशः ५०० ई० पू० से २०० ई० एवं ४८० ई० पू० से २०० ई० तक माना जाता है। महाभारत में सात स्वरों के साथ गांधार ग्राम का उल्लेख मिलता है। रामायण का प्रमुख पात्र रावण स्वयं एक सिद्ध संगीतज्ञ था। रामायण में मक्खियों के गुनगुनाने की उपमा तार-वाद्यों से एवं बादलों की गरज की उपमा मृदंग से दी गयी है। रामायण के अनुसार सुग्रीव के महल में प्रवेश करते समय लक्ष्मणजी ने वीणा की सुमधुर ध्वनि का रसास्वादन किया था। भेरी, मृदंग, दुन्दुभी, वीणा, घट, डिमडिम मुड्डक, आडम्बर आदि वाद्यों का उल्लेख भी रामायण में है। स्पष्ट

मियाँ की तोडी और मियाँ की सारंग आदि रागों की रचना की। उसी काल में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत के नये घराने का समारम्भ किया। राजा मानसिंह को ध्रुवपद और धमार का आविष्कारक माना जाता है। इसी समय में हिन्दी साहित्य के कुछ अमर कवि संगीतज्ञ भी हुए। सूरदास, तुलसीदास, मीरा एवं कालीदास इसी युग की विभूतियाँ हैं। इन कवियों ने अपनी भावपूर्ण कविताएं गा-गाकर जन-मन में संगीत का व्यापक प्रसार किया। अकबर के पश्चात् सन् १६०५ ई० से १६२७ तक जहाँगीर के शासनकाल में उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में संगीत सम्बन्धी कार्य अधिक हुआ। छतर खाँ, विलास खाँ, खुर्रमदाद खाँ, मक्खू और हमजन आदि जहाँगीर के प्रसिद्ध दरबारी गायक थे। सन् १६१० ई० में पं. सोमनाथ ने राग विबोध की रचना की। १६२५ ई० में दामोदर पंडित ने ग्रन्थ 'संगीत-दर्पण' की रचना की, जिसमें सुन्दर चित्र चित्रित किये गये हैं। १६५० ई० के निकट पं० अहोबल ने 'संगीत-पारिजात' नामक एक श्रेष्ठ संगीत ग्रंथ की रचना की। १६५८ ई० से १७०७ तक शाहजहाँ के काल में संगीत को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। अन्तिम मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के समय में कला की चतुर्मुखी उन्नति हुई। इसी समय ख्याल, टप्पा, तिरवट, गजल आदि गायन शैलियों का चलन आरम्भ हुआ।

आधुनिक काल—इस काल में भारत में अंग्रेजों का आगमन एवं उनका शासन आरम्भ हो गया था। ये भारतीय कलाओं को कोई प्रोत्साहन नहीं देते थे। भारतीय कलाओं की उन्नति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप संगीत कला अशिक्षितों और निम्न श्रेणी के कलाकारों के हाथों में चली गई। इससे उच्च श्रेणी के सभ्य समाज में इसे हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। फिर भी इस युग में कुछ अन्वेषणावादी स्वभाव के कला-प्रेमी अवतरित हुए जिन्होंने संगीत की अविरल रसधार को प्रवाहमय बनाया।

आधुनिक काल के अन्तर्गत ही सन् १९०० से १९४७ तक के युग को संगीत शास्त्रियों ने प्रचार-काल की संज्ञा दी है। प्रचार काल में संगीत शास्त्रियों ने एक व्यवस्थित सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाया। इस काल में श्री विष्णु नारायण भातखण्डे ने संगीत के उद्धार के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये। श्री विष्णु दिगम्बर ने (Practical Side) और भातखण्डे ने शास्त्र पक्ष (Theory Side) पर सराहनीय कार्य किये। इन्होंने शिक्षा संस्थाओं में संगीत का सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम निर्धारित किया। पूना, बम्बई, बंगलौर, ग्वालियर, बडौदा, तंजौर, मैसूर, त्रिवेन्द्रम, कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली आदि स्थानों पर संगीत विद्यालयों की स्थापना हुई। रेडियो और चित्रपटों द्वारा जन-जन में संगीत का व्यापक प्रचार हुआ। परिणाम-स्वरूप सभ्यसमाज भी संगीतकला की ओर आकृष्ट हुआ। कवीन्द्र-रवीन्द्र ने अनगिनत बंगला गीतों को विभिन्न राग-रागनियों में नवीन स्वर-समुदायों की सहायता से संगीतबद्ध किया। उन्होंने भाव-संगीत का विकास किया तथा शब्दों और स्वरों में सामंजस्य स्थापित कर संगीत के साहित्यिक पक्ष को समृद्ध किया।

अति आधुनिक काल (वर्तमान काल)—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की सांस्कृतिक चेतना जागी। संगीत के क्षेत्र में इस युग में क्रान्तिकारी प्रगति हुई। संगीत के विभिन्न रूपों का विकास इस युग की महत्वपूर्ण देन है। आज शास्त्रीय (classical), सरल शास्त्रीय (Light classical) और सुगम (Light) संगीत की इन तीनों प्रमुख शैलियों की प्रगति हो रही है।

सुगम संगीत और लोक-संगीत को इस युग में विशेष प्रोत्साहन मिला है। आकाशवाणी के प्राय: प्रत्येक केन्द्र में सुगम-संगीत यूनिटें स्थापित की गई हैं जो इसमें नये-नये प्रयोग कर रही हैं। इस प्रकार लोक-संगीत पर भी आकाशवाणी के सभी केन्द्र सराहनीय कार्य कर रहे हैं। प्रत्येक वर्ष केन्द्रीय और राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में लोक-गीतोत्सव का वार्षिक आयोजन कर लोक गीतकारों को प्रोत्साहन देती हैं। लोक संगीत सम्बन्धी साहित्य भी इधर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से काफी प्रकाश में आया है। इस युग में भारतीय वाद्यों पर भी काफी काम हुआ है।

संगीतज्ञों को प्रोत्साहित करने के लिये अकादमियें स्थापित हुई हैं, जो प्रतिवर्ष सिद्ध संगीतज्ञों को पुरस्कार प्रदान करती हैं तथा नवोदित कलाकारों मे संगीत-ज्ञान-वर्धन हेतु छात्रवृत्तियां प्रदान करती हैं। सरकारी और गैर सरकारी तौर पर संगीत प्रतियोगितायें और संगीत-सम्मेलनों का आयोजन भी प्रतिवर्ष अनेक स्थानों पर होता रहता है।

इस प्रकार स्वतन्त्र भारत मे अल्प समय मे ही संगीत के विकास की ओर निःसन्देह सराहनीय कार्य हुआ। फिर भी संगीत की कुछ अपनी समस्यायें हैं जिन पर संगीत के शास्त्रियों और कलाकारों को अपना ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। सम्भव है उनके निराकरण के पश्चात संगीत कला का विशुद्ध एवं पूर्ण विकसित स्वरूप सामने आ सके।

आज संगीत मे एकरूपता की कमी आगई है। गायन-शैलियों मे काफी विविधता है। प्रत्येक गायक स्वतन्त्र रूप से गाकर श्रोताओं पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास करता है। कोई पाण्डित्य-प्रदर्शन हेतु अक्षिप्तिका (बढ़िश) आरम्भ करने के पूर्व काफी समय तक अलाप प्रस्तुत करता है, तो कोई मुखड़ा कहते ही तानों पर उतर आता है। रागों के समय और उनके वादी सम्वादी स्वरों में भी मतभेद है। शास्त्रीय संगीत मे परिमार्जन एवं प्रगति हेतु यह आवश्यक है कि देश के संगीत शास्त्री एवं विज्ञ, नवोदित कलाकारों का इस दिशा मे एक निश्चित मार्ग प्रदर्शन करें।

वर्तमान युग मे संगीत क्षेत्र में नये-नये रागों का उद्भव हो रहा है जो निश्चय ही प्रगति की ओर एक पग है। परम्परा, प्रगति और प्रयोग कलाओं के विकासक्रम मे तीन महत्वपूर्ण अंग हैं। कला का प्रथम चरण भी प्रयोग ही होता है। कालान्तर में नियमबद्ध होने पर वह ही परम्परा का निर्माण करता है। परन्तु कभी-कभी घातक भी होते हैं। आज संगीत-क्षेत्र मे प्रत्येक लब्धप्रतिष्ठ गायक लगभग अधिकतर कोई नवीन राग ही प्रस्तुत करते हैं जो सर्वथा अप्रचलित

स्वतन्त्रतापूर्वक इन रागों का प्रदर्शन करते हैं और श्रोता राग मे ऐसा ही होता होगा। इस प्रवृत्ति से आशंका यह है कि नये यमहीन रागों की वृद्धि होगी। जनता का पुराने रागों से संबंध टूट में उच्छृंखलता आ जायगी। इस प्रश्न की ओर सरकार द्वारा आदमियों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिये। अकादमी को देश के गीत-शास्त्रियों की एक समिति का निर्माण करना चाहिये जो ऐसे औचित्य के संबंध मे अपना निर्णय दे और समिति द्वारा सार्वजनिक रूप से गाये-बजाये जायें।

कुछ गायक प्रायः परम्परामूलक शास्त्रीय संगीत-गायन की अपेक्षा र-प्रदर्शन के बल पर श्रोताओं को भरमाने की चेष्टा करते हैं। प्रदर्शन के समय शास्त्रीय ढंग से न बजाकर श्रोताओं पर प्रभाव ने पर फूल बरसाने, छोटी लाइन चलाने, मोटर साइकिल चलाने प्रदर्शन करते हैं। यह प्रवृति संगीत-कला के प्रचार मे अत्यन्त पर आवश्यक संयम होना चाहिये।

भारतीय साहित्य
(Indian Literature)

चिन्तनशील प्रवृति का परिणाम ही साहित्य के रूप में विकसित ... भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही होता है। अतः साहित्य मे आध्यात्मिक दोनों विषय मानव-जीवन मे जुड़े हैं, कहीं भी वह मानव ... हीं है। उसका निर्माण मनुष्य अपने जीवन के लिये करता है। ... माजिक विषय है।

किसी राष्ट्र के बौद्धिक जीवन का व्यापक सार है। साहित्य समाज ... माज की विविध प्रकार की गतिविधियों का ही साहित्य मे प्रदर्शन ... देश, जाति, राष्ट्र, समाज तथा विश्व की उन्नति मे साहित्य महत्व-पूर्ण ... करता है। साहित्य समाज के विभिन्न अंगों की प्रवृत्तियों की ... है तथा उन्हें सुरक्षित रखता है। मनुष्य की मनुष्यता का एक ... साहित्य है तथा समाज की जीवनदायिनी शक्ति देने का कार्य इसी ... ही साहित्य मे वह शक्ति है जो समाज को प्रतिक्षण प्रभावित करती ... की प्रेरणा से समाज अपना रूप बदलता है और नवीनता प्राप्त ... से हमें स्फूर्ति मिलती है, कर्त्तव्य का ज्ञान होता है, समस्त भू-... विभिन्न विचार-धाराओं को समझने तथा हमारे और मानव जीवन में उन उपयोगी विचारों के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा ... से समाज के नेताओं के मन पर प्रभाव पड़ता है तथा वे क्रमशः में मोड़ लाते हैं। साधारण लोग जाने-अनजाने में बदलने लगते ... को प्रेरणा पवित्र साहित्य से मिलती है। साहित्य अनेक निर्माण में सहायक होता है और समाज

के माध्यम से जीवन के गुणावगुणों का विशद वर्णन किया गया है। मनुस्मृति तो एक महान् साहित्यिक रचना है जिसमें जीवन निर्वाह के सम्पूर्ण नियमों की विशद विवेचना है। यही स्मृति हिन्दू कानून का आधार है।

वैदिक साहित्य की रचना के बाद संस्कृत साहित्य में ही रामायण और महाभारत की रचना की गई। ये दोनों महाकाव्य धर्म के आदर्शों का व्यावहारिक रूप हमारे सामने उपस्थित करते हैं। रामायण न केवल धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों का भण्डार है बल्कि एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्र भी है। इसमें आर्य-आदर्शों के विस्तार का मार्मिक एवं कवित्वपूर्ण इतिहास है। महाभारत हिन्दू संस्कृति का सच्चा इतिहास है जिसमें नीति शास्त्र का वर्णन है और जो सर्वव्यापी परमब्रह्म तत्व है उसका भी प्रतिपादन किया गया है। दोनों ही महाकाव्यों ने आर्य जाति का इतिहास तो विश्व के सामने रखा ही है, इन्होंने भारतीय संस्कृति, वीरता और यशस्वी जीवन का ऐसा सच्चा और मार्मिक चित्र अंकित किया है जिसके अध्ययन से मानव स्वभाव के गुणों और अवगुणों का सहज ही अध्ययन हो जाता है। भारतीय साहित्य के अनमोल ग्रन्थ 'गीता' में कर्म और भक्तिज्ञान का अद्भुत समन्वय है। यह सब दर्शन ग्रन्थों का निचोड़ है। निष्काम कर्म का उद्देश्य गीता के सिवाय दुनियाँ के अन्य किसी ग्रन्थों में नहीं। इस छोटे से किन्तु महान ग्रन्थ की उच्चता और श्रेष्ठता पर विदेशी भी आसक्त हैं। वस्तुतः गीता अखिल विश्व की वस्तु है और रहेगी। जो भी तत्वज्ञान के जिज्ञासु हैं और गीता रूपी समुद्र में गोता लगाते हैं वे कुछ-न-कुछ ज्ञान-रत्न प्राप्त कर ही लेते हैं। 'षट् दर्शन' ज्ञान के असीम भण्डार हैं जिनमें पशुता से ऊपर उठकर नैतिक व आध्यात्मिक शिखर पर चढ़ने का मार्गदर्शन किया गया है और भौतिक तथा पारलौकिक सभी समस्याओं का गहन चिन्तन किया गया है। ये षट् दर्शनशास्त्र-गौतम मुनि का 'न्याय' कणाद का 'वैशेषिक,' कपिल मुनि का 'सांख्य' पातंजली का 'योग' जैमिनि का 'पूर्व मीमांसा', और व्यास मुनि का 'उत्तर मीमांसा' हैं। वास्तव में संस्कृत साहित्य व्यापकता की दृष्टि से सर्वांगीण एवं परिपूर्ण है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—जिनमें मानव जीवन की परिधि परिपूर्ण होती है—संस्कृत साहित्य में व्याख्यात्मक रूप से वर्णित हैं। दार्शनिक, आध्यात्मिक सांस्कृतिक, नैतिक आदि प्रत्येक दृष्टि से संस्कृत साहित्य ज्ञान का भण्डार है। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' और वात्स्यायन मुनि का 'कामसूत्र' संसार प्रसिद्ध है। विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, स्थापत्य, पशु-पक्षी—जीवन आदि से सम्बन्धित साहित्य की इसमें भरमार है। चरक और सुश्रुत के ग्रन्थों में चिकित्सा शास्त्र के आधार-भूत सिद्धान्तों की विवेचना मिलती है। कालीदास के प्रसिद्ध ग्रन्थों रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव, अभिज्ञान-शाकुन्तलम् आदि में हमें जीवन के सभी पक्षों का मार्मिक वर्णन मिलता है। प्रेम, वियोग और कर्तव्य की मार्मिक झांकी मिलती है। प्रकृति के अनुभव सौन्दर्य वर्णन का चमत्कार मिलता है। कालीदास के 'शाकुंतलम्'-में तो महाकवि ने मे पृथ्वी और स्वर्ग को मिला हुआ देखा था। 'अमरकोष' तो विश्व में बेजोड़ है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' जैसे गद्य काव्य भी आज तक संसार के किसी साहित्य में नहीं लिखा गया है।

प्राचीन जैन और बौद्ध साहित्य भी ज्ञान का सागर है। तर्क तथा अनुभव की कसौटी पर खरे उतरने वाले सत्य को ग्रहण करने का उपदेश हमको बौद्ध ग्रन्थों से मिलता है तो अहिंसा त्याग व आत्म-संयम का पूरा महत्व जैन ग्रन्थों में है। जैन शास्त्रों में भद्रबाहु का 'कल्प सूत्र' बड़ा प्रसिद्ध है। बौद्ध धर्म के प्रमुख त्रिपिटक अवदान ग्रन्थ, जातक कथायें, महावस्तु आदि हैं।

साहित्य निस्सन्देह सांस्कृतिक और सामाजिक अभिव्यक्ति का सुन्दर [illegible] है तथा प्राचीन भारतीय साहित्य जीवन के प्रति उत्साह और आत्म-विश्वास की भावनाओं से भरपूर है।

समय के थपेड़े खाकर और विपरीत परिस्थितियों के फलस्वरूप ज्यों ज्यों भारत का प्राचीन गौरव विलुप्त होता गया त्यों त्यों भारत के ज्ञान-धन की [illegible] भी सूखती गई। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ होने तक भारत साहित्य की दृष्टि से अपने अतीत पर ही गौरव कर सकता है, अन्यथा उसकी साहित्यिक रचना-शक्ति समाप्त सी हो चली थी। ब्रिटिश शासनकाल में भी काफी समय तक साहित्यिक प्रवृति स्पंदनहीन रही, परन्तु पुनर्जागृति काल में प्राचीन गौरवपूर्ण साहित्य के अध्ययन की ओर पतनावस्था के दिग्दर्शन की तीव्र प्रवृति जागृत हुई जो [illegible] साहित्य के रूप में प्रकट होने लगी। साहित्यिक पुनर्जागृति की प्रवृति को [illegible] समाज सुधार आन्दोलन से, स्वातंत्र्य आंदोलन से, अंग्रेजी भाषा के प्रचार और पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। स्वतन्त्र भारत ने राष्ट्रीय जीवन की विभिन्न भाषाओं के समुचित विकास के महत्व को समझा और इसीलिए संविधान के अन्तर्गत भाषा साहित्य सम्बन्धी विशेष प्रावधान रखे।

भारतीय भाषा–साहित्य का आधुनिक विकास

भारतीय साहित्य की समुचित प्रगति और विकास को ध्यान में रखते भारतीय संविधान में चौदह भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई—

(१) संस्कृत (२) हिन्दी (३) तमिल (४) तेलुगू (५) कन्नड़ (६) मलयालम (७) गुजराती (८) मराठी (९) उत्कल (१०) बंगाली (११) असमिया (१२) पंजाबी (१३) काश्मीरी और (१४) उर्दू।

(१) संस्कृत—संस्कृत साहित्य की विशालता और महानता पर [illegible] प्रकाश डाला जा चुका है। भारत सरकार ने भारत की समस्त [illegible] के लिए संस्कृत साहित्य के अमर, अनन्य निधि की रक्षा [illegible] समझा है। भारत के विभिन्न भागों में संस्कृत विश्वविद्यालयों के [illegible] भाषा का अध्ययन कराया जा रहा है। इसके अतिरिक्त [illegible] में संस्कृत का पठन ज्ञान देकर छात्रों में इस भाषा के प्रति रुचि [illegible] है तथा कालेजों में आकर वे ऐच्छिक विषय के रूप में इसे [illegible]

(२) हिन्दी—भारतवर्ष में बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से [illegible] हिन्दी बोलने वाले अधिक हैं। सम्पूर्ण भारत में यह [illegible] माना जाता है कि यहां हिन्दी बोलने वालों की संख्या [illegible] है।

न्तु विद्वानों ने गणना और अपने स्वयं के अनुभवों से यह सिद्ध कर दिया है कि क्षिण भारत में भी अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी अधिक प्रचलित है। भारत की अन्य ाषाओं की अपेक्षा हिन्दी का सीमा-विस्तार अधिक व्यापक है। इसके अतिरिक्त ारत में ऐसा कोई प्रदेश नहीं है जहां हिन्दी के माध्यम से व्यापार न होता हो।

जब तक भारत परतन्त्र रहा था, काम शासक-वर्ग की भाषा में होता हा। इसलिये हिन्दी प्रथम विकास नहीं कर पायी और जब भारत स्वतन्त्र हुआ ो भारत सरकार ने संविधान के अनुकूल आचरण नहीं किया। यही कारण है क हिन्दी वैज्ञानिक स्थिति को नहीं सम्हाल सकी और जिस नीति पर आज भी मारी सरकार चल रही है उससे भी हमें यह आशा नहीं है कि हिन्दी कभी भी नकट भविष्य में इस योग्य हो भी सकेगी।

हिन्दी की उपेक्षा का कारण राजनीतिक है, अन्यथा साहित्यिक दृष्टि से हन्दी अत्यन्त समृद्ध और समर्थ भाषा है। भारतीय संस्कृति का ऐसा कोई मा भी स नहीं, उसका कोई भी पहलू नहीं जिसे हिन्दी ने अपना आवरण न दिया हो ौर जब हिन्दी ने संस्कृति को आच्छादित कर लिया है तो यह कैसे कहा जा सकता : कि हिन्दी में साहित्य की कमी है या उत्कृष्ट कृतियों का अभाव है। भारत की हन्दी ही एक-मात्र ऐसी भाषा है जिसके साहित्य को विदेशों में सर्वाधिक अनुवाद : द्वारा या मूल रूप में ग्रहण किया जा रहा है। प्रसाद, प्रेमचन्द के अतिरिक्त और ी अनेक कृतिकारों तथा उनकी कृतियों को आज विदेशी लोग अध्ययन की वस्तु समझते हैं, क्योंकि हिन्दी-साहित्य में भारत का सम्पूर्ण यथार्थ, संस्कृति, इतिहास, र्म, राजनीति, आदर्श यानी सम्पूर्ण भारत की आत्मा और उसके शरीर की भिव्यक्ति हुई है।

हिन्दी एक सरलतम और वैज्ञानिक भाषा है। इस दृष्टि से हिन्दी के निम्न-लिखित प्रमुख अंगों पर विचार करना उचित समझते हैं:—

वनि—

(क) हिन्दी-ध्वनियों की सबसे बड़ी विशेषता जो उसे वैज्ञानिकता प्रदान रती है, वह है लेखानुकूल उच्चारण। इसका अर्थ यह है कि हिन्दी में जो कुछ लखा जाता है वही बोला जाता है।

(ख) ध्वनियों की सुनिश्चितता हिन्दी की दूसरी विशेषता है। इसमें एक वनि का सर्वत्र एक ही उच्चारण होता है तथा उसको व्यक्त करने के लिए भी क ही संकेत-चिन्ह प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी इस दृष्टि से महाभ्रष्ट भाषा है।

(ग) ध्वनि की दृष्टि से हिन्दी की तीसरी विशेषता यह है कि इसमें 'मौन वनि' (Silent) का प्रयोग नहीं होता अर्थात् शब्द में ऐसी कोई ध्वनि नहीं होती जसका संकेत-चिन्ह भी प्रयुक्त हुआ है लेकिन वह बोला नहीं जाता है। इससे तीन लाभ होते हैं—१. व्यर्थ में स्थान खराब नहीं होता। २. लिखने में समय नष्ट नहीं होता। ३. मस्तिष्क पर कोई बोझ-सा पड़ा नहीं रहता।

(घ) हिन्दी की ध्वनियाँ स्पष्ट और सरलतम हैं। प्रत्येक वर्ण के बोलने का

ी यही रही है। अतः किसी भी भारतवासी को इस लिपि को सीखने में अधिक
ठिनाई महसूस नहीं हो सकती।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो भारत की
ाष्ट्र भाषा का पद पूर्ण रूप से सम्हाल सकने में समर्थ है। भारत के किसी भी
ागरिक को इसे समझने में कोई भी कठिनाई नहीं होगी और फिलहाल यदि होगी
ो वो धीरे-धीरे वह जल्दी ही एक दिन उसके लिए सरल हो जायेगी क्योंकि प्रकृति
ौर रूप दोनों की दृष्टि से हिन्दी सरलतम और वैज्ञानिक भाषा है।

हिन्दी, साहित्य के सभी अंगों की दृष्टि से पूर्ण समृद्ध है। गद्य, काव्य,
हानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी अंगों का इसमें आश्चर्यजनक विकास हुआ है।
द्य का विकास पद्य के बाद में हुआ। आधुनिक युग का गद्य युग कहा जाता है।
सका प्रारम्भ १६वीं शताब्दी से माना जाता है क्योंकि इससे पूर्व गद्य को कोई
ंचित रूप प्राप्त नहीं हो सका। गद्य साहित्यिक रूप में भारतेन्दु युग में आने
गा। द्विवेदी युग में भारतेन्दु काल की भाषा विषयक स्वच्छन्दता और अस्त-
व्यस्तता मिटाकर हिन्दी भाषा का रूप स्थिर किया गया। गद्य का क्षेत्र और भी
्यापक हुआ। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, समालोचना आदि के अतिरिक्त
त्रा, सामयिक, सामाजिक और राजनीतिक विषय, संस्मरण, आत्म कथा,
ीवन-चरित्र, वैज्ञानिक विषय आदि सभी पर लेखकों ने लिखना प्रारम्भ
िया। आलोचना की विश्लेषणात्मक, गवेषणात्मक तथा निर्णयात्मक शैलियों
ी स्थापना द्विवेदी युग में ही की गई। शीघ्र ही छायावादी गद्य का समा-
रम्भ हुआ। वर्तमान युग में हिन्दी भाषा अपने पूर्ण समुन्नत रूप में विद्यमान है।
र्तमान गद्य में भावों तथा संवेदनात्मक विचारों का ह्रास होता जा रहा है, जबकि
्रयोगवादी और साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। गद्य में
लात्मकता को बढ़ाने का प्रयोग किया जा रहा है। आज हिन्दी गद्य के जो विविध
प उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं—निबन्ध, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रेडियो
ूपक, फीचर, यात्रावृत्तान्त, संस्मरण, रेखाचित्र रिपोर्ताज,जीवनी, डायरी, आत्मकथा
ौर गद्य-गीत आदि। वस्तुतः आज गद्य साहित्य जितना विस्तृत हुआ है उतना
द्य साहित्य नहीं।

हिन्दी काव्य का जन्म गद्य से पहले हुआ। प्रारम्भिक मात्र दो-कविताएं
ुछ थोड़ी प्राप्त हैं और वे भी खण्डित रूप में। अतः प्रारम्भिक कविता का सही
ूप स्थिर करने में कठिनाई है। कविता-विकास की दृष्टि से हिन्दी काव्य साहित्य
ार कालों में विभाजित है—वीर गाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक
ाल। वीर गाथा काल में चारणों द्वारा शौर्यपूर्ण कविताएँ लिखी गई थीं जिनमें
ेतिहासिकता का निर्वाह कम और कल्पना का प्रयोग अधिक हुआ। राजाओं की
्रशंसा में कुल-गौरव और वीररसपूर्ण रचनाएँ की गईं। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव
रासो, हम्मीरदेव रासो आदि अनेक प्रबन्ध काव्य रचे गये। भक्तिकाल में सूर,
ुलसी, मीरा आदि महान् कवि हुए। इस काल में भक्तों की दो श्रेणियां हो गईं—

निर्गुणधारा और सगुणधारा। निर्गुणधारा में भी प्रेमाश्रयी और ज्ञानाश्रयी
शाखायें थीं। प्रेमाश्रयी शाखा में जायसी का 'पद्मावत' प्रसिद्ध है और ज्ञानाश्रयी
कबीर का 'बीज'। सगुण धारा में भी दो शाखाएँ हैं—राम भक्ति शाखा और
कृष्ण भक्ति शाखा। राम भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास के विश्व
'रामचरितमानस' विश्वविख्यात है तो कृष्ण भक्ति शाखा में प्रधान सूरदास
जिनका 'सूरसागर' अपना सानी नहीं रखता। भक्तिकाल में हिन्दू और मुसल
दोनों धर्मों के सन्तों ने अपनी रहस्यमयी अटपटी कविताओं में ज्ञानोपदेश दि
हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय क्षेत्र को आगे बढ़ाया। इस युग में सुन्दर
प्रबन्ध तथा माधुर्यपूर्ण गेय मुक्तकों की रचनाएँ हुईं। सर्वांगीण कविता का वि
हुआ। अवधी और बृजभाषा दोनों का सुसंस्कृत रूप सामने आया। भाव,
शैली आदि हर क्षेत्र में हिन्दी कविता का विकास हुआ। भक्तिकालीन कवि
साहित्यिक दृष्टि से अपूर्व बनी। रीतिकाल में शृंगारिक और काव्य-शास्त्रीय
ग्रंथों की रचनाएँ हुईं। कवियों ने मुक्तक छंदों में भावावेश और भक्ति
मिश्रण किया। नायिकाभेद, अलंकार-निरूपण, सौंदर्य-चित्रण, शृंगार के
वियोग सम्बन्धी समस्त भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई। 'भूषण' जैसे एक-दो कवि
ने वीर दुन्दुभी भी बजाई। मुगलकालीन विलासिता का प्रभाव कविताओं पर प
काव्य में कलात्मकता का सूक्ष्मता से प्रयोग किया गया।

मुगल शासन के पतन, अंग्रेजी शासन के विकास और राष्ट्रीयता के उद
देश में नये वातावरण का निर्माण किया। कविता ने बृज भाषा के स्थान पर
बोली को अपनाया। व्याकरण के अनुसार विभक्तियों और समुचित विराम
प्रयोग बढ़ा। संस्कृत गर्भित पदावली तथा संस्कृत छंदों को खड़ी बोली के स्व
मिला। उपदेश, उपयोगिता, आदर्श, व्यावहारिकता आदि का कविता में मह
स्थान दिया गया तथा प्रबन्ध काव्यों का निर्माण हुआ। खड़ी बोली, हिन्दी
कविता का काव्य में प्रयुक्त हुआ। इस युग की कविता में [illegible]
दी तथा राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त किया। इस युग में स्थूल वर्णन की प्र
प्रमुख थी। भिन्न तुकान्त वर्णिक वृत्तों का प्रयोग बढ़ा। राष्ट्रीयता का [illegible]
अन्तर्राष्ट्रीय तथा विराट् ने बढ़ाया। हिन्दी कविता में छायावादी युग का
आत्माभिव्यंजन, कल्पना की स्वच्छन्दता, अनुभूति की प्रमुखता, 'स्व' को प्र
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इस सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य अत्यन्त समृद्ध, विकासमान और प्राणवान है।

(३, ४, ५, ६) द्रविड़ परिवार (तामिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और तुलु)—दक्षिण की द्रविड़ परिवार के अन्तर्गत आने वाली ये ५ भाषाएँ भी भारतीय साहित्य की समृद्धि में अनुपम योगदान दे रही हैं। तामिल साहित्य की कविता में राष्ट्रीय जागृति, देश प्रेम और भारत की अखण्ड एकता के गीत गाये गये है। तामिल साहित्य भारत के अतीत की प्रशंसा के साथ ही आर्थिक असमानता, ऊँच-नीच, जाति-पाँति और वर्गभेद की निन्दा से भरपूर है। तिरुवल्लुवर प्रसिद्ध कवि है। श्रीनिवास आयंगर, श्रीनिवास शास्त्री आदि प्रसिद्ध लेखक हैं। उपन्यासकार और कहानीकारों में कल्कि, के. एम. केरल, भारती, वैंकट रामजी और राजगोपालाचार्य उल्लेखनीय हैं। सुब्रह्मण्य भारतीय प्रसिद्ध कवि हैं।

तेलुगु भाषा दक्षिण में अधिक प्रचलित है। शालिगम तेलुगु साहित्य के आधुनिक युग का प्रवर्तक है। लक्ष्मी नृसिंहम, वेंकटराय शास्त्री, तिरुपति शास्त्री, अप्पाराव आदि अन्य साहित्यकारों ने तेलुगु साहित्य का बहुत विकास किया है। विश्वनाथ, सत्यनारायण तथा सुब्बाराव तेलुगु भाषा के प्रमुख कवि हैं। नये कवियों में शिवशंकर शास्त्री, शेष शास्त्री, रामराव, श्रीरंगम तथा रविमनाथ प्रसिद्ध हैं। वेंकेटाचलम्, उन्नाव, रंगनिवास आदि प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा कहानीकार है।

कन्नड़ गद्य साहित्य ने उपन्यास, कहानी, गल्प, नाटक आदि की दिशा में काफी प्रगति की है। अनेक मौलिक उपन्यासों और रोचक आदर्शोन्मुखी कहानियों की इस भाषा में रचना हुई है। कन्नड़ साहित्य में गीत काव्य मनोरम है। कवितायें स्वार्थ, त्याग और सन्मार्ग का सन्देश देने वाली हैं और उन पर शृंगारिकता का प्रभाव है।

मलयालम में उपन्यास, कहानी, एकांकी, जीवन-चरित्र, समालोचना, और निबन्ध का समुचित विकास हुआ है। काव्य क्षेत्र में छायावाद, रहस्यवाद, दुःखवाद आदि भावनात्मक शैलियों में नवीन भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की जा रही है। इस साहित्य का आधुनिककरण करने का श्रेय वेनमणि नम्बुडिपाद, चदूमेनन आदि को प्राप्त है। चन्दूमेनन के उपन्यास, 'इन्दु लेखा' 'शारदा' तथा मार्तण्ड पिल्लई का उपन्यास मार्तण्ड वर्मा' इस युग की प्रमुख कृतियां है। मलयालम के आधुनिक महाकवि बल्लाकोल ने 'चित्रयोगम्' नामक महाकाव्य की रचना की है। इस भाषा के अन्य उल्लेखनीय कवि वल्लालोल, कुमारन आसन, परमेश्वर अय्यर आदि हैं।

(७) गुजराती—गुजराती साहित्य में धार्मिक, सामाजिक, प्रकृति सम्बन्धी और राष्ट्रीय कवितायें उल्लेखनीय हैं। गोवर्धनराम, नानालाल, कान्त, बलवंतराय आदि प्रसिद्ध गुजराती कवि हैं। उपन्यासकारों में के. एम. मुन्शी, रमणलाल देसाई, गुणवन्तराय आचार्य, पन्नालाल पटेल आदि प्रमुख हैं। गुजराती साहित्य ने आत्मकथा चरित्र-चित्रण, निबन्ध और बाल साहित्य के क्षेत्र में विशेष प्रगति की है। हास्यरस

नी यात्री ह्वेनसांग ने भी लिखा है 'कामरूप की जन-भाषा मध्य भारत की भाषा प्रायः मिलती जुलती है।" १३ वीं शताब्दी से असमीया भाषा ने साहित्यिक रूप प्राप्त किया। 'माधव कंदलि,' और 'शंकरदेव' जैसे साहित्यकारों ने इसके विकास पर्याप्त योग दिया। ब्रिटिश शासन काल के साथ-साथ इस भाषा ने आधुनिक काल में पदार्पण किया। स्वर्गीय लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ को आधुनिक असमीया साहित्य का जनक माना जाता है। असमीया साहित्य एक प्राणवान साहित्य है जिसमें दर्शन, जातीय प्रेम, प्रकृति, वैराग्य और हास्य में अनुप्राणित काव्यों के साथ-साथ उच्चकोटि की छायावादी कविताओं की भी रचना हुई है। यह साहित्य गद्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, और निबन्ध के क्षेत्र में अभी तक पिछड़ा हुआ है, यद्यपि इनकी रचना का क्रम निरन्तर चल रहा है।

(१२) पंजाबी —पंजाबी भाषाओं में देव नागरी तथा गुरुमुखी के रूप देखने को मिलते हैं। गुरुमुखी लिपि में 'गुरु ग्रंथ साहब' पंजाबी का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पंजाबी के अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, सिन्धी, ब्रजभाषा आदि की कवितायें हैं। फरीद शकर गंज, गुरु नानक, गुरु अर्जुन, हीर रांझा, साहिबांमिर्ज़ाबाल आदि ने पंजाबी भाषा का काफी विकास किया। नव पंजाबी लेखकों में अमृता प्रीतम अति प्रसिद्ध है। इसने प्रतीकात्मक शैली का अधिक प्रयोग किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रगतिशील पंजाबी साहित्य में साम्प्रदायिक संघर्षों, भुखमरी और दरिद्रता के नाश का स्वर अधिक सुनाई पड़ता है। इस भाषा में उपन्यास तथा कहानियों को विशेष स्थान प्राप्त है। बलवन्त गार्गी पंजाबी भाषा का प्रसिद्ध नाटककार है। जोशसिंह, मुसाफिर, सुरेन्द्रसिंह नरूला, अमृता प्रीतम आदि उल्लेखनीय साहित्यकार हैं।

(१३) कश्मीर—यह भाषा अपभ्रंश-मूलक है। बाणासुर-वध' प्रथम कश्मीर का काव्य है। पीरजादा गुलाम महमद महजूर को आधुनिक कश्मीरी कविता का पिता माना जाता है। रहस्यवादी कवि 'आजाद' ने काश्मीरी कविताओं में राष्ट्रीय, भौगोलिक जातीय और सामाजिक संकीर्णता के विरुद्ध आवाज उठाई और रचना के गीत गाये। १६४७ में ही रेडियो के लोकमतों आदि के आधार से कश्मीरी को प्रोत्साहन मिला है और मासिक पत्र तथा कहानियां छपने लगी हैं। आज कश्मीरी कवितायें जनसाधारण को सन्देश देकर जीवन को नवीन रस प्रदान कर रही हैं। गद्य अभी तक समुचित रूप में विकासशील नहीं हुआ है।

(१४) उर्दू —उर्दू का साहित्य १८ वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। भारत की भाषाओं, प्रधानतः हिन्दी की खड़ी बोली के साथ अरबी और फारसी तथा तुर्की के मेल-जोल से उर्दू भाषा बनी। इसमें यूरोपियन भाषाओं के शब्द भी मिले हुये हैं। इस तरह इसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। अकबर के समय अरबी फारसी शब्दों का व्यवहार अधिक हो गया था और शाहजादों ने लाल किले के पास ही उर्दू बाजार बनाया था। इस उर्दू बाजार के चारों ओर लड़े सिपाही और फौजी सरदारों में खड़ीबोली प्रचलित हो गई और इसका नाम 'शाहजहांनी' उर्दू था जो विकसित होती हुई आधुनिक उर्दू बन गई। अतः उर्दू खड़ी बोली हिन्दी की ही एक विशेष शैली

है, यद्यपि यह फारसी लिपि में लिखी जाती है।" महाकवि गालिब और उनके शिष्य हाली, चकबस्त, सागर निजामी, फिराक, जिगर, अकबर इलाहाबादी, इकबाल, जोश मलीहाबादी आदि शायरों ने शायरिया को और उर्दू साहित्य को विकसित किया। इनकी शायरियों में गजल, रुबाइयां आदि को स्थान मिलता था। अलीगढ़, लखनऊ, उस्मानिया और जामिया-मिलिया विश्वविद्यालय उर्दू के साहित्य को उन्नत बनाने में लगे हैं। कमल जलालाबादी, हसरत जयपुरी, साहिर लुधियानवी, शकील बदायुनी और शैलेन्द्र आदि ने आधुनिक सिनेमा काव्य में अपना काफी योगदान दिया है। नाटक, उपन्यास तथा कहानियों के क्षेत्र में बेताब, मोहम्मद हुसैन, पं० रतननाथ, मौलवी हकीम, अश्क, मुन्शी प्रेमचन्द, सुदर्शन, अजीज अहमद, ख्वाजा अहमद अब्बास आदि प्रमुख हैं।

TOPICS FOR ESSAYS
(निबन्ध के विषय)

Write a short essay on each of the following subjects—
निम्नलिखित विषयों में से प्रत्येक पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये—

(a) Indian Arts
भारतीय कलाएं

(b) Indian Architecture
भारतीय स्थापत्य कला

(c) Indian Sculpture
भारतीय मूर्तिकला

(d) Indian Painting
भारतीय चित्रकला

(e) Music in India
भारत में संगीत

(f) Indian Literature
भारतीय साहित्य

(g) Salient Features of Indian Arts
भारतीय कलाओं की विशेषताएं

BRIEF NOTES
(संक्षिप्त टिप्पणियां)

निम्नलिखित में से प्रत्येक पर लगभग २०० शब्दों में टिप्पणी लिखिये—

(a) सिन्धु सभ्यता की स्थापत्य कला

(b) मौर्य युग की स्थापत्य कला

(c) गुप्त युग की स्थापत्य कला

(d) मध्य युगीन मन्दिर स्थापत्य कला

(e) ब्रिटिश शासन काल में स्थापत्य कला
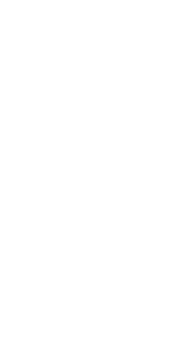
(g) भारतीय कलाएं विश्वकलाओं में एक विशिष्ट स्थान रखती हैं।
(h) राजस्थानी शैली में केवल भित्ति चित्र ही बनाये गये। -
(i) भरहुत के स्तूप के तोरण द्वार और जंगले तथा साँची का स्तूप आदि इमारतें ई० पू० प्रथम शताब्दी में निर्मित की गई थी।
(j) भारत की आधुनिक स्थापत्य कला विशुद्ध राष्ट्रीय शैली पर आधारित है।

३. एक या दो शब्दों में उत्तर दीजिये—
(a) मोहनजोदड़ो से मिलने वाली मिट्टी की मूर्तियां किस देवी की हैं ?
(b) अशोक के स्तम्भ किस किस्म के पत्थर से निर्मित हैं ?
(c) भारतीय चित्रकला के प्राचीनतम नमूने कहां मिले हैं ?
(d) भुवनेश्वर के सुप्रसिद्ध मन्दिर का नाम क्या है ?
(e) निम्नलिखित तिथियां किस लिये महत्वपूर्ण हैं—२७२-२३७ ई० पू०,

बनाने की प्रथा सर्वप्रथम

भाग २

PART II

प्राकृतिक विज्ञान

(NATURAL SCIENCES)

आधुनिक विश्व मे विज्ञान और प्राविधिक ज्ञान की भूमिका

(१) प्राचीन विज्ञान—(i) तत्त्व, विश्व एवं स्वयंजनन की व्याख्यायुक्त प्रायोगिक घटनायें तथा सैद्धान्तिक कल्पनाओं की समानान्तर वृद्धि, (ii) कापरनिकस, गैलीलिओ और न्यूटन का सश्लेषण, (iii) डार्विन और परिवर्तन के विचार, (iv) परमाणु और सापेक्षवाद के सिद्धान्त की व्याख्या युक्त आधुनिक संश्लेषण, (v) विकसित होता हुआ विश्व।

(२) वैज्ञानिक पद्धति—तथ्यों का अध्ययन और उपकल्पना एवं सिद्धान्त का निर्माण तथा कुछ उदाहरणों द्वारा उनकी सम्पुष्टि; विज्ञान की बदलती हुई धारणायें, वैज्ञानिक दृष्टिकोण।

(३) विज्ञान और समाज—

(i) विज्ञान का रचनात्मक और विनाशात्मक प्रयोग।

(ii) शक्ति और उसके प्रयोग, द्रव्य और शक्ति का विचार, इनके अविभिन्न रूप, इनकी एक दूसरे में परिवर्तनशीलता; शक्ति के स्रोत—अग्नि से आणविक शक्ति तक।

(iii) रोगों के विरुद्ध संघर्ष, जेनेटिक्स पर आधुनिक दृष्टिकोण।

(iv) सिनथेटिक फाईबर्स।

(v) विज्ञान और संस्कृति।

(vi) विज्ञान और समाज।

(g) म।

(h) रा

(i) भरहुत के स्तूप के तोरण, द्वार और जंगले तथा साँची का स्तूप आदि इमारतें ई० पू० प्रथम शताब्दी में निर्मित की गई थीं।

(j) भारत की आधुनिक स्थापत्य कला विशुद्ध राष्ट्रीय शैली पर आधारित है।

३. एक या दो शब्दों में उत्तर दीजिये—

(a) मोहनजोदड़ो से मिलने वाली मिट्टी की मूर्तियां किस देवी की हैं ?

(b) अशोक के स्तम्भ किस किस्म के पत्थर से निर्मित हैं ?

(c) भारतीय चित्रकला के प्राचीनतम नमूने कहाँ मिले हैं ?

। है ?

पूर्ण है—२७६-२३७ ई० पू०।

चित्र बनाने की प्रथा सर्वप्रथम

ए ~ ।

भाग २

PART II

प्राकृतिक विज्ञान

(NATURAL SCIENCES)

आधुनिक विश्व मे विज्ञान और प्राविधिक ज्ञान की भूमिका

(१) प्राचीन विज्ञान—(i) तत्व, विश्व एव स्वयंजनन की व्याख्यायुक्त प्रायोगि
कलायें तथा सैद्धान्तिक कल्पनाओ की समानान्तर वृद्धि, (ii) कापरनिकस,
गैलीलियो और न्यूटन का सश्लेषण, (iii) डार्विन और परिवर्तन के विचार
(iv) परमाणु और सापेक्षवाद के सिद्धान्त की व्याख्या युक्त आधुनिक
सश्लेषण, (v) विकसित होता हुआ विश्व।

(२) वैज्ञानिक पद्धति—तथ्यों का अध्ययन और उपकल्पना एव सिद्धान्त का
निर्माण तथा कुछ उदाहरणों द्वारा उनकी सम्पुष्टि; विज्ञान की बदलत
हुई धारणायें, वैज्ञानिक दृष्टिकोण।

(३) विज्ञान और समाज—

i विज्ञान का रचनात्मक और विनाशात्मक प्रयोग।

) शक्ति और उसके प्रयोग, द्रव्य और शक्ति का विचार, इनके अविभिन्न रूप
इनकी एक दूसरे में परिवर्तनशीलता; शक्ति के स्रोत—अग्नि से आणवि
शक्ति तक।

ii) रोगों के विरुद्ध सघर्ष, जैनेटिक्स पर आधुनिक दृष्टिकोण।

r) सिनथेटिक फाईबर्स।

r) विज्ञान और संस्कृति।

i) विज्ञान और समाज।

"विज्ञान चुपचाप बैठकर किसी बात के होने के लिये प्रार्थना नहीं
करता, अपितु यह जानने का प्रयत्न करता है कि कोई बात
क्यों होती है। यह परीक्षण करता है, बार-बार प्रयत्न
करता है, कभी सफल होता है तो कभी असफल;
और थोड़ा २ करके मानव ज्ञान की अभिवृद्धि
करता है। हमारा यह आधुनिक विश्व
प्राचीन विश्व या मध्ययुगीन विश्व से
बहुत भिन्न है। यह हमारी भिन्नता
अधिकांश विज्ञान के ही कारण
है, क्योंकि आधुनिक युग का
निर्माण विज्ञान ने
किया है।"

—जवाहरलाल नेहरू

प्राचीन विज्ञान – (i) तत्व, विश्व एवं स्वयंजनन की व्याख्यायुक्त प्रायोगिक कलायें तथा सैद्धान्तिक कल्पनाओं की समानान्तर वृद्धि, (ii) कापरनिकस, गैलीलिओ और न्यूटन का संश्लेषण, (iii) डार्विन और परिवर्तन के विचार, (iv) परमाणु और सापेक्षवाद के सिद्धान्त का व्याख्यायुक्त आधुनिक सश्लेषण, (v) विकसित होता हुआ विश्व

[The Evolution of Science (i) Ancient Science—the parallel growth of practical arts and theoretical speculation illustrated by the evolution of ideas about elements, the universe and spontaneous generation of life, (ii) Copernichus, Galilian and the Newtonian Synthesis, (iii) Darwin and the ideas of change, (iv) Modern synthesis-illustrated by the study of relativity, (v) Expanding universe)

---

(१) तत्व, विश्व एव स्वयंजनन की व्याख्यायुक्त प्रायोगिक कलायें तथा सैद्धान्तिक कल्पनाओ की समानान्तर वृद्धि

आज का युग विज्ञान का युग है और आज के इस आधुनिक विज्ञान का आरम्भ सही माने में १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुआ था। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इससे पहले के कालो मे विज्ञान किसी भी रूप मे वर्तमान था ही नहीं। विज्ञान का इतिहास तो वस्तुतः अत्यन्त प्राचीन है। विज्ञान के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० जार्ज सार्टन (George Sarton) का यह कथन एकदम सत्य है कि 'आधुनिक विज्ञान पुरातन के निरन्तर विकास का ही रूप है (Modern Science is but the continuation of ancient science and it would not exist without the latter.)

विज्ञान के रूप दो हैं—सैद्धान्तिक (Theoritical) और व्यावहारिक अथवा तकनीकी (Applied or Technical)। सैद्धान्तिक विज्ञान के अन्तर्गत हम प्रकृति में घटित होने वाली बातों को समझने, 'पदार्थ', शक्ति और गति के पारस्परिक सम्बन्ध व स्वभाव को समझने तथा प्राकृतिक नियमों का ज्ञान प्राप्त करने आदि का प्रयत्न करते हैं। सैद्धान्तिक विज्ञान से ही हमें इन प्रश्नों का उत्तर मिलने में मिलती है कि पृथ्वी पर दिन, रात और ऋतुयें क्यों होती हैं, तारे और

सितारे अपना स्थान बदलते हुए क्यों दिखाई देते हैं, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई है, पानी क्यों बरसता है, बिजली क्यों चमकती है आदि। इसके विपरीत व्यावहारिक विज्ञान द्वारा हम प्रकृति में उपलब्ध होने वाली वस्तुओं को अपने काम में लाने योग्य बनाते हैं। उदाहरणार्थ पत्थर के औजारों जैसी साधारण वस्तुओं से लेकर आधुनिक जटिल मशीनें और कृत्रिम उपग्रह आदि विज्ञान के व्यावहारिक रूप के नमूने हैं।

आधुनिक विज्ञान पूर्णतः व्यवस्थित और क्रमबद्ध है जबकि प्राचीन काल में विज्ञान एक बिखरे हुए अव्यवस्थित ज्ञान की भांति था। आज से लाखों वर्ष पूर्व तो मानव जीवन निरा पशु जैसा था। भाग्यवश उसे अग्नि उत्पन्न करना मालूम हो गया। लकड़ियों को परस्पर जोर से व तेजी से रगड़ कर वह अग्नि पैदा करने लगा। अग्नि पर विजय मानव सभ्यता के विकास में बड़ी महत्वपूर्ण थी। धीरे-धीरे मनुष्य ने लकड़ी के नुकीले और चपटे हथियार बनाना, मांस भूनना तथा खाल और पत्तियों से अपने शरीर को ढकना सीख लिया। इस तरह हजारों वर्षों में उसने सभ्यता की जड़ जमा दी। लगभग सवा लाख वर्ष हुए जब मनुष्य ने अपनी दशा में विशेष उन्नति करना शुरू किया। उस समय लोग पत्थर के औजारों और हथियारों से काम लेते थे। इस प्रकार लगभग एक लाख वर्ष और बीत गये। अब मनुष्य हड्डी की वस्तुयें बनाने लगा। धीरे-धीरे आरी, बरछी, भाले आदि बनाये गए। हाथीदांत और सींग की बनी वस्तुयें अब से लगभग सोलह हजार वर्ष पहले की बनी मिलती हैं। इस समय तक मनुष्य गुफाओं में रह कर अपना जीवन-यापन करता था और गुफाओं की दीवारों पर ही पशुओं के चित्र बनाने लगा था।

ईसा से लगभग पांच छः हजार वर्ष पूर्व मनुष्य प्रगति के पथ पर काफी बढ़ आया। अब वह पशु-पालन करने लगा और पशुओं से लाभ भी उठाने लगा। खेती भी होने लगी, मिट्टी की ईंटें बनने लगीं तथा डलिया बनाना, चटाई बनाना आदि दस्तकारी के काम भी शुरू हो गए। मनुष्य ने रहने के लिए झोंपड़ी और छप्पर बनाना भी सीख लिया। पेड़ों के तनों को खोखला करके छोटी-छोटी डोंगियां भी बनाई जाने लगीं।

इन सब का महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि खानाबदोश मनुष्य अब स्थान-विशेष का निवासी बन गया और "कृषि का ठीक ढंग से आरम्भ" हुआ। शनैः शनैः मनुष्य को सम्पत्ति का ज्ञान और उससे लाभ उठाने की विधि भी मालूम हो गई। इसका व्यापार और समाज के संगठन पर प्रभाव पड़ा—गांवों और बस्तियों का प्रारम्भ हो गया। सी० डी० हार्डी (C. D. Hardi) का मत है कि कृषि की आवश्यकतायें ही आगे चल कर ज्योतिष विज्ञान, रेखागणित, अंकगणित आदि की उत्पत्ति का कारण बनी। यह अनुमान सत्य से अधिक परे नहीं है कि पाषाणयुग समाप्त होने और कृषियुग आरम्भ होने तक मानव ऐसी अवस्था में पहुंच गया जहां से वह "सभ्यताओं" का निर्माण कर सकता था। यही वह समय था जब चीन, भारत, मिस्र आदि की प्राचीनतम सभ्यताओं का जन्म हुआ।

मनुष्य सभ्यता और उन्नति के पर्याप्त साधन एकत्र कर चुका था परन्तु अभी उसमें तीन चीजों की भारी कमी थी–धातु, लेखन-ज्ञान और प्रशासकीय अथवा राज्य-संगठन। ईसा के लगभग ४,००० वर्ष पूर्व मनुष्य ने धातु का उपयोग करना सीखा लिखना और गिनना प्रारम्भ किया तथा प्रारम्भिक गणित, ज्योतिष आदि की नींव डाली। सम्भवतः मनुष्य को पहिली धातु सोना मिली परन्तु उसने उपयोग सर्वप्रथम तांबे का ही सीखा। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि तांबे का उपयोग अब से लगभग ८००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो गया था। स्विटजरलैण्ड, मेसोपोटामिया, मिश्र, भारत और अमेरिका में तांबे के यंत्रों के अवशेष मिले हैं तथापि इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि ताम्रयुग निश्चित रूप से पाषाणयुग के बाद ही प्रारम्भ हुआ। इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। उत्तरी भारत में प्राचीन काल में भिन्न-भिन्न भागों में कहीं तांबा प्रयुक्त हुआ तो कहीं लोहा, परन्तु दक्षिणी भारत में पाषाणयुग के ठीक बाद ही लोहा काम में आने लगा। जो भी हो मनुष्य ने धातुओं का उपयोग करना सीख लिया। शीघ्र ही उसे कांसे का भी पता चल गया, किन्तु वह यथेष्ट मात्रा में नहीं था और धातुओं को मिलाकर कांसा बनाने की विधि मनुष्य को ज्ञात नहीं थी। अतः उपयोग लोहे का ही होता रहा। ऐसे प्रमाण मिले हैं कि ईसा से लगभग ४,००० वर्ष पूर्व मिश्र निवासी प्रारम्भिक धातु-शोधन करने लग गये थे। मिश्र के सिनाय प्रदेश में कापर कार्बोनेट और कापर सिलीकेट काफी मात्रा में पाया जाता है। मिश्र निवासी लकड़ी के कोयले से गर्म करके तांबा प्राप्त करते थे। धातुशोधन के इस प्रारम्भिक क्षेत्र में प्रगति करते-करते हम भिलाई और राउरकेला के इस्पात के कारखानों में काम आने वाली धातुशोधन की आधुनिक विधि तक आ पहुंचे हैं। शनैः शनैः मनुष्य टीन, सीसा, चांदी आदि का भी प्रयोग करने लगा।

गणना और लेखनकला का आरम्भ भी लगभग छ या सात हजार वर्ष पूर्व हुआ। सम्भवतः लेखनकला के पहले मनुष्य ने वस्तुओं की संख्या और मात्रा का हिसाब रखना शुरू किया। हाथ और पैरों की अंगुलियां प्रारम्भिक गणना की आधार बनीं। यह अनुमान इसलिए लगाया जाता है कि पांच दस और बीस के ढेर में गिनने की प्रथा कहीं-कहीं पर अभी तक देखी जाती है। कई जगह आदि-वासी गिनने के लिए अभी भी अंगुलियों का प्रयोग करते हैं। सम्भवतः इन प्रथाओं ने ही लिखने के लिए संख्याओं और शब्दों के संकेतों को जन्म दिया। आगे चलकर ध्वनि के आधार पर वर्णमाला का उपयोग शुरू हुआ। वर्णमाला अथवा अक्षरों का आरम्भ अनुमानतः ६ हजार वर्ष पूर्व मिश्र में हुआ। प्राचीन मिश्रवासी २४ अक्षरों से काम लेते थे। वहां से अथवा क्रीट से उत्तरी अफ्रीका के निवासी अपने व्यापार के साथ-साथ उन्हें देश-देशान्तरों में ले गए। इस तरह आदिकालीन मनुष्य ज्यों-ज्यों अपने पशु-पूर्वजों की श्रेणी से पृथक हुआ, वह हरे-भरे मैदानों, गोचर भूमि क्षेत्रों और सुगम खाद्य सामग्री को ढूंढता हुआ अनेक प्रदेशों में फैल गया। जहां कहीं भी उसे पेट भरने को भोजन, उसके पशुओं को खिलाने के लिए चारा और रहने को उपयुक्त आश्रय-स्थल मिल गया वहीं उसने शनैः शनैः अपने पैर

और २४ प्रकार के पेय पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। इन्हें गणित, ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र, प्रजननशास्त्र, शल्यशास्त्र आदि का अच्छा ज्ञान था। सन्तान निरोध की औषधियां, उन्हें ईसा से १८०० वर्ष पूर्व ही ज्ञात थी। मिट्टी के बर्तनों का निर्माण, धातु का उपयोग कांच, अम्ल इत्यादि बनाना, रसायन शास्त्र में उनकी प्रगति के विभिन्न चरण थे। मिश्र की ममी पर जो लेप लगभग ३,५०० वर्ष पूर्व किये जाते थे वे रसायनशास्त्र की उच्च जानकारी के नमूने हैं। ईसवी सन् से तीन-चार ार वर्ष पूर्व मेसोपोटामिया के सुमेर लोगों ने तारों के समूह को अलग नाम दिये था ईसा से दो-तीन हजार वर्ष पूर्व मिश्र निवासियों ने वार्षिक कैलेन्डर बनाया जिसमें बेबीलोन निवासी तथा असीरियन लोगों ने बहुत सुधार किये। बेबीलोन ासी संसार के पहले श्रेष्ठ ज्योतिषविज्ञ थे। उनका वर्ष ३६० दिन का ही था। द दिन की पूर्ति के हर पांच वर्ष बाद एक महीना जोड़ कर लेते थे। उन्होंने काश के ऐसे क्षेत्र को जिसके बाहर सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह नहीं जाते हैं, बारह गों में विभाजित किया जिसमें हर एक का संकेत नियत था। इन्हीं के आधार पर शियाँ मानी जाती हैं।

यूनानियों की सभ्यता भी अत्यन्त समृद्ध थी। ईसापूर्व छठी शताब्दी में फारस मिश्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था और ईसा से लगभग ३३२ वर्ष यूनान ने सदा के लिए मिश्र की स्वाधीनता का अन्त कर दिया। यूनानी बड़े ासु वृत्ति के थे। *विज्ञान के सैद्धांतिक पहलू की शुरूआत यूनानी (Greek)* द्वानों ने लगभग ६०० वर्ष ईसापूर्व में की। इस समय के आस-पास भारत और न में भी बड़े-बड़े विचारक पैदा हुए। उनके और यूनानी विद्वानों के विचारों में छ साम्य पाया जाता है। यूनान में विचारों की यह शृंखला काफी समय तक यमान रही और यूरोप पर उनका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। यह एक ऐतिहासिक संयोग की बात थी कि यूरोप आधुनिक विज्ञान का जन्मक्षेत्र बना जिसके कारण नानी विचारों को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। भारत और चीन में ऐतिहासिक रिस्थितियाँ इतनी प्रतिकूल रहीं कि न तो वहाँ वैज्ञानिक प्रगति कर पाये और न ाचीन महत्वपूर्ण विचारों की महत्ता ही कायम रख पाये। आज ऐतिहासिक दृष्टि ही माना जाता है कि सैद्धांतिक विज्ञान का प्रारम्भ ग्रीक विद्वानों ने किया। ूनानी विद्वान प्रकृति के रहस्यों और घटनाओं के कारणों को जानने के लिए तर्क-वितर्क करते रहते थे। यूनानी विज्ञान का प्रारम्भ ईसा पूर्व ६०० वर्ष के लगभग आयोनियन द्वीप समूह के विचारकों ने किया। उन्होंने अपने विचार इस बात की खोज में लगाये कि इस संसार की उत्पत्ति कैसे हुई है और इसकी प्रकृति कैसी है। थेलीज ने सबसे पहिले सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अध्यात्मवाद का सहारा न लेकर भौतिक विचार प्रस्तुत किये। उसने कहा कि सृष्टि की उत्पत्ति पानी से हुई है और पानी से ही आगे चलकर पृथ्वी, वायु, जीव-जन्तु आदि बने हैं। हीरेक्लाइटस ने बताया कि परस्पर विरोधी स्वभाववाली वस्तुओं के समागम से ही सृष्टि चलती है। द्वन्द्वात्मक विचारों की यह शुरूआत थी। एम्पोडोक्लीज ने प्रत्येक वायु को एक मौलिक पदार्थ बताया। उसने पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि की सृष्टि की रचना करने

उनके 'सापेक्षवाद के सिद्धान्त' से अपने वैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाय और परमाणु शक्ति का मार्ग प्रशस्त किया । इस सिद्धान्त के द्वारा पद ब्रह्माण्ड की रचना व उसका विस्तार आदि सभी चीजों की गठन विशे स्पष्ट किया जा सकता है । न्यूटन के बाद ज्ञान का ऐसा अद्भुत (Synthesis) इसी सिद्धान्त ने किया ।

तत्त्व सम्बन्धी विचारों का विकास (Evolution of ideas abo ments) —प्राचीनकाल में, विशेषकर यूनान के 'दार्शनिक युग' में मनु सृष्टि के द्रव्यों में भौतिक गुणों की विभिन्नता का अनुभव हुआ । फलस्वरूप समस्त पांच विभिन्न वस्तुयें अपने अस्तित्व का विज्ञापन करने लगी—पृथ्वी वायु, अग्नि और आकाश । इस युग के व्यक्तियों को अनुभूति हुई कि सम्पूर्ण का निर्माण इन्हीं पांच प्रकार की वस्तुओं से हुआ है, और ये पांचों इसीलिए के मूल तत्त्व कहलाये । यूनानी विद्वान एम्पीडोक्लीज ने पृथ्वी, पानी, हवा और को सृष्टि की रचना करने वाले चार तत्त्व माने । चार तत्त्वों वाले विचार काफी मान्यता मिली । एम्पीडोक्लीज ने कहा कि मनुष्य का मांस और रक्त चार तत्त्वों की बराबर मात्रा से बना हुआ है । यह विचार कि विश्व इन्हीं मि तत्त्वों में तोड़ा जा सकता है आधुनिक सिद्धान्त की जड़ था । प्लेटो भी इसी मत सहमत था और यह विश्वास करता था कि ये चारों मूल तत्त्व इसीलिये पृथक-पृथ हैं क्योंकि उनके परमाणु भिन्न-भिन्न रूप के हैं । आगे चलकर अरस्तू ने आकाश भी एक तत्त्व मान लिया और इस प्रकार यूनानी विचारधारा में पांच तत्त्वों को मान्यता मिली । प्राचीन भारतीय मत भी यही था कि समस्त संसार की रचना पांच तत्त्वों—पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु से मिल कर हुई है । ऋषि कपिल ने सांख्य-दर्शन में इन मूल तत्त्वों का वर्णन विस्तार से किया है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि तत्त्वों सम्बन्धी यह विचारधारा यूनान और भारत में लगभग समानान्तर थी ।

यूनानी विद्वान अरस्तू ने सम्भवत भारतीय विचारों से सहमत होकर ही पांच तत्त्वों को मान्यता दी थी । तत्त्वों सम्बन्धी तत्कालीन विचार अत्यन्त सरल अनुभव पर आधारित थे । सम्भवतः पदार्थों के सूखेपन, ठण्डेपन, गीलेपन आदि गुणों को देखकर ही तत्त्वों सम्बन्धी कल्पना की गई थी । अरस्तू ने बतलाया था कि तत्त्वों के साथ उनके विशेष गुण हैं—ठण्डा, नम गर्म, सूखा आदि । इनमें कोई दो गुण मिल कर तत्त्व का निर्माण करते हैं, जैसे जल नम और ठण्डा है, वायु नम और गर्म है पृथ्वी सूखी और ठन्डी है, अग्नि सूखी व गर्म है । अरस्तू की मान्यता थी कि भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ दो या दो से अधिक तत्त्वों के परस्पर मिलने से बनते हैं तथा तत्त्वों को बदलने से एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में बदल जाता है । चीन के दार्शनिक पांच मूल तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, काष्ठ और धातु की व्याप्ति में ही विश्वास करते थे ।

प्राचीन विद्वानों के विचार, तत्त्व की मान्यता तक ही सीमित नहीं थे, उन्होंने तत्त्व रचना की व्याख्या भी की थी । ईसा पूर्व ५वीं शताब्दी में डेमोक्रिटस नामक

यूनानी विद्वान ने बताया था कि पदार्थ सूक्ष्म कणों अर्थात् परमाणुओं का बना हुआ होता है। उसने यहा तक कहा था कि परमाणु कम्पन की अवस्था में रहते हैं, और पदार्थ का प्रत्येक परिवर्तन परमाणुओ के संयोजन अथवा वियोजन के कारण होता है। आधुनिक ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो आश्चर्य होता है कि डेमोक्रिटस के विचार इतने सही कैसे थे? यूनानी विद्वानो ने मूल पदार्थ (Prima Materia) की भी कल्पना की थी। अन्य पदार्थों को वे मूल पदार्थ का रूपान्तर मात्र मानते थे। आजकल हम हाइड्रोजन (Hydrogen) को मूल पदार्थ मान कर अन्य तत्वो को उसका रूपान्तर कह सकते हैं।

भौतिक दृष्टि से तत्वो सम्बन्धी भारतीयो का वर्गीकरण सबसे बड़ा-चढ़ा था, यद्यपि रासायनिक दृष्टि से इन समस्त मूल तत्व सम्बन्धी कल्पनाओ का कोई आधार न था। अपनी विचारशक्ति के आधार पर हमारे प्राचीन दार्शनिक केवल पंच तत्व तक ही नही, बल्कि अणुओ और परमाणुओ तक पहुँच गये थे। भारतीय दार्शनिक कणाद, पाराशर, पातञ्जलि आदि ने परमाणु सम्बन्धी महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये थे। महर्षि कणाद का परमाणुवाद सम्भवत परमाणु की पहली कल्पना थी जो डाल्टन के परमाणुवाद से बहुत मिलती है। महर्षि कणाद ने बताया कि पदार्थ अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे अत्यन्त सूक्ष्म कणो का और माध्यमिक अवस्था मे अणुओ (Molecules) का बना होता है। कणाद ने यह भी कहा कि पदार्थ के सूक्ष्म कण अविभाज्य होते हैं। आगे चलकर भारतीय विचारक इतना आगे बढ गये कि उन्होने यह मान्यता प्रकट की कि परमाणु स्वयं अन्य छोटे-छोटे कणो का बना होता है। ये विचार आधुनिक जानकारी से अद्भुत मेल खाते हैं जब कि उस समय प्रायोगिक प्रमाणो की न प्रथा थी और न व्यवस्था।

तत्व की सही परिभाषा १७वी शताब्दी के मध्य मे सर्वप्रथम रॉबर्ट बॉयल (Robert Boyle) ने दी। १६६१ मे प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Sceptical Chymist' मे रॉबर्ट बॉयल ने पदार्थ सम्बन्धी प्राचीन विचारो का खण्डन करते हुए सर्वप्रथम तत्व (Element), यौगिक (Compound), और मिश्रण (Mixture) की वैज्ञानिक परिभाषा प्रचलित की, जो आज भी प्रचलित है। रॉबर्ट बॉयल ने प्राचीन विचारों का तिरस्कार करते हुए कहा कि चार अथवा पाँच तत्व, उन सब तत्वों का जो हम देखते हैं, १/१० भाग भी नहीं बनसाते। बॉयल द्वारा दी गई व्याख्याओ का सारांश इस प्रकार है—

(१) तत्व वह सरल पदार्थ है जो एक ही द्रव्य का बना हो और जिसका विभाजन अन्य किसी सरल द्रव्य में न हो सके जैसे सोना, चांदी, लोहा, तांबा आदि।

(२) यौगिक पदार्थ एक से अधिक तत्वों से मिलकर बनता है। जब तत्व आपस मे रासायनिक क्रिया करते हैं तब यौगिक पदार्थ तैयार होते हैं। यौगिक की विशेषता यह है कि इनके गुण उन तत्वों के गुणों से सर्वथा भिन्न होते हैं जिनसे मिलकर ये बनते हैं। यौगिक मे मिलने वाले तत्व सदा एक ही अनुपात में पाए जाते हैं।

(३) मिश्रण किन्ही भी दो या अधिक तत्वो अथवा यौगिको को मिलाने से बनते हैं। इनका सगठन अनिश्चित होता है, इनमें तत्व किसी भी अनुपात मे मिलाये जा सकते हैं मिश्रण के तत्वों को सरलता से अलग-अलग किया जा सकता है।

रॉबर्ट बॉयल ने तत्व और यौगिक पदार्थों के अन्तर को इतना स्पष्ट रूप समझाया कि भविष्य में उनका ठीक-ठीक वर्गीकरण किया जाने लगा। बॉयल समय से आज तक संसार में १०१ मूल तत्वों का अस्तित्व सिद्ध हो चुका है (तत्व की आधुनिकतम परिभाषा उसी आधार पर है जो बायल ने प्रस्तुत की थी, अर्थात् "तत्व वे पदार्थ हैं जो कि एक ही पदार्थ के बने हुए होते हैं तथा जिनको किसी भी रासायनिक क्रिया द्वारा एक से अधिक पदार्थों में विच्छेदित नहीं किया जा सकता।" वास्तव में हम जितनी भी चीजें देखते हैं या जिनका हम अनुभव करते हैं रचना की दृष्टि से उन्हें बनाने वाली वस्तुएं इनी-गिनी ही हैं। इन मूल रचनात्मक वस्तुओं को, जो स्वयं शुद्ध रूप में भी मिलता है, और जिनके संयोग से ही अन्य वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, विज्ञान की भाषा में तत्व (एलिमेंट) कहते हैं। हमारी जानकारी में रोज आने वाले कुछ सामान्य तत्व ये हैं सोना, चांदी, लोहा, सीसा, तांबा, कार्बन प्लैटिनम, पारा, गन्धक, टिन, जस्त, निकल, मैंगनीज, कैल्सियम, एलुमीनियम, संखिया, फास्फोरस, क्रोमियम, आयोडीन, मैग्नीशियम, हाइड्रोजन, रेडियम, सोडियम, पोटाशियम, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, यूरेनियम, कोबाल्ट।

सृष्टि या विश्व (The Universe)—विज्ञान का प्रकाश हमेशा से ही प्रकृति के विभिन्न रहस्यों का उद्घाटन करता रहा है, मानव सभ्यता के अज्ञान को हटाता रहा है, और उसे एक-एक करके सत्य की सीढ़ियाँ चढ़ाता रहा है।

प्रारम्भ में मनुष्य ने सभी प्राकृतिक घटनाओं और उपादानों का सम्बन्ध देवी-देवताओं से जोड़ा। उसके अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पृथ्वी का उद्भव, वायु, जल आदि की सृष्टि सभी दैवीय कृत्य थे। वैज्ञानिक विकास न होने तक मनुष्य का इसी प्रकार का अवैज्ञानिक विचार बना रहा। विश्व के लगभग सभी धर्मों ने सृष्टि की रचना के विषय में अपने-अपने मन-गढ़न्त मत प्रकट किये हैं। हिन्दू धर्मानुसार सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा की नाभि से हुई तो ईसाई धर्म के अनुसार ईश्वर ने ६ दिन में सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की। बेबीलोनिया की प्रारम्भिक सभ्यता के निवासी यह मानते थे कि विश्व की उत्पत्ति जल से हुई है। जल में से एक खोखला स्थान ऊपर उठ गया। बाद में यह माना जाने लगा कि पृथ्वी एक विशालकाय पर्वत है जो भीतर से खोखला है। इसके पूर्व और पश्चिम की ओर दो दरवाजे हैं। पूर्व के दरवाजे से सूर्योदय होता है और पश्चिम के दरवाजे से सूर्य अपने घर चला जाता है। प्राचीन मिश्रवासियों का विश्वास था कि समस्त ब्रह्माण्ड डिब्बे की आकृति का है जो उत्तर से दक्षिण की ओर फैला हुआ है। पृथ्वी इस डिब्बे की तह है। आकाश चौरस है जो चार पहाड़ों की चोटियों पर टिका हुआ है। इसी प्रकार के अनेक भ्रमपूर्ण विचार सृष्टि के बारे में प्राचीन कालीन व्यक्तियों में प्रचलित थे।

प्राचीनकाल में वैज्ञानिक चिन्तन की प्रवृत्ति जगने पर, यूनानियों और भारतीयों में यह विश्वास प्रचलित था कि यह गोलाकार पृथ्वी विश्व का केन्द्र है और गतिहीन है तथा समस्त नक्षत्र पृथ्वी के समानान्तर केन्द्र के एक बड़े गोले के बाह्य तल पर

था। वे ग्रहों की विचित्र गतिविधि का स्पष्टीकरण नए-नए गोलों (Spheres) व अधिचक्रों (Epicycles) की कल्पना से करने लगे। इस प्रकार कोपरनिकस के समय तक ऐसे ८० गोलों की कल्पना की जा चुकी थी जिनके सहारे विभिन्न ग्रह, सूर्य, चन्द्र आदि पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते थे। टालेमी की पद्धति अत्यन्त जटिल बनती थी और फिर भी वह अनेक शंकाओं का समाधान नहीं कर पाती थी। ऐसे समय किसी ऐसी प्रतिभा की आवश्यकता थी जो खगोल-मण्डल की सही व्याख्या देकर विभिन्न शंकाओं का समाधान करे। कोपरनिकस के रूप में वह प्रतिभा प्रकट हुई और उसने लगभग दो हजार वर्ष के अन्धकार को दूर किया।

कोपरनिकस (१४७३-१५४३ A D) बहुत बड़ा गणितज्ञ था और गणित की सहायता से उसने खगोल या आकाशीय पिण्डों की अनेक गुत्थियों को सुलझाया। कोपरनिकस पर धार्मिक शिक्षाओं का काफी प्रभाव था, अतः वह पुरानी पद्धति के विचारों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सका। उसने अरस्तू-टालेमी सिद्धान्त के इस विचार को कि आकाशीय पिण्ड चक्राकार पथ पर ही घूमते हैं, पूरी तरह स्वीकार कर लिया था। इसलिए उसने जहां सूर्य-केन्द्रीय विश्व का क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किया, वहां उसने चक्राकार गति (Circular motion) का विचार वैसे ही रहने दिया। इस कारण उसको भी कुछ ग्रहों की गति के सिलसिले में अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा। उसने टालेमी सिद्धान्त के ८० गोलों के स्थान पर केवल ३४ गोलों से आकाशीय अथवा खगोल गतियों (Heavenly movements) को सरलता से समझाने का प्रयत्न किया। तो भी कुछ ग्रहों की विचित्र गति का स्पष्टीकरण ठीक नहीं हो सका और सभ्रम (Confusion) आगे चलकर कैपलर (Kepler) की खोज का कारण बना।

सूर्य-केन्द्रीय विश्व का विचार कोपरनिकस को सूझा—मान लो पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमे तो ग्रह तथा सूर्य उसके चारों ओर घूमते हुए मालूम पड़ेंगे। जब उसने अपना यह विचार प्रकट किया तो शिक्षित लोग कहने लगे—"इस मूर्ख पादरी को देखो जो यह कहता है कि पृथ्वी घूमती है और सूर्य स्थिर रहता है। जिस बात को प्रत्येक साधारण व्यक्ति देख सकता है, यह मूर्ख उसी के विपरीत बात करता है।......... यदि पृथ्वी चारों ओर घूमती होती तो निश्चय ही हम लोगों के नीचे यह हिलती और यदि हम कूदते तो पृथ्वी आगे बढ़ जाती जिससे हम किसी दूसरे स्थान पर गिरते।" भाग्यवश कोपरनिकस इस प्रकार के उपहास से विचलित नहीं हुआ। वह युवावस्था से अधेड़ होने तक अपने महान् विचार पर कार्य करता रहा और अन्त में उसने इन सबको एक पुस्तक में लिखा जिसका नाम "De Revolutionibus Orbitum Celesium" रखा गया। जब इस पुस्तक की प्रथम कृति कोपरनिकस के हाथों में पहुंची तब वह मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था। अपनी अमर कृति के प्रकाशन से कुछ समय बाद ही २४ मई सन् १५४३ को उसका देहान्त हो गया। कोपरनिकस ने भूकेन्द्रीय सिद्धान्त के विपरीत संसार को जो दूसरा सिद्धान्त दिया उसकी मुख्यत मान्यतायें ये थीं—

(१) हमारे विश्व (Universe) का केन्द्र पृथ्वी नहीं वरन् सूर्य है। स्पष्टतः

यह सूर्य-केन्द्रीय विश्व को मान्यता देने वाला विचार था और जहाँ तक हमारे सौर-मण्डल का प्रश्न है, यह विचार बिल्कुल सही है।

(२) हमारी पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। यही नहीं, वह अपनी ही धुरी (Axis) पर भी २४ घंटों मे एक बार घूम जाती है। पृथ्वी की इस दोहरी गतिविधि के आधार पर ही रात और दिन का होना तथा ऋतुओं का क्रम ठीक तरह समझाया जा सकता है।

(३) केवल पृथ्वी ही नहीं वरन् बुध, शुक्र, मगल, गुरु, शनि आदि ग्रह भी सूर्य के चारों ओर घूमते या परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक ग्रह नियमित रूप से अपनी ही कक्षा (Orbit) मे सूर्य की परिक्रमा करता है और पूरी परिक्रमा करने मे अपना विशेष समय लेता है। इसी लिए प्रत्येक वर्ष की अवधि अलग-अलग होती है और प्रत्येक ग्रह नियमित समय पर अपने नियमित स्थान पर पाया जाता है।

(४) हमे जो सूर्य चलता हुआ प्रतीत होता है वह सूर्य की गति न होकर पृथ्वी की गति के कारण ही दीख पड़ता है।

(५) ये सब क्रियायें प्रकृति के परिवर्तनशील नियमो से नियन्त्रित होती हैं।

कोपरनिकस के इन सभी विचारों का विरोध होना स्वभाविक था क्योंकि पृथ्वी के स्थान पर सूर्य को विश्व (Universe) का केन्द्र मानना पृथ्वी की महत्ता को कम करना था और पृथ्वी की महत्ता को कम करने का अर्थ मनुष्य की महत्ता का कम होना था। फिर २००० वर्षों से भी अधिक समय के जमे हुये विचारों को हटाकर परिवर्तित विचारों का स्थान लेना भी सरल काम नहीं था। कोपरनिकस को स्वय तो कष्ट झेलना ही पड़ा किन्तु उसके सिद्धान्त को मान्यता प्रदान कराने में आगे आने वाले व्यक्तियों को भी बलिदान करना पड़ा, यहां तक कि ब्रूनो को तो अपने जीवन का ही परित्याग करना पड़ा।

यह उल्लेखनीय है कि सूर्य की स्थिरता तथा पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों का उसके चारों ओर घूमने का विचार कोपरनिकस का मौलिक विचार नहीं था। सूर्य केन्द्रीय विश्व के विचार भारत मे जन्म ले चुके थे। इसके अतिरिक्त ग्रीक विद्वानों मे हीरेक्लाइड्स (Heraclides, 388-315 B.C.) और एरिस्टार्कस (Aristarchus, 310-230 B.C.) ने इन विचारों का प्रतिपादन कर दिया था, किन्तु अरस्तु के प्रभाव के आगे किसी ने उन पर ध्यान नहीं दिया। यह कोपरनिकस की महानता थी कि उसने इन विद्वानो को उपर्युक्त विचार के लिए पूरा-पूरा श्रेय दिया।

कोपरनिकस की मृत्यु के बाद १६३२ में इटली निवासी गैलिलियो ने दूरदर्शक यंत्र के आधार पर लिखी गयी अपनी प्रमुख पुस्तक "गैलिलियो गेलिली के संसार का क्रम" में यह सिद्ध कर दिया कि कोपरनिकस की बात ठीक ही थी—यह पृथ्वी ही है जो विस्तृत मार्ग मे सूर्य के चारो ओर घूमती है जिससे वर्ष बनता है, यह पृथ्वी ही है जो अपनी धुरी पर घूमती है जिससे दिन रात होते हैं। इस पुस्तक ने सनसनी फैला दी। धर्माधिकारियों के प्रचारात्मक प्रहारो के मध्य ७० वर्ष के बूढ़े गैलिलियो को विवशता-पूर्वक एवं विधिवत यह स्वीकार करना पड़ा कि पृथ्वी तथा सूर्य के विषय में उसने जो कुछ सत्य माना था वह ठीक न था।

चन्द्रमा को अपने-अपने मार्ग मे घूमने के लिए बाध्य करती है और सारे पदार्थों पर चाहे वे भौतिक हों या स्वर्गीय अथवा छोटे हो या बड़े, अपना प्रभाव डालती है। न्यूटन द्वारा प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही सर्वप्रथम दृष्टिगोचर संसार एकता मे बंधा हुआ प्रतीत हुआ-पृथ्वी और आकाश एक दूसरे के विपरीत दिखाई देने बन्द हो गये (Heavens and Earth ceased to be opposed to one another)। "न्यूटन की खोजों के फलस्वरूप एक ऐसे यान्त्रिक विश्व का विकास हुआ जो बल, दबाव, फैलाव, खिचाव, प्रदोलनों तथा तरंगों से परिपूर्ण है। प्रकृति की कोई विधि ऐसी प्रतीत नहीं होती जिसका हम साधारण अनुभव द्वारा ही वर्णन न कर सकते हो, और जो न्यूटन के आश्चर्यजनक गतिशास्त्र के नियमों से नियंत्रित न हो सके।"[1]

परन्तु विज्ञान के चरण न्यूटन की खोजों तक ही सीमित न रहे। पिछली शताब्दी के समाप्त होते ही इन नियमो मे कुछ हेर-फेर हुए जिन्होंने न्यूटन के यांत्रिक-विश्व की धारणा को आघात पहुँचाया। इनका वर्णन यथा स्थान आगे न्यूटन के सश्लेषण और आइन्स्टाइन के सापेक्षवादी सिद्धान्त के संदर्भ मे किया जायगा।

आधुनिक काल मे ऐसे दूरवीक्षण यन्त्र आविष्कृत हो चुके हैं जिनसे यह पता लगाया जा चुका है कि इस अखिल ब्रह्माण्ड मे केवल हमारा सौरमडल ही नहीं अपितु निरन्तर विचारने वाले करोड़ो नक्षत्र-मडल है। सौरमडल तो इस विशाल ब्रह्माण्ड का एक अत्यन्त लघु भाग है। आकाश अनन्त दूरी तक फैला हुआ है जिसमें अनेक पिण्ड बिखरे पड़े है, सूर्य चन्द्र व असख्य तारे स्थित हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड मे हमारे सौर मडल के सूर्य-सरीखे और उससे कई गुना बड़े असख्य नक्षत्र तो है ही, साथ ही पुच्छल तारे, सर्पिल नीहारिकाओ की दूर तक फैली हुई कुण्डलियां तथा बड़े-बड़े उल्कापिंड भी घूमते हुये विद्यमान हैं। ब्रह्माण्ड-ज्ञान के संदर्भ मे यह उचित होगा कि हम संक्षेप मे पहले हमारे सौर मडल और बाद मे अनन्त ब्रह्माण्ड के ज्ञात किये गये अन्य सदस्यों के बारे मे संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लें।

(क) सौर मण्डल—सूर्य और उसके चारों तरफ चक्कर लगाने वाले ग्रहों, उपग्रहो, उल्काओं तथा पुच्छल तारो आदि के समूह को सौर-मण्डल, सौर-परिवार या सौर-जगत कहते हैं। इस परिवार में सूर्य के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य सदस्य हैं—(१) ग्रह—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मगल, लघुग्रह, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण, तथा यम। (२) उपग्रह—वे पिण्ड जो ग्रहों से टूटकर बने हैं और ग्रहों की ही परिक्रमा करते हैं—जैसे चन्द्रमा।

पूर्णतः गोलाकार नहीं है। यह दीर्घवृत्तीय (Elliptical) है। अतः सूर्य कभी पृथ्वी के निकट आ जाता है, तो कभी दूर चला जाता है। जिस कक्ष पर पृथ्वी २३½° अंश झुकी हुई है उसी कक्ष के तल पर सूर्य भी लगभग ७ डि० झुका हुआ है। सूर्य पृथ्वी के व्यास से १०८ गुणा बड़ा है। यदि १३ लाख पृथ्वियाँ एक साथ एकत्रित की जा सकें तब कहीं वे मिलकर सूर्य के बराबर हो सकेंगी। अन्य पिंडों की भांति सूर्य भी अपनी कीली पर चक्कर लगाता है। सूर्य का धरातल ठोस नहीं है, गैसीय है। सूर्य एक आग के जलते हुए गोले के समान है जिसकी गर्मी चारों ओर विकिरण-विधि द्वारा फैलती है। सूर्य के केन्द्र का तापक्रम लगभग १,५०,००,००० डि० से० है। सूर्य की ऊपरी सतह का तापक्रम लगभग ६,००० डि० से० है। सूर्य के धरातल की एक विशेषता इस पर पाये जाने वाले काले धब्बे हैं। वैज्ञानिकों का निष्कर्ष यह है कि ये धब्बे उन तूफानों के कारण हैं जो सूर्य के धरातल पर बहुत गहराई से आते हैं। सूर्य के भीतरी भाग में अवश्य ही दबाव अधिक होगा। जब तूफान सतह पर आते हैं तब गैसों का दबाव कम होने के कारण फैलता है, फैलने से तापक्रम घट जाता है, अतः उन भागों की चमक जहाँ यह तूफान रहते हैं, सूर्य के धरातल के शेष भागों की चमक की अपेक्षा कम होती है। फलस्वरूप हमें यह भाग काले दिखाई देते हैं। फिर भी इनका तापक्रम लगभग ४८०० डि० से० होता है।

सूर्य की किरणें हमारी पृथ्वी पर, १८६,००० मील प्रति सैकिंड की गति से चलकर लगभग ८ मिनिट में पहुंच जाती हैं।

✓ सौर मण्डल के सदस्य—'नवग्रह'—

१. बुध—यह सबसे छोटा और तेज चलने वाला ग्रह है। यह सूर्य से ३६० लाख मील दूर है। यह सूर्य का निकटतम ग्रह है। इस कारण इसकी सतह के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो गया है। यह ८८ दिन में सूर्य का एक चक्कर लगा लेता है और अपनी कीली पर भी ८८ दिन में ही एक चक्कर लगाता है। इसका व्यास ३००० से ३१०० मील तक है। इसकी गति २६ मील प्रति सैकिंड है। इसका एक हिस्सा ही सूर्य के सामने रहता है। वहाँ ताप बहुत अधिक होता है और जो भाग सूर्य की तरफ नहीं रहता (अर्थात् जिस हिस्से में रात रहती है) वहाँ ठंड अधिक रहती है। यह मार्च और अप्रैल के महीने में सूर्य छिपने समय और सितम्बर अक्टूबर में सूर्य के उगने समय अपनी तेज चमक के कारण साफ दिखाई देता है।

२. शुक्र—यह सबसे अधिक चमकीला ग्रह है जो सूर्यास्त के बाद व सूर्योदय से पहले कुछ देर तक दिखाई देता है। यह प्रातःकाल पूर्व की तरफ और शाम को पश्चिम की तरफ दिखाई देता है। इसे सुबह का तारा या भोर का तारा भी कहते हैं। इसका आकार और भार पृथ्वी से मिलता जुलता सा है। यह सूर्य से ६७० लाख मील दूर है। यह २२५ दिन में सूर्य का एक चक्कर लगा लेता है और अपनी कीली पर ३० दिन में ही घूम जाता है। इसका व्यास ७६०० मील है। इसकी गति २१ मील प्रति सैकिंड है। इसका वायुमंडल बादलों की परतों से भरा हुआ है। वायुमंडल में कार्बनडाइऑक्साइड का प्रभाव है।

३ पृथ्वी—पृथ्वी सूर्य से ६ करोड ३० लाख मील दूर है। सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाने में पृथ्वी को ३६५। दिन लग जाते हैं। चन्द्रमा इसका उपग्रह है। पृथ्वी का आकार गेंद की तरह गोल है परन्तु ध्रुवों पर यह कुछ चपटी और विषुवत् रेखा पर कुछ उठी हुई है। ध्रुवों के पास इसका व्यास ७६०० मील है व विषुवत् रेखा के पास ७६२६ मील है। पृथ्वी के हर हिस्से में चुम्बकत्व का गुण थोड़ा बहुत जरूर पाया जाता है।

४. मंगल—मगल ग्रह (तारा) लाल रंग का है। शुक्र ग्रह को छोड़कर यही ग्रह पृथ्वी के निकटतम है इसका आकार पृथ्वी से मिलता जुलता है। यह पृथ्वी से १४ २ करोड मील दूर है। सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाने में इसे लगभग दो वर्ष लग जाते हैं। वह अपनी कीली पर २४ घन्टे ३६ मिनट मे घूम जाता है। इसका व्यास ४२०० मील है। यह रात को दिखाई देता है और आधी रात के समय बड़ी तेजी से चमकता है। यहां पर ऋतुए छ: महीने लम्बी होती हैं। सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा मगल ग्रह पर गर्मी और प्रकाश बहुत कम पहुंचता है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार यहा पर नदिया, नहरें, झीलें, पर्वत, जमीन व हरियाली पाई जाती है। उनका विश्वास है कि मगल ग्रह में जीव रहते हैं। मगल ग्रह के चारो तरफ दो उपग्रह चक्कर लगाते हैं। एक फोबॉस जिसका व्यास लगभग दस मील है और जो मगल का एक चक्कर आठ घन्टे मे लगा लेता है। दूसरा दिमास जिसका व्यास ५ मील है जो लगभग एक दिन और कुछ घन्टो मे एक चक्कर लगा लेता है।

५ वृहस्पति—यह सौरमडल का सबसे बड़ा ग्रह है जो बादलो से ढका रहता है, परन्तु यह बहुत ही चमकीला ग्रह है। यह हमारी पृथ्वी से १३-१४ गुना बडा है। अधिक ठण्डा होने के कारण यहा जीवधारियों का होना सम्भव है। यह सूर्य से ४८ ३ करोड मील दूर है। इसका व्यास ८८,७०० मील है। यह अपनी कीली के चारों ओर १० घण्टे में एक बार घूम जाता है। वैज्ञानिकों के मतानुसार यहा पर हाइड्रोजन, अमोनिया, हीलीयम आदि गैसें पाई जाती हैं।

इसका आकार पृथ्वी से छ: गुना है। इसका व्यास लगभग
सूर्य से २७९,३५,०००,०० मील दूर है। इसे सूर्य की परिक्रम
लग जाते हैं। परन्तु अपनी कीली पर यह १०-१२ घण्टे में
अधिक दूर होने के कारण यह एक ठन्डा ग्रह है। इसके बारे मे
ज्ञान प्राप्त हो सका है।

९ कुबेर या यम – यह ग्रह मगल से छोटा है। इसकी
लोवेल ने की थी। यह सूर्य से लगभग ६०० करोड मील दूर
लगभग ४००० मील है। सूर्य का एक चक्कर लगाने मे इसे लग
जाते हैं। अधिक छोटा, दूर व कम प्रकाशित होने के कारण इसके
मालूम हो सका है।

उपग्रह चन्द्रमा—चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह है।
निकटतम आकाशीय पिण्ड है। यह पृथ्वी से कई गुना छोटा है। इसक
मील है। चन्द्रमा पृथ्वी से २,२१,६०० मील दूर है।

चन्द्रमा की उत्पत्ति के विषय मे अनेक मतभेद हैं। परन्तु सर्वम
चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है। ऐसा अनुमान है कि आज से ल
पृथ्वी बहुत गर्म थी। वह सूर्य के चारो ओर बडी तेजी से चक्कर ल
परन्तु इसका कुछ हिस्सा वेग के कारण छिटककर अलग हो गया
कहलाया। चन्द्रमा शुरू शुरू मे सूर्य की तरह बहुत गर्म था परन्तु धीरे
पाकर ठन्डा हो गया।

चन्द्रमा पृथ्वी के चारो तरफ चक्कर लगाता है। इसका मुख्य का
की आकर्षण शक्ति है। चन्द्रमा अपनी कीली या धुरी पर भी चक्कर लगा
है। जितने समय मे वह अपनी कीली का एक चक्कर लगा लेता है उतने
ही वह पृथ्वी का भी एक चक्कर लगा लेता है। इसकी परिक्रमा का समय
स्थिति के अनुसार सवा सत्ताईस दिन है यह अपनी कीली पर सवा सत्ताईस
एक पूरा चक्कर लगा लेता है।

उल्काएं—रात मे अक्सर कई चमकदार तारे पृथ्वी की तरफ गिर
देखते हैं। "इन्हे तारो का टूटना" या "उल्कापात" कहते हैं। वास्तव
आकाशीय पिण्ड हैं जो सूर्य के चारो तरफ तेजी के साथ चक्कर लगाते रहते
हे ही उल्काएं कहते हैं। जब कभी ये पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की पकड मे
ते हैं तो खिचाव के कारण पृथ्वी पर गिरने लगते हैं। गिरते समय वायु की रग
गर्म होकर गैस मे बदल जाते हैं और जलने लगते हैं जिससे प्रकाश दिखाई दे
इनमे जो पृथ्वी पर गिरते हैं उनका वजन इतना अधिक होता है कि पृथ्वी प
ा बन जाता है। इस प्रकार की उल्का को प्रस्तर कहते हैं। उल्काओ के जलने
श्चात् केवल इनकी राख बचती है जो धीरे-धीरे धरती पर आ गिरती है। ऐसा
ान है कि इस प्रकार गिरने वाली राख से धरती का भार प्रतिदिन सैकड़ों मन
जा रहा है।

धूमकेतु—सौर परिवार का ही नहीं

इसकी विलक्षणता इसकी पूंछ से है। हमें आकाश में यदा कदा कुछ कुछ पूंछनुमा तारे दिखाई देते हैं। ये चमकदार व लम्बाकार होते हैं। इसी कारण इन्हें पुच्छल-तारे या धूमकेतु कहते हैं। इनकी पूछ कोई दो चार फीट लम्बी नहीं। बल्कि लाखों करोड़ों मील तक फैली हुई होती है और विशेषता यह है कि यह पूंछ घटती बढ़ती भी रहती है। ग्रहों की तरह धूमकेतु भी सूर्य की परिक्रमा करता है। सामान्यतः इसके भ्रमण का समय लम्बा होता है। कुछ धूमकेतु तो अपना भ्रमण ३-३॥ वर्ष में चल कर पूरा कर लेते हैं। परन्तु अधिकांश धूमकेतुओं का समय १०० वर्ष से भी ऊपर है।

(ख) ब्रह्माण्ड के अन्य सदस्य अथवा ब्रह्माण्ड की आधुनिक धारणा—ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ब्रह्माण्ड इतना विशाल है कि अरबों तारापुंज उसमें समाये हुये हैं। व्योम में लगभग १० करोड़ विश्व हैं जिनकी १०० इंच के दूरदर्शक यन्त्र द्वारा सामान्य जांच की जा सकती है। हमारा सौरमंडल इस विशाल ब्रह्माण्ड का अत्यन्त लघु भाग है और ब्रह्माण्ड के असंख्य तारों में से एक साधारण किन्तु महत्वपूर्ण तारा है। अनेक तारे तो सूर्य से इतने बड़े हैं कि उनके व्यास में सम्पूर्ण सौरमण्डल ही समा सकता है। हमारे विश्व की भांति ही व्योम के करोड़ों विश्व मन्द गति से भ्रमण कर रहे हैं और उनमें भी वही द्रव्य की मात्रा है जो हमारे नक्षत्र पुंजों में है। हम सौर परिवार का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। अब नीहारिकाओं तारों आदि ब्रह्माण्ड के अन्य सदस्यों के बारे में थोड़ी जानकारी हासिल कर लेना उचित है।

नक्षत्र या तारक समूह—तारों के देश में जाने से पूर्व हमें धरती ही नहीं, अपने सौर परिवार से भी विदा लेनी पड़ेगी। हमें प्रति रात्रि को आकाश में अनेक तारे दिखाई देते हैं। यदि इन्हें ध्यान से देखा जाय तो वे निश्चित आकारों एवं समूहों में दिखलाई देते हैं। इन समूहों की आकृति कुछ पशुओं जैसे मेष, वृष, मिथुन सिंह आदि से मिलती है। अतः इन्हीं नामों से उन समूहों को पुकारा जाता है। ये समूह ही तारामण्डल, नक्षत्र या तारा समूह कहलाते हैं।

तारों के असंख्य समूहों में ध्रुव तारा और सप्तऋषि मण्डल का नाम हमने प्रायः सुना है। सप्तऋषि मण्डल में सात तारे होते हैं। ये उत्तर दिशा में स्थिर होते हैं। इस मण्डल के चार कोनों पर एक-एक तारा होता है। एक कोने से थोड़ी थोड़ी दूर पर तीन तारे होते हैं। चारों कोनों पर स्थित तारे एक आयत के रूप में होते हैं। आयत वाले तारों में से एक तारे की रोशनी हल्की होती है। इसी की सीध में ध्रुवतारा होता है। यह बहुत ही चमकीला तारा होता है। सप्तऋषि मण्डल के सातों तारे ध्रुव तारे के चारों ओर चक्कर लगाते हैं।

तारे बहुत दूर हैं और कुछ तो इतनी दूर हैं कि इनकी दूरी को मीलों में नापना कठिन है। इनकी दूरी को इसीलिए प्रकाश-वर्षों में नापा जाता है। प्रकाश की गति १,८६,००० मील प्रति सैकिण्ड है। सैकिण्ड से क्रमशः मिनट, घण्टा, दिन, रात और वर्ष भर के दिनों से गुणा किया जाता है तो इस प्रकार एक वर्ष में ६० खरब मील की दूरी तय कर लेगा। स्पष्ट है कि—

[illegible] ... दूरी [illegible] है।

[illegible]

नीहारिकायें [illegible] इसका आकार [illegible] के समान है। [illegible] का विकास हो सकता है। [illegible] की दूरी [illegible] होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि [illegible], सूर्य [illegible] नीहारिकाओं से उत्पन्न हुए हैं। आकाशगंगा [illegible] नीहारिकाओं को दूर- [illegible] से अच्छी तरह देखा जा सकता है।

आकाशगंगा—रात्रि के समय एक [illegible] चौड़ी दूधिया रंग की चोड़ी पट्टी आकाश में दिखाई देती है। यह आकाश में एक धुंधले बादल की तरह होती है। इस सफेद बादल के मार्ग को ही आकाशगंगा कहते हैं। वास्तव में यह मार्ग अनेक तारों के समूह से मिल कर बना होता है। इस मार्ग में तारे एक-दूसरे के इतने निकट होते हैं कि उन्हें अपनी आँखों से अलग-अलग नहीं देखा जा सकता।

मृत तारे—आकाश में हमें कई रंगों के तारे दिखाई देते हैं। इनमें से कुछ तारे नीले, कुछ सफेद, कुछ लाल या पीले रंग के दिखाई देते हैं। तारों के रंग का अन्तर उनके ताप की मात्रा पर निर्भर है। नीली झलकी देने वाले तारों में ताप अधिक होता है। ऐसे तारों में नीली झलकी के साथ ही कुछ उज्ज्वल रंग भी प्रकट हुआ करता है। जब ये ठण्डे होने लगते हैं तो इनका रंग पीला और फिर लाल हो जाता है। अधिक ठण्डा होने पर ये ठोस बन जाते हैं। ठोस अवस्था में आ जाने पर इनका प्रकाश समाप्त हो जाता है। ऐसे तारे ही मृत तारे कहलाते हैं।

वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया है कि यह विश्व अथवा ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है। इस सम्बन्ध में आवश्यक चर्चा अग्रिम पृष्ठों में 'फैलता हुआ विश्व' (Expanding Universe) शीर्षक के अन्तर्गत की गई है।

स्वयंजनन (Spontaneous generation of life)—प्राचीनकाल में न केवल जनता अपितु बुद्धिजीवियों की भी यही धारणा थी कि जीव बहुत से [illegible] में अचानक स्वयंजनन प्राप्त कर लेता है अर्थात् अपने आप अजैविक पदार्थों [illegible] हो जाता है। यूनान के महान दार्शनिक अरस्तू का विश्वास था कि मेंढक

और उसी प्रकार के काफी ऊंची संरचना वाले जीव दलदलो में एकाएक पैदा हो जाते हैं। प्राणीशास्त्र पर उसने 'Historia' Aonomalium' नामक पुस्तक लिखी जिसमें विभिन्न प्रकार के प्राणियों की शरीर रचना तथा उनके रहन-सहन के तरीकों का वर्णन किया गया है। जीवो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उसने 'स्वयजनन' (Spontaneous generation) को ही मुख्य मान्यता दी। इसी प्रकार रोम के विख्यात लेखक वर्जिल (Virgil) ने एक जगह मृतक बैल के शरीर से शहद की मक्खियों के झुण्डों को निकलते हुए देखा और यह विचार व्यक्त कर दिया कि मक्खियाँ मृतक बैल के शरीर में स्वत जन्म लेती हैं, और इसी तरह कीचड़ से कीड़े-मकोड़े उत्पन्न हो जाते हैं। महान कवि होमर का भी इसी प्रकार का विचार था। उसका कहना था कि मक्खियाँ माम से उत्पन्न हो जाती हैं। 'स्वयजनन' के ये विचार प्राचीन युग मे सर्वत्र निर्बाध रूप से फैलाये गये। जोन-वैन-हेमोन्ट ने चूहों की उत्पत्ति के बारे मे स्वेच्छानुरूप उत्पादन या 'स्वयजनन' के विचार की पुष्टि की। उसने बताया कि यदि एक गन्दी कमीज का किसी ऐसे बर्तन मे रख दिया जाय जिसमे गेहूं हों और इक्कीस दिन तक उस अंधेरे स्थान मे रखा रहने दिया जाय तो, "उन दोनो की गन्ध और कमीज में मनुष्य के पसीने के अंकुरोद्गमी मूल तत्व (germinating principle) चूहे उत्पन्न कर देगा।"

'स्वयंजनन' सम्बन्धी इस प्रकार के अन्धविश्वासी और अवैज्ञानिक विचार शताब्दियों तक अपना प्रभाव जमाये रहे। प्रमुख व्यक्तियों तथा वैज्ञानिकों तक का विचार रहा कि बहुत से जीव जिस रूप में दिखाई देते हैं वे प्रकृति द्वारा उसी

में रखे। कुछ को उसने खुला रहने दिया और कुछ को कपड़े की जाली से इस प्रकार ढक दिया कि उसमें मक्खियों का प्रवेश न हो सके। अपने इस प्रयोग में उसने पाया कि सूंडियां मांस के केवल इन्हीं टुकड़ों में बनीं जो खुले रखे गये थे और जिन पर मक्खियां मुक्त रूप से बैठ सकती थीं। अपने प्रयोगों से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यदि सड़ने वाले मांस को मक्खियों से बचा कर रखा जाये तो उसमें कीड़े या सूंडियां (Maggot) उत्पन्न नहीं होते। रैडी ने ही सर्वप्रथम यह पता लगाया कि ये सूंडिया ही बढ़ कर क्रमशः मक्खियां बन जाती हैं। उसने अपनी खोजों से उनके अण्डों को भी देख लिया। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि सूंडिया सड़े हुए मांस से स्वयं पैदा नहीं होती बल्कि मक्खियों द्वारा दिए गए अण्डों से उनका जन्म होता है। रैडी के उपर्युक्त निष्कर्षों का विस्तृत वर्णन १६६८ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी समय ल्यूवेन हुक ने यह विचार प्रस्तुत किया कि एनीमलक्यूल्स (Animalcules) की उत्पत्ति पदार्थ में विद्यमान माइक्रोब्स (Microbes) के अण्डों से होती है। जो भी हो, लोगों ने 'स्वयंजनन' या 'स्वेच्छानुरूप उत्पादन' के सिद्धान्त के सामने इन विचारों को कोई महत्व नहीं दिया।

इसके बाद नीढम (Needham) एवं स्पैलन्जानी (Spallanzani) आदि वैज्ञानिक विद्वानों ने रैडी तथा ल्यूवेन हुक के निष्कर्षों को प्रयोग की कसौटी पर कसा। नीढम ने कुछ बोतलों में मांस के रस (Meat broth) को भरकर डाट बंद करके गर्म करने पर भी कीटाणुओं को उत्पन्न होते हुए पाया। नीढम ने अपना यह मत प्रकट किया कि मांस में वानस्पतिक शक्ति (Vegetative force) होती है जो कीटाणुओं को उत्पन्न करती है। इस प्रकार नीढम और रैडी के विचारों में मतभेद हो गया। अब स्पैलन्जानी ने नीढम के प्रयोगों को बोतलें बन्द करके लगभग दो घण्टे तक गर्म किया। परन्तु उसने पाया कि ऐसा करने से कोई कीटाणु उत्पन्न नहीं होते हैं। पहले तो लोगों ने स्पैलन्जानी के प्रयोगों पर यह आपत्ति प्रकट की कि अधिक समय तक गर्म करने से वानस्पतिक शक्ति नष्ट हो जाती है, किन्तु जब एक बोतल को फोड़ दिया गया तो उसमें तुरन्त ही कीटाणु उत्पन्न होने आरम्भ हो गए। स्पैलन्जानी का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ क्योंकि इससे खाद्य-पदार्थों को सड़ने से बचाने की क्रिया का पता लग गया।

१८३६ में शुल्ज (Schultze) ने, १८३७ में श्वान (Schwann) ने और फिर १८५३-५४ में श्रोडर (Schroeder) एवं डूश (Dush) ने मांस तथा मक्खी को शीशे के एक फ्लास्क में उबाल कर उसकी गर्दन में ऊन की मजबूत डाट लगा दी ताकि बाहरी वायु का भीतर किसी भी मात्रा में प्रवेश न हो सके, और उन्होंने पाया कि ऐसा करने से कीटाणु या सूंडियां पैदा नहीं हुयीं। इन सब लोगों ने विख्यात फ्रेन्च जीव-तत्वज्ञान-वेत्ता लुईस पाश्चयोर (Louis Pasteur, १८२२-१८६५) को प्रयोगों द्वारा 'स्वयंजनन' की धारणा की जांच करने को प्रोत्साहित किया। प्रयोगों द्वारा उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि किण्वन (Fermentation) और सड़ने की क्रियायें किसी प्रकार के अति सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा होती है, न कि

रासायनिक क्रिया द्वारा और वे जीवाणु स्वयं उत्पन्न नहीं होते बल्कि अपने जीवित माता-पिता की ही सन्तान होते हैं। उसने यह प्रमाणित कर दिखाया कि घास-पात को भिगोने वाले पानी में या मांस, धून आदि के सड़ने से उत्पन्न होने वाले जीव स्वयं पैदा नहीं होते वरन् वायु द्वारा उनके अण्डे, स्पोर या बीज उनमें पहुँच जाते हैं।

जीव-शास्त्री अब इस बात को पूरी तरह मानने लगे हैं कि वर्तमान युग में पृथ्वी पर पाये जाने वाले कीटाणुओं को स्वयंजनन नहीं होता है। सूक्ष्म कीटाणुओं को स्वयंजनन पृथ्वी की बाल्यावस्था से पहले कभी हुआ था या नहीं—इसका निश्चित उत्तर विज्ञान अभी तक नहीं दे पाया है। १८७० में हक्सले (Huxley) ने इस सिद्धान्त को कि "जीव की उत्पत्ति जीव से ही होती है" बायोजिनेसिस (Biogenesis) के नाम से पुकारा।

(२) कॉपरनिकस, गैलीलियो और न्यूटन का संश्लेषण (Copernican, Galilian and the Newtonian Synthesis)

जैसा कि बताया जा चुका है कॉपरनिकस ने सूर्य, पृथ्वी व अन्य ग्रहों आदि के सम्बन्ध में प्रचलित पिछले २,००० वर्ष पुराने विचारों को चुनौती देते हुए नवीन विचार प्रस्तुत, किये जो उसकी युगान्तकारी पुस्तक 'De Revolutionibus Orbrum' में प्रकाशित हुए। कॉपरनिकस से पहले विज्ञान क्षेत्र में अरस्तू और टॉलेमी का प्रभाव छाया हुआ था जिनकी मान्यता थी कि समस्त ब्रह्माण्ड का केन्द्र पृथ्वी है और वे सब पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते हैं तथा पृथ्वी स्थिर है। कॉपरनिकस ने इन प्राचीन मतों का खण्डन किया और बताया कि हमारे विश्व का केन्द्र पृथ्वी नहीं, वरन् सूर्य है तथा सूर्य पृथ्वी के चारों ओर चक्कर नहीं बल्कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। यही नहीं पृथ्वी अपनी ही धुरी पर २४ घण्टों में एक बार घूम जाती है और उसकी इस दोहरी गति के आधार पर ही रात और दिन होते हैं एवं ऋतुओं का क्रम ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। कॉपरनिकस ने यह भी कहा कि प्रत्येक ग्रह का वेग भिन्न-भिन्न होता है, और केवल पृथ्वी ही नहीं बल्कि बुद्ध शुक्र, मंगल, गुरु, शनि आदि ग्रह भी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक ग्रह नियमित रूप से अपने कक्षों (Orbits) में सूर्य की परिक्रमा करते हैं और इस पूरी परिक्रमा में अपना विशेष समय लेते हैं। ये क्रियाएं प्रकृति के परिवर्तनशील नियमों से नियमित होती हैं। कॉपरनिक टॉलेमी के सिद्धांत को पूर्ण रूप से गलत नहीं कर सका क्योंकि उसे स्वयं पृथ्वी के आकार सम्बन्धी ज्ञान की भ्रांति थी। केप्लर ने बाद में बताया कि पृथ्वी अण्डाकार है।

कॉपरनिकस के विचारों के पक्ष में गैलीलियो, ब्रूनो, केप्लर आदि ने प्रमाण उपस्थित किये और विश्व की रचना तथा गतिविधि के सम्बन्ध में जानकारी दी जो अधिक सत्य प्रतीत हुई। गैलीलियो (१६४२) ने अपने दूरवीक्षण यंत्र की सहायता से लोगों को चन्द्रमा के धरातल का अवलोकन कराया, सूर्य के धब्बों को दिखाया तथा वृहस्पति के चारों ओर घूमने वाले चार चन्द्रमाओं को बताया। यह

से सीधी रेखा में चल रहा है तो सदा वैसे ही चलता रहेगा, जब तक कि कोई बल उसकी दशा में परिवर्तन करने के लिए प्रयोग में न लाया जाय। न्यूटन के इस नियम के अनुसार भौतिक द्रव्य गतिहीन है, अर्थात् उनमें स्वयं अपनी स्थिति अथवा गति की चाल में परिवर्तन करने की शक्ति नहीं होती। वस्तु के इस गुण को जड़त्व (Inertia) कहते हैं और न्यूटन का यह नियम जड़ता का नियम (Law of Inertia) कहलाता है। गैलीलियो ने इस नियम का प्रतिपादन कर दिया था।

(ii) गति का दूसरा नियम वस्तु की प्रकृति और उस पर लगाये बल से सम्बन्ध रखता है। इसलिए इस नियम के अनुसार संवेग (Momentum) (कण की मात्रा और उसके वेग का गुणनफल) के प्रत्येक सैकण्ड के परिवर्तन प्रभावित बल अथवा शक्ति के अनुपात में होता है और यह उसी दिशा में होता है जिसमें कि वह बल कार्य करता है। इस नियम की सत्यता आंधी से ज्ञात की जा सकती है। आंधी आने पर वायु के छोटे-छोटे कण गतिमान हो जाते हैं और उनकी गति का वेग-बल बहुत अधिक होता है। संवेग के बढ़ जाने से वायु के झोंकों में बल-संचय हो जाता है और उनमें इतनी शक्ति आ जाती है कि वे विशाल वृक्षों को गिरा देते हैं और मकानों की छतों को उड़ा ले जाते हैं।

यह नियम भी गैलीलियो द्वारा प्रतिपादित कर दिया गया था, किन्तु उसने संवेग या दामना (Momentum) की जगह त्वरण (Acceleration) रखा था।

(iii) गति का तीसरा नियम यह है कि क्रिया और प्रतिक्रिया (Action and Re-action) सम और प्रतिगामिनी (Equal and Opposite) होती है। यह नियम पूर्णतः न्यूटन का स्वयं का है। संसार की प्रत्येक जड़ वस्तु इस नियम का पालन करती है। यदि हम किसी वस्तु को मेज पर रखें तो उस वस्तु का जितना बल मेज पर पड़ेगा उतना ही बल मेज उस वस्तु पर डालेगी। यदि ऐसा न हो तो वह वस्तु मेज में से होकर नीचे आ गिरेगी। पृथ्वी चन्द्रमा को खींचती है और चन्द्रमा भी पृथ्वी को बराबर तथा विपरीत दिशा में खींचता है।

न्यूटन ने बताया कि गति के तीनों नियम संसार की प्रत्येक जड़ वस्तु पर लागू होते हैं और केवल सौर मण्डल के सदस्य ही नहीं बल्कि व्योम में जो और अन्य पिण्ड तथा नक्षत्र हैं वे सब भी एक-दूसरे से आकर्षण शक्ति द्वारा आबद्ध हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समस्त ब्रह्माण्ड को यही शक्ति सम्हाले हुए है।

"न्यूटन की खोजों के फलस्वरूप एक ऐसे यांत्रिक विश्व का विकास हुआ जो बल, दबाव, फैलाव, खिंचावों, प्रदोलनों और तरंगों से परिपूर्ण है। प्रकृति की कोई भी विधि ऐसी नहीं प्रतीत होती जिसका हम साधारण अनुभव द्वारा वर्णन ही न कर सकते हों, और जो न्यूटन के आश्चर्यजनक यथार्थ गति-शास्त्र के नियमों से निर्धारित न हो सके।" परन्तु पिछली शताब्दी के समाप्त होते ही इन नियमों में कुछ विषमता प्रत्यक्ष होने लगी और उन्होंने न्यूटन के सम्पूर्ण यांत्रिक विश्व के विचार को आघात पहुँचाया। आइन्सटाइन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के विचार में भी कुछ परिवर्तन किया। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण

(Gravity) पदार्थ तक ही सीमित था लेकिन आइन्सटाइन ने उसकी व्यापकता 'शक्ति' (Energy) तक बढ़ा दी। इसी प्रकार यह भी सिद्ध कर दिया गया कि न्यूटन के नियम विश्व में गति के विश्लेषणार्थ अन्तिम शब्द नहीं हैं। अपने सापेक्षवाद के सिद्धान्त से, जिसकी चर्चा आगे यथास्थान की जायगी, आइन्सटाइन ने इस नियम को संशोधित कर दिया।

(३) डार्विन तथा परिवर्तन सम्बन्धी विचार
(Darwin and the Idea of Change)

डार्विन ने बौद्धिक क्षेत्र में अपने अद्भुत कार्यों से मानवीय विचारों को एक नया मोड़ दिया। जीव-शास्त्र के क्षेत्र में अपनी अलौकिक देन के कारण डार्विन को 'जीव-शास्त्र का न्यूटन' कहा जाता है। इसका जन्म इंगलैंड के एक शहर श्रूज़बरी (Shrewsbury) में १८०६ में हुआ था और १८८२ में इसका प्राणान्त हुआ। बाल्यकाल से ही प्राणी-शास्त्र और वनस्पति शास्त्र के प्रति इसकी रुचि थी। तीन वर्ष तक एडिनबरा में डाक्टरी का अध्ययन करने के बाद १८२८ में डार्विन धार्मिक शिक्षा पाने के लिए केम्ब्रिज भेजा गया, लेकिन इसमें भी उसका मन नहीं लगा। यहीं उसका मिलान विख्यात वनस्पति-शास्त्रवेत्ता हैन्सलो (Henslow) से हुआ और उन्हीं की सहायता से विश्व की समुद्री-यात्रा पर जाने वाले बीगल (Beagle) नामक जहाज पर डार्विन को प्रकृति-शास्त्री (Naturalist) के पद पर नियुक्ति हो गई। अपनी इस यात्रा के दौरान डार्विन ने विभिन्न स्थानों के जीवों के रहन-सहन का अध्ययन किया। उसने पांच वर्ष की अपनी समुद्री यात्रा में देखा कि प्रकृति में घने जंगलों में सहस्रों बीज अंकुरित होते हैं। समुद्र में एक ...ली हजारों अण्डे पैदा करती है और किस प्रकार संघर्ष द्वारा उनमें से केवल ...श्रेष्ठ ही जीवित रह कर अपनी जाति की वृद्धि करते हैं। डार्विन ने यह भी ...। कि एक ही जाति के किसी भी दो जीवों में समानता नहीं होती और जो ...णी अपने आपको वातावरण के अनुकूल बना लेता है वही जीवन-संघर्ष में विजयी होता है। कमजोर नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार नई जातियों का विकास ...ता है। यात्रा के दौरान डार्विन को यह रहस्य भी प्राप्त हुआ कि संसार में जीव-...तुओं की उत्पत्ति आकस्मिक रूप से एक साथ नहीं हुई वरन वे प्राचीनकाल के ...स्वरूप वाले जन्तुओं से शाखा-प्रशाखाओं शनैः शनैः परिवर्तन द्वारा विकसित ... हैं। अपने परीक्षणों और अनुभवों को डार्विन ने अपनी दो पुस्तकों "The ...in of Species by Natural Selection" और "The Theory of Sexual ...ction" में प्रकाशित कराया।

डार्विन ने जिस समय अपना कार्य आरम्भ किया उस समय तक ये विचार थे कि जीवित जीवों की पृथक-पृथक जातियाँ आदिकाल से ही पृथ्वी पर आधुनिक अवस्था में ही चली आ रही हैं। परन्तु पृथ्वी की चिप्पड़ खोदने ...े के जो पाषाण बने हुए अवशेष प्राप्त हुए उनका रूप और आकार आधुनिक-जीवों से भिन्न था। स्पष्ट ही ये जीव, जो कालान्तर में पाषाण-कंकाल बन

गये, नये जीवों के समान नहीं थे अथवा दूसरे शब्दों में इन प्राचीन जीवों की समाप्ति के बाद जिन नये जीवों ने जन्म लिया वे अपने पूर्वजों से भिन्न थे। डार्विन ने प्रकृति की इस विलक्षण परिवर्तनशीलता पर वैज्ञानिक अनुसंधान किये और अनेक यथार्थताओं तथा तथ्यों का संकलन करके परिवर्तन सम्बन्धी अपने विचार प्रस्तुत किये।

डार्विन ने यह प्रमाणित किया कि पृथ्वी पर जीवन सूक्ष्म जीवों से प्रारम्भ हुआ और कालान्तर में प्रगति करते-करते वह उच्च तथा जटिल रूप में पहुँचा। सरल से जटिलता की ओर यह परिवर्तन जातों की सन्तति में थोड़े परिवर्तन होते रहने तथा योग्य व्यक्तियों के प्रकृति के निरन्तर चयन के प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। डार्विन ने बताया कि परिवर्तन का प्रभाव एक दूसरी जाति के निर्माण पर पूरा-पूरा पड़ता है। गाय, बैल, बकरी, ऊँट, घोड़े, मनुष्य आदि की जो अनेक जातियाँ आज विद्यमान हैं, उनमें से बहुत-सी पहले विद्यमान नहीं थीं। इसी तरह प्राकृतिक वातावरण भी जीव विकास और जीव प्रकृति पर परिवर्तन डालता है। हरे-भरे स्थानों के जीवों का रंग प्रायः हरा होता है तो सूखी घास में रहने वाले जीवों का रंग अपने आसपास के रंग के अनुसार होता है। इसी तरह रात में विचरण करने वाले प्राणियों का रंग प्रायः काला या मटमैला होता है। डार्विन ने यह स्पष्ट किया कि देशकाल के अनुसार प्राणियों तथा वनस्पतियों में परिवर्तन आवश्यक है। संसार परिवर्तनशील है और वातावरण निरन्तर बदलता ही रहता है। पृथ्वी की भौगोलिक दशा में परिवर्तन के अनुरूप समय-समय पर जीव भी अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते हैं। परिवर्तित परिस्थिति में टिकने योग्य हो सकने का अर्थ ही विकास (Evolution) है। विकास में उन्नति और अवनति दोनों ही सम्भव हैं। अनुकूल परिस्थितियों में प्राणी उन्नति की ओर विकसित हो सकता है किन्तु यदि नीचे की ओर जाने से लाभ होता है तो प्राणी स्वाभावतः नीचे की ओर जाता है। ऊँची-नीची श्रेणियाँ तो केवल हमारी कल्पनाएँ हैं।

डार्विन ने वास्तव में अनेक क्रांतिकारी सिद्धान्तों को प्रकट किया जिनसे हमें उनके परिवर्तनवाद और विकासवाद के विचारों का बोध होता है। उचित होगा कि हम संक्षेप में इन मुख्य सिद्धान्तों पर दृष्टिनिक्षेप कर लें—

(१) अति उत्पत्ति (Over-productions)—सन् १७९८ ई० में माल्थस ने एक लेख में लिखा था कि जनसंख्या ज्योमेट्रिकल रेशो (Geometrical ratio) से बढ़ती है। इस बात से डार्विन ने विचार किया कि यह नियम पौधों तथा जीवों में भी लागू होना चाहिए। उदाहरण के लिए केवल दो मेंढकों के संयोग से मेंढकों का एक जोड़ा उत्पन्न हो जाता है। यदि ये मेंढक पूरे जीवन में केवल एक जोड़े को ही जन्म दें तो इनकी जाति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। परन्तु यह अपने जीवन-काल में हजारों अण्डे देते हैं और इनसे उत्पन्न होने वाले तमाम बच्चे जीवित नहीं रह पाते। इसी कारण मेंढकों की समस्या हमारे सामने उपस्थित नहीं होती है। यदि ये सब मेंढक जीवित रहते तो पृथ्वी पर इस समय पैर रखने की जगह नहीं

Natural Selection) के द्वारा निम्नलिखित प्रभाव होते हैं—(१) हानिकारक गुण लुप्त हो जाते हैं, (२) लाभदायक गुणों की बढ़ोत्तरी होती रहती है एवं (३) जो गुण हानिकारक या लाभदायक नहीं होते हैं वे नष्ट नहीं होते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते रहते हैं।

मनुष्य की आबादी तेजी से बढ़ रही है। मनुष्य के शत्रु सूक्ष्म जीवाणु (Bacteria) हैं जिनके कारण असंख्य मौतें होती हैं। अकाल, बाढ़ और बीमारियां भी जानवरों की संख्या को नहीं बढ़ने देती हैं। केवल योग्य ही जीवित रहते हैं और अयोग्य मर जाते हैं। इससे यही प्रमाणित होता है कि प्रकृति में चुनाव होता रहता है और इससे नई जातियों की उत्पत्ति होती है।

उपर्युक्त वर्णन से हम यही पाते हैं कि डार्विन का सिद्धान्त दो मूल बातों पर आश्रित था—

(क) नई जातियां धीरे-धीरे भेद बढ़ने की वजह से उत्पन्न होती हैं। (ख) इस प्रकार उत्पन्न हुई जातियां इसीलिये सुरक्षित रहती हैं कि वे वातावरण में दूसरों की अपेक्षा अधिक संघर्ष कर सकती हैं। वास्तव में डार्विन का यह मूल सिद्धान्त था कि जो सबसे अधिक योग्य थे वे ही जीवन-संग्राम में विजयी बनते हैं और जो निर्बल हैं उनका सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

प्रारम्भ में विकासवाद के डार्विन के सिद्धान्त को चारों ओर से विरोध मिला परन्तु इङ्गलैंड के हक्सले, मारस्टे, ल्युबक और कार्पेन्टर ने डार्विनवाद को स्वीकार कर लिया। डार्विन के सिद्धान्त की समीक्षा करना हमारे लिये आवश्यक नहीं है। यहां इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि यह बातें चलकर दो अवस्थाओं में स्वयं ही उलझ जाता है—एक तो जीवों की उत्पत्ति विकास में हुई है या नहीं और दूसरे प्राकृतिक वरण (Natural Selection) ही विकास में मूल कारण है। वर्तमान युग में वैज्ञानिक इस बात को पूरी तरह से मानते हैं कि जीवों का विकास हुआ है परन्तु यह विकास किस भांति हुआ इस पर उनमें मतभेद है।

आधुनिक संश्लेषण – परमाणु रचना और सापेक्षवाद का सिद्धान्त (Modern Synthesis—Study of Atom and Theory of Relativity)

परमाणु रचना – परमाणु रचना का ज्ञान आधुनिक काल की ही देन है, यद्यपि परमाणुवाद किसी न किसी रूप में बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इस सम्बन्ध में विस्तार से प्रकाश अध्याय ३ में 'पदार्थ की बनावट' शीर्षक के अन्तर्गत डाला गया है, अतः यहां पर प्रसंगवश केवल इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि परमाणु के दो भाग होते हैं—

(१) केन्द्रीय भाग जिसे नाभिक या केन्द्रक (Nucleus) कहते हैं केन्द्रक प्रोटोन व न्यूट्रोन का बना होता है। प्रोटोन धन विद्युत युक्त होते हैं तथा न्यूट्रोन पर कोई विद्युत नहीं होती और इनकी मात्रा हाइड्रोजन के एक परमाणु के बराबर होती है।

(२) बाहरी भाग, जिसमें इलेक्ट्रोन रहते हैं जो कि केन्द्र या नाभिक के

चारो ओर चक्कर लगाते रहते हैं। प्रत्येक इलेक्ट्रोन की मात्रा एक हाइड्रोजन परमाणु के १/१८४० भार के बराबर होती है। इस कारण इलेक्ट्रोन का भार प्रोटोन अथवा न्यूट्रोन की अपेक्षा बहुत कम होता है। स्पष्ट है कि परमाणु का जो भी भार होता है, वह प्रधानतः प्रोटोन तथा न्यूट्रोन पर निर्भर करता है।

सौर परिवार के बारे में हम यह जानते हैं कि सभी ग्रहसूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते है। परमाणु को भी एक लघु सौर-परिवार कहा जा सकता है। परमाणु के केन्द्र मे नाभिक अथवा केन्द्रक होता है और इलेक्ट्रोन उसके चारों ओर बड़ी तेजी से चक्कर लगाते हैं। हाइड्रोजन का परमाणु सर्वाधिक सरल होता है। उसके केन्द्रक मे एक प्रोटोन और एक न्यूट्रोन होता है जिसके चारो ओर एक ऋण अणु चक्कर काटता है।

सापेक्षवाद का सिद्धान्त (Theory of Relativity)—अलबर्ट आइन्स्टाइन (१८७६–१९५५) वर्तमान युग के महान गणितज्ञ थे जिनकी खोज के परिणामस्वरूप आज हमे परमाणु शक्ति प्राप्त हो सकी है। आइन्स्टाइन से पहले तक न्यूटन के 'गति के नियम' वैज्ञानिक क्षेत्र मे अपनी अटल सत्यता की धाक जमाये हुए थे, यद्यपि उनमें कुछ-कुछ संदेह की भूमिका तैयार हो चुकी थी। माइकेलसन मोर्ले द्वारा किए गए एक विशेष प्रयोग मे ये नियम ठीक से लागू नहीं हुए और त्रुटिपूर्ण मालूम पड़े। अनेक प्रयोग किये गए, "ईथर", जैसे काल्पनिक पदार्थ की उपस्थिति का तर्क दिया गया, किन्तु किसी भी तरह इस प्रयोग द्वारा 'गति के नियम' और 'वेग के योग' के सिद्धान्त सत्य प्रमाणित नही किये जा सके। अंत मे सन् १९०५ मे आइन्स्टाइन ने अपना सापेक्षवाद का सिद्धान्त (Theory of Relativity) प्रतिपादित किया। सापेक्षवाद के सिद्धान्त के आधार पर उक्त प्रयोग मे उत्पन्न उलझन दूर हो गई और न्यूटन के सम्पूर्ण यांत्रिक विश्व की गणना के विचारो को गहरा धक्का लगा। सापेक्षवाद के सिद्धान्त द्वारा वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने पदार्थ शक्ति, गति और ब्रह्माण्ड के विस्तार सम्बन्धी हमारे विचारो को बहुत बदला और आगे बढ़ाया। आइन्स्टाइन ने १९०५ मे तो सापेक्षवाद के विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और १९१५ मे उसका सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Relativity) प्रस्तुत किया। आइन्स्टाइन के सिद्धान्तो से न्यूटन के सिद्धान्तो को एक नयारूप मिल गया। मोटे रूप मे उसके 'सापेक्षवाद' का सिद्धान्त इस प्रकार है—

(१) समय तथा दूरी का आपस मे घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा वे एक दूसरे पर निर्भर हैं।

(२) कोई भी माप पूर्णतः शुद्ध नहीं है। यह मापने वाले की परिस्थिति से प्रभावित होता है।

(३) द्रव्य तथा ऊर्जा या शक्ति एक ही है। द्रव्य ऊर्जा मे तथा ऊर्जा द्रव्य मे बदल सकता है। द्रव्य और शक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध को उसने गणितीय सूत्र $E = mc^2$ द्वारा स्पष्ट किया।

आइन्स्टाइन ने अनेक लेख लिखे जिनमें यह बतलाया कि विश्व में सारी गति आपेक्षिक है और देखने वाले की स्थिति पर निर्भर है। इसको उसने एक साधारण

उदाहरण प्रस्तुत किया—रेलगाड़ी में बैठा एक व्यक्ति खिड़की से नीचे एक पत्थर फेंकता है। गाड़ी में बैठे हुए मनुष्य को पत्थर सीधी रेखा में नीचे गिरता हुआ दिखाई देता है जबकि रेल की पटरी के किनारे खड़े हुए मनुष्य को वही पत्थर टेढ़ा मार्ग (Parabola) लेता हुआ दिखाई देता है। जो वस्तु दूर से छोटी लगती है वही निकट से बड़ी लगती है, जो एक के लिए विष है वही दूसरे के लिए अमृत बन जाती है। कोई व्यक्ति हमारे पास आकर दस मिनट तक ऐसी बातें करता है जिनमें हमें कोई रुचि नहीं तो हम यही अनुभव करते है कि उसने वृथा हमारा समय नष्ट कर दिया लेकिन यदि उस व्यक्ति की बातें हमें रुचिकर हों तो हम उससे विलग नहीं होना चाहते। ऐसा व्यक्ति हमारे पास आधा घंटा रहने के बाद जाने की बात कहे तो हमारा उत्तर यही होता है "अभी आये पाँच ही मिनट तो हुये हैं, चले जाना।" यही अपेक्षावाद या सापेक्षवाद है। पृथ्वी के ऊपर एक निरीक्षक को ऐसा लगता है कि पृथ्वी स्थिर है और मंगल ग्रह गतिमान है। इसके विपरीत मंगल ग्रह के ऊपर एक निरीक्षक को यह लगता है कि पृथ्वी गतिमान है और मंगल ग्रह स्थिर है। आइन्स्टाइन ने बताया कि इस अपेक्षाकृत एवं परिवर्तनशाली विश्व में केवल एक ही वस्तु समानता रखती है और वह है प्रकाश की गति जो सदैव १,८६,२९० मील प्रति सैकिंड चलती रहती है। आइन्स्टाइन के सिद्धान्त में मूल बात यह थी कि 'प्रकाश का वेग एक स्थिरांक होता है।" यह वेग माध्यम, प्रकाश स्रोत अथवा दर्शक की गति आदि किसी भी बात पर निर्भर नहीं है। 'ईथर' की कल्पना का इससे अन्त हो गया। साथ ही इसके अनुसार भौतिक नियमों और समीकरणों को एक समान रूप दिया गया और यह माना गया कि ये सब जगह समान रूप से लागू हो सकती है परन्तु उनके समय और स्थान की धारणा में संशोधन करना आवश्यक था।

आइन्स्टाइन ने बताया कि एक साथ घटित होने वाली दो घटनाएं वास्तव में एक साथ नहीं घटित होती, यद्यपि प्रतीत ऐसा ही होता है। उदाहरण के लिए जब आप अपनी घड़ी किसी दूसरी घड़ी से मिलाते हैं तो आप मान लीजिये कि दोनों में ठीक पाँच बजे हैं। लेकिन तथ्य यह है कि देखते समय आपने ठीक नहीं देखा। अपनी घड़ी देखते समय आपको लगा पाँच बजे हैं जबकि वास्तव में उस समय इतना समय अधिक हो चुका होता है जितना प्रकाश को घड़ी की सुई से आपकी आँख तक आने में लगा। इसी तरह जब आपने दूसरी घड़ी देखी तो इसी प्रकार समय में अन्तर पड़ गया। अतः दोनों घड़ियों की तुलना ठीक-ठीक नहीं होपाई। ऐसे उदाहरणों से आइन्स्टाइन ने अपने सिद्धान्त में इस बात को स्पष्ट किया कि समय की शुद्ध माप नहीं की जा सकती। उसका माप प्रेक्षक की परिस्थिति पर निर्भर करता है। १९०५ में आइन्स्टाइन ने जो लेख लिखे उनमें से एक मैक्सप्लैंक (Maxplanck) के प्रमात्रा सिद्धान्त (Quantum Theory) पर आधारित था। इस सिद्धांत में यह बताया गया है कि शक्ति में छोटे-छोटे कणों द्वारा गति होती है। प्रकाश के विकिरण फैलाने वाली शक्ति एक अटूट धारा में नहीं निकलती बल्कि विभिन्न कणों में निकलती है जिनको उसने प्रमात्रा (Quantum) कहा।

आइस्टाइन ने यह भी बताया कि प्रकाश शक्ति के छोटे-छोटे कणों का समूह है। उसने इन कणों को फोटोन्स (Photons) का नाम लिया।

आइस्टाइन ने अपने सापेक्षवाद के सिद्धान्त में यह भी बताया कि द्रव्य और ऊर्जा (Matter and Energy) एक ही हैं तथा द्रव्य को ऊर्जा में तथा ऊर्जा को द्रव्य में बदला जा सकता है। आइंस्टाइन के समय तक द्रव्य या पदार्थ और ऊर्जा या शक्ति पृथक-पृथक समझे जाते थे। परन्तु आइस्टाइन ने इस पृथकता के विचार का खण्डन किया। उसने यह सिद्ध किया कि शक्ति में भी भार होता है और जैसे जैसे एक गतिमान वस्तु की गति का वेग अधिक होता जाता है, उसका भार बढ़ता जाता है क्योंकि गति एक प्रकार की शक्ति है और गतिमान वस्तु का भार उसकी बढ़ी हुई शक्ति के कारण ही बढ़ता है।

पदार्थ अथवा द्रव्य और शक्ति अथवा ऊर्जा का सम्बन्ध उसने अपने प्रसिद्ध गणितीय समीकरण $E = mc^2$ से स्पष्ट किया। यह समीकरण बतलाता है कि द्रव्य या पदार्थ के परमाणुओं का विखण्डन करके कितनी मात्रा में ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। साधारण रासायनिक क्रियाओं में परमाणुओं की इलेक्ट्रोन व्यवस्था में अन्तर होता है, केन्द्र वैसा का वैसा ही बना रहता है। परन्तु परमाणु ऊर्जा के रूप में जब हमें परमाणु से विशाल मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है, उस समय परमाणु के इलेक्ट्रानों का नहीं, किन्तु केन्द्रक (Nucleus) का परिवर्तन होता है। इस प्रक्रिया में परमाणु का कुछ भाग नष्ट हो जाता है और यह विनष्ट भाग आइन्स्टाइन के मात्रा-शक्ति के नियम (Mass Energy Relation) के अनुसार शक्ति में परिवर्तित हो जाता है। आइन्स्टाइन समीकरण ($E = mc^2$) में 'E' अर्ग (Ergs) ऊर्जा के लिए आता है 'm' ग्राम में पदार्थ की मात्रा बताता है और 'c' प्रति सैकिण्ड में सेन्टीमीटरों में प्रकाश की गति बताता है। यहाँ पर 'c' एक स्थिरांक है और इसका मान प्रकाश के वेग के बराबर होता है अर्थात् $c = 3 \times 10^{10}$ (प्रकाश का वेग $= 3 \times 10^{10}$ सेन्टीमीटर प्रति सैकिण्ड)। स्पष्ट है आइन्स्टाइन के समीकरण में मुख्य बात 'c^2' की है। मान लीजिए कि हम एक ग्राम पदार्थ को ऊर्जा अथवा शक्ति में परिवर्तित करना है, तो उपर्युक्त समीकरण के अनुसार—

$$\text{शक्ति } (E) = 1(m) \times c^2$$
$$= 1(30000000000)^2$$
$$= 2(900,000,000,000,000,000,000)$$

[illegible]

[illegible]

(G [illegible]

'शक्ति' (energy) तक बढ़ा दी। उसने यह प्रमाणित कर दिया कि बहुत शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण से इस प्रकार की किरणें प्रभावित होती हैं और वे उसकी ओर झुक जाती हैं।

(५) फैलता हुआ ब्रह्माण्ड या विश्व
(Expanding Universe)

पूर्ववर्ती पृष्ठों में ब्रह्माण्ड अथवा विश्व (The Universe) की चर्चा करते समय यह बताया गया था कि इस विशाल ब्रह्माण्ड का निरन्तर प्रसार हो रहा है। ज्यों-ज्यों शक्तिशाली दूरवीक्षण यंत्र बनते गये हैं त्यों-त्यों इस ब्रह्माण्ड की विशालता और इसका प्रसारण स्पष्ट होता गया है। सन् १६१५ में विलसन पर्वत के दूरवीक्षण यंत्र से प्राप्त आंकड़ों से ऐसा लगा कि आकाश गंगायें एक दूसरे से दूर भागती जा रही हैं। अभी तक ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में प्रचलित विचार यही थे कि वह असीम है अथवा ससीम है। इस पर निश्चित मत नहीं बन पा रहा था। किन्तु आइन्स्टाइन ने स्पष्ट रूप से कहा कि ब्रह्माण्ड असीम नहीं है उसकी सीमायें सदैव आंकी जा सकती हैं तथापि वह अति विशाल है जिसमें करोड़ों आकाशगंगायें समा सकती हैं। आइन्स्टाइन ने कहा कि ब्रह्माण्ड अनन्त नहीं है, अनन्त सा (असीम जैसा लगने वाला) है। यह गोलाकार है और इसमें मुड़ा हुआ व्योम है। विश्व की लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई (Three Dimensions) इसकी पूर्ण व्याख्या नहीं कर सकते। प्रत्येक घटना केवल एक ही जगह पर घटित नहीं होती बल्कि किसी विशेष समय पर भी घटती है। विश्व में जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक सीधी रेखा दिखाई देती है वह सीधी न होकर मुड़ी हुई है। यह विश्व अथवा ब्रह्माण्ड गोलाकार है जिसके तल के किनारे-किनारे हजारों नक्षत्र-पुंज हैं। यह ब्रह्माण्ड निरन्तर बढ़ रहा है, फैल रहा है और विकास को प्राप्त हो रहा है। इसके व्यास की गणना २,०००,०००,००० प्रकाश वर्ष आंकी गई है। आकाश गंगा एक उल्टे कटोरे जैसी है जिसका व्यास लगभग ३ लाख प्रकाश वर्ष है। हमारे इस तारा पुंज में लगभग ४०,०००,०००,००० नक्षत्र हैं। ब्रह्माण्ड इतना विशाल है कि अरबों तारा पुंज उसमें समाये हुये हैं और प्रत्येक तारा-पुंज में करोड़ों प्रदीप्त नक्षत्र, विरल वाष्पीय पदार्थ की अगणित मात्रा, लोहे व पत्थरों की ठण्डा पद्धति तथा विश्व सम्बन्धी धूल कण हैं। सूर्य के प्रकाश की किरणें १८६००० मील प्रति सैकिण्ड चल कर इस विश्व में एक विशाल घेरा बना कर अपने स्रोत पर फिर २००० अरब वर्षों में फिर लौट कर आ जायगी। यह विश्व फैलता चला जा रहा है—पास वाले तारा-मण्डल जो लगभग १० लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं, केवल १०० मी० प्रति सैकिण्ड के क्रम से चल रहे हैं, परन्तु जो २५०० लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं, वह २५००० मील प्रति सैकिण्ड के क्रम से उड़ते चले जा रहे हैं। इस प्रकार यह विश्व निरन्तर बढ़ रहा है और फैल रहा है।"

TOPICS FOR ESSAYS
(निबन्ध के विषय)

Write a short essay on each of following topics ;—
निम्नलिखित विषयों में से प्रत्येक पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए :—

(a) The Universe—old and modern concept about it.
विश्व और उसके प्रति प्राचीन एवं आधुनिक विचार।

(b) Evolution of Ideas about Elements.
तत्वों के बारे में विचारों का विकास।

(c) Spontaneous Generation of Life.
स्वयंजात अथवा जीवन की स्वतः उत्पत्ति।

(d) Parallel growth of practical arts and theoretical Speculation.
प्रायोगिक कलाओं तथा सैद्धान्तिक कल्पनाओं की समानान्तर वृद्धि।

(e) Copernican, Galilian and the Newtonian Synthesis
कॉपरनिकस-गैलीलियो-न्यूटन-संश्लेषण।

(f) Darwin and the ideas of change.
डार्विन और परिवर्तन सम्बन्धी विचार।

(g) The theory of Relativity
सापेक्षवादी सिद्धान्त।

(h) Structure of an Atom.
परमाणु रचना।

(i) Modern Synthesis illustrated by the Study of the Atom and the Theory of Relativity
अणु और सापेक्षवाद के सिद्धान्त की व्याख्यायुक्त आधुनिक संश्लेषण।

BRIFF NOTES

(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

निम्नलिखित में से प्रत्येक पर २०० शब्दों में टिप्पणी लिखिये—

(a) वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभाव वाले युग में प्राकृतिक घटनाओं के प्रति विचार।
(b) प्रकृति के सारे कार्यों में नियमितता है।
(c) प्राचीन यूनान में वैज्ञानिक प्रगति।
(d) प्राचीनकाल की तीन समकालीन सभ्यतायें—सैन्धव सभ्यता, सुमेरियन सभ्यता और यूनानी सभ्यता।
(e) न्यूटन का संश्लेषण।
(f) फैलता हुआ विश्व (Expanding Universe)
(g) आइन्स्टाइन का सापेक्षवादी सिद्धान्त।
(h) विश्व के प्रति भू-केन्द्रवादी तथा सूर्य केन्द्रत्ववादी सिद्धान्त।
(i) तत्वों के बारे में प्राचीन भारतीय विचार।
(j) *तत्वों की रॉबर्ट बॉयल की व्याख्या।*
(k) प्रमात्रा सिद्धान्त (Quantum Theory)
(l) गति के तीन नियम।
(m) वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से पूर्व पाषाण युग और उत्तर पाषाण युग।

OBJECTIVF TYPE QUESTIONS

(नवीन शैली के प्रश्न)

१. *सही शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—*
(a) छोटे-छोटे कणों से बनने वाले समस्त पदार्थ""कहलाते हैं।
(कोष/तत्व/अणु/)

(b) सौरमण्डल के ज्ञान से सम्बन्धित उल्लेखनीय नाम हैं कॉपरनिकस, ... तथा न्यूटन (डार्विन, डाल्टन, गेलीलियो)

(c) नक्षत्र........के घूमने के कारण दिखाई देते हैं। (सूर्य, पृथ्वी, तारा पुंज)

(d) $E = mc^2$........के नाम से सम्बन्धित है। (कैप्लर/न्यूटन/आइन्स्टाइन)

(e) विज्ञान का उद्‌गम ...... माना जाता है। (यूनान/मिश्र/भारत)

(f) डार्विन ने........ नामक पुस्तक लिखी थी। (ओरिजिन ग्राफ मेन/ ग्रारिजिन ग्राफ स्पेसीज/ग्रारगेनिक इवोल्यूशन

२. 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिए—

(a) यूनानी विद्वान विज्ञान के व्यावहारिक रूप को बहुत पसन्द करते थे।

(b) स्वतोजनन के विचार टोलमी ने प्रारम्भ किए थे।

(c) ज्योतिषशास्त्र का जन्म ईसा के पश्चात् हुआ।

(d) ग्रह भ्रमण करते हुए नक्षत्र नहीं है।

(e) डिमोक्रिटस ने प्रारम्भिक परमाणु सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

(f) ब्रह्माण्ड असीम है।

(g) प्रसिद्ध परमाणु सिद्धान्त के प्रवर्तक आइन्स्टीन थे।

(h) हमें एक सौ से भी अधिक तत्वों की जानकारी है।

(i) प्रत्येक पदार्थ पृथ्वी, अग्नि, वायु और जल इन्हीं चार तत्वों का बना हुआ है।

(j) डिमोक्रिटस एक बेबीलोनिया के ज्योतिषी का नाम है।

(k) सूर्य आकाश में पूर्व से पश्चिम की ओर जाता है जबकि पृथ्वी स्थिर रहती है।

निम्नलिखित में से गलत व्यक्ति अथवा वस्तु का नाम बताओ—

(a) न्यूटन ने निम्नलिखित वैज्ञानिकों के विचारों का समन्वय किया- कॉपरनिकस, अरस्तू, गैलीलियो और कैपलर।

(b) न्यूटन ने हमें निम्नलिखित सिद्धान्त दिए— गुरुत्वाकर्षण का नियम, (Law of Gravitation) गति के नियम, ग्रहों के गति नियम, प्रकाश का कणिका सिद्धान्त (Corpuscular Theory of Light)

(c) परमाणु का आधुनिक सिद्धान्त डाल्टन, केवेन्डिश लेवाइजियर अथवा प्रीस्टले ने रखा।

...र दीजिए—

... मनुष्य ने सबसे पहले किस धातु का उपयोग शुरू किया— (लोहा, तांबा, सोना, चांदी)

... प्रारम्भिक सभ्यताओं का निर्माण कहाँ शुरू हुआ—(पहाड़ों पर, (नदी-घाटियों में, द्वीपों में)

... सैद्धान्तिक विचारधारा का प्रारम्भ कहाँ माना जाता है— (मिश्र, फारस, यूनान, भारत)

... गणनात्मक विचारों का प्रारम्भ किसने किया—(थेलीज, एनैक्सीमेनीज, हीरेक्लीटस)

वैज्ञानिक विधि-तथ्यों का अध्ययन और उपकल्पना तथा सिद्धान्त का निर्माण एवं कुछ उदाहरणों द्वारा उनकी जांच विज्ञान की बदलती हुई धारणाएं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण

(The Method of Science : Objective study of facts and format[ion] of Hypothesis and Theory and their verification as illustrated by a few case histories; Changing patterns and concepts of Science; The Scientific outlook)

हम विज्ञान की दुनिया में रहते हैं। 'विज्ञान' शब्द सदैव हमारे कान[ों में] झंकृत होता रहता है। हम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि विज्ञान का अ[नुभव] एक महत्वपूर्ण अनुभव है और यह अनुभव एक बड़ी सीमा तक मनुष्य को प्र[गति] की ओर अग्रसर करता है।

विज्ञान का इतिहास मानव द्वारा प्रकृति के रहस्यों को जानने की एक कह[ानी] है। प्रकृति की गतिविधि आज भी वही है, जो अतीतकाल में थी, भेद केवल म[नुष्य] द्वारा उसे समझने एवं उपयोग में लाने का है। सूर्य एवं अन्य दिव्य पिंड (Heave[nly] bodies) आज भी उसी गति से भ्रमण कर रहे हैं तथा उन्हीं नियमों का पालन [कर] रहे हैं, जिनका पालन वे अतीतकाल में करते थे। दिन में सूर्य का नियमित उ[दय] और अस्त होना, रात्रि में चन्द्र तथा अगणित तारागणों का चमकना, वर्ष में क्रम[ानु]सार ऋतुओं का होना, पानी का बरसना, वायु का चलना आदि सभी प्राकृ[तिक] घटनाओं के पीछे कुछ न कुछ निश्चित नियम हैं। ये नियम आदिकाल में भी [थे,] आज भी वैसे ही हैं, और भविष्य में भी बने रहेंगे। आदिकाल में मनुष्य का ज्ञा[न] सीमित और अव्यवस्थित था। इसीलिये उस समय मनुष्यों में प्रकृति के रहस्यों [के] पीछे निहित वैज्ञानिक नियमों को समझने और उन पर मनन करने की क्षमता [नहीं] थी। मनुष्य प्रत्येक प्राकृतिक घटना को दैवीय कार्य कहता था। प्राकृतिक घटना[ओं] को वह देवताओं की इच्छा मानता था। प्राकृतिक प्रकोपों का कारण दैवी कोप [स्]वीकार करके वह विभिन्न कल्पित प्राकृतिक देवी-देवताओं को खुश करने के लि[ए] उनकी उपासना करता था और प्रवृत्त होता था। सूर्य और चन्द्र उसके लिए देवत[ा] थे और पृथ्वी उसके लिए पूजनीय देवी थी। अग्नि को वह अग्नि देवता की उपा[सना] और जल को जल देवता (वरुण देव) की उपज मानता था।

विज्ञान का प्रादुर्भाव:—मानव जब तक अन्धविश्वासों में फंसा रहा, तब तक विज्ञान प्रगति की सीमा से दूर रहा। वैज्ञानिक ज्ञान के स्थान पर अज्ञान

और अन्धविश्वास का अंधकार मानव सभ्यता के विकास को ठुकराता रहा। लेकिन मनुष्य, जो विश्व के अन्य सभी प्राणियों की अपेक्षा अधिक जिज्ञासु था और है, आगे बढ़ने से रुक न पाया। विभिन्न घटनाओं के अध्ययन और विभिन्न सामयिक प्रयोगों से शनैः शनैः उसे प्राकृतिक रहस्यों का ज्ञान होने लगा। नाक, कान, आंख, मुंह और त्वचा-अपनी इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं अन्य साधनों द्वारा वह प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करता गया। धीरे-धीरे ज्ञान के क्षेत्र में वृद्धि हुई, उसको व्यवस्थित किया गया और इस प्रकार 'विज्ञान' (Science) का प्रादुर्भाव हुआ। विज्ञान के साधनों द्वारा विभिन्न विषयों पर प्राप्त ज्ञान को समय-समय पर संगठित और सुव्यवस्थित किया गया और इसे ही 'विज्ञान' की संज्ञा दी गई।

विज्ञान का अर्थ—उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 'विज्ञान' वह विद्या है जो किसी वस्तु या विषय के बारे में पूर्ण, क्रमबद्ध, सुसंगठित और सुव्यवस्थित ज्ञान प्राप्त कराती है। संक्षेप में किसी भी विषय के 'व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध" ज्ञान को 'विज्ञान' कहते हैं। यह देखी हुई बातों के समूह को आपस में मिलाने और एक सामान्य नियम की खोज करके उनको एक सुन्दर एकता में लाने का प्रयत्न करता है। 'विज्ञान' शब्द एक लेटिन (Latin) शब्द से निकला है जिसका अर्थ है 'जानना, (to know)। विज्ञान हमें यह ज्ञान कराता है कि हमारा यह संसार क्या है और हम उसे किस भांति अपने अनुकूल बना सकते हैं ("Science in its widest sense, is a systematic method of describing & controlling the material world")। विज्ञान रहस्यों एवं गुप्त विषयों को प्रकाशित करने वाली विद्या है। यह प्रकृति के परिवर्तनशील एवं सक्रिय नियमों का ज्ञान कराता है। यह वह विद्या है, जिससे हम भौतिक-अभौतिक पदार्थों के व्यवहार के नियम एक निश्चित रूप में और व्यवस्था के साथ जानने का प्रयत्न करते हैं।

प्रकृति नियमों के बन्धन में बंधी हुई है। प्रकृति के व्यवहार में एकाकारिता
Uniformity) के दर्शन होते हैं, अर्थात् उसमें मूलतः अपरिवर्तनशील व्यवहार छिपा
ता है। उदाहरणार्थ पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है, वह प्रत्येक वस्तु को अपनी
र खींचती है। यह प्रकृति का एक निश्चित नियम है। लेकिन यदि कोई वस्तु
ी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से परे हो जाती है अथवा उसमें उस शक्ति से अधिक
उत्पन्न हो जाती है तो वह वस्तु पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध ऊपर ही
रहती है, खिंचकर नीचे नहीं आती। यह प्रकृति का दूसरा नियम है। पक्षी, गुब्बारे,
वायुयान गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध तभी उड़ पाते हैं जब उन्हें उस शक्ति से अधिक
शक्ति उत्पन्न हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति के व्यवहार में जो
भिन्नतायें दिखाई देती हैं वे भिन्न नहीं हैं, बल्कि नियमों की ही पोशाक है। प्रकृति के
प्रत्येक अपवाद में कोई न कोई नियम छिपा पड़ा है। विज्ञान प्रकृति के इन्हीं नियमों
का अध्ययन करता है—किन्तु एक व्यवस्था और निश्चयता के साथ।

विज्ञान एक विषय नहीं है अपितु एक कार्यप्रणाली है जिसमें सबसे पहले
भिन्न तथ्यों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है और उसके बाद उनका नियमित
र से संबंध होता है और फिर उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने वाले सिद्धान्तों

की व्याख्या की जाती है। विज्ञान में कल्पना भी है किन्तु इस कल्पना का सम्बन्ध प्रत्यक्ष से रहता है। प्रत्यक्ष के आधार पर ही वैज्ञानिक की काल्पनिक मनोवृत्ति में प्रगति होती है। इन्हीं कल्पनाओं को प्रयोग द्वारा वह सिद्ध करता है। विज्ञान केवल अनुमानों और विचारों पर निर्भर नहीं है। वह वास्तविक अनुभव तथा उन प्रयोगों पर आधारित है जिन्हें इच्छानुसार दोहराया जा सकता है और जिन्हें सदैव सत्यता की कसौटी पर रखा जा सकता है।

विज्ञान में रूढ़िवाद अथवा परम्परावाद के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि कोई सिद्धान्त चाहे वह कितना भी प्रचलित और प्रसिद्ध क्यों न हो, सत्यता की कसौटी पर खरा न उतरे, तो ठुकराया जा सकता है। विज्ञान यथार्थता का द्योतक है जिसमें लघुतम त्रुटि के लिए भी कोई स्थान नहीं है। वैज्ञानिक अध्ययन में साधारण सी त्रुटि ज्ञान का नया अध्याय खोल देती है। विज्ञान मानव की अभिवृद्धि करता है। श्री नेहरू के शब्दों मे—

"विज्ञान चुपचाप बैठकर किसी बात के होने के लिए प्रार्थना नहीं करता, अपितु यह जानने का यत्न करता है कि कोई बात क्यों होती है। वह परीक्षण करता है, बार-बार प्रयत्न करता है, कभी सफल होता है तो कभी असफल, और थोड़ा-थोड़ा करके वह मानव ज्ञान की अभिवृद्धि करता है। हमारा यह आधुनिक विश्व प्राचीन विश्व या मध्यकालीन विश्व से बहुत भिन्न है। यह हमारी भिन्नता अधिकांशतः विज्ञान के ही कारण है, क्योंकि आधुनिक युग का निर्माण विज्ञान ने किया है।"

१५४ वैज्ञानिक विधि (Scientific Method)

विकास एवं अर्थ—विज्ञान का अर्थ समझ लेने के उपरान्त हम "वैज्ञानिक विधि" पर आते है। प्राचीनकाल मे मनुष्य अधिक वैज्ञानिक प्रगति इसीलिए नहीं कर सका था क्योंकि उसने प्रकृति के रहस्यों के समाधान ढूंढने के लिए गलत तरीके अपनाये थे। वह सिर्फ अपनी कल्पना के आधार पर ही इन समाधानों को ढूंढने का प्रयत्न करता था। वह अपूर्ण आंकडों के आधार पर ही विभिन्न समस्याओं सम्बन्धी निष्कर्ष निकालता था और कभी-कभी तो उसके सिद्धान्त किसी तथ्य पर ही आधारित नहीं होते थे। प्राचीन विज्ञान का इतिहास इसीलिए गम्भीर त्रुटियों से भरा पड़ा है और किसी वैज्ञानिक विधि का अनुसरण न करने के कारण ही प्राचीन दार्शनिक वैज्ञानिक प्राकृतिक रहस्यों को सही रूप में नहीं समझ सके थे।

इसके विपरीत आधुनिक विज्ञान ने, जिसका प्रारम्भ करीब ३५० वर्ष पहले हुआ, बहुत अधिक उन्नति की है क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिकों ने प्रकृति को समझने के लिए एक सही-पद्धति को अपनाया है जिसे हम "वैज्ञानिक पद्धति" कहते हैं। इस पद्धति को एक सुव्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करने का श्रेय फ्रान्सिस (Francis Bacon) को है। बेकन का जन्म लन्दन के यार्कशायर में जनवरी ..६१ में हुआ था। बाल्यावस्था से ही वह बड़ा बुद्धिमान था और ... यह अभिलाषा थी कि वह किसी प्रकार एक ऐसी प्रणाली ... प्राकृतिक शक्तियों पर ... नियंत्रण

कर सके और उन्हें सफलतापूर्वक अपने प्रयोग में ला सके। बेकन को यह पूर्ण विश्वास था कि मनुष्य प्रकृति पर इसीलिए नियन्त्रण नहीं कर पा रहा था क्योंकि वह नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए गलत तरीके अपनाता रहा था। उसे इस बात का भी पूर्ण विश्वास था कि वह एक ऐसी प्रणाली को जन्म दे सकता है जिसको बड़े पैमाने पर अपनाने पर मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकेगा और उनके ज्ञान की अभिवृद्धि की कोई सीमा नहीं रहेगी। बेकन के इस क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्य उसकी "Advancement of Learning" (१६०३) नामक रचना में मिलते हैं। उसने अपनी दूसरी कृति 'Novum Organum" (१६२०) में अपनी पद्धति की विस्तृत रूप से विवेचना की है। अपनी 'वैज्ञानिक पद्धति' को स्पष्ट करने से पूर्व बेकन ने उन त्रुटियों का विश्लेषण किया जो विज्ञान की प्रगति में बाधक थीं। उसने उन त्रुटियों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से अथवा अनेक रूपों से विचार किया। उदाहरणार्थ उसने पाया कि प्राचीन दार्शनिकों में क्रियाओं को समझने की कमी थी क्योंकि वे विज्ञान के तथ्यों को महत्व नहीं देते थे, इसके अतिरिक्त अपनी व्यक्तिगत रुचियों एवं धारणाओं के आधार पर वे प्राकृतिक क्रियाओं से सम्बन्धित अपनी धारणाओं का प्रतिपादन करते थे। अपने इस सम्पूर्ण एवं विशद अध्ययन तथा सूक्ष्म विश्लेषण के द्वारा अन्तिम बेकन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यदि मानव को प्राकृतिक शक्तियों पर नियन्त्रण पाना है तो अपनी पूर्ववर्ती त्रुटिपूर्ण प्रणालियों का परित्याग करना होगा। ऐसा होने पर ही विज्ञान के चरण आगे बढ़ सकेंगे।

बेकन ने जिस "वैज्ञानिक पद्धति" का विस्तृत विश्लेषण एवं विवेचन "नोवम ऑरगेनम (Novum organum) में किया, वही अपने मूल स्वरूप में आज तक ...ी आ रही है, यद्यपि समय के साथ उसका स्वाभाविक विकास होता गया है। ...ज्ञानिक विधि" वस्तुतः कोई सीमित एवं निश्चित प्रणाली नहीं है, प्रत्युत यह ऐसी प्रणाली है जिसका निरन्तर विकास होता रहा है। फिर यह एक ...पित किया है और व्यक्ति-विशेष के साथ इसके प्रारम्भिक रूप में अन्तर होता ...अत. यह स्वाभाविक है कि इसको किसी निश्चित परिभाषा की परिधि में ...धा जा सकता। इस क्रिया की एक ही दिशा में अनेकता हो सकती है ...न्तिम निष्कर्ष वही या भिन्न हो सकता है। इसकी विभिन्न क्रियाओं में कुछ ...क है तो कुछ शारीरिक। इन्हीं के द्वारा वैज्ञानिक अपने हल निकालता है। इसमें कोई संशय नहीं कि "वैज्ञानिक पद्धति" मानव-मस्तिष्क की कार्यशीलता की प्रतीक है; संयम, चिन्तन और कार्य... साधन है जिसके ... का मिलन है ...

रहता ही है जितना एक दुकानदार और एक रसायनज्ञ द्वारा तौलने की क्रियाओं में होता है। दुकानदार साधारण ढंग से साधारण तराजू से साधारण ढंग से तौलता है जिसमें बहुधा भार का यथार्थ निर्धारण नहीं किया जाता जबकि रसायनज्ञ द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली तुला (Balance) में भार का थोड़ा भी परिवर्तन भी लक्षित होता है, इस तरह विज्ञान को स्पष्ट और सत्य को नहीं ठहराया जाता है।

वैज्ञानिक पद्धति में अपनाये जाने वाले "वैज्ञानिक तर्क"—आधुनिक विज्ञानों के पीछे छिपे हुए वैज्ञानिक सिद्धान्त को प्रस्तुत करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का वैज्ञानिक द्वारा प्रयोग किया जाता है और इस कार्य प्रणाली में कुछ तर्कों का सहारा लिया जाता है जिन्हें हम "वैज्ञानिक तर्क" की संज्ञा देते हैं। ये वैज्ञानिक तर्क तीन प्रकार के होते हैं—

१. अनुरूपता पर आधारित तर्क	(Analogical Reasoning)
२. निगामी पद्धति	(Deductive Reasoning)
३. उद्गामी पद्धति	(Inductive Reasoning)

(१) *अनुरूपता पर आधारित तर्क*—इसमें विशेष उदाहरण से विशेष निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के तर्क में वैज्ञानिक प्रकृति में कुछ विशिष्ट क्रियाओं का निरीक्षण करता है और उनके आधार पर एक विशिष्ट निष्कर्ष पर पहुंचता है। इस प्रकार के तर्क में उन भूतकाल की क्रियाओं को ने का प्रयास किया जाता है जिनका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान में उपलब्ध ... होता। उदाहरणार्थ, पृथ्वी की उत्पत्ति किस प्रकार हुई और प्राचीनकालीन अवस्था के बाद उसमें ऐसे कौन से परिवर्तन हुए कि वह आज एक ठोस ... के रूप में परिवर्तित हो गई—इसे केवल अनुरूपता पर आधारित तर्क (Analogical Reasoning) द्वारा ही बताया जा सकता है। आजकल पृथ्वी के ... भागों में जो परिवर्तन होते हैं, भू-भाग में अथवा चट्टानों में जो घटनायें ... जाती हैं, उन्हीं के आधार पर वैज्ञानिक प्राचीन घटनाओं की कल्पना करते हैं ... कुछ निष्कर्ष पर पहुचते हैं। प्रकृति में (पृथ्वी में) उपस्थित चट्टानों में होने ... विखण्डन की क्रियाओं का निरीक्षण करके ही वैज्ञानिक पृथ्वी की उत्पत्ति और ... आयु के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे एक विशेष क्रिया द्वारा ... विशेष निष्कर्ष पर (From Particular to particular) पहुंचते हैं। यद्यपि ... कुछ अधिक ठीक नहीं है और बड़ा अनिश्चित है, किन्तु ऐसी समस्याओं ... सुलझाने की दिशा में इससे अच्छा विकल्प (Alternative) भी नहीं है। ऐसे ... में बहुत ही सूझबूझ एवं कल्पना के संयम की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि ... के थोड़े से अन्तर के होने से ही सारे तर्क पर पानी फिर सकता है।

(२) *निगामी पद्धति*—इस पद्धति में सामान्य उदाहरणों से विशेष निष्कर्ष पर (From general to particular) पहुंचा जाता है। वैज्ञानिक ऐसे तर्क में पहले साधारण घटनाओं, सामान्य तथ्यों और आंकड़ों का निरीक्षण करते हैं और तब

अपना विशिष्ट' निष्कर्ष निकालते हैं। अपनी ऐतिहासिक समुद्री यात्रा के समय विभिन्न जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों के जीवन की सामान्य घटनाओं और विशेष-ताओं का निरीक्षण तथा अध्ययन करके ही डार्विन अपने प्रसिद्ध सिद्धान्त 'प्राकृतिक चयन" (Natural Selection) का प्रतिपादन कर पाया। निगामी-प्रणाली से आजकल आंकड़ों द्वारा ऐसी अनेक समस्याओं का उत्तर प्राप्त किया जाता है जिन्हें सामान्य तरीकों से सुलझाया नहीं जा सकता। लेकिन उसका सही रूप में उपयोग न करने पर इससे गलत निष्कर्ष निकल सकते हैं। टोलेमी, अरस्तू और उनके शिष्यों ने इस प्रकार के तर्क का दुरुपयोग करके अनेक गलत सिद्धान्त प्रतिपादित किए थे। उदाहरणार्थ उन्होंने यह बतलाया था कि पृथ्वी स्थिर है, और विभिन्न ग्रह उसके चारों ओर गोलाकार गति में घूमते हैं। इस गलत सिद्धान्त के प्रतिपादन के फलस्व-रूप ही अरस्तू के लगभग १२०० वर्ष बाद तक वैज्ञानिक क्षेत्र में कोई अधिक कार्य नहीं हो सका।

(३) उद्गामी पद्धति—इस पद्धति में विशेष उदाहरणों से हम ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जो सामान्य नियम के रूप में कार्य करता है (From particular to general)। यह एक ऐसा प्रचलित तर्क है जिसमें एक अधिक लम्बी क्रिया सम्मिलित है। यह विशिष्ट क्रिया किसी प्रयोग के रूप में की जाती है। विज्ञान के क्षेत्र का यह एक सामान्य तरीका है और विज्ञान की अधिकांश प्रगति इसी के आधार पर हुई है। उदाहरणार्थ, हेनरी केवेन्डिश (Henry Cavendish) ने १८७१ में प्रयोग द्वारा यह मालूम किया कि पानी एक यौगिक पदार्थ है जिसमें आक्सीजन तथा हाइड्रोजन आयतन की दृष्टि से १:२ के अनुपात में मिली रहती हैं। प्रयोग द्वारा ही यह ज्ञात किया गया कि साधारण नमक सोडियम और क्लोरीन से मिलकर बना हुआ एक यौगिक पदार्थ है जिसमें इन धातुओं का क्रमश भार के अनुसार अनुपात २३ और ३५·५ है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि नमक चाहे किसी भी विधि से बनाया जाय, उसमें सोडियम और क्लोरीन का अनुपात उपर्युक्त ही होगा। इसी तरह शुद्ध पानी एक यौगिक पदार्थ है और हर स्थान तथा हर प्रकार के पानी में आक्सीजन तथा हाइड्रोजन आयतन की दृष्टि से १ २ के अनुपात में ही मिलेगी। इस उद्गामी पद्धति को सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन के लिए बेकन प्रयुक्त किया था। इसलिए इसे 'बेकोनियन पद्धति' (Baconian Method) भी क जा सकता है। कभी-कभी निगामी और उद्गामी पद्धति आपस में इस प्रक मिली रहती हैं कि वैज्ञानिक खोजों का आधार केवल एक विशेष पद्धति ही न होता।

वैज्ञानिक आज उद्गामी और निगामी (Inductive and Deductive क्रियाओं द्वारा ही कार्य करते हैं, प्राकृतिक क्रियाओं सम्बन्धी सामान्य नियम (Natural Laws) प्रतिपादित करते हैं और तब इनके आधार पर वे उपकल्पना (Hypothesis) और सिद्धान्त (Theories) बनाते हैं। किसी भी वैज्ञानिक खोज में सफलता प्राप्ति के लिए उद्गामी पद्धति अपनाना नितान्त आवश्यक है। इस प्रणाली का हम हमारे दैनिक जीवन में भी उपयोग करते हैं। जब हम फल खरीदने जाते हैं और किसी एक सेब को; खट्टा, हरा और कठोर पाते हैं तथा दूसरे उसी

तरह ... का भी हम खट्टा ही पाते हैं तो फिर हम उसी प्र
कठोर तीसरे सेब को बिना चखे ही छोड़ देते हैं क्योंकि हम यह
लेते हैं कि यह सेब भी खट्टा होना चाहिए। इस प्रकार इन सेवों
क्रिया में हमारा पहला कार्य उद्गामी क्रिया थी और अपने दो
प्रयोगों द्वारा हमने यह सामान्य नियम निकाला कि हरापन और
हुए सेवों में खट्टापन होता है। स्पष्ट है कि उद्गामी पद्धति द्वारा हम
पर पहुंचे और इसके आधार पर हमने इस उदाहरण में एक विशि
निकाला जो निगामी पद्धति पर आधारित था।

वैज्ञानिक पद्धति में ध्यान रखने योग्य विशेष बातें—यदि हम वि
निकों की अनुसंधान प्रणालियों का अध्ययन करें तो यह पायेंगे कि
समस्या का हल खोजने की प्रक्रिया में अर्थात् अपने वैज्ञानिक अध्ययन एवं
में, सामान्यतया निम्नलिखित विधि अपनाते हैं—

१. समस्या का अनुभव (Realisation of the problem
२ निरीक्षण तथा प्रयोग (Observation and Experimen
३. तथ्यों को एकत्रित करना और उनका वर्गीकरण (Collection of facts and their classification)
४ नाप-तोल (Weighing and Measuring)
५ वैज्ञानिक नियम और उप-कल्पना का निर्माण (Scientific Law and formation a working hypothesis)
६. सिद्धान्त (Theory)

(१) समस्या का अनुभव—वैज्ञानिक सर्वप्रथम जिस समस्या का हल कर
चाहता है उसका स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह इसके सम्बन्ध
स्पष्ट होना चाहता है कि उसको खोज के रूप में क्या करना है ? प्रकृति में होने
वाली प्रत्येक क्रिया किसी न किसी पर आधारित होती है। एक सामान्य मनुष्य
को इस बात का अनुभव नहीं होता। वह यही सोचता है कि प्रकृति की क्रिया किसी
विशेष रूप में इसलिए होती है क्योंकि उसे इसी रूप में होना चाहिए। सोचने का
यह तरीका अवैज्ञानिक है। इस तरीके से हम समस्या को जन्म देने वाले कारणों
को नहीं खोज सकते। सामान्य व्यक्ति के सोचने के ढंग के सर्वथा प्रतिकूल वैज्ञानिक
में विशेष जिज्ञासा वृत्ति होती है और वह प्राकृतिक क्रियाओं के पीछे छिपी हुई
सभी समस्याओं का पता लगाना चाहता है। मनुष्य फलों को वृक्ष से नीचे गिरते
हुए देखते थे, किन्तु न्यूटन से पहले किसी ने इनके गिरने के कारणों को जानने का
प्रयत्न नहीं किया। इस क्रिया ने सबसे पहले न्यूटन का ध्यान आकर्षित किया और
ह यह मालूम करने को उत्सुक हो उठा कि सेब टूट कर पृथ्वी की ओर ही क्यों
या है, आकाश की ओर-क्यों नहीं गया। उसने
करने की चेष्टा की और इसका

(Crook's Tube) पर प्रयोग करते समय रोंजन को 'एक्सरे' (X-Rays) की पहले सूझ उठी। इसी प्रकार लैवायजियर (Lavoiser) प्रयोग कर रहा था कि जलने की विधि से वायु का क्या सम्बन्ध है और इसी बीच उसे यह सूझ पड़ा कि वायु में जो इतनी अधिक मात्रा मे नाइट्रोजन है उसे नाइट्रोजन यौगिक पदार्थ किस प्रकार बनाया जाय—इसी सूझ के फलस्वरूप प्रयास करने पर वायु की नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन से रासायनिक विधि द्वारा अमोनिया बनाने मे सफलता प्राप्त हुई। एक-दो और उदाहरण लीजिए—रासायनिक नील (Indigo) का रंग सर्वप्रथम जर्मनी ने बनाया। इसके बनाने की प्रक्रिया मे एक ऐसी अवस्था आ गई कि प्रतिक्रिया की गति मन्द होती थी और इन रंगों की व्यापारिक सफलता की आशा न थी। संयोगवश उस क्रिया के होते समय उसमे एक थर्मामीटर टूट गया। थर्मामीटर के टूटते ही प्रतिक्रिया का वेग एकदम तीव्र हो गया। वेग मे यह तीव्रता टूटे हुये थर्मामीटर के पारे की उपस्थिति के कारण आई। इसी सफलता से प्रयोगों में प्रगति होने लगी। ग्राह्म बेल (Grahm Bell) और उनका सहकारी वाटसन दोनों ध्वनि सम्बन्धी तार पर कुछ कार्य कर रहे थे। वाटसन के कमरे मे तार के सिर वाले यन्त्र पर एक कमानी (Spring) खराब हो गयी और काम नहीं देने लगी। इस पर उस कमानी को निकाल कर वाटसन उसे हथौड़े से पीटने लगा। यह शब्द उस तार के दूसरे सिरे पर ग्राह्म को अपने कमरे मे सुनाई पड़ा। वह झपटता हुआ वाटसन के पास गया और बोला कि हथौड़े की चोटें पुन. लगाई जाय। ग्राह्म ने फिर से चोटों के शब्द सुने। उसे निश्चय हो गया कि यदि निरर्थक शब्द सुनाई पड़ सकते हैं तो सार्थक शब्द सुनने मे कोई कठिनाई नहीं आनी चाहिये, और इस विचार ने टेलीफोन को जन्म दिया।

इस तरह कहने का आशय यह है कि समस्या का सम्पूर्ण दृष्टिकोणों से अध्ययन वैज्ञानिक विधि का पहला अनिवार्य अंग है।

(२) निरीक्षण तथा प्रयोग—किसी समस्या का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त निरीक्षण और प्रयोग वैज्ञानिक विधि की दूसरी सीढ़ी है। किसी भी समस्या को सुलझाने मे बारीक निरीक्षण का बहुत बड़ा स्थान है। साधारणतया हम अपने आस-पास की वस्तुओं पर ही ध्यान नहीं देते हैं। मगर हमारा निरीक्षण ही अच्छा नहीं होगा तो हम किसी वस्तु की विशेषता और उसकी बारीकियों को शायद ही देख पायें। एक वैज्ञानिक समस्याओं को हल करने या घटनाओं की व्याख्या करने के लिए जितने विभिन्न तरीके हो सकते है, उन सबको ध्यान में रखता है। उनका पूर्ण निरीक्षण करता है और सबकी परीक्षा करने के लिए उद्यत रहता है। अगर विषय सामग्री ऐसी होती है जिसके सम्बन्ध में प्रयोग आयोजित किए जा सकते हैं तो वैज्ञानिक तत्सम्बन्धी प्रयोग करता है। किसी भी पहेली को सुलझाने के लिए उसे छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर लिया जाता है और प्रत्येक भाग का उत्तर प्राप्त करने हेतु प्रयोग किए जाते हैं। इन समस्त उत्तरों को फिर [illegible] करके पहेली को समझने का प्रयास होता है। इन प्रयोगों के लिए यन्त्रों

(५) वैज्ञानिक नियम और उपकल्पना का निर्माण—तथ्यों और आकड़ों का संग्रह करने के बाद उनका तुलनात्मक अध्ययन होता है और तत्पश्चात् उनमें स्थिर अथवा समान व्यवहार निर्धारित किया जाता है जिसे वैज्ञानिक नियम (Scientific Law) कहते हैं। जब वैज्ञानिक नियम स्थापित हो जाता है तो उसकी यथार्थता के कारण का पता लगाने के लिए अनुसन्धान किया जाता है जिसमें कल्पना का आश्रय लिया जाता है। इस नियम से सम्बन्धित सभी घटनाओं को ध्यान में रखते हुये कोई सुझाव रखा जाता है और वह सुझाव उपकल्पना, अनुमान, अभिसिद्धान्त या परिकल्पना के नाम से सम्बोधित किया जाता है जिसे अंग्रेजी मे Hypothesis कहते हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पाश्च्योर ने यह मालूम किया कि रेशम के कीड़ों मे रोग कुछ कीटाणुओं द्वारा होते हैं। इस विचार को लेकर वह आगे बढ़ा। उसने इस बात की सम्भावना का अनुभव किया कि मनुष्य के रोग भी ऐसे कीटाणुओं के द्वारा ही उत्पन्न होने चाहियें और उसने एक उपकल्पना का निर्माण किया जो आगे चलकर सही सिद्ध हुई और जिसने रोगों के कीटाणु सिद्धांत (Germ Theory of Disease) का रूप ग्रहण किया।

(६) सिद्धान्त—उपकल्पना अथवा अनुमान को सत्य सिद्ध करना पड़ता है। उपकल्पना से तर्क के नियमों के आधार पर विशेष निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिनका नवीन प्रयोगो द्वारा निरीक्षण किया जाता है। यदि निष्कर्ष और प्रयोगो के परिणाम मिल जाते हैं तो पुरानी उपकल्पना ठीक सिद्ध हो जाती है अन्यथा उसे रद्द कर दिया जाता है और उसके स्थान पर एक नई सम्भावित उपकल्पना का निर्माण किया जाता है। यदि उपकल्पना से प्राप्त निष्कर्ष सही सिद्ध होते हैं तो वह सही सिद्ध हुई कल्पना सिद्धान्त (Theory) का रूप धारण कर लेती है। दूसरे शब्दों में यदि उपकल्पना या अनुमान उन सभी नियमो या व्यवहारो को विधिपूर्वक प्रमाणित कर देता है तो उसे सिद्धान्त कहते हैं। इस तरह सिद्धान्त एक सिद्ध की हुई ऐसी सामान्य घोषणा (General Statement) है जो अनेक निरीक्षित एवं प्रयोगित तथ्यों पर आधारित होती है। यदि उपकल्पना सही सिद्ध नहीं हो तो उसे सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ पदार्थ और ऊर्जा के सम्बन्ध में आइन्सटीन के प्रसिद्ध विचार जो १६०५ में प्रतिपादित किये गये थे, १६३६ तक उपकल्पना ही रहे। १६३६ मे जर्मन वैज्ञानिक हान (Hahn) तथा स्ट्रेसमैन (Strassman) ने परमाणु का विखण्डन करके आइन्सटीन के विचारों को सही प्रमाणित किया और इस प्रकार उपकल्पना ने एक सिद्धान्त का रूप लिया। वस्तुतः 'सिद्धान्त' और 'नियम' मे अन्तर यही है कि सिद्धान्त को कल्पना के आधार पर अनुमानित किया जाता है तथा उसमे आवश्यक परिवर्तन एवं संशोधन भी हो सकते हैं, लेकिन नियम को ठोस सत्य का आधार रहता है।

अन्त में यह उल्लेखनीय है कि वैज्ञानिकों की समस्याएं एक ही प्रकार की नहीं होतीं वे तरह-तरह की समस्याओं के बारे मे अध्ययन करते हैं-कोई तारों के बारे में अध्ययन करता है, कोई पृथ्वी की रचना के सम्बन्ध में, कोई विभिन्न प्रकार के जीवन के सम्बन्ध मे, कोई भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियों के सम्बन्ध में, कोई

इस सृष्टि मे पाये जाने वाले पदार्थों के सम्बन्ध मे, आदि आदि। वैज्ञानिक अपनी विभिन्न समस्याएँ अपनी आस-पास की दुनियाँ से प्राप्त करते हैं और वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते हुए उनका हल खोजते है। हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि जीवन मे अनुभव होने वाली असुविधायें अनेक समस्याओ का स्रोत होती है। जीवन में अनुभव होने वाली असुविधाओ के प्रति सजग होकर उनके निराकरण करने का अभ्यास ही हमे वैज्ञानिक पथ की ओर उन्मुख करता है।

वैज्ञानिक पद्धति के उदाहरण—वैज्ञानिक पद्धति के व्यावहारिक रूप को हम कुछ उदाहरणों द्वारा अच्छी तरह समझ सकते हैं। यहाँ हम दो उदाहरण लेंगे, जिनके द्वारा वैज्ञानिक पद्धति के व्यावहारिक रूप पर अच्छा प्रभाव पड़ सकेगा।

(१) आधुनिक विज्ञान की नींव डालने वाले प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो ने इस समस्या का हल खोजा कि यदि भारी और हल्की वस्तुएँ समान ऊँचाई से छोड़ी जाएँ तो वे पृथ्वी पर एक साथ पहुँचेंगी अथवा आगे-पीछे? उसके मस्तिष्क मे यह समस्या लगभग ३५० वर्ष पूर्व उत्पन्न हुई थी। प्राचीन काल मे लगभग २३०० वर्ष पूर्व महान दार्शनिक अरस्तू ने बताया था कि भारी वस्तुएँ हल्की वस्तुओं की तुलना मे अधिक तेज गति से नीचे गिरती हैं। अरस्तू की पश्चिम में इतनी प्रतिष्ठा थी कि लोग उसकी बात को बिना परीक्षा किये सत्य मान लेते थे।

गैलीलियो एक बुद्धिमान और संवेदनशील वैज्ञानिक था जो किसी बात को केवल इसीलिए सत्य नहीं मानना चाहता था क्योंकि अरस्तू ने उसे सत्य बताया था। वह किसी विचार को प्रयोग की कसौटी पर परख कर देख लेने के पश्चात् ही यह निर्णय करता था कि वह विचार सत्य है अथवा असत्य। अतः यह स्वाभाविक था कि उसने उपर्युक्त समस्या के सम्बन्ध में भी प्रयोग करके अपना [illegible] विवेचन किया। गैलीलियो इटली के पीसा नगर में रहता था जहाँ १८० फुट ऊँची एक झुकी हुई मीनार है। उसने उस मीनार के ऊपर से एक हल्की और भारी गेंद एक साथ छोड़ा। दोनों ही एक साथ पृथ्वी पर पहुँचती प्रतीत हुईं। [illegible] केवल एक ही प्रयोग के आधार पर किसी निर्णय पर नहीं पहुँचना [illegible] उसने विभिन्न भार और परिमाण की वस्तुएँ लेकर अनेक प्रयोग किए। [illegible]

[illegible]

तथा प्रतोड़ित होकर भी उसने विज्ञान के पौधे को सींचा जो आज विशाल वृक्ष के रूप में लहलहा रहा है।

(२) महान् रसायनशास्त्री अंग्रेज वैज्ञानिक सर हेम्फ्रे डेवी ने खानों में दुर्घटनाओं की समस्या का हल खोजा। युवावस्था में हेम्फ्रे डेवी की एक प्रयोगशाला में नियुक्ति हो गई थी। वहां रहते हुए ही उसने अनेक प्रकार के अनुसन्धान किए और उसके सम्बन्ध में निबन्धों का प्रणयन किया। कुछ ही समय में वह एक महान रसायनज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हो गया। हेम्फ्रे डेवी के समय में १६वी शताब्दी में इंगलैंड में कोयले की खानों में आग लग जाने के कारण दुर्घटनायें होने की बहुत बड़ी समस्या थी। खानों में एक प्रकार की गैस उत्पन्न होती थी जो कि चिराग की लौ से जलकर एक भयंकर रूप में विस्फोटित हो जाती थी और अनेक मनुष्यों को प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। खान के मालिकों ने डेवी के समक्ष यह समस्या प्रस्तुत की और उससे समस्या का समाधान खोजने को कहा।

डेवी ने उस खान का निरीक्षण किया जहाँ पर विस्फोट हुआ था। उसने खान खोदने वालों से अनेकानेक प्रश्न किए और गैस को, जिसके कारण विस्फोट होता था, अनेक बोतलों में इकट्ठा किया तथा उसे अपनी प्रयोगशाला में ले गया। प्रयोग के द्वारा डेवी ने यह पता लगाया कि गैस का विस्फोट तब ही होता है जब उसमें पर्याप्त मात्रा में हवा का मिश्रण हो। उसने यह भी मालूम किया कि गैस और हवा का मिश्रण तब ही विस्फोटित होता है जब वह चिराग की लौ से गर्म होकर जल जाता है। इस निरीक्षण के आधार पर ही डेवी इस निर्णय पर पहुँचा कि इस समस्या को सब हल किया जा सकता है यदि ऐसे लैम्प का निर्माण कर लिया जाये जिसकी लौ की गरमी गैस को गर्म न करे।

डेवी ने घटनाओं के प्रति सजग होकर सतर्कता के साथ उनका निरीक्षण किया। यह अभ्यास डेवी को वांछित लैंप का निर्माण करने में सहायक हुआ। डेवी ने अनेक बार पहले यह देखा था कि लोहे के तार की जाली यदि गैस-बर्नर के ऊपर रखी जाती थी तो गैस केवल जाली के ऊपर ही जलती थी नीचे नहीं। इस सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर वह इस निर्णय पर पहुंचा कि यदि खानों में लैम्प और लौ के चारों ओर लोहे के तार की जाली लगाई जाये तो वह लौ की गर्मी को खानों के अन्दर की गैस को जलने से रोक देगी और परिणामस्वरूप विस्फोट नहीं होगा। डेवी ने अपने विचार को प्रयोग रूप में करके देखा। उसने पाया कि उसके द्वारा बनाई गई नई लैम्प बिना किसी विस्फोटन के जलती रही। डेवी के इस नव-आविष्कृत लैम्प के कारण खानों में विस्फोट होने की समस्या समाप्त हो गई और श्रमिक दुर्घटनाओं के भय से मुक्त होकर काम करने लगे।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों द्वारा इस बात का बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है कि वैज्ञानिकों की अनुसन्धान प्रणाली की क्या विशेषताएं हैं।

(३) रोनाल्ड रॉस इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक विशेष प्रकार का मच्छर ही मलेरिया के कीटाणु मनुष्य तक पहुँचाता है, वैज्ञानिक पद्धति के व्यावहारिक रूप पर सुन्दर प्रभाव डालता है।

रोनाल्ड रॉस ने १८९५ में इस बात की खोज आरम्भ की कि क्या मलेरिया के कीटाणु भी उसी प्रकार मानव शरीर में प्रवेश करते हैं जिस प्रकार फीलपाव (Elephantiasis) के कीटाणु एक प्रकार के मच्छर द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुँचते हैं।

उस समय तक मलेरिया से सम्बन्धित इस समस्या के समाधान में सहायक होने वाली जिन बातों की जानकारी थी वे इस प्रकार थीं—

(क) सन् १८७७ में सर पैट्रिक मैन्सन द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका था कि फीलपाव के कीटाणु क्यूलेक्स मच्छर के काटने से मानव शरीर में प्रविष्ट होते हैं।

(ख) सन् १८८० में लेवरन (Laveran) ने मलेरिया के कीटाणु की मनुष्य के लाल रक्त कणों में उपस्थिति प्रमाणित की।

(ग) १८८३ में ए० एफ० ए० किंग द्वारा यह विचार प्रस्तुत किया गया कि सम्भवतः मलेरिया भी मच्छरों के द्वारा ही फैलता है। उसके इस विचार अथवा उपकल्पना (Hypothesis) को पैट्रिक मैन्सन ने अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया, परन्तु इसे अधिक मान्यता प्राप्त न हो सकी।

सन् १८९४ में पैट्रिक मैन्सन ने रोनाल्ड रॉस को मनुष्य के रक्त कणों में मलेरियाणु दिखलाए। अब रोनाल्ड को इस बात का विश्वास हो गया कि मलेरिया कीटाणुओं के द्वारा ही पैदा होता है।

रोनाल्ड रॉस के सामने कुछ तथ्य एकदम स्पष्ट थे। यह सिद्ध हो चुका था कि कुछ बीमारियाँ ऐसी हैं जिनके कीटाणुओं के फैलाने में मच्छरों का हाथ होता है। यह उपकल्पना भी प्रस्तुत की जा चुकी थी कि सम्भवतः मलेरिया का प्रसार भी मच्छरों द्वारा ही होता है। अब रॉस के सामने प्रश्न यही रहा कि इस उपकल्पना की पुष्टि की जाए और उसे सिद्धान्त (Theory) के स्तर पर पहुँचाया जाए। उपकल्पना को सिद्धान्त के स्तर तक लाने के लिए उसने विभिन्न प्रयोग किए और अन्त में अपने उद्देश्य में सफलता अर्जित की।

रोनाल्ड रॉस ने १८९५ में अपना कार्य शुरू किया। वह विभिन्न प्रकार के मच्छरों को एकत्र करके उन्हें बोतलों में रखता था। उन मच्छरों को वह मलेरिया के रोगियों को कटाता था और फिर मच्छरों के पेट और शरीर के अन्य भागों को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से जाँचता था। दो वर्ष के निरन्तर अध्ययन के पश्चात् भी वह किसी परिणाम पर न पहुँच सका। १६ अगस्त १८९७ के दिन उसने [illegible] प्रकार के बड़े भूरे रंग के ८ मच्छरों से मलेरिया पीड़ित व्यक्तियों को [illegible]। इन ८ मच्छरों में से अन्तिम दो मच्छरों में उसे मलेरियाणु के जीवन-चक्र की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ मिलीं। २० अगस्त को रॉस ने ७वें मच्छर को मारा और उसके आमाशय की कोशिकाओं का अध्ययन किया। इन कोशिकाओं में उसे लगभग एक दर्जन विचित्र एक कोशीय प्राणी जैसी कोशिकाएँ दिखाई दीं। ये गोलाकार अथवा अण्डाकार थीं और उनके भीतर काले छोटे-छोटे कण थे जो रूप में वैसे ही थे जैसे मनुष्य के लाल कणों में मिलने वाले मलेरियाणु में देखे जाते थे। २१ अगस्त को ८वें

मच्छर में भी यही बातें पाई गईं। तत्पश्चात् ऐसी ही अवस्थाओं में रॉस ने अन्य प्रकार के मच्छरों को देखने का प्रयास किया, किन्तु उनमें उपयुक्त कोशिकायें ही दिखाई दीं। अपने इन सब प्रयोगों के आधार पर रोनाल्ड रॉस इस निर्णय पर पहुंचा कि (१) ये विचित्र जीव-कोशिकाएं एक विशेष प्रकार के मच्छर के आमाशय से ही निकलती हैं (जिसे हम आजकल मादा एनोफिलीज के नाम से सम्बोधित करते हैं), एवं (२) ये कोशिकाएं उन मच्छरों में पाई गईं जिन्होंने मलेरिया के रोगियों का खून चूसा था। उनके शरीर में वे काले कण भी मिले जो मलेरियाणु में प्राप्त होते हैं। इस तरह रॉस ने पता लगाया कि इन जीव-कोशिकाओं का तथा मनुष्य के रक्त-कण में मिलने वाले मलेरियाणुओं में पारस्परिक सम्बन्ध है।

सन् १८९७ में रोनाल्ड रॉस बहुत कुछ प्रामाणिक निष्कर्ष के निकट पहुंच गया। सन् १८९८ में उसने इन जीव-कोशिकाओं की वह अवस्था भी मालूम कर ली जो मानव के शरीर में प्रवेश करती हैं। वे मच्छर की थूक ग्रन्थियों में पाई गईं जिन्हें स्पोरोजोइट्स कहते हैं। रॉस ने पाया कि जब मच्छर काटता है तो वह अपना थूक मनुष्य के रक्त-प्रवाह में मिला देता है, उसमें स्पोरोजोइट्स (Sporozoites) मौजूद रहते हैं जो लाल कणों में पहुंच कर तेजी से विभाजित होते हैं और मलेरिया बुखार पैदा कर देते हैं।

रोनाल्ड रॉस ने जो खोज की उसकी पुष्टि अन्य वैज्ञानिकों ने की। मैन्सन ने संक्रमणशील मच्छर से अपने लड़के को कटवाया और ठीक दो सप्ताह बाद वह लड़का मलेरिया बुखार से पीड़ित हो गया। ग्रासी नामक एक अन्य वैज्ञानिक ने मलेरियाणु के जीवन-क्रम की सभी अवस्थाओं का ज्ञान हमें प्राप्त कराया।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि रोनाल्ड रॉस ने प्राप्त तथ्यों पर आधारित "उपकल्पना" को प्रयोग और कसौटी पर कसा और तब अन्त में मलेरिया के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि वह मलेरियाणु के द्वारा होता है जो मनुष्य के शरीर में एक विशेष प्रकार के मच्छर को काटने से प्रवेश करते हैं।

(४) प्रसिद्ध फ्रेंच वैज्ञानिक लुई पाश्च्योर ने अनेक वैज्ञानिक आविष्कार किये, पर सम्भवतः उसका सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार यह था कि कुछ रोग कीटाणुओं के द्वारा जन्म लेते हैं। एक बार पाश्च्योर के समक्ष अंगूरों की शराब बनाने वालों ने यह समस्या प्रस्तुत की कि उनकी शराब कुछ समय में खराब हो जाती है उसको खराब होने से किस तरह और कैसे बचाया जा सकता है। पाश्च्योर ने शराब के नमूने का अपनी प्रयोगशाला में निरीक्षण किया और यह पाया कि शराब में कुछ अत्यन्त छोटे जीवाणु थे। उसने शराब निर्माताओं को इन जीवाणुओं से मुक्त होने का उपाय बताया और उनके व्यवसाय की रक्षा की।

पाश्च्योर ने अब यह उपकल्पना अथवा अभिसिद्धान्त प्रस्तावित किया कि जिस तरह कुछ जीवाणु शराब को खराब कर देते हैं उसी तरह ये अन्य जीवों में रोगों की उत्पत्ति और उनके मृत्यु के कारण भी होते हैं। उसके साथ वैज्ञानिकों ने उसके [illegible] का उपहास किया, लेकिन वह बिना वैज्ञानिक परीक्षा किये हुए [illegible] के लिये तैयार नहीं हुआ।

[illegible] बाद पाश्च्योर के सम्मुख एक दूसरी समस्या प्रस्तुत की गई।

फ्रांस में उस समय रेशम के व्यवसाय को जबर्दस्त हानि हो रही थी क्योंकि रेशम के कीड़े किसी अज्ञात रोग से मृत्यु के ग्रास बन रहे थे। पाश्च्योर के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि रेशम के कीड़ों को रोग से मुक्ति कैसे दिलाई जाए। उसने कुछ रोगग्रस्त और कुछ स्वस्थ कीडों को इकट्ठा किया। निरीक्षण करने पर उसे रोग-ग्रस्त कीड़ों के शरीर में ऐसे कीटाणु मिले जो स्वस्थ कीड़ों के शरीर में मौजूद न थे। पाश्च्योर के मन में यह विश्वास जम गया कि इन कीटाणुओं के कारण ही रेशम के कीड़े रोगग्रस्त होते हैं।

अपनी उपर्युक्त धारणा को प्रयोग की कसौटी पर कसने के लिये पाश्च्योर ने कुछ स्वस्थ रेशम के कीडों को दो समूहों में विभाजित किया। एक समूह के कीडों के शरीर में उसने रोगग्रस्त कीडों के शरीर के कीटाणु प्रविष्ट करवाये। दूसरे समूह में उसने वैसे ही रहने दिया। दोनों समूहों को उसने एक ही तरह का भोजन दिया और उन्हें समान प्रकाश और समान तापक्रम की दशाओं में रखा। कुछ ही दिनों में उसने पाया कि जिस समूह के कीडों के शरीर में कीटाणु प्रविष्ट करवाये थे, वह समूह समाप्त हो चुका था जबकि दूसरे समूह में कोई भी कीडा नहीं मरा था। अपने इस अनुसंधान द्वारा पाश्च्योर यह हल खोज सका कि रेशम के कीडों को रोग से [illegible]स प्रकार बचाया जा सकता है।

उपर्युक्त प्रयोग के आधार पर पाश्च्योर की इस धारणा को बल मिला कि [illegible] रोगों के सम्बन्ध में "अभिसिद्धान्त अथवा उपकल्पना" सत्य है। किन्तु उसने [illegible] भी विभिन्न प्रयोगों द्वारा अपने इस अभिसिद्धान्त की पुष्टि करके उसे सिद्धान्त [illegible] स्तर देने का निश्चय किया। ६० वर्ष की आयु में उसने अपने प्रयोग के लिए [illegible] ल कुत्ते के काटने से जो रोग उत्पन्न होता है, उसको चुना। उसने रोगी-कुत्ते के के मुँह से निकलने वाली लार तथा उसके रक्त का निरीक्षण किया लेकिन वह उनमें रोग का कीटाणु न खोज सका। पाश्च्योर इस निर्णय पर पहुंचा कि सम्भवतः रोग [illegible] कीटाणु इतना छोटा है कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना उसे नहीं देखा जा सकता।

उस समय तक पाश्च्योर प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर चुका था कि यदि [illegible] रोग के निर्बल कीटाणुओं की थोड़ी मात्रा में किसी स्वस्थ जीव के शरीर में [illegible] करा दिया जाए तो उससे उन कीटाणुओं से उत्पन्न रोग के प्रति शरीर स्वयं सुरक्षित कर लेता है। पाश्च्योर ने विचार किया कि रोगी के शरीर में यदि [illegible]णु विद्यमान हैं तो जिस भाग में उनके पाये जाने की संभावना है, उस भाग के [illegible]र्थ को लेकर यदि स्वस्थ कुत्ते के शरीर में डाला जाए तो उसको उस रोग [illegible] किया जा सकता है। पाश्च्योर ने अपने परिवेक्षणों के आधार पर यह [illegible] कि इस रोग के कीटाणु स्नायु संस्थान को विशेष रूप से प्रभावित [illegible] अतः उसने एक विधि द्वारा स्नायु संस्थान के एक भाग से कुछ पदार्थ संग्रह [illegible] तत्पश्चात् उस पदार्थ को स्वस्थ कुत्ते के शरीर में प्रविष्ट करा दिया। [illegible] उसने उस स्वस्थ कुत्ते के शरीर में पागल कुत्ते की लार प्रविष्ट की और [illegible] कि उसको रोग नहीं उत्पन्न हुआ। पाश्च्योर अपने इस प्रयोग को उस समय [illegible] गया जब तक उसे यह निश्चय नहीं हो गया कि इस तरीके से हाइड्रो-[illegible] से रक्षा की जा सकती है।

अब पाश्च्योर ने अपना उपर्युक्त प्रयोग मनुष्य पर करने का निश्चय किया। एक बार एक बालक को कुत्ते ने काट खाया। पाश्च्योर ने वही पदार्थ बालक के शरीर में प्रविष्ट किया जिस प्रकार कुत्ते के शरीर में किया था। इस उपचार से बालक में हाइड्रोफोबिया न देखकर पाश्च्योर को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने और भी अनेक लोगों पर उपर्युक्त विधि का प्रयोग किया और अन्त में वह इसको वैज्ञानिक उपचार की विधि मानने लगा। पाश्च्योर की इस खोज से सम्पूर्ण मानव जाति हाइड्रोफोबिया के कारण होने वाली मृत्यु के भय से मुक्त हो गई है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Outlook)

विज्ञान के अभिप्राय और वैज्ञानिक पद्धति पर चर्चा करने के उपरान्त उचित होगा कि हम दो शब्द वैज्ञानिक दृष्टिकोण अथवा वैज्ञानिक मनोवृत्ति के बारे में लिखें क्योंकि वैज्ञानिक प्रगति और उसकी उपयोगिता दोनों के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। यदि हम कुछ वैज्ञानिकों की जीवनियां पढ़ें तो हमें यह ज्ञात होगा कि वैज्ञानिक बनने के लिए वैज्ञानिक विधि का अभ्यास करने के अतिरिक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने की अर्थात् हम वैज्ञानिक मनोवृत्ति या मानस का निर्माण करने की अत्यन्त आवश्यकता है। नीचे हम वैज्ञानिक मनोवृत्ति की कुछ विशेषताओं का वर्णन करते हैं—

(१) वैज्ञानिक जिज्ञासु होता है। जगत में दृष्टिगोचर होने वाली विभिन्न वस्तुओं और घटनाओं के बारे में वह जानना चाहता है, समझना चाहता है। उनके सम्बन्ध में प्रश्न करता है। उदाहरणार्थ–न्यूटन ने जब वृक्ष से गिरती हुई सेब को देखा तो उसने इस घटना का कारण जानना चाहा और उसकी इस जिज्ञासा के फलस्वरूप ही वह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का आविष्कार कर सका।

(२) वैज्ञानिक जब तक किसी विषय अथवा समस्या से सम्बन्धित समस्त आवश्यक तथ्यों से परिचित नहीं हो जाता तब तक वह उसके सम्बन्ध में कोई निर्णयात्मक दृष्टिकोण ग्रहण नहीं करता। उदाहरणार्थ–वह वैज्ञानिक जो औषधियों की उपयोगिता का अध्ययन करता है, किसी औषधि के बारे में अपने निर्णय को तब तक प्रतिपादित नहीं करता जब तक वह औषधि के समस्त पक्षों से सम्बन्धित ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर लेता। वास्तव में एक वैज्ञानिक के लिए सम्पूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है क्योंकि तब ही वह किसी सही निष्कर्ष पर पहुँच सकता है।

(३) वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी के लिए साधनों को अत्यन्त सतर्कता-पूर्वक चुनता है और इस बारे में निश्चिन्त होना चाहता है कि उसने जो साधन चुना है वह सम्बन्धित ज्ञान-प्राप्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ है। जहाँ तक सम्भव हो वैज्ञानिक प्रयोग के द्वारा ही समस्या का समाधान खोजता है, वह यथासम्भव कल्पना का सहारा लेने का प्रयास नहीं करता। इसी तरह वह लकीर का फकीर नहीं होता, अर्थात् किसी बात को इसीलिए सत्य स्वीकार नहीं करता क्योंकि कोई महान पुरुष उसे सत्य कह चुका है। वह किसी बात को सत्य तब ही मानता है जब कि प्रयोग की कसौटी पर वह बात खरी उतरी हो।

(४) वैज्ञानिक दृष्टिकोण अथवा मनोवृत्ति का यह तकाजा है कि सत्य को व्यक्तिगत विश्वास की वस्तु न बनाई जाए। एक वैज्ञानिक की दृष्टि में सत्य वही है जिसे सबके सामने प्रकट या प्रदर्शित किया जा सके। गेलीलियो ने अपने सिद्धान्त की सत्यता परखने के लिए अपने प्रयोग को सबके सामने प्रदर्शित किया।

(५) वैज्ञानिक मनोवृत्ति रूढ़िवादी और हठवादी नही होती। वैज्ञानिक मनोवृत्ति वाला व्यक्ति नवीन तथ्यो के प्रकाश मे अपने पुराने सिद्धान्तो अथवा विचारों को परिवर्तित करने के लिए तैयार रहता है। उसके दिमाग की खिड़कियाँ खुली रहता हैं, बन्द नही। उसमें यह हठधर्मिता नही होती कि यदि वह किसी बात को एक बार सत्य सिद्ध कर चुका हो तो हमेशा के लिए वह बात सत्य ही होनी चाहिए।

(६) वैज्ञानिक दृष्टिकोण विरोधो और प्रतिवादों को सह कर भी सत्य के अन्वेषण से विमुख नहीं होता। गेलीलियो को अनेक कष्ट दिये गये, उसके विचारों का प्रबल विरोध किया गया, किन्तु वह इन सबकी कोई परवाह न करते हुए अनवरत सत्य के अनुसन्धान मे लगा रहा। पाश्च्योर के साथी वैज्ञानिक उसकी कीटाणु सम्बन्धी परिकल्पना को कल्पना की उड़ान समझ कर हँसने लगे, लेकिन पाश्च्योर बिना वैज्ञानिक परीक्षण किए अपने सिद्धान्त का परित्याग करने को उद्यत नही हुआ। वास्तव मे वैज्ञानिक मनोवृत्ति साहसमयी होती है। विज्ञान की प्रगति वैज्ञानिक के इस साहस के आधार पर ही हुई है।

(७) धैर्य, लगन और कठिनाइयों मे परास्त न होना वैज्ञानिक मनोवृत्ति के अन्य गुण हैं।

(८) वैज्ञानिक विभिन्न राष्ट्रों और जातियो के वैज्ञानिकों के साथ सहयोग के लिए सदैव तत्पर रहता है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति का मनुष्य सम्पूर्ण मानवता की धरोहर होता है, किसी एक राष्ट्र अथवा जाति की धरोहर नहीं। विभिन्न राष्ट्रों के सम्मिलित वैज्ञानिक अनुसन्धानो ने ही विज्ञान को इतना प्रगतिशील बनाया है जितना आज हम देख रहे हैं। वैज्ञानिक सदैव ऐसे सत्य की खोज में रहते है जो सारी मानव जाति के लिए सत्य हो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कोई व्यक्ति वैज्ञानिक मनोवृत्ति अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त तब ही कहा जा सकता है जब उसमें सतत जिज्ञासा हो, विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण तथ्य की जानकारी करके निर्णय पर पहुँचने की क्षमता हो, तथ्य की जानकारी के लिए साधनों को सतर्कतापूर्वक चुनने की क्षमता हो, सत्य को व्यक्तिगत विश्वास से पृथक बनाये रखने की प्रबल भावना हो, नवीन तथ्यों के प्रकाश में अपने पुराने सिद्धान्त को बदलने की तत्परता हो, सह कर भी सत्य का अन्वेषण करने का साहस हो और दृष्टिकोण में उदारता हो। वास्तव में निरन्तर जिज्ञासा, विश्लेषणात्मक विचार, नवीन की खोज और अन्धविश्वासों से मुक्त व्यापक दृष्टिकोण ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है बिना वैज्ञानिक प्रगति असम्भव है।

TOPICS FOR ESSAYS

[निबन्ध के विषय]

:ite a short essay on:—

What is Science ?

विज्ञान क्या है ?

Scientific Method and outlook

वैज्ञानिक विधि एव दृष्टिकोण

The Principles involved in the Modern Scientific discoveries

आधुनिक वैज्ञानिक खोजो मे काम मे आने व ले सिद्धान्त

) Formation of Hypothesis and Theory.

उपकल्पना और सिद्धान्त का निर्माण

The Scientific Outlook

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

BRIEF NOTES

(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

म्नलिखित मे से प्रत्येक पर लगभग २०० शब्दो मे टिप्पणी लिखिये—

) विज्ञान एक व्यवस्थित अथवा सुव्यवस्थित ज्ञान है।

) विज्ञान की शाखायें।

) विज्ञान का अर्थ और उसका क्षेत्र।

) वैज्ञानिक पद्धति में अपनाये जाने वाले वैज्ञानिक तर्क [अनुरूपता पर आधारित तर्क, निगामी पद्धति, उद्‌गामी पद्धति]।

) वैज्ञानिक पद्धति मे निरीक्षण तथा प्रयोग का महत्व।

) वैज्ञानिक पद्धति में तथ्यों व आकडो का सकलन।

) उपकल्पना और सिद्धान्त [Hypothesis and Theory]

) वैज्ञानिक दृष्टिकोण।

) विज्ञान में कल्पना [Speculation] का स्थान।

OBJECTIVE TYPE QUESTIONS

(नवीन शैली के प्रश्न)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

a) आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति का प्रतिपादन.....ने किया था।

b) 'नोवम ओरगेनम' नामक कृति १६२० में.....द्वारा लिखी गयी थी।

c) उद्‌गामी पद्धति को........पद्धति भी कहा जाता है।

(न्यूटोनियम/बेकोनियन/बीजगणित)

d) वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये समस्यायें.....से प्राप्त करते हैं।

(इस लोक/पुस्तकों/परलोक)

(e) वैज्ञानिक कार्यों में केवल आंकड़ों का ही संकलन आवश्यक नहीं है बल्कि उनका""और क्रमानुसार अध्ययन भी आवश्यक है। (वर्गीकरण/सत्य होना)

(f) विज्ञान के विकास के लिए""वातावरण आवश्यक है। (स्वतन्त्र/सीमित/गम्भीर)

(g) यदि वैज्ञानिकों ने""के थोड़े अन्तर पर ध्यान नहीं दिया होता तो विज्ञान के अनेक आविष्कार नहीं हो पाते। (नाप-तोल/प्रयोगात्मक त्रुटि)

(h) निरीक्षण और""में अधिक अन्तर नहीं है। (तीक्ष्ण दृष्टि/प्रयोग)

२. तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए—

(a) अनुमान (Hypothesis) से क्या अभिप्राय है ?

(b) वैज्ञानिक नियम (Scientific Law) से क्या तात्पर्य है ?

(c) सिद्धान्त और नियम (Theory and Law) में क्या अन्तर है ?

विज्ञान और समाज :

(i) विज्ञान के रचनात्मक और विध्वंसात्मक प्रयोग (ii) शक्ति और उसके प्रयोग, द्रव्य (पदार्थ) और शक्ति, इसके विभिन्न रूप, इसका रूपान्तरण, शक्ति के स्रोत—अग्नि से आणविक शक्ति तक (iii) रोगों के विरुद्ध संघर्ष, जीनेटिक्स पर आधुनिक दृष्टिकोण (iv) सिन्थेटिक फाइबर्स (v) विज्ञान एवं संस्कृति (vi) विज्ञान एवं समाज।

[Science and Society :

(i) Constructive and Destructive applications of Science, (ii) Energy and its applications, idea of Matter and Energy, its different forms, Convertable into each other, Sources of Energy—from fire to Atomic Energy, (iii) Fight against Diseases, Modern views on Genetics (iv) Synthetic Fibres, (v) Science and Culture, (vi) Science and Society]

√(१) विज्ञान के रचनात्मक और विध्वंसात्मक प्रयोग

(Constructive and Destructive applications of Science)

आज हम विज्ञान के युग में रहते हैं। उसकी विभिन्न शाखाओं ने हमारे जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर बड़ा प्रभाव डाला है। विज्ञान के प्रभाव से आज समाज का कोई भी अंग अछूता नहीं है—धर्म, दर्शन, कला, राजनीति, वाणिज्य-व्यवसाय आदि सभी विज्ञान के ढाँचे में ढले प्रतीत होते हैं। यदि हम अपने जीवन की आवश्यकताओं पर और उनकी पूर्ति के साधनों पर एक दृष्टि डालें तो हमें मालूम होगा कि हम विज्ञान के कितने आभारी हैं। किन्तु यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि विज्ञान ने यदि मानव के उत्थान के लिए और उसके लाभ के लिए अथक कार्य किये हैं तो उसे कुछ हानियाँ भी पहुँचाई हैं। लेकिन वास्तविक दोष विज्ञान का नहीं है अपितु उसके प्रयोगकर्ताओं का है। विज्ञान एक ऐसा साधन है जिसे अच्छे एवं बुरे दोनों ही प्रकार के कार्यों के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इस रूप में यदि एक ओर विज्ञान ने हमारे जीवन को अधिक सुरक्षित, आरामदेह एवं स्वस्थ बनाया है, तो दूसरी ओर उसने मानव समाज को सम्पूर्ण विनाश के कगार पर भी लाकर खड़ा कर दिया है। अग्रिम पंक्तियों में हम विज्ञान के इन रचनात्मक और विध्वंसात्मक दोनों ही पहलुओं पर विचार करेंगे।

न्यूटन के तीन नियमों ने यह सिद्ध किया कि अचेतन पदार्थ किन्हीं प्राकृतिक नियमों पर आश्रित हैं। विज्ञान के आधुनिक रूप में आविर्भाव से पूर्व पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र मानी जाती थी, परन्तु कापरनिकस आदि के प्रयोगों से इस भ्रान्ति का खण्डन हुआ। समाज में व्यापक रूप से फैली स्वर्ग और नरक की कल्पना भी अपना दम तोड़ने लगी। विज्ञान के प्रकाश के सहारे मनुष्य एक-एक करके तेजी से प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करता गया और आज वह पृथ्वी, सागर, आकाश और अन्तरिक्ष में सर्वत्र अपने पाँव फैला रहा है। वास्तव में यह विज्ञान का ही निर्माणात्मक अथवा रचनात्मक प्रभाव है कि अकर्मण्यता के स्थान पर कर्मण्यता का सूर्य उदित हुआ है।

(२) भोजन एवं कृषि क्षेत्र में क्रान्ति—हम सभी जानते हैं कि जो मनुष्य की प्रथम और प्रमुख आवश्यकता है। वैज्ञानिकों द्वारा भी अनुमान लगाया गया है कि यदि संसार में उपलब्ध अच्छी कृषि योग्य भूमि पर सर्वोत्तम आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से कार्य किया जाए तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आवश्यक मात्रा के दुगुने से लेकर २० गुने तक खाद्य सामग्री की पूर्ति सम्भव बनाई जा सकती है। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान का उचित ढंग से उपयोग कर संसार की खाद्य समस्या को भली प्रकार हल किया जा सकता है। विज्ञान ने इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता भी प्राप्त की है, हालांकि अपनी अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें अभी बहुत कुछ करना शेष है।

यद्यपि सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही कृषि व्यवसाय और इसके तरीके प्रारम्भ हो गये थे, लेकिन वास्तविक रूप में विगत १०० वर्षों की अवधि में ही भूमि, वनस्पति, पशुपालन आदि के बारे में वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसन्धान किया जाकर तथा कृत्रिम खाद एवं कृषि के वैज्ञानिक यन्त्रों का निर्माण कर संसार के खाद्य उत्पादन में आशातीत वृद्धि की जा सकती है। आज स्थिति यह है कि कृषि के सारे कार्य, जैसे—खेत जोतना, बीज बोना, खाद डालना, सिंचाई करना, फसल काटना, अनाज निकालना आदि यन्त्रों की सहायता से बड़ी सरलता से हो जाता है। यांत्रिक प्रयोग के कारण कृषि की पैदावार में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, केवल जनसंख्या में द्रुत गति के विकास के कारण ही हमें कृषि का इतना पिछड़ापन दिखाई देता है। कृषि उपज में यह वृद्धि केवल प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाकर ही नहीं अपितु कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र को बढ़ा कर भी की गई है। शरीर विज्ञान एवं वंशानुक्रमण-शास्त्र में होने वाले विकास, भोजन तथा कृषि में काम आने वाले पशुओं की नस्लों में सुधार लाकर पशु-पालन के क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन लाया जा सकता है। विज्ञान ने अणुशक्ति के प्रयोग द्वारा पौधों और पशुओं की अच्छी अधिक श्रेष्ठ नस्लें विकसित करने में सफलता प्राप्त की है।

विज्ञान की प्रमुख शाखा भू-शास्त्र के विज्ञान का उपयोग अन्न उत्पादन के क्षेत्र में किया गया है। इससे हमें खेतों से बनी हुई मिट्टी का ज्ञान होता है। इस मृद् विज्ञान (The Soil Science) ने हमें पूर्वापेक्षा अनेक गुना अधिक अन्न उपजाने की योग्यता प्रदान की। भू-शास्त्र के ज्ञान का उपयोग कृत्रिम खाद और सिंचाई द्वारा

अधिक अन्न उपजाने में होता है, नदियों के प्रवाहों को बांधने में होता है। भू-शास्त्र के ज्ञान द्वारा ही मनुष्यों ने बांधों को बनाने के लिए उपयुक्त क्षेत्र चुने हैं और उपयुक्त पदार्थों को खोजा है और इस तरह बाढ़ तथा सूखे के कारण होने वाली आकस्मिक हानियों को एक बड़ी सीमा तक घटाया है। भू-शास्त्री भू-गर्भ में हमेशा बहने वाले जल स्रोतों का पता लगाते हैं। उन्होंने इन जल स्रोतों का उपयोग करने के लिए गहरे नल-कूप लगा कर सूखे मरुस्थलों में जल सुलभ करके मानव जाति का कल्याण किया है।

विज्ञान की अन्य प्रमुख शाखा रसायन शास्त्र से प्राप्त ज्ञान के कारण फसलों को हानि पहुंचाने वाले जानवरों और कीड़ों तथा संग्रह करके रखे हुए अनाज को नष्ट करने वाले छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ों आदि को मारने के लिए विभिन्न प्रकार की कीटनाशक औषधियों का निर्माण किया गया है। अणुशक्ति के प्रयोग के द्वारा एक बहुत लम्बे समय तक बहुत बड़ी मात्रा में खाद्यान्न एवं अन्य उपभोग की वस्तुएं अच्छी हालत में संगृहीत की जा सकती हैं। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि द्रुतगामी यातायात के वैज्ञानिक साधनों के विकास के कारण आज संसार पर से अकाल की काली छाया तेजी से मिटती जा रही है क्योंकि किसी भी अकालग्रस्त पीड़ित क्षेत्र में शीघ्र ही भोजन वितरित किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह

… कृषि क्षेत्र में इस प्रकार की क्रान्ति विज्ञान का विस्मयजनक रचनात्मक रूप

तैयार करने में लगे हुए हैं जिसमे प्रकाश, ध्वनि और अग्नि का प्रवेश न हो सके, जो वायु के झोंको में खड़ी रह सके और गर्मी तथा आवाज के विरुद्ध श्रेष्ठ अवरोधक के रूप में कार्य कर सके। इन सब गुणो को लगभग पूरा करने वाली सामग्री तैयार भी की जा चुकी है। विज्ञान के बल पर ही मकानो के निर्माण मे प्लास्टिक आदि कृत्रिम वस्तुओं का उपयोग होने लगा है। गगनचुम्बी ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें अब वैज्ञानिक युग से पूर्व के व्यक्ति के लिए अवश्य ही आश्चर्य की वस्तु है, आधुनिक मनुष्य के लिए तो ये सामान्य वस्तु ही है। विज्ञान के उपयोग से धनिक निवास-स्थान एकदम सुखप्रद बन गए हैं। स्नानागारों मे गर्म या ठंडा जल इच्छानुसार प्राप्त किया जा सकता है। शौचालयो में जल-प्रवाह रखने के कारण केवल जंजीर खींचने या हैंडिल मोड़ने से वे स्वच्छ हो जाते हैं। कमरे मे बैठे-बैठे समस्त संसार से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। घर मे किसी भी स्थान पर आवश्यकता-नुसार केवल बिजली का बटन दबाने पर प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है। घर के भीतर ऋतु की प्रतिकूलता के कष्ट से मुक्ति मिल सकती है। वैज्ञानिक व्यवस्था द्वारा सर्दियों मे घरों को गर्म और गर्मियो मे ठंडा रखा जा सकता है।

विज्ञान का रचनात्मक प्रभाव हमे हमारे गृहस्थ जीवन मे देखने को मिलता है। प्राचीनकाल मे घर का सारा कार्य जैसे चक्की चलाना, चूल्हा जलाना, सफाई करना, पानी भरना, आटा पीसना आदि गृहिणी अथवा दास-दासियो को करना पड़ता था। वैज्ञानिक यन्त्रों के आविष्कार ने इन सभी असुविधाओं से यथासम्भव मुक्ति प्रदान की है। आज आटा मशीन मे पिसता है, पानी नल मे मिलता है, धान मशीन से साफ होता है, चाय मशीन बना देती है, भोजन मशीन पका देती है, वस्त्र मशीन साफ कर देती है, यहां तक कि जूतों की पालिश तथा सर व चेहरे की हजामत तक मशीन कर देती है। इस प्रकार हमारा सारा गृहस्थ कार्य का सम्पादन यन्त्रों द्वारा स्वतः हो जाता है।

(५) यातायात और संदेशवाहन के साधनों द्वारा दूरी पर विजय—आदि मानव को प्रकृति में जो वस्तुयें उपलब्ध हुयी थीं उन्हीं पर उसको निर्भर रहना पड़ता था। विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने जगत का पुनर्निर्माण करके नाना प्रकार के साधन और सुविधाओं का निर्माण किया है। प्राचीन कालीन मानव के पास यात्रा का एकमात्र साधन प्रकृति द्वारा दी हुई दो टांगें थी। विज्ञान की सहायता मनुष्य बैलगाड़ी, रेल, जलयान, वायुयान और अन्तरिक्षयान तक का निर्माण में सफल हो पाया है। आज जेट, सेबर जेट और राकेट आदि ऐसे जहाज बन जो हजारों मीलों की यात्रा मात्र कुछ ही घंटों मे कर सकते हैं। इन सब के सारे देश एक दूसरे के इतने निकट आ गए हैं कि दूरी का ही नहीं रहा है। यातायात के इतने तीव्रगामी साधन विकसित किए हैं कि उनके बल पर धरती का मानव चन्द्रलोक और मंगललोक तक की करने का स्वप्न साकार करने जा रहा है। चन्द्रलोक पर तो अन्तरिक्ष-यान भी जा चुका है और वे अपने विभिन्न यन्त्रों द्वारा वैज्ञानिकों को चन्द्रलोक भेजते रहे हैं।

हृदय को अपने स्थान से हटाकर बाहर रख दिया जाता है तथा आवश्यक आपरेशन आदि के बाद उसे फिर से यथास्थान जमा दिया जाता है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि शल्य चिकित्सक रोगी के शरीर मे कृत्रिम हृदय रखकर उसके वास्तविक हृदय का भली भांति अध्ययन कर लेते है। यह जितने भी छोटे बडे और खतरनाक से खतरनाक आपरेशन होते हैं उनमे रोगी को लेशमात्र भी पीडा नही होती, क्योंकि अचेतनकारी औषधियो द्वारा उसे बेहोश कर दिया जाता है अथवा जिस अंग की चीर-फाड की जा रही हो उसे पूर्णतया अचेतन बना दिया जाता है।

उदाहरण के रूप मे विज्ञान आज अंधे को आंख, लगडे को पाव और गूंगे को वाणी देने में समर्थ हैं और उस दिन की हमे पूरी आशा है जब वह समाज को मृत्यु की विभीषिका से भी सम्भवत मुक्त कर देगा। विज्ञान के कारण आज न केवल रोगो का उपचार किया जा रहा है बल्कि रोगों के कारण भी भली-भांति मालूम कर लिये जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य रोगो से अपना बचाव करने में समर्थ हो चुका है। रोग-कीटाणु-विज्ञान के विकास से ऐसी औषधियो का बनाया जाना सम्भव हो गया है जो शरीर मे प्रवेश हो चुके रोग-कीटाणुओ को मार सके और उनके आक्रमण से शरीर को सुरक्षित रख सके। एल्फोनेमाइड कुटुम्ब की औषधियां, पैनेसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसिटीन, अक्रोमाइसिन आदि औषधियां कीटाणुओं को मारने मे बहुत सफल सिद्ध हो रही हैं और इन औषधियों द्वारा असाध्य समझे जाने वाले रोगो का भी सफलतापूर्वक उपचार किया जाता है।

चिकित्सा के यन्त्रों के आविष्कार ने रोगो पर विजय प्राप्त करने मे महान योग दिया है। इन यन्त्रों द्वारा रोगो का निदान निश्चित और सुगम हो गया है। डाक्टरी नली, डाक्टरी थर्मामीटर, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र, ऐक्स-रे आदि यन्त्रो द्वारा शरीर के भीतरी सभी रोगों का सही निदान कर लिया जाता है। ऐक्स-रे की सहायता से शरीर के समस्त भीतरी भागों का चित्र लिया जा सकता है जिससे पता चल जाता है कि शरीर का कौन-सा अवयव दोषपूर्ण है और तब उस स्थान तथा रोग का उपचार सरल हो जाता है।

आधुनिक मनोविज्ञान-चिकित्सा द्वारा भी विभिन्न रोगो का उपचार किया जाता है। इससे यह सम्भव हो गया है कि शारीरिक चिकित्सा के साथ मानसिक चिकित्सा भी हो सकती है। पागलपन, हिस्टीरिया, नपुंसकता आदि रोग जो पहिले शारीरिक चिकित्सा द्वारा ठीक नहीं किये जा सकते थे अब मानसिक चिकित्सा द्वारा सफलतापूर्वक ठीक किये जाने लगे हैं। विज्ञान की यह एक महान रचनात्मक देन है।

परमाणु-शक्ति के प्रयोग ने तो औषधि के क्षेत्र में एक क्रांति ही पैदा कर दी है। सम्भवत. कुछ समय बाद आधुनिक अस्पतालों और उनकी दवाइयां उसी प्रकार बेकार हो सकती है जैसे बांध, विद्युत योजनाएं और कोयले तथा पैट्रोल से चलने वाली मशीनें। प्राणियो के शरीर जिन तत्वों से मिलकर बना है उनमे कैल्शियम फोसफोरस, आयोडीन, लोहा आदि मुख्य हैं। परमाणु भट्टी की सहायता से शरीर में पाये जाने वाले सभी तत्वों के रेडियो आइसोटोप्स तैयार किये गये हैं। ये रेडियो आइसोटोप्स, रेडियो सक्रिय होते हैं और इनमें से अदृश्य सी किरणें निकलती हैं।

सहायता से ही विशाल कारखाने चलाये जाते हैं। एक सूई से लेकर वायुयान तक की समस्त वस्तुओं का उत्पादन वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा किया जाता है। कपड़ा यन्त्र बुनते हैं, कपास यन्त्र साफ करते हैं, सूत यन्त्र कातते हैं, जूते यन्त्रों की सहायता से बनते हैं, खिलौने यन्त्र बनाते हैं, रेल, वायुयान, मोटर, जहाज आदि का निर्माण यन्त्रों की मदद से होता है।

वस्तुतः विज्ञान के रचनात्मक प्रभाव से ही समाज को आवागमन के सरल और सुलभ साधन मिले हैं, उत्पादन के साधनों में वृद्धि हुई है और परिणामस्वरूप भौतिक समृद्धि मिली है। एक विद्वान ने यह कहा है कि 'वर्तमान औद्योगिक विकास को देखते हुए कहा जा सकता है कि अगले १५० वर्षों में शक्ति के समस्त साधन समाप्त हो जायेंगे।" फिर भी विज्ञान के प्रभाव से हमें यह समस्या अथवा दुविधा भी समाप्त होती प्रतीत होती है क्योंकि वैज्ञानिकों ने जब परमाणु नामक परम शक्ति का आविष्कार कर लिया है और "परमाणु शक्ति का स्थायी तथा असली महत्व यह है कि इसके जरिये मनुष्य हमेशा के लिये शक्ति सम्बन्धित आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं।" यह कथन कि आणविक शक्ति द्वारा पृथ्वी को स्वर्ग में बदला जा सकता है सही प्रतीत होता है क्योंकि १५ पाउण्ड आणविक ईंधन से ४० मिलियन पौण्ड कोयले जितनी शक्ति प्राप्त होती है। परमाणु के विग्रह करने पर महान शक्ति प्राप्त की जा सकती है—इतनी कि इससे पहाड़ों को तोड़कर नहरें निकाली जा सकती हैं। विशाल नदियों की दशा बदली जा सकती है। यदि इस शक्ति के द्वारा रचनात्मक और कल्याणकारी कार्य किये जाएं तो संसार का भविष्य निश्चित रूप से सुखपूर्ण तथा आशाजनक है।

(८) मनोरंजन के साधन—रेडियो, टेलीवीजन, ग्रामोफोन, चल-चित्र आदि के द्वारा विज्ञान ने मनोरंजन के क्षेत्र में कितना क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया है और इनके द्वारा आज मानव समाज मनोरंजन का कितना लाभ प्राप्त कर रहा है—इस विषय में अधिक लिखना आवश्यक है क्योंकि आज का लगभग प्रत्येक व्यक्ति इस विषय में पर्याप्त जानकारी रखता है।

स्पष्ट है कि विज्ञान ने मानव सभ्यता को उन्नति की उच्चतम सीढ़ियों पर ला खड़ा किया है और इसके बल पर धरती का इन्सान चन्द्रलोक और मंगललोक का वासी बनने की तैयारी में लगा है। डा० आर्थर कोम्पटन ने ठीक ही लिखा है—"विज्ञान से सम्बद्ध समाज निरन्तर मानव-कल्याण के पथ पर बढ़ता हुआ पथिक है। जहां टैक्नोलोजी मानव की सेवा के लिये प्रयुक्त हुई है वहां मनुष्य का शारीरिक जीवन ही विकसित नहीं हुआ है, बल्कि बौद्धिक, आध्यात्मिक और वैचारिक जीवन भी स्वस्थ है। आज सामान्य नागरिक सामान्य से असामान्य बन गया है, क्योंकि उसे उन्नति के अनेक अवसर प्राप्त हुए हैं जो पूर्व-विज्ञान-युग में केवल छोटे से वर्ग तक सीमित थे।

(ख) विज्ञान का विध्वंसात्मक प्रयोग (Destructive application of Science) किन्तु विज्ञान का एक दूसरा पक्ष भी है। विज्ञान की उजली तस्वीर से ही हमें चकाचौंध नहीं हो जाना चाहिये, विज्ञान की तस्वीर का एक काला पहलू

भी है। विज्ञान ने जहां मानव जाति के लिये एक महान भविष्य का द्वार खोला है वहां मानव जाति के अस्तित्व पर भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया है। विज्ञान दुधारी तलवार है। उसने मनुष्य के हाथ मे बहुत अधिक शक्ति प्रदान करदी है जिसका यदि दुरुपयोग किया जाए तो वह संसार के सुखमय स्वप्न को नष्ट कर सकती है, सम्पूर्ण मानव जाति का सहार कर सकती है।

विज्ञान-प्रदत्त युद्ध मे काम मे आने वाले इंजिन, बन्दूकें,टैंक, वायुयान, जहरीली गैसें, राडार्स, बम्ब, पनडुब्बिया, मृत्यु किरणें आदि के कारण विज्ञान समाज के सम्मुख एक भयकर विनाशक के रूप में उपस्थित है। प्राचीन काल मे भी युद्ध होते थे, पर वे, एकदेशीय और एकागी होते थे। उनका प्रभाव विश्वव्यापी नहीं होता था क्योंकि उस समय विज्ञान की सीमित उन्नति हो पाई थी। ईसा की द्वितीय शताब्दी तक दो व्यक्तियो के द्वंद युद्ध से निर्णय हो जाता था। बाद मे ज्यों-ज्यों विज्ञान का विकास हुआ त्यो-त्यो युद्ध--शस्त्रो की शक्ति बढती गई और उनका प्रभाव व्यापक हो गया। १८ वीं शताब्दी का पानीपत का युद्ध केवल भारत के ही कुछ भाग को प्रभावित करके रह गया। इस तरह के युद्धो मे सेनायें लडती थी और किसान अपनी कृषि और व्यापारी अपने व्यापार में लगे रहते थे। इङ्गलैंड का सप्तवर्षीय युद्ध चलता रहा, साथ ही और कार्य भी होता रहा। सन् १९१४-१८ तक महायुद्ध विज्ञान की कृपा से अत्यन्त व्यापक हो गया। इस महायुद्ध मे भाग ..ने वाले दोनो पक्षो के ६॥ करोड सैनिको मे से १.३० लाख काल के ग्रास बने, . करोड २० लाख सैनिक घायल हुए जिसमे से ७० लाख व्यक्ति बिल्कुल पगु और ...र हो गये। यह सख्या १७६० ई० से १९१३ ई० तक यूरोप मे होने वाले युद्धों ... हताहतो की संख्या के दुगुने से भी अधिक थी। सैनिको के इस भीषण नर-सहार के अत्यन्त हमलो, हत्या-कांडों, भुखमरी और महामारी से मरने वाले नागरिक जनता ... सख्या का सही अन्दाजा लगाना सम्भव नहीं है, वह इससे कहीं अधिक थी।

विज्ञान की व्यापक छायाओ मे द्वितीय महायुद्ध का सीधा और भयंकर ... सेना तथा साधारण जनता दोनो पर पडा। इस युद्ध मे प्रथम महायुद्ध ... अधिक विनाश हुआ। लाखो की सख्या में जनता मारी गई। बम्बारी ..., जर्मनी आदि के व्यापार केन्द्र नष्ट हो गये। जापान पर एटम बम्ब गिराया ... अप्रत्याशित रूप से भयकर था। ६ अगस्त १९४४ को जापान के औद्योगिक ...शिमा पर अणु बम्ब गिराया गया जिसके फलस्वरूप ७०,३७६ आबाल-वृद्ध अपने जीवन से मुक्त हो गये और लगभग १ लाख से भी अधिक व्यक्ति ... एकदम पगु बना दिये गये जिसमें से अधिकाश का कोई उपचार ही ...। इसके ठीक ३ ही दिन बाद जापान के दूसरे व्यावसायिक नगर पर दूसरा अणु बम्ब गिराया गया जिससे लगभग ४० हजार व्यक्ति काल समा गये और असख्य बाल-बच्चे, नर-नारी घायल होकर असाध्य रोगी हो गये। अभी जीवन से भरपूर यह नगर बम्ब वर्षा के बाद एकदम ... गया और चारों तरफ नीरवता, उत्पीडन और रुदन का साम्राज्य

या गया। यह था संसार का परमाणु शक्ति के विनाशक रूप से प्रथम परिचय। आज तो जापान पर गिराये गये हजारों गुणा अधिक विशाल अणु बम्बों का तथा उनसे भी अधिक विनाशकारी हाइड्रोजन बम्बों का निर्माण कर लिया गया है। ये बम्ब इतने विनाशकारी हैं कि थोड़ी सी सन्ध्या में इनको गिरा कर सम्पूर्ण विश्व की मानव सभ्यता को विनष्ट किया जा सकता है। इसीलिये तो आइन्स्टाइन ने यह पूछे जाने पर कि तृतीय महायुद्ध कैसा होगा, जवाब दिया था "तृतीय महायुद्ध के बारे मे तो मैं नहीं कह सकता पर चौथा विश्वयुद्ध पाषाण अस्त्रों से होगा।

वास्तव में आज भयकर शास्त्रास्त्रों के परीक्षणों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि आज का युद्ध निर्विवाद रूप से सामूहिक सहारकारी है। विज्ञान ने आतंक को इतनी व्यापकता दे दी है कि विश्व विनाश का भय उत्पन्न हो गया है तथा इसके प्रतिकार के लिये विश्व शांति के प्रयत्न शुरू हो गये हैं। अरबों की लागत, वर्षों के परिश्रम का फल आज साक्षात् होता जा रहा है या विश्व को नष्ट करने के लिये तैयार है। विज्ञान ने आज विभिन्न देशों के मनुष्यों को इतना समीप कर दिया है कि हर देश की समस्या विश्व स्तर पर सोची जाती है। विज्ञान ने जहा सुविधाओं को बढ़ाया है वहा विज्ञान ने खतरों को भी बढ़ाया है। अतः विज्ञान से ही विश्व की समस्या पैदा होती है और वही विज्ञान विश्व शान्ति में सहायक भी होगा।

सैनिक विनाश के क्षेत्र से अलग हट कर देखा जाए तो औद्योगिक नगर और उनकी बस्तियां, शासन, वर्ग संघर्ष, व्यापार चक्र उपनिवेशवाद आदि भी विज्ञान की उन्नति के ही परिणाम हैं। विज्ञान के विनाशकारी प्रभाव से ही आज मनुष्य यंत्रवत जीवनयापन करने लगा है और स्थायी सुख तथा शान्ति मानव जाति के लिये मार्गदर्शक बन गई है। आधुनिक वैज्ञानिक ढंगों से पशुओं की अच्छी नस्लें तैयार की जाने लगी हैं, इसी प्रकार वैज्ञानिक मानव जाति में भी कृत्रिम तरीकों से अच्छी नस्लें तैयार करने लगे और तब सम्भवत इस समाज से पारिवारिक स्नेह और प्रेम मिट जाएगा तो मानव समाज भेड़ों के भुड से कुछ अधिक न होगा।

विज्ञान के विध्वसात्मक प्रयोग के बारे में सर्वोपरि ध्यान देने योग्य बात यह है कि विज्ञान अपने आपमें अच्छा या बुरा नहीं है। तलवार अपने आप कोई काम नहीं करती है। यह तो तलवार के स्वामी पर ही निर्भर है कि वह उसका किस तरह उपयोग करता है। यही बात विज्ञान के लिये भी कही जा सकती है। विज्ञान को दोष नहीं दिया जाना चाहिये, विज्ञान तो साधन उपलब्ध कराता है। यह मानव जाति पर निर्भर है कि वह विज्ञान की शक्ति का सदुपयोग करती है या दुरुपयोग। विज्ञान ने मानव जाति को महान भविष्य की राह दिखलाई है और यह मानव जाति का कर्तव्य है कि वह विज्ञान की सहायता से उसे प्राप्त करे। इसी में मानव जाति का कल्याण भी है।

(२) द्रव्य (पदार्थ), शक्ति और परमाणु शक्ति

[Matter, Energy and Atomic Energy]

[क] पदार्थ [Matter]

द्रव्य या पदार्थ [Matter] क्या है?—साधारणतया जो कुछ हमे

अपने चारो ओर दिखाई देता है उसे हम एक सर्वव्यापी नाम पदार्थ या द्रव्य से घोषित करते है। परन्तु दुर्भाग्यवश द्रव्य की व्याख्या इसके गुणो मे निहित है, शब्दों मे नही। कुछ वस्तुए ऐसी है जिन्हे हम देख पाते है, जैसे मेज, कुर्सी, स्टूल आदि। कुछ वस्तुए ऐसी है जिन्हे हम देख नही पाते परन्तु उनका अनुभव हम अपनी ज्ञानेन्द्रियो द्वारा करते है, जैसे हवा। जब आधी चलती है और पेडो की पत्तिया हिलती है तो हमे हवा का अनुभव होता है। इन सभी वस्तुओ मे, जिन्हें हमने ऊपर बताया है, भार होता है और वे स्थान भी घेरती हैं। अतः लकडी, रबड, हवा आदि सब द्रव्य है। **द्रव्य की पहचान यह है कि ये जगह घेरते है, इनका भार होता है तथा इन्द्रियो द्वारा इनका ज्ञान हम कर सकते है।**

द्रव्य या पदार्थ के सामान्य गुण—जैसा कि कहा जा चुका है, द्रव्य की व्याख्या इसके गुणो में निहित है, शब्दो मे नही। द्रव्य के सामान्य गुण संक्षेप में निम्नलिखित है—

१. **पदार्थ स्थान (Space) घेरता है**—पानी मे भरा हुआ बर्तन, हवा में भरी ट्यूब, दूध से भरा गिलास आदि हमे बतलाते हैं कि उनमें खाली स्थान नहीं है। उनमें और अधिक सामग्री नही आ सकती। इससे सिद्ध होता है कि पदार्थ ० घेरते हैं।

२. **पदार्थों में भार (Weight) होता है**—प्रत्येक वस्तु भार रखती है। कोई भारी होती है और कोई हल्की। जैसे पत्थर लकडी से भारी होता है। खाली ट्यूब को तोलने पर और हवा भर कर तोलने से मालूम होता है कि उसका वजन बढ गया है। इससे सिद्ध होता है कि हवा मे भी भार होता है।

३. **पदार्थ विभाजनशील (Divisible) है**—प्रत्येक पदार्थ को छोटे-छोटे टुकडो मे विभक्त किया जा सकता है चाहे वह ठोस हो या द्रव और गैस।

४. **पदार्थ में जडत्व होता है**—जडत्व पदार्थो का वह गुण है जिसके कारण अपनी स्थिति बनाये रखते हैं। जैसे कोई वस्तु यदि मेज पर पडी है तो वहीं रहेगी जब तक कि उस पर कोई बाहरी ताकत नही लगाई जावे। उसी यदि कोई फुटबाल या गेद किसी चिकने ढालू फर्श पर लुढ़क रही है तो वह ... लुढ़कती रहेगी जब तक कि उस पर बाहरी ताकत जैसे हवा, दीवार ... की गति मे रुकावट न डाले।

५. **पदार्थ अविनाशी है**—प्रत्येक पदार्थ अविनाशी है। न तो कोई नया संसार में बनता है और न किसी पदार्थ का नाश ही होता है। उदाहरण ... दि हम पानी गर्म करते हैं तो इससे भाप बनती है, यदि इसी भाप को ... किया जावे तो इसका फिर पानी बन जाता है। इससे सिद्ध होता है कि ... नहीं होता बल्कि यह किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहता ही है।

६. **पदार्थ में अन्तर आकाश (Interspace) होता है**—प्रत्येक पदार्थ ... कणो का बना होता है। इन कणो के बीच मे खाली जगह होती ... कणों के बीच की खाली जगह को अन्तरआकाश (Interspace)

कहते हैं। ठोस पदार्थों में यह कम, द्रवों में अधिक तथा गैसों में बहुत अधिक होता है।

उपरोक्त गुणों के अलावा पदार्थों मे निम्न गुण भी पाये जाते है—

१. सुषिरता [Porosity]—पदार्थों के कणो के बीच के रिक्त स्थान को सुषिरता (Porosity) कहते हैं। इस गुण के कारण ही दीवार अथवा लकडी मे कील, पानी में नमक अथवा शक्कर, हवा मे गैस आदि प्रवेश कर जाती हैं।

२. संपीड्यता [Compressibility]—प्रत्येक वस्तु को थोडा या अधिक दबाया जा सकता है। पदार्थों के इसी गुण को संपीड्यता (Compressibility) कहते हैं। यह गुण पदार्थों की सुषिरता (Porosity) पर निर्भर होता है। अर्थात जिस वस्तु के कणों के बीच अधिक खाली जगह होती है उसको ज्यादा और जिस वस्तु में कणों के बीच रिक्त स्थान कम होता है उसे कम दबाया जा सकता है।

३. स्थितिस्थापकता [Elasticity]—पदार्थों के उस गुण को जब कि किसी ताकत के लगाने पर पदार्थ के आयतन मे वृद्धि हो तथा उस शक्ति के हटाने पर फिर अपनी उसी हालत पर आ जावे, स्थितिस्थापकता कहते हैं। जैसे फुटबाल को दबाने पर दब जाती है और ताकत हटाने पर फिर वही पहले वाली हालत पर आ जाती है।

४. पारदर्शकता [Transparency]—पदार्थों के उस गुण को जिसमे होकर प्रकाश की किरणें आसानी से एक ओर से दूसरी ओर पार कर जाती हैं, पारदर्शकता (Transparency) कहते हैं। अथवा जिन पदार्थों मे होकर आर पार देखा जा सकता है उन्हें पारदर्शक कहते हैं। जैसे काच, हवा आदि।

५. अल्पपारदर्शकता [Transluscent]—जिन पदार्थों मे होकर साफ-साफ आर-पार नही देखा जा सकता, पदार्थों के इस गुण को अल्पपारदर्शकता कहते हैं। जैसे घिसा हुआ कांच, चिकनाई लगा हुआ कागज आदि।

६. अपारदर्शकता [Opaque]—पदार्थों के इस गुण को जिसमे होकर पार-पार नहीं देखा जा सकता अथवा जिसमे प्रकाश आवागमन नहीं कर सकता, अपारदर्शकता कहते हैं। जैसे लोहा, लकडी, पत्थर आदि।

द्रव्य की तीन अवस्थाएं—प्रायः द्रव्य हमें तीन अवस्थाओं मे मिलता है—(१) ठोस (२) द्रव (३) गैस। बर्फ तथा लकडी छूने मे कठोर तथा ठोस होती है, ये ठोस अवस्था के द्रव या पदार्थ हैं। पानी, तेल आसानी से बहने वाले होते हैं, उनमें ठोसपन नहीं होता है, ये पदार्थ द्रव (Liquid) अर्थात तरल अवस्था के हैं। हवा गैस अवस्था का द्रव्य है—यह आसानी से फैल कर बर्तन को भर देती है।

ठोस के विशेष गुण—ठोस पदार्थों के निम्नलिखित विशेष गुण होते हैं—

१. दृढ़ता [Rigidity]—सभी ठोस अपनी शक्ल को बनाये रखते हैं। बाहरी बल द्वारा शकल बदलने का प्रयत्न करने पर ठोस उसका विरोध करता है इस गुण को दृढ़ता कहते हैं।

५. द्रवों में सतह का तनाव (Surface Tension) मौजूद होता है। पानी की सतह पर यदि हम एक साफ और सूखी हुई सुई सावधानी से रखें तो हम देखेंगे कि सुई पानी पर तैरती रहती है, मानो पानी की सतह पर एक पतली झिल्ली फैलाई गई है जो सुई को पानी मे डूबने से रोकती है। इस गुण को पानी का तनाव कहते हैं।

६. द्रव ऊंची जगह से नीची जगह की ओर बहते हैं।

गैस के विशेष गुण—गैस पदार्थ के विशेष गुण ये हैं—

१. गैस की शक्ल निश्चित नहीं होती है।

२ गैस का आयतन भी निश्चित नहीं होता है। दबाव डाल कर आयतन घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

३. गैस बर्तन के अन्दर रखी जाने पर दीवारों पर सम्बवत दाब डालती है। जब स्टोव की टंकी मे हम दाब देकर हवा भरते हैं तो गैस अपने जोर से तेल को ऊपर बर्नर में फेंकती है जो बाष्प बन कर जलती है। गैस के दाब के जोर से अनेक मशीनों को चलाया जाता है जिन्हें 'सकुचित वायु की मशीन' कहते हैं। उदाहरणार्थ सकुचित वायु की गर्मी चट्टानों को खोदने के काम आती है।

४. गैस फैलने वाली वस्तु होती है और जहा तक इसको जगह मिलती है फैलती जाती है। उदाहरण के लिए एक सैन्ट की शीशी खोलने पर थोड़ी ही देर में खुशबू फैल कर सारे कमरे का आयतन और आकार ग्रहण कर लेती है। यही प्रयोग हम अमोनिया या क्लोरीन गैस का सैलेण्डर खोलकर, कर सकते हैं। जो गैस पहले एक छोटे से सैलेण्डर मे बन्द थी वही गैस सैलेण्डर खोलने पर सारे कमरे का आकार व आयतन ग्रहण कर लेती है।

द्रव और गैस में अन्तर—स्पष्टता के लिए हमे द्रव और गैस में अन्तर समझ लेना चाहिए—

(१) द्रव ऊंचाई से नीचाई की ओर ही बहता है किन्तु गैस नीचे से ऊपर की ओर भी बह सकती है बशर्ते कि ऊपर की ओर दाब (Pressure) कम हो।

(२) द्रव की निश्चित सतह होती है, किन्तु गैस की सतह निश्चित नहीं होती।

(३) गैस के आयतन को दाब बढ़ा कर इच्छानुसार कम कर सकते हैं, किन्तु द्रव का आयतन दाब बढ़ाने से अधिक नहीं घट पाता।

ठोस, द्रव और गैस की परस्पर तुलना—हमने पदार्थ की तीनों भौतिक अवस्थाओं ठोस (Solid), द्रव (Liquid), और गैस (Gas) के विशेष गुणों की सामान्य चर्चा की है। अब यहाँ पर हम इन पदार्थ (Matter) की इन तीनों अवस्थाओं मे अन्तर बतलाते हुए, तालिका के रूप में उनकी तुलना करेंगे—

ठोस (Solid)	द्रव (Liquid)	गैस (Gas)
१. इनका आकार और आयतन निश्चित होता है।	इनका आयतन तो निश्चित होता है लेकिन आकार नहीं। इन्हें जिस पात्र में	इनका न तो निश्चित आकार ही होता है और न निश्चित आयतन;

	ठोस (solid)	द्रव (Liquid)	गैस (Gas)
		रखा जाता है, उसी का आकार ये ग्रहण कर लेते हैं।	वरन् इन्हें जिस पात्र रखा जाता है उन्ही क आयतन व आकार ग्रहण कर लेते हैं।
२	ये बड़ी कठिनता से नाम मात्र को दबाये जा सकते हैं।	इन्हें ठोस की अपेक्षा कुछ अधिक दबाया जा सकता है।	गैसों को सबसे अधि दबाया जा सकता है जै यदि दाब दुगुना क दिया जाय तो गैस क आयतन आधा र जाता है।
३	ये बह नहीं सकते।	ये ऊपर से नीचे की ओर बहते हैं।	ये चारों ओर बह सकते हैं।
४.	इनके छोटे-छोटे कणों को जोड़ कर ठोस पदार्थ को वापिस उसी पहली अवस्था में प्राप्त नहीं कर सकते।	इनके छोटे-छोटे कणों को जोड़कर वापिस द्रव प्राप्त किया जा सकता है।	इनके भी कण मिलक फिर पहली अवस्था ग्रहण कर सकते हैं।
५.	इसका तल समतल होना आवश्यक नहीं है।	इनका तल सदैव ही क्षितिज के समानान्तर होता है।	इनका कोई तल नहीं होता।
६.	इनके कणों में अधिक ससक्ति (Cohesion) होती है। अतः इनके टुकड़े करने में अधिक बल लगाना पड़ता है।	इनके कणों में ठोस की अपेक्षा कम ससक्ति होती है। इनको तोड़ने में कम बल लगाना होता है।	इनके कणों में संसक्ति बहुत कम होती है। इनको कणों में विभाजित करने में सबसे कम बल लगाना पड़ता है।
७.	गर्म या ठण्डे करने पर इन पर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है।	ये गर्म या ठण्डे करने पर कुछ अधिक बढ़ते हैं या सिकुड़ते हैं।	गर्म या ठण्डे करने पर बहुत अधिक बढ़ते तथा सिकुड़ते हैं।
८.	कुछ को छोड़ कर अधिकतर ठोसों को तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है क्योंकि ये कठोर होते हैं।	ये कठोर नहीं होते, अतः इन्हें ठोसों की भांति तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता।	ये कठोर नहीं होते, अतः इन्हें ठोसों की भी भांति तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता।
९.	इनके घनत्व अधिक होते हैं।	इनके घनत्व कम होते हैं।	इनके घनत्व सबसे कम होते हैं।

ठोस (Solid)	द्रव (Liquid)	गैस (Gas)
१०. पिघले हुए ठोसों के हिमांक ऊँचे होते हैं।	द्रवों के हिमांक नीचे होते हैं।	गैसों के हिमांक प्रायः ठोसों की अपेक्षा नीचे होते हैं।

पदार्थ या द्रव्य की बनावट (Constitution of Matter)—जिस पदार्थ की सूक्ष्मता और विशालता, विचित्रता और विभिन्नता को देखकर प्रत्येक जिज्ञासु व्यक्ति के मन में चमत्कार एवं विस्मय की भावना पैदा होती है, उसकी रचना के बारे में प्राचीन काल से ही मत प्रकट किए जाते रहे हैं। अतः हम इस सम्बन्ध में दोनों विचारधाराओं पर प्रकाश डालेंगे-(१) प्राचीन विचार एवं (२) आधुनिक विचार।

प्राचीन विचार—पदार्थ के बारे में जितना ज्ञान आज आधुनिक युग में मनुष्य को है, प्रारम्भिक काल में संभवतः उसके थोड़े अंश से भी मनुष्य परिचित नहीं था। फिर भी इसमें कोई सदेह नहीं कि अतीत में भी अनेक देशों के वैज्ञानिकों ने भी पदार्थ या द्रव्य के बारे में ज्ञानोपार्जन किया था और उन्हें रासायनिक क्रियाओं का काफी ज्ञान था। पदार्थ की रचना के विषय में भारत में वैदिक काल की सभ्यता से ही भारतीय वैज्ञानिकों ने प्रयास आरम्भ कर दिए थे। प्राचीन भारतीय मत यह था कि सब प्रकार के पदार्थ पाँच तत्वों-पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, और वायु से मिलकर बने होते हैं। यह विचार अत्यन्त सरल अनुभव पर आधारित था। संभवतः पदार्थों के सूखेपन, ठण्डेपन, गीलेपन आदि गुणों को देखकर ही उपरोक्त तत्वों की कल्पना की गयी थी। इसी प्रकार का समानान्तर विचार यूनानी विद्वानों में पाया जाता था। वे केवल चार तत्व पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि को ही मान्यता देते थे। संभवतः महान् विद्वान अरस्तू ने भारतीय विचारों से सहमत होकर ही पंच तत्वों को मान्यता दी थी। अरस्तू का कहना था कि भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ दो या दो से अधिक तत्वों के परस्पर मिलने से बनते हैं तथा तत्वों को बदलने से एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में बदल जाता है। प्राचीन विद्वानों के विचार तत्व की मान्यता तक ही सीमित नहीं थे, उन्होंने तत्व रचना की व्याख्या भी की थी। ईसा पूर्व ५ वीं शताब्दी में डेमोक्रिट्स (Democritus) ने, जो यूनानी विद्वान था, बताया कि पदार्थ सूक्ष्मतम कणों अर्थात् परमाणुओं (Atoms) का बना होता है। उसने यहाँ तक कहा था कि परमाणु कम्पन की अवस्था में रहते हैं, और पदार्थ का प्रत्येक परिवर्तन परमाणुओं के संयोजन अथवा वियोजन के कारण होता है। आधुनिक ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो आश्चर्य होता है कि डेमोक्रिट्स के विचार इतने सही कैसे थे। यूनानी विद्वानों ने मूल पदार्थ (Prima Materia) की भी कल्पना की थी। अन्य पदार्थों को वे मूल पदार्थ का रूपान्तर मात्र मानते थे। आजकल हम हाइड्रोजन (Hydrogen) को मूल पदार्थ मानकर अन्य तत्वों को उसका रूपान्तर कह सकते हैं।

भारतीय दार्शनिक कणाद, पाराशर, पातंजलि आदि ने भी परमाणु सम्बन्धी महत्वपूर्ण विचार रखे। अनेक विद्वानों का मानना है कि महर्षि

कणाद का परमाणुवाद सम्भवतः परमाणु की पहली कल्पना थी जो डाल्टन के परमाणुवाद से बहुत मिलती है। इसके अनुसार पदार्थ के दो भेद हैं—(१) पदार्थ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अत्यन्त सूक्ष्म कणों का बना होता है, (२) अपनी माध्यमिक अवस्था में वह अणुओं (Molecules) का बना होता है। कणाद ने यह भी कहा कि पदार्थ के सूक्ष्म कण अविभाज्य होते हैं। आगे चलकर भारतीय विचारक कणाद के इस विचार से आगे बढ़ गए कि परमाणु अविभाज्य होता है और उन्होंने यह मान्यता प्रकट की कि परमाणु स्वयं अन्य छोटे-छोटे कणों का बना होता है। इन कणों को 'भूतादि' कण कहा गया। ये विचार आधुनिक जानकारी से अद्भुत मेल खाते हैं जबकि उस समय न तो प्रायोगिक प्रमाणों की प्रथा थी और न व्यवस्था।

आधुनिक विचार—पदार्थ सम्बन्धी आधुनिक विचारों का प्रारम्भ १७ वीं शताब्दी में राबर्ट बॉयल (Robert Boyle) ने किया। १६६१ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Sceptical Chymist' में उसने प्राचीन विचारों का खण्डन किया और सर्वप्रथम तत्त्व (Element), यौगिक (Compound) एवं मिश्रण (Mixture) की वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत की, जो आज भी प्रचलित है और जिसके द्वारा पदार्थों की प्रकृति, क्रिया-प्रक्रिया तथा श्रेणियों को समझने में अत्यधिक सहायता मिली। बॉयल की व्याख्याओं का सारांश इस प्रकार है—

(१) तत्त्व वह सरल पदार्थ है जो एक ही द्रव्य का बना हो और जिसका विभाजन अन्य किसी सरल द्रव्य में न हो सके; जैसे सोना, चांदी, लोहा, तांबा आदि।

(२) यौगिक पदार्थ एक से अधिक तत्त्वों से मिल कर बनता है। जब तत्त्व आपस में रासायनिक क्रिया करते हैं तब यौगिक पदार्थ तैयार होते हैं। यौगिक की विशेषता यह है कि इसके गुण उन तत्त्वों के गुणों से सर्वथा भिन्न होते हैं जिनसे .. वे बनते हैं; जैसे हाइड्रोजन गैस और आक्सीजन के मिलने से पानी बनता .। इसमें ये दोनों तत्त्व १:२ के अनुपात में होते हैं। पानी के गुण हाइड्रोजन और आक्सीजन के गुणों से सर्वथा भिन्न होते हैं। यौगिक पदार्थों का प्रत्येक नमूना एक सा ही अर्थात् समावयवी (Homogeneous) होता है। यौगिक में मिलने वाले तत्त्व सदा एक ही अनुपात में पाये जाते हैं। सभी पदार्थ छोटे-छोटे कणों से बने होते हैं जिनके पारस्परिक न्यूनाधिक आकर्षण के कारण ही यौगिकों का संगठन या विघटन होता है।

(३) मिश्रण किन्हीं भी दो या अधिक तत्त्वों अथवा यौगिकों को मिलाने से बनते हैं। इनका संगठन अनिश्चित होता है, इनमें तत्त्व किसी भी अनुपात में मिलाए जा सकते हैं। मिश्रण के तत्त्वों को सरलता से अलग-अलग किया जा सकता है।

राबर्ट बॉयल ने तत्त्व और यौगिक पदार्थों के अन्तर को इतना स्पष्ट . से समझाया कि भविष्य में उनका ठीक-ठीक वर्गीकरण किया जाने .। किन्तु विज्ञान जगत में बेचर और स्टाल (Becher and Stahel) .. एक भ्रामक सिद्धान्त 'फ्लोजिस्टन-सिद्धान्त' (Phlogiston Theory)

बताया गया कि प्रत्येक ज्वलनशील पदार्थ में फ्लोजिस्टन नाम का अंश होता है जिसके कारण ही वस्तु जल जाती है। फ्लोजिस्टन निकल जाने पर उस वस्तु की केवल राख बची रहती है। सौभाग्यवश लेवायजीयर (Lavoisier, 1743 to 1794) ने अपने मात्रात्मक प्रयोगों (Quantitative Experiments) द्वारा फ्लोजिस्टन सिद्धान्त को निर्मूल प्रमाणित करते हुए बताया कि जलने की क्रिया एक रासायनिक क्रिया है जिसके अन्तर्गत आक्सीजन जलते हुए पदार्थ के साथ संयोग करती है। इस तरह १८वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में आधुनिक रसायन शास्त्र का सूत्रपात हुआ। अब पदार्थ का सुव्यवस्थित वर्गीकरण किया जाने लगा और यह माना जाने लगा कि एक ही प्रकार का पदार्थ तीन अवस्थाओं में रह सकता है—ठोस, द्रव और गैस।

उपरोक्त विचार के बाद ही जान डाल्टन (John Dalton 1766-1845) का प्रसिद्ध परमाणु सिद्धान्त (Dalton's Atomic Theory) प्रतिपादित किया गया। १८१० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'New System of Chemical Philosophy' में डाल्टन ने परमाणु सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया है जो संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) परमाणु द्रव्य के अत्यन्त सूक्ष्म कण हैं जो गुणों में सीमित, अनन्त और अविभाज्य हैं। रासायनिक क्रियाओं में इनके खण्ड नहीं होते हैं।

(२) परमाणु न तो उत्पन्न ही किए जा सकते हैं, न नष्ट ही।

(३) एक ही तत्व के समस्त परमाणु गुण व मात्रा में समान होते हैं।

(४) भिन्न-भिन्न तत्वों के परमाणु गुण और भार में अलग-अलग होते हैं।

(५) भिन्न-भिन्न तत्वों के परमाणु सरल गुणित अनुपात में संयुक्त होकर यौगिकों के अणु बनाते हैं।

(६) तत्वों के संयोजन भार (Combining Weight) का अनुपात उनके परमाणुओं के तुल्यांक भार (Equivalent Weight) के अनुपात में होता है।

यद्यपि यह विचार अत्यन्त पुराना था कि पदार्थ अविभाज्य सूक्ष्म कणों का बना होता है किन्तु डाल्टन ने पहली बार इन कणों के बारे में मात्रात्मक (Quantitative) विचार रखे और इस तरह विज्ञान की सुदृढ़ आधारशिला स्थापित की।'

१९वीं शताब्दी में वैज्ञानिक प्रगति बहुत द्रुत गति से हुई। इस शताब्दी के अन्तिम दशक में 'परमाणु' का रहस्यमय दुर्ग टूट गया। सन् १८९७ में जे० जे० टामसन (J. J. Thomson) ने 'इलैक्ट्रोन' (Electron) की खोज करके यह प्रमाणित कर दिया कि परमाणु विभाजनशील है। इलैक्ट्रोन नामक कण परमाणु के टूटने से ही प्राप्त होते हैं। इलैक्ट्रोन अथवा विद्युताणु ऋण विद्युत का सबसे छोटा कण होता है। इलैक्ट्रोन्स के वेग का मान २·५ और ३·६ × १०^{९} सेन्टीमीटर/सेकिंड या प्रकाश की गति के लगभग १/१० के बराबर है जिसका अर्थ यह हुआ कि इलैक्ट्रोन कुछ ही सैकिन्डों में चन्द्रमा तक पहुँच सकते हैं। आगे चलकर यह बात प्रमाणित हुई कि परमाणु में इलैक्ट्रोन्स के सबसे छोटे कण भी होते हैं।

और परमाणु बम का निर्माण बना। आजकल द्रव्य को शक्ति में परिवर्तित करने के अनेक उपाय ज्ञात किए जा चुके हैं।

वास्तव मे पदार्थ रचना की रहस्य-यात्रा मे मानव ने बहुत कुछ सीखा है और बहुत कुछ उसे सीखना बाकी है। इसी आधार पर वह आज परमाणु शक्ति पर नियन्त्रण कर रहा है।

१९६५ (ख) ऊर्जा या शक्ति (Energy)

जिन तीन प्रारम्भिक रूपों मे प्रकृति मनुष्य के सम्मुख स्वय को प्रकट करती है उनका नाम है—(a) द्रव्य (Matter) (b) गति (Motion), एव (c) शक्ति या ऊर्जा (Energy)। द्रव्य जगत की प्राणधारा गतिशीलता और ऊर्जा या शक्ति है। विश्व का कण-कण गतिशील है और प्रत्येक कण मे ऊर्जा है। गति ही पर विश्व का विकास निर्भर है और गति तथा ऊर्जा परस्पर सम्बन्धित है। यह विश्व जो हमारा निवासस्थल है ऊर्जा पर निर्भर है। ऊर्जा द्वारा ही सागर की उत्तुंग लहरों पर विशालतम भीमकाय जहाज निर्भय घूमते फिरते हैं, वायुयान आकाश में उड़ते-फिरते हैं, रेलगाड़िया मनुष्यों और विपुल सामान को देश के एक कोने से दूसरे कोने मे पहुंचाती है, मोटर, ट्रकें और बसें सडकों पर दौड़ती-फिरती हैं, रेडियो और टेलीविजन हमारा मनोरंजन करते हैं।

ऊर्जा और उस पर आधारित यन्त्रों का मानव सभ्यता के विकास में योगदान-प्रत्येक छोटा बड़ा काम जो हम करते हैं, उसमे ऊर्जा का उपयोग होता है। वास्तव मे कार्य करने की क्षमता ही ऊर्जा है। ऊर्जा और यन्त्रों के विकास के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। आदि मानव के पास केवल भुजाओं की शक्ति थी, किन्तु यन्त्र शक्ति के विकास के कारण आज अखिल विश्व का रूप ही पलट गया है। बिना यांत्रिक ऊर्जा के हम आज कितने अशक्त, निर्बल और असहाय होंगे इसकी कल्पना केवल इसी से की जा सकती है कि हम यांत्रिक ऊर्जा के अभाव मे केवल उतना ही चल सकते है जितना कि हमारे पैर हमें सहयोग दें, उतना ही तेज चल सकते हैं जितना ही हमारे पैर दौड़ सकें और उतनी ही सम्पत्ति हम अर्जित कर सकते हैं जितनी कि हम अपने बाहुबल से जुटा सकें। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि यांत्रिक ऊर्जा के अभाव में हमें फिर मनुष्य की आदिम अवस्था में, प्रागैतिहासिक काल मे लौटना पड़ेगा।

आदि मानव की प्रथम और सबसे बड़ी ऊर्जा अथवा प्रथम यन्त्र उसकी भुजाएं, उसका बाहुबल था। परन्तु वास्तव मे ऊर्जा की कहानी तो सचमुच में यांत्रिक ऊर्जा की कहानी है जो केवल १०० वर्ष ही पुरानी है। इसके पहले वायु, पानी, सौर्य, ऊर्जा और साधारण यान्त्रिक ऊर्जा, जैसे उत्तोलक (Lever), घिरनी (Pulley) और भुजाओं का बल (Force) ही ऊर्जा के साधन रहे थे। चूंकि मानवीय बाहुबल और पाशविक बाहुबल थक जाते हैं, कभी-कभी काम भी नहीं करना चाहते और जटिल जगत की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति मे अक्षम रहते हैं—अतः मनुष्य ने शक्ति के अन्य साधनों की खोज आरम्भ की। सभ्यता के आलोक के साथ मनुष्य ने विभिन्न औजारों और यन्त्रों से काम लेना सीखा। 'यन्त्र' (Machine) शब्द का

ऊर्जा की परिभाषा (Definition of Energg)—अब तक के वर्णन से स्पष्ट है कि ऊर्जा (Energy) किसी वस्तु के कार्य करने की क्षमता (Capacity) है। ऊर्जायें, जिनके बारे में हम आगे अध्ययन करेंगे, विभिन्न रूपों में पाई जाती हैं और उन सब में एक गुण पाया जाता है—वह है उन सबके द्वारा द्रव्य या पदार्थ में किसी न किसी प्रकार की गति उत्पन्न करने की प्रवृत्ति। सरल शब्दों में शक्ति या ऊर्जा द्रव्य को गति देने की एक प्रवृत्ति है। किसी वस्तु द्वारा अवस्था (System) विशेष में किया गया कुल कार्य उसकी शक्ति का परिमाण बतलाता है। इसीलिए 'शक्ति' या 'ऊर्जा' और कार्य को इकाइयां एक समान होगी। ऊंचाई से गिरता हुआ पानी डाइनेमों चलाने का कार्य करता है जिससे बिजली पैदा होती है इसलिए ऊंचाई से रखे हुए पानी में ऊर्जा है। इसी प्रकार चाबी दी हुई कमानी घड़ी के कांटों को चलाती है, इसलिए उसमें शक्ति होती है, वायु में शक्ति होती है क्योंकि जब वह नाव को ठेलती है तो काम करती है। गुरुत्वाकर्षण, चुम्बकत्व, विद्युत आदि सभी ऊर्जाओं में पदार्थ को गति देने की विशेषता है। इसके अतिरिक्त ऊर्जा में वस्तु की आकृति बदलने की भी प्रवृत्ति होती है।

इस प्रकार ऊर्जा हम उसको कहते हैं कि "जो पदार्थों को गतिशील बना देती है या उनकी आकृति को बदल देती है।" प्रायः हम ऊर्जा का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार के पदार्थ के साथ जोड़ते हैं, किन्तु कभी-कभी ऊर्जा पदार्थ रूप में विद्यमान नहीं भी रहती है, जैसे विद्युत-धारा और ताप की ऊर्जा।

इस सन्दर्भ में हमें ऊर्जा (Energy) और सामर्थ्य (Power) में अन्तर समझ लेना चाहिए। ऊर्जा से वस्तु द्वारा किए हुए उस कार्य का पता चलता है जो वह उस परिस्थिति में जिसमें वह रखी हुई है, कर सकती है। कितने समय में वह कार्य हो सकता है, इससे कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु एक सेकिंड में उसी वस्तु द्वारा किया हुआ कार्य उसकी सामर्थ्य (Power) होती है।

शक्ति के सम्बन्ध में एक बात और स्मरणीय है। सामान्य तौर से यह माना जाता है कि शक्ति या ऊर्जा न स्थान घेरती है और न उसमें भार होता है। किन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार यह तो मानना पड़ता है कि शक्ति में भार होता है, किन्तु वह इतना कम होता है कि व्यावहारिक दृष्टि से नगण्य होता है। शक्ति का प्रसारण तरंगों (Waves) के रूप में होता है। शक्ति की तीव्रता तरंग लम्बाई (Wave length) पर निर्भर करती है। तरंग लम्बाई जितनी छोटी होती है शक्ति या ऊर्जा उतनी ही तीव्र होती है। प्रकाश किरणों की तरंग लम्बाई अधिक होने से वे कागज, लकड़ी आदि के व्यावधानों को पार नहीं कर पाती जबकि ऐक्स-रे की तरंग लम्बाई इतनी कम होती है कि वे कागज, लकड़ी, चमड़ी और अल्यूमीनियम की पतली चद्दरों आदि को सरलता से पार कर जाती हैं।

ऊर्जा या शक्ति के विविध रूप
(Different Forms of Energy)

प्रकृति में ऊर्जा हमको अनेक रूपों में प्राप्त होती है। ऊष्मा, प्रकाश, चुम्बक, विद्युत, ध्वनि, रासायनिक ऊर्जायें आदि उनमें प्रमुख हैं। हमें यह जानकर आश्चर्य

होगा कि सिवाय परमाणु ऊर्जा के प्रत्येक प्रकार की ऊर्जा चाहे वह बाहुबल की हो या वाष्प एन्जिन की या विद्युत मोटर की अथवा जेट वायुयान की—मूलतः हमें सूर्य से ही प्राप्त होती है। सूर्य ही हमारी समस्त ऊर्जाओं का मूल स्रोत है। हमको ऊर्जा प्राय ४ तरीकों से प्रकृति से उपलब्ध होती है—

१. वायु द्वारा
२. बहते पानी द्वारा
३ जलते ईंधन द्वारा
४ परमाणु द्वारा

इनमें से सिवाय परमाणुओं के अन्य तीनों ऊर्जायें हमें सीधे या परोक्ष रूप में सूर्य से प्राप्त होती हैं।

(१) वायु द्वारा ऊर्जा – सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर असमान रूप से पड़ता है। इस कारण पृथ्वी के कुछ भाग अधिक गर्म हो जाते हैं। अधिक गर्म स्थानों की हवा गर्म हो जाने से हल्की होकर ऊपर उठती है और उसका स्थान लेने के लिये अन्य स्थानों की ठण्डी हवा आ जाती है। इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान को हवा चलती रहती है। सूर्य के कारण ही पवन चलती है। पवन की इस गति का उपयोग हम पवन-चक्की लगाने, पालदार नाव लेने व खलिहानों में अनाज साफ करने में करते हैं।

(२) बहते पानी द्वारा – बहते हुए पानी से हमको अत्यधिक विद्युत ऊर्जा प्र..त होती है। भाखरा नागल और गांधी सागर इसके जीते जागते प्रमाण हैं। इस बहते हुए पानी का मूल कारण भी सूर्य है। सूर्य के ताप से समुद्रों का जल भाप बन कर मेघों के रूप में आकाश में उठता है और वर्षा के रूप में पुनः जल बनकर पहाड़ों पर तथा अन्यत्र गिरता है। ऊंचे स्थान पर जल गिरने से जल नीचे की ओर बहने की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रवृत्ति का उपयोग कर जल विद्युत उत्पन्न (जल से डाइनेमा चलाकर) की जाती है।

(३) जलते हुए ईंधन द्वारा ऊर्जा—तीसरा ढंग जिससे हमें ऊर्जा उपलब्ध है, वह है ईंधन द्वारा। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि जो पदार्थ कभी पेड़-पौधे रहे हैं वे ही जलते हैं। इनको रसायन शास्त्र में कार्बनिक ..ic) कहते है। इनके अलावा कोई भी पदार्थ नहीं जल सकता। चट्टान कभी पदार्थ नहीं रही है अतः यह जलती भी नहीं है। कोयला जो चट्टान की ..ाई देता है परन्तु चट्टान नहीं होता, जलता है। सभी सजीव वस्तुओं का सूर्य है। सूर्य के प्रकाश व ताप से ही पेड़-पौधे जीते व बढ़ते हैं। जब के नीचे दब जाते हैं तो गर्मी व दबाव के कारण लाखों करोड़ों वर्षों में के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी प्रकार से पैट्रोल, मिट्टी का तेल आदि वाले पदार्थों की उत्पत्ति हुई है। इनको जलाकर हम विभिन्न प्रकार के कल ..नें, मोटरें, हवाई जहाज चलाते हैं। गैसोलिन, डीजल तेल, जेट ईंधन और प्रकार के ईंधन, सभी प्रकृति में पाये जाने वाली तेल के ही विविध रूप हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि ईंधन उन वस्तुओं से प्राप्त होता है, जो कभी सजीव थीं, और उन सभी वस्तुओं का मूल आधार सूर्य है।

एक दूसरी प्रकार की क्रिया और है जो ऊर्जा उत्पन्न करती है—वह है मनुष्यों और पशुओं के शरीर में शर्करा का जलना। किसी वस्तु को उठाते समय जो ऊर्जा हमारी मांस-पेशियों को कार्य करने के लिए सक्षम बनाती है, वह शर्करा के जलने से ही प्राप्त होती है।

(४) **परमाणु ऊर्जा**—परमाणु ऊर्जा अथवा शक्ति का विस्तृत रूप में अध्ययन हम आगे चलकर करेंगे। यहां पर इतना ही लिख देना यथेष्ट है कि यह ऊर्जा उपरोक्त सभी ऊर्जाओं से सर्वथा भिन्न है। इसमें पदार्थ ही ऊर्जा में परिणित हो जाता है। तत्वों में अनेक तत्व ऐसे हैं जिनके कण बराबर टूटते रहते हैं। ये तत्व रेडियो-धर्मी (Radio-active) तत्व कहलाते हैं। इस प्रकार के कणों के टूटने पर इतनी विशाल शक्ति निकलती है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यही शक्ति परमाणु शक्ति कहलाती है जिसका उदाहरण एटम बम्ब सभी को ज्ञात है। परमाणु ऊर्जा का सही उपयोग रेलगाड़ियाँ और मोटर चलाने में, विद्युत उत्पन्न करने में और भांति-भांति के कारखाने चलाने में किस प्रकार किया जाय—आधुनिक वैज्ञानिक इसी खोज में लगे हुए हैं।

इस बात पर विश्वास करने के अनेक कारण हैं कि सभी तरह के पदार्थों और शक्तियों का मूल स्रोत सूर्य है और हम विविध शक्तियों का सम्बन्ध सूर्य की ऊर्जा के साथ स्थापित कर सकते हैं। निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा—

(१) सागर में तैरने वाली मछलियों को भी ऊर्जा सूर्य से ही प्राप्त होती है। समुद्र में अन्य प्राणी व वनस्पति पैदा होती है जिन्हें खाकर मछलियाँ जीवित

गर्म हवा हल्की होने के कारण उठती है। अतः उसका स्थान लेने के लिए अन्य स्थानों की ठण्डी हवाएँ आती हैं। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। इस प्रकार विविध वेग से बहने वाले पवन वेग की ऊर्जा का मूल स्रोत भी सूर्य ही है।

ऊर्जा के अन्य विभिन्न प्रकार (Other Types of Energy)—ऊर्जा अथवा शक्ति के अन्य विभिन्न रूप निम्नलिखित प्रकार से हैं—

(१) यांत्रिक ऊर्जा (Mechanical Energy)—काम करने की क्षमता या समावेशन को यांत्रिक ऊर्जा कहते हैं। यांत्रिक ऊर्जा के बारे में हम पहले कुछ चर्चा कर चुके हैं। यह अनेक रूप से काम में आने वाली शक्ति है जिसका मानव सभ्यता के क्रमिक विकास में बहुत योगदान रहा है। यांत्रिक ऊर्जा वस्तु की परिस्थिति पर निर्भर रहती है। अगर कोई वस्तु गति अवस्था (State of Motion) में होती है तो उसमें विद्यमान शक्ति को 'गतिज शक्ति' (Kinetic Energy) कहते हैं। इसी प्रकार किसी वस्तु में अपनी विशेष स्थिति (Position) के कारण कार्य करने की जो क्षमता छिपी रहती है उसे 'स्थितिज शक्ति' (Potential Energy) कहते हैं। यांत्रिक शक्ति के इन दो रूपों का हमारे जीवन में अत्यधिक उपयोग हो रहा है। एक रेल का इंजिन जब रेलगाड़ियों को खींच रहा हो, एक ट्रैक्टर जब हल चला रहा हो, एक बम्ब का गोला जब वायु से पृथ्वी पर गिर रहा हो, एक गोली जब बन्दूक से दागी गई हो, तो इन सब की शक्ति 'गतिज' होती है। तनी हुई कमानी, ऊँचे स्थान पर रखा हुआ पत्थर 'स्थितिज' शक्ति के उदाहरण हैं। ऊर्जा के इन दोनों रूपों का विस्तार से वर्णन आगे पृथक रूप में किया जायगा।

(२) ताप ऊर्जा (Heat Energy)—दूसरी प्रकार की ऊर्जा ताप ऊर्जा है। कोयले व तेल आदि ज्वलनशील पदार्थों को जलाकर ताप शक्ति उत्पन्न की जाती है। अधिकांश कल-कारखाने, रेलगाड़ियाँ, समुद्री जहाज आदि ताप द्वारा ही अपना [कार्]य करते हैं।

ताप का अनुभव हमें अपनी स्पर्शेन्द्रिय द्वारा होता है। एक लोहे की छड़ को आग में रखने पर वह गर्म हो जाती है। आग में से कोई वस्तु निकल कर लोहे की छड़ में चली जाती है और उसे गर्म कर देती है। इस वस्तु को या भौतिक कारण को, जो अन्य वस्तुओं को गर्म करे, हम ताप कहते हैं। ताप में कोई भार [नह]ीं होता है। यदि छड़ को ठण्डी और गर्म अवस्था में तोलें तो उस तोल में कोई [अ]न्तर नहीं आता। स्पष्ट है कि ताप किसी प्रकार का द्रव्य नहीं है और न कोई [भौ]तिक वस्तु ही है। प्रत्युत ऊर्जा का ही एक विशेष रूप है।

(३) प्रकाश ऊर्जा (Light Energy)—प्रकाश भी एक प्रकार की ऊर्जा है। [य]ह वह ऊर्जा है जो हरे पौधों को सजीव सृष्टि के लिए भोजन बनाने में समर्थ [बना]ती है। प्रकाश ऊर्जा की सहायता से ही हरे पेड़-पौधे अपना भोजन तैयार करते हैं [और ब]ढ़ते रहते हैं। प्रकाश ऊर्जा की सहायता से ही आज अन्य वस्तुओं को देख सकते [हैं।] आधुनिक समय में सूर्य के प्रकाश से ही चूल्हे बनाये जाते हैं और मोटर गाड़ियाँ [चलाई] जाती हैं। प्रकाश से ही हम विद्युत शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

(४) विद्युत ऊर्जा (Electric Energy)—विद्युत ऊर्जा का हमारे जीवन में कितना महत्व है—यह किसी से छिपा नहीं। इसकी सहायता से हमें प्रकाश मिलता है। इससे चुम्बकीय शक्ति प्राप्त की जाती है जिसे यांत्रिक शक्ति में परिवर्तित करके विभिन्न प्रकार के कल-कारखाने चलाये जाते हैं। बिजली के लैम्प, स्टोव, पखे, मोटरें, लिफ्ट्स, घड़ियां, टेलीफोन, टेलीग्राफ, रेडियो इत्यादि सभी इस बात के द्योतक हैं कि विद्युत एक बड़ी भारी शक्ति है।

(५) चुम्बक ऊर्जा (Magnetic Energy)—विद्युत की तरह चुम्बक ऊर्जा भी आज के वैज्ञानिक युग में हमारे लिए बहुत काम की है। हमारे दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाले अनेक उपकरण जैसे तार, टेलीफोन, विद्युत घंटी, क्रेन आदि चुम्बक ऊर्जा पर ही आधारित हैं। वस्तुतः हमारी पृथ्वी को जो चुम्बकीय बल घेरे हुए है उसमें महान् शक्ति है। यदि एक चुम्बकीय क्षेत्र में हम एक तांबे के तार को घुमाएं तो तार के अन्दर बिजली की धारा बहने लगती है। इसी तरह यदि हम एक लोहे की छड़ी को तांबे के तार से लपेट कर उसमें विद्युत धारा बहने दें तो छड़ में चुम्बकीय गुण आ जाते हैं।

(६) रासायनिक ऊर्जा (Chemical Energy)—ऊर्जा का एक अन्य रूप हमें रासायनिक ऊर्जा के रूप में देखने को मिलता है। डाइनेमाइट गैसोलीन, डीजल, पैट्रोल आदि से पायी जाने वाली ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा ही है। शारीरिक शक्ति हमें अपने भोजन के पदार्थों में से रासायनिक क्रिया द्वारा ही मिलती है।

(७) ध्वनि ऊर्जा (Sound Energy)—ध्वनि भी एक प्रकार की ऊर्जा है। हम जन्म से मृत्यु तक ध्वनि-शक्ति का [illegible] करते हैं। बोलना व सुनना इसी शक्ति पर आधारित है।

किया जा सकता है। स्वयं प्रकृति में भी ऊर्जा के रूपों में परिवर्तन होता रहता है। सूर्य की प्रकाश-किरणें पृथ्वी पर पहुँच कर ताप उत्पन्न करती है, यह ताप ऊर्जा वायु को पवन का और पानी को वाष्प का रूप दे देती है। इसी तरह वर्षा के गिरने से पानी में और नदी के प्रवाह में गतिज ऊर्जा होती है। प्रकृति में ऊर्जा के अनेक ऐसे रूप हैं जिनका कोई व्यावहारिक उपयोग उसी रूप में सम्भव नहीं हैं अथवा जो अपने स्वभाविक रूप में हानिप्रद और खतरनाक भी सिद्ध हो सकते हैं। आज से बहुत वर्ष पहले हम यही कहते थे कि ऊर्जा का न तो सृजन किया जा सकता है और न विनाश ही तथा ऊर्जा को एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, किन्तु आज के विज्ञान ने पिछले कुछ वर्षों में यह प्रमाणित कर दिया है कि एक दृष्टि से ऊर्जा का सृजन किया जा सकता है, पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है जैसा कि यूरेनियम २३५ तथा प्लूटोनियम के साथ किया जाता है। अधिक स्पष्ट रूप में हम यों कह सकते है कि पदार्थ ऊर्जा में और ऊर्जा पदार्थ रूप में परिवर्तनीय है। विज्ञान के इस आविष्कार की देन का श्रेय महान् वैज्ञानिक आइन्सटाइन को है जो दुर्भाग्यवश अब इस ससार में नहीं रहे हैं।

स्थितिज और गतिज ऊर्जा
(Potential and Kinetic Energy)

हमने ऊर्जा के विविध रूपों की चर्चा की है, तथापि इन सब स्वरूपों में वैज्ञानिक मुख्य रूप से दो मूल स्वरूपों को मानते हैं— (१) गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy), एव (२) स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy)।

गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy)—किसी वस्तु या पदार्थ के गतिशील होने पर उसमें पायी जाने वाली शक्ति या ऊर्जा को गतिज ऊर्जा या शक्ति कहते हैं। उस प्रत्येक वस्तु में जो गतिशील है, *गतिज ऊर्जा होती है।* कोई वस्तु जितनी ही अधिक भारी होगी, उतनी ही तेजी से चलेगी और *जितनी ही तेजी से वह वस्तु चलेगी,* उतनी ही अधिक 'गतिज ऊर्जा' उसमें प्राप्त होगी।

पहाड़ी पर रखा हुआ पत्थर जब किसी कारण से नीचे गिरता है तो उसमें गति और शक्ति पैदा हो जाती है। इस गिरते हुए पत्थर को हाथ से पकड़ने पर हमारे हाथों में चोट लग जाती है। जब हम क्रिकेट के बल्ले (bat) को घुमाकर (अर्थात उसमें एक विशेष गति उत्पन्न करके) गेंद को मारते है तो गेंद गतिशील तेजी से एक तरफ दौड़ती है। इस समय उसमें गति और ऊर्जा दोनों का प्रादुर्भाव होता है, *यही कारण है कि उसे हाथों से रोकते समय हमारे हाथ झनझना उठते हैं।* स्पष्ट है कि गति के कारण सभी वस्तुओं में प्रबल ऊर्जा पैदा हो जाती है।

गतिज शक्ति मन्द अथवा तीव्र हो सकती है। यह बात गतिशील पदार्थ की गति पर निर्भर करती है। पेड़ पर लटकते हुए फल की ओर पत्थर फेंकने पर फल नीचे आ जाता है। यह फल तोड़ने की शक्ति पत्थर में गति के कारण उत्पन्न हुई। बन्दूक की गोली में अधिक गति होती है। इसी कारण वह पदार्थों में छेद करती हुई आर-पार निकल जाती है। चूंकि गोली में गति का वेग अधिक होता है, अतः

उसमें गतिज शक्ति भी अधिक होती है। गोली के लक्ष्य से टकराने पर जब लक्ष्य उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर देता है तो ऊर्जा उसे आगे बढ़ने को प्रेरित करती है और इस प्रकार वह लक्ष्य बेध देती है। अधिकतर सभी आग्नेय शस्त्र इसी सिद्धांत पर बने हैं। पानी को बन्दूक में भरकर लोग सांप को मारते हैं। पानी तेज रफ्तार के साथ बन्दूक से निकलता है अतः उसमें बहुत ही अधिक गतिज ऊर्जा पैदा हो जाती है। इसी तरह यदि बन्दूक की नली में भरकर मोमबत्ती को दाग दिया जाय तो वह मोमबत्ती लकड़ी के दरवाजे को आसानी से भेद सकेगी और स्वयं नाममात्र को भी नहीं मुड़ेगी।

अब हम गतिज ऊर्जा के कुछ और उदाहरण देते हैं जो हम दैनिक जीवन की घटनाओं में प्रायः देखते हैं—

१. साइकिल को चलाने से उसमें गति पैदा होती है। ज्यों-ज्यों हम तेजी से पैडिल मारते हैं, साइकिल की गति उसी अनुपात में तेज होने लगती है। ब्रेक का उपयोग करके हम उसकी गति को कम कर लेते हैं। इस प्रकार गतिज शक्ति द्वारा हम मीलों की दूरी को आसानी से तय कर लेते हैं।

२. गतिज शक्ति के कारण ही हम दीवार या लकड़ी में कीलें ठोक लिया करते हैं। कील पर केवल हथौड़ा रख देने से लकड़ी या दीवार में कील नहीं ठुक जाती।

३. क्रिकेट के खेल में बल्लेबाज जब बल्ले को घुमाकर गेंद पर मारता है तो गेंद में गतिज शक्ति पैदा हो जाती है। जब झेलने वाला उस गतिज शक्ति से युक्त गेंद को पकड़ता है तो उसे ज़ोर से झटका लगता है।

४. खाली लकड़ियों को आरी से गतिज शक्ति पैदा करके ही चीरता रहता है।

५. पत्थर के कोयलों अथवा बड़े-बड़े पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े करते समय गतिज शक्ति का उपयोग किया जाता है। कोयले अथवा पत्थर पर हथौड़े से चोट मारकर उसमें गतिज शक्ति पैदा की जाती है जो हमारे कोयलों व पत्थरों को छोटे-छोटे टुकड़ों में आवश्यकतानुसार बदल देती है।

६. हवा की पवन चक्कियाँ वायु से ऊर्जा पाकर चलती हैं।

७. झरनों और प्रपातों से चक्की और टर्बाइनें चलायी जाती हैं।

स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy) —दूसरी प्रकार की ऊर्जा, जो किसी स्तु में विद्यमान होती है, वह उसकी स्थिति या अवस्था के कारण होती है। इस कार की ऊर्जा को स्थितिज (Potential) ऊर्जा कहते हैं। उसका मापन काम के म परिमाण से किया जाता है जो वह वस्तु अपनी स्थिति से किसी प्रामाणिक ति में आने पर कर सकती है। घड़ी में चाबी लगाने से उसके कमानी में छिपे हुए न में और उस पर रखे भार में स्थितिज ऊर्जा होती है। यदि यही ऊर्जा को गति है। जमीन पर पड़ी हुई एक ईंट साधारण पदार्थ की तरह है परन्तु यही ईंट एक ऊँची इमारत की छत पर रखी हुई हो तो वह स्थितिज ऊर्जा लिए हुए होगी, क्योंकि यदि किसी कारण वह नीचे गिर जाय तो उसकी "स्थितिज ऊर्जा"

'गतिज ऊर्जा' मे बदल कर किसी को चोट पहुंचा सकती है। बाध बना कर लाखो गैलन पानी उसमे सग्रहीत किया जाता है। बाध के उस पानी मे, उसकी स्थिति के कारण बहुत सी स्थितिज ऊर्जा विद्यमान होती है। इस पानी को टर्बाइन पर गिराकर विद्युत उत्पादक के प्रहियो को तेजी से चलाया जाता है। ऐसा करने से 'स्थितिज ऊर्जा' 'गतिज ऊर्जा' मे परिवर्तित हो जाती है और उसे हम विद्युत ऊर्जा मे बदल देते हैं।

स्थितिज ऊर्जा के दैनिक जीवन की घटनाओ मे से कुछ और उदाहरण दिये जा सकते हैं—

१. छत पर टंके हुए छीके मे स्थितिज शक्ति विद्यमान है। जब तक यह डोरी से लटका रहेगा, तब तक इसमे स्थितिज शक्ति मौजूद रहेगी।

२. फ्लश के शौचालयों मे लगी हुई टकी मे जो पानी भरा रहता है, उसमे स्थितिज शक्ति होती है। चूकि द्रव पदार्थ सदैव ऊपर से नीचे की ओर बहते हैं अतः नल मे होकर जब वह पानी नीचे आता है तो उसमे गतिज शक्ति पैदा होती है जो मल को बहा ले जाती है।

३. मिट्टी के तेल व ईंधन मे स्थितिज शक्ति विद्यमान है। परन्तु हम उस स्थितिज शक्ति को ताप मे बदलकर अपना भोजन तैयार कर लेते है।

४ बायलर मे भरी हुई भाप मे स्थितिज शक्ति होती है। परन्तु उसका . जब इजिन मे किया जाता है तो वह यांत्रिक-शक्ति मे बदलकर रेलगाडी को ने लगती है।

५. दरख्त पर लटकते सेब के फल मे स्थितिज ऊर्जा निहित है। सहारा ही स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में बदल जाती है।

६. मेज पर पडी पुस्तक में स्थितिज ऊर्जा होती है पर ज्यो ही वह गिरती ही स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा मे बदल जाती है।

अब हमें देखना चाहिए कि स्थितिज ऊर्जा का कारण क्या है? यदि हम विचार करें तो पता चलेगा कि यह पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ही है। पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपने केन्द्र की ओर आकर्षित करती है, अतः हुई वस्तु बाह्य अवरोध हटने पर नीचे की ओर गतिशील हो जाती है। है कि ऊपर उठी हुई वस्तुओं मे स्थितिज ऊर्जा अनिवार्य रूप से हो है। अनेक वस्तुओं मे बिना उठे होने पर भी स्थितिज ऊर्जा विद्यमान कि हम इस उदाहरण में बता चुके हैं कि एक अलार्म घडी की में भी स्थितिज ऊर्जा होती है। ज्यो ही घडी मे चाबी भर जाता है, उसकी कसी हुई कमानी ढीली होने लगती है और उसकी चलने लगती है। इस तरह की स्थितिज ऊर्जा के कारण ही बनाये जाते हैं।

भी उल्लेखनीय है कि कुछ रासायनिक और यौगिक मिश्रण भी उनमें स्थितिज ऊर्जा होती है। उदाहरणार्थ-बारूद, कोयले और तारे के इतनी विस्फोटक स्थितिज ऊर्जा होती है कि इसने अनेक बार दुनिया के

इतिहास को बदल दिया। दो महायुद्धों का नाटक संसार देख चुका है और तीसरे महायुद्ध की आशंका ने मानवता को त्रस्त कर रखा है।

अलबर्ट आइन्सटाइन ने ऊर्जा का एक विशाल स्रोत और क्षेत्र हमारे लिए उपलब्ध करा दिया है और परमाणु ऊर्जा का स्रोत वैज्ञानिकों के हाथ लग गया है। है। सूर्य ऊर्जा का एक विशालतम स्रोत है–यह हम देख चुके हैं। सूर्य के अतिरिक्त, जो ऊर्जा की एक वृहद् मात्रा वायुमण्डल में प्रतिक्षण देता रहता है, ऊर्जा का अन्य स्रोत ब्रह्माण्ड किरणें हैं। इनकी खोज प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व हुई थी। वैज्ञानिकों की धारणा थी कि ये किरणें सूर्य से आती हैं किन्तु रात में प्रयोग करने पर भी इस प्रकार की किरणों की उपस्थिति का ज्ञान हुआ, अतः पूर्णरूपेण यह सिद्ध हो गया कि दूर अन्तरिक्ष से इस प्रकार की किरणें आती हैं। अन्तरिक्ष किरणें ऊर्जा का प्रमुख स्रोत हैं। ये ऊँचे वायुमण्डल को चीर कर समुद्र में भी लगभग एक हजार मीटर तक पहुँचती हैं। इससे इस बात का पता चलता है कि इनका शोषण एक्स-रश्मियों (X-Rays) या गामा रश्मियों की अपेक्षा बहुत कम होता है। इसका कारण इनका अति ऊर्जा युक्त होना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऊर्जा का विशाल स्रोत हमारे सम्मुख है। ऊर्जा के विभिन्न स्वरूप आज मानव को निर्माण की उस अनजानी दिशा की ओर मोड़ रहे हैं जहाँ से नव-निर्माण के भास्कर का आलोक प्रस्फुटित हो रहा है।

इसके पहले कि अब हम परमाणु शक्ति पर आयें यह उचित होगा कि शक्ति या ऊर्जा के बारे में महत्वपूर्ण नियमों का ज्ञान हम कर लें।

ऊर्जा के नियम (The Laws of Energy)—हम विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। इन सब में ऊर्जा के कुछ नियमों का पालन होता है। जो निम्नलिखित हैं—

ऊर्जा का पहला नियम—ऊर्जा का पहला नियम यह है कि सब ऊर्जा का योग स्थिर (Constant) होता है। इस नियम को ऊर्जा के 'अविनाशत्व के नियम' (The Law of Conservation of Energy) के नाम से पुकारा जाता है। इसका आशय यह है कि ऊर्जा न तो विनष्ट होती है और न ही बनाई जा सकती है, परन्तु इसे एक रूप से दूसरे रूप में बदला अवश्य जा सकता है। ऊर्जा के इस रूपान्तरण के अनेक उदाहरण हम पढ़ चुके हैं। ऊर्जा प्राप्त करने का यह एक बड़ा अपव्यय वाला साधन है क्योंकि जलाए जाने वाले ईंधन में जो ऊर्जा या शक्ति जमा है उसका बहुत थोड़ा भाग जलने के काम आता है। अतः वैज्ञानिक प्रयत्नशील है कि कि ऐसे उपकरणों का आविष्कार किया जाय ताकि ऊर्जा के स्वरूप-परिवर्तन करके उपयोग करने में कम-से-कम नुकसान हो।

ऊर्जा का दूसरा नियम—ऊर्जा का दूसरा नियम प्रायः ऊष्मा ऊर्जा के लिए लागू होता है। इसके अनुसार ताप सदा ऊँचे तापक्रम की दिशा में बहता है। जितना ही अधिक ताप का अन्तर होगा, उतना ही अधिक काम के लिए यान्त्रिक,

ऊर्जा हमें मिल सकेगी। वाष्प-एन्जिनों में ऊर्जा के इस नियम का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता है।

ऊर्जा का नया नियम—यद्यपि किसी वैज्ञानिक ने ऊर्जा के उपरोक्त नियमों को गलत सिद्ध नहीं किया लेकिन सन् १६०५ में महान् वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने बताया कि उपर्युक्त दोनों नियम वास्तव में एक ही नियम के दो स्वरूप हैं। उन्होंने दोनों नियमों का समन्वय करके यह नया नियम बतलाया कि ऊर्जा तथा पदार्थ का कुल योग स्थिर होता है। इसका अर्थ यही है कि ऊर्जा नष्ट नहीं होती वरन् ऊर्जा और पदार्थ का योग सदैव स्थिर बना रहता है। उदाहरणार्थ कोयले को जलाने से उसकी जितनी मात्रा कम होती है, वही मात्रा ऊर्जा में बदल जाती है। इस प्रकार मूल रूप से पदार्थ और ऊर्जा का योग समान व स्थिर ही बना रहता है।

आइन्सटाइन की इस खोज ने ही ऊर्जा के एक नवीन स्रोत 'परमाणु ऊर्जा' (Atomic Energy) का द्वार खोल दिया।

(ग) परमाणु ऊर्जा (Atomic Energy)

ऊर्जा के विविध रूपों और उनसे उठाए गए विभिन्न लाभों के बारे में हम पढ़ चुके हैं और यह भी देख चुके हैं कि विगत कुछ वर्षों से एक नवीन ऊर्जा-परमाणु ऊर्जा का उदय हुआ है–जिसने हमारे सामने अपरिमित शक्ति का भण्डार खोल दिया है। परमाणु ऊर्जा के सामने अब तक काम में लाए जाने वाली अन्य ऊर्जाओं के बड़े से बड़े साधन भी तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगे हैं। ऊर्जा के इस नवीन स्रोत परमाणु (Atom) के बारे में भी पूर्ववर्ती पृष्ठों में, द्रव्य की रचना के बारे में भी पूर्ववर्ती पृष्ठों में, द्रव्य की रचना के बारे में विचार करते समय काफी प्रकाश डाला जा चुका है।

अब हमें यह देखना चाहिए कि परमाणु ऊर्जा किस प्रकार उत्पन्न होती है। पदार्थ के परमाणुओं को तोड़ कर ऊर्जा में परिवर्तन करने की क्रिया को आइन्सटाइन ने निम्नलिखित समीकरण से प्रदर्शित किया है—

$$E = mc^2$$

यह समीकरण बतलाता है कि परमाणुओं का विखण्डन करके कितनी मात्रा में ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। साधारण रासायनिक क्रियाओं में परमाणुओं की इलेक्ट्रोन व्यवस्था में अन्तर होता है, केन्द्र वैसा का वैसा ही बना रहता है। परन्तु परमाणु ऊर्जा के रूप में जब हमें परमाणु से विशाल मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है, उस समय परमाणु के इलेक्ट्रोनों का नहीं, किन्तु केन्द्रक (Nucleus) का परिवर्तन होता है। इस प्रक्रिया में परमाणुओं का कुछ भाग नष्ट हो जाता है और यह विनष्ट भाग आइन्सटाइन के 'मात्रा-शक्ति के नियम' (Mass-Energy Relation) के अनुसार शक्ति में परिवर्तित हो जाता है। आइन्सटाइन के समीकरण ($E = mc^2$) में 'E' वर्ण (Ergs) ऊर्जा के लिए आया है, 'm' ग्राम में पदार्थ की मात्रा बतलाता है और 'c' प्रति सेकिण्ड में सेन्टीमीटरों में प्रकाश की मात्रा बतलाता है। यही है और इसका मान प्रकाश के वेग के मान के बराबर होता है

अर्थात् $c = 3 \times 10^{10}$ (प्रकाश का वेग $= 3 \times 10^{10}$ सेन्टीमीटर प्रति सेकिण्ड)। स्पष्ट है कि आइन्सटाइन के समीकरण में मुख्य बात 'c^2' की है। मानलीजिए कि हमें एक ग्राम पदार्थ को ऊर्जा अथवा शक्ति में परिवर्तित करना है, तो उपर्युक्त समीकरण के अनुसार—

$$\text{शक्ति } (E) = 1(m + c,^2)$$
$$= 1 \times (30,000,000,000)$$
$$= 2 \times (900,000,000,000,000\ 000,000) \text{ अर्ग।}$$

यदि एक ग्राम पदार्थ से ही इतनी अथाह ऊर्जा प्राप्त हो सकती है तो फिर हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर पदार्थ को ऊर्जा में बदलकर कितनी अपरिमित मात्रा में ऊर्जा को प्राप्त किया जा सकता है। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक पौण्ड यूरेनियम के विखण्डन से इतनी ऊर्जा मिल सकती है जितनी ५० लाख टन कोयले के जलने से। ६ अगस्त १९४५ को हिरोशिमा पर और ६ अगस्त को नागासाकी पर जो अणु बम्ब डाला गया उसमें केवल ५% यूरेनियम २३५ का विखण्डन हुआ गया। परमाणु ऊर्जा की अथाह शक्ति का एक अनुमान हम इससे लगा सकते हैं कि एक ग्राम द्रव्य से हमें 9×10^{20} अर्ग शक्ति प्राप्त होगी जो २०० टन भार वाली एक्सप्रेस रेलगाड़ी को ४५ मील प्रति घण्टा की चाल से लगातार १० वर्ष तक चलाती रहेगी। कितनी अगाध शक्ति मिलती है हमें केवल १ ग्राम पदार्थ से ? फिर तो इतना सारा द्रव्य हमारे चारों तरफ फैला हुआ है जिसमें अपरिमित शक्ति भरी पड़ी है।

जैसा कि आइन्सटाइन का समीकरण बतलाता है—सैद्धान्तिक दृष्टि से कोई भी पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है, परन्तु इस बात का अभी तक पता नहीं लग पाया है कि द्रव्य या पदार्थ (Matter) को ऊर्जा में पूर्णतः बदलने की क्या विधि है। फिर भी कुछ महत्वपूर्ण प्राकृतिक घटनाओं का स्पष्टीकरण इस सिद्धान्त से हो जाता है। आइन्सटाइन ने बतलाया कि विशेष अवस्थाओं में दो पदार्थ मिलकर एक हो सकते हैं। इस क्रिया में पदार्थ की थोड़ी सी मात्रा अपार ताप-शक्ति के रूप में प्रकट हो सकती है। यही सिद्धान्त परमाणु शक्ति व परमाणु बम का आधार है। सन् १९०५ में आइन्सटाइन द्वारा सापेक्षवाद के सिद्धान्त और ऊर्जा के समीकरण की घोषणा के बाद से ही वैज्ञानिक निरन्तर इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि किस विधि के आधार पर किसी भी पदार्थ को ऊर्जा में पूर्णतः बदला जा सकता है। यह पाया गया है कि रेडियम स्वभावतः शनैः शनैः शीशे में बदलता रहता है और इस प्रक्रिया में काफी ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस खोज से यह पहला सबल प्रमाण मिला है कि पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तनीय है। रेडियम में यह परिवर्तन इस कारण होता पाया गया है कि उसका केन्द्रक (Nucleus) अस्थायी होता है। यह टूट कर हीलियम के कण, परमाणु और गामा किरणें विकिरित करता है जो शीशे की पतली पर्त में होकर पार हो सकती हैं। वैज्ञानिक रेडियम के केन्द्र के विखण्डन से प्रोत्साहित होकर अपने प्रयासों द्वारा साइक्लोट्रोन (Cyclotron) मशीन की सहायता से कुछ अन्य तत्वों के केन्द्रक को तोड़ने में सफल हो चुके हैं।

उदाहरणार्थ—नाइट्रोजन को कार्बन में परिवर्तित किया जा चुका है। सन् १९३९ में वैज्ञानिक एक नये प्रकार का मौलिक परिवर्तन करने में सफल हो गये जिससे सर्वप्रथम परमाणु के केन्द्र में छिपी अथाह ऊर्जा को मुक्त करने की सम्भावना प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित हो गई। वैज्ञानिकों ने पाया है कि यूरेनियम २३५ (एक प्रकार का यूरेनियम का परमाणु जो हाइड्रोजन के एक परमाणु से २३५ गुना भारी होता है) के परमाणु के केन्द्र पर न्यूट्रान कणों से आघात किया जाता है तो यूरेनियम के परमाणु विखण्डित हो जाते हैं और बेरियम तथा क्रिप्टन के परमाणु बन जाते हैं। बेरियम और क्रिप्टन के परमाणु भी थोड़े थोड़े टूटते रहते हैं जिससे कुछ अन्य पदार्थ बन जाते हैं। यूरेनियम परमाणु के टूट जाने पर बहुत से न्यूट्रोन भी निकलते हैं इनसे बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा पैदा हो जाती है। ये न्यूट्रोन भी यूरेनियम के अन्य परमाणुओं पर आक्रमण करके उन्हें भी तोड़ देते हैं। परमाणुओं के इस प्रकार टूटने में यूरेनियम का कुछ भाग ऊर्जा या शक्ति में बदल जाता है। यह ऊर्जा बहुत ही प्रबल होता है। १ सेर यूरेनियम से ५,०००,०० मन बारूद के बराबर शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

इस शक्ति का उपयोग परमाणु बम में किया जाता है। परमाणु बम में मोम लिपटा हुआ यूरेनियम (२३५) और धातु के एक ढोके में बेरीलियम रखा रहता है तथा सिलिकन के एक पर्दे में रेडियम रखा होता है जिससे 'ब' कण लगातार निकलते रहते हैं। जब बम गिरता है तब पर्दा फट जाता है और 'ब' कण निकलकर बेरीलियम धातु के ढोके में टकराते हैं। इस टक्कर से बेरीलियम के परमाणु टूट कर न्यूट्रोन छोड़ते है जो जाकर यूरेनियम परमाणुओं को तोड़ते हैं। इस क्रिया से महान् शक्ति निकलती है। इस प्रबल शक्ति का पहला परीक्षण १६ जुलाई १९४५ में अलमोगोर्डो (अमेरिका) में किया गया था। एक लोहे की मीनार के ऊपर बम रखा गया और ५ मील दूर बिजली के तार द्वारा बटन दबा कर उसका विस्फोट किया गया तो सूर्य से भी तीव्र प्रकाश हुआ, फिर घोर गर्जन सुनाई दी, २२० मील दूर तक की खिड़किया झनझना उठीं और लोहे की वह मीनार भाप बन कर उड़ गई तथा वहा पर भारी गड्ढा हो गया।

यूरेनियम २३५ ही एक मात्र ऐसा तत्व नहीं है जो विखडनीय हो। वैज्ञानिकों द्वारा एक सर्वथा नवीन तत्त्व 'प्लूटोनियम' (Plutonium) तैयार किया गया है जिसका उन्होंने विखडन किया है। यूरेनियम २३५ और प्लूटोनियम के विखडन मे एक क्षण का दशांश लगता है। एक न्यूट्रोन यूरेनियम के परमाणु पर प्रहार करता है और उसे तोड देता है। विखडन क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुए नये न्यूट्रोन फिर दूसरे यूरेनियम परमाणु पर प्रहार करते हैं और परमाणु ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। इस तरह विखंडन क्रिया अविराम गति से चलती रहती है। यह लगभग उसी प्रकार है जैसे कि किसी एक डोरी में सैंकड़ों पटाखे लगे होने पर एक में आग लगा देने के बाद वे एक दूसरे को आग देकर स्वतः जलाते रहते हैं। यूरेनियम २३५ में एक परमाणु के केन्द्र पर प्रहार करके विखडन क्रिया आरम्भ कर दी जाती है जो आगे

से आगे अपने आप चलती रहती है। इस प्रकार की प्रक्रिया को 'शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया' (Chain reaction) कहा जाता है।

परमाणु शक्ति के उपयोग और दुरुपयोग
(Uses and abuses of Atomic Energy)

परमाणु शक्ति को सामान्यतः अणु शक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आधुनिक युग में शक्ति व्यय (consumption of Energy) अत्यधिक बढ़ गया है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि १०० वर्ष पूर्व दुनिया मे एक वर्ष मे जितनी शक्ति का व्यय होता है उससे लगभग १० गुना अधिक शक्ति का व्यय प्रतिवर्ष हो रहा है। शक्ति के मुख्य स्रोत कोयला एवं पेट्रोल परिमाण मे घटते जाते हैं और भारतीय परमाणु शक्ति विभाग के अध्यक्ष स्वर्गीय डा० होमी जे० भाभा का कथन था कि शक्ति के वर्तमान व्यय को देखते हुए संसार के कोयला और पेट्रोल के सभी भण्डार लगभग १००–१५० वर्षों मे समाप्त हो जाएंगे। स्पष्ट ही ऐसे अंधकारमय भविष्य की पृष्ठभूमि में परमाणु शक्ति की खोज एक वरदान सिद्ध हुई है, क्योंकि इस रूप में मनुष्य के पास शक्ति का एक अथाह भण्डार आ गया है, जिसको पूर्ण रूप से वशवर्ती कर लेने पर मनुष्य के पास शक्ति की कमी कोई कभी सम्भवतः नहीं रह सकेगी।

किसी भी वस्तु का अथवा शक्ति का प्रयोग इसके तरीके से होता रहता है। मनुष्य उसे सभ्यता के कल्याण और उसकी समृद्धि के लिए भी उपयोग में लेता रहा है और साथ ही वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके मानव सभ्यता को बराबर अन्धकार और अवनति के गर्त में भी गिराता रहा है। यह मनुष्य के ही हाथ में है कि विज्ञान द्वारा प्रदत्त असीम शक्ति को वह रचनात्मक कार्यों में प्रयुक्त करे अथवा विनाशक कार्यों में प्रयुक्त करके मानव सभ्यता के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दे। आज तक की मानव बुद्धि तो इन दोनों ही रूपों का दर्शन करती रही है, लेकिन परमाणु शक्ति का विनाशक रूप यदि मनुष्य प्रस्तुत करने लगेगा तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सम्भवतः अपनी रचनात्मक बुद्धि का प्रयोग करने के लिए मनुष्य इस धरती पर ही नहीं रहेगा। विज्ञान पावक है, स्फटिक शिला की भांति पवित्र भी है। मर्म के कलुष व आशय की क्षुद्र कल्पना भी उसे मलीन कर देती है। आशय की कल्पना कहां विज्ञान को वरदान कर रही है वहां आशय की कलुषता उसे अभिशाप बनने की महिमा रही है। परमाणु शक्ति जहां एक ओर मानव जाति को समृद्धि की कल्पनातीत ऊंचाई को छू लेने की क्षमता दे रही है वहां दूसरी ओर सन् १९४५ में जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर गिराये गये परमाणु बम्ब मनुष्य को विनाश के दुःस्वप्न से भयभीत भी कर रही है। अणु मनुष्य को स्पष्ट रूप से ललकार कर कह रहा है—जड़ की महानता मैंने दिखला दी, मानव तू अब चेतन की सर्वोपरि विराटता प्रमाणित कर (डा० नील्स बोर)। पैटरसन ने भी लिखा है—

"Atomic energy in Peace and War is an indicative of the two aspects of atomic energy–creative and destructive. War and Peace have now become future problems of the era on atomic energy."

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने भी कहा था कि मानव उसके (परमाणु शक्ति के) लायक नहीं है ..... फिलहाल परमाणु शक्ति मानव के लिये वरदान नहीं, अभिशाप साबित होगी।

कहने का अभिप्राय यह है कि परमाणु शक्ति का मनुष्य सदुपयोग भी कर सकता है और दुरुपयोग भी। हम इसके इन्हीं दोनों रूपों की निम्न पंक्तियों में पृथक पृथक रूप से विवेचना करेंगे।

परमाणु शक्ति का रचनात्मक उपयोग—परमाणु शक्ति का शांति कालीन उपयोग अथवा रचनात्मक उपयोग दो रूपों में किया जाता है—

(क) ताप और विद्युत के रूप में एवं

(ख) रेडियो आइसोटोप्स (Radio Isotops) के रूप में।

ताप और विद्युत के रूप में परमाणु शक्ति से यन्त्रों को चलाया जा सकता है और विद्युत से होने वाले सभी कार्यों को पूरा किया जा सकता है। विद्युत आधुनिक जीवन में कितनी आवश्यक एवं उपयोगी है, यह सर्वविदित है। अन्तरिक्ष-यात्रा में भी इसी शक्ति का प्रयोग होता है।

आइसोटोप्स के रूप में परमाणु शक्ति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। वैज्ञानिकों ने कार्बन, आयोडीन तथा कोबाल्ट जैसे तत्वों को परमाणु भट्टी में रख-कर उसमें के विकिरण से उनको प्रभावित कर उन्हें रेडियो सक्रिय बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है। इस प्रकार से विकिरण से प्रभावित हुए तत्वों के परमाणुओं को रेडियो आइसोटोप्स कहा जाता है। इनका चिकित्सा, कृषि, उद्योग आदि में व्यापक उपयोग होता है। उदाहरणार्थ एक्स रेज तथा रेडियम विकिरण की तरह आइसोटोप्स का उपयोग सीधे रोगों पर आक्रमण कर उनका उपचार करने में किया जाता है तथा कृषि और उद्योग में इनके उपयोग से उत्पादन अच्छा किस्म का और अधिक मात्रा में होता है।

अब हम यह देखेंगे कि परमाणु शक्ति अपने इन उपर्युक्त दोनों रूपों में मानव सेवा के लिए किन-किन क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रही है अथवा हो सकती है—इसका उल्लेख हम निम्नलिखित रूप में करेंगे—

चिकित्सा क्षेत्र में परमाणु शक्ति का उपयोग—सन् १६३६ से पहिले विश्व में रेडियम ही एक मात्र ऐसा तत्व था जिससे कैंसर आदि रोगों की चिकित्सा होती थी। किन्तु (अब रेडियो आइसोटोप्स की सहायता से मनुष्य को अनेक असाध्य रोगों के ठीक होने की आशा बनने लगी है। है। आइसोटोप्स में, अल्फा, बीटा अथवा गामा किरणें निकल कर शरीर के रोगग्रस्त हिस्से पर अपना प्रभाव डालती है और रोग निदान में सहायता देती है। रेडियो आइसोटोप्स के कुछ प्रमुख उपयोग इस प्रकार है—(क) रेडियो कोबाल्ट, रेडियो गोल्ड तथा रेडियो कार्बन (Radio Cobalt, Radio carbon) की सहायता से कैंसर जैसे भयानक रोग की प्रकृति को [illegible] मिली है। रेडियो कोबाल्ट की सहायता से आज कल [illegible] ने लगा है। (ख) रेडियो फोसफोरस (Radio

उत्पादन आदि में अत्यन्त सहायक हो रहे हैं। हमें यह आशा करनी चाहिये कि निकट भविष्य में मनुष्य अणु शक्ति का पूर्णतः शान्तिकालीन प्रयोग करने लगेगा। हम रूस के भूतपूर्व प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव की इस आशा को फलीभूत देखना चाहते हैं कि मानव जाति अब एक नवीन युग में प्रवेश करेगी। [वायुयानों और अन्य बमों का युग समाप्त हो गया है। बहुत शीघ्र ही बम वर्षक वायुयान संग्रहालयों में रखने की वस्तु बन जाएंगे।

(४) परिवहन क्षेत्र में परमाणु शक्ति का उपयोग—इस क्षेत्र में परमाणु शक्ति कितनी क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती है, इसका अनुमान केवल इसी बात से सुगमतापूर्वक लगाया जा सकता है कि काँच की एक छोटी गोली के आकार की आणविक गोली में इतनी शक्ति होगी कि वह एक मोटर को पृथ्वी के चारों ओर चार बार दौड़ा सकती है। सर्वप्रथम परमाणु शक्ति का उपयोग इस क्षेत्र में 'नोटिलस' नामक अमेरिकन पनडुब्बी से किया गया। यह पनडुब्बी १९ जनवरी १९५५ को पानी में उतारी गई। मार्ग में हो जाने वाली गड़बड़ियों की समस्याओं के समाधान के लिये इसमें बैटरी का प्रयोग किया गया और रेडियो सक्रिय पानी का रिसना रोकने के लिये जोड़ अत्यन्त मजबूत बनाये गये। अब यह शक्ति जहाज को चलाने के काम में प्रयुक्त हो रही है। वायुयान में भी परमाणु शक्ति चालित इंजिन को प्रयोग में लाने की सफल चेष्टायें होने लगी हैं। रेलवे इञ्जिनों में भी परमाणु शक्ति का प्रयोग हो रहा है। इसके लिए एक रासायनिक द्रव जिसमें यूरेनियम घुला होता है, ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है।

(५) परमाणु और विद्युत—विद्युत के क्षेत्र में परमाणु शक्ति कितना क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती है, इसे हम पहिले ही बता चुके हैं। डा० राबर्ट चारगी के मतानुसार 'परमाणु शक्ति का स्थायी और चिरकालीन महत्व यह है कि इससे विद्युत सम्बन्धी समस्या का हल हो जावेगा।' जगह-जगह अब परमाणु बिजलीघर बनाये जाने लगे हैं। अमरीका में शिकागो के पास ड्रेसडन परमाणु बिजलीघर २९ जून १९६० से पूरी शक्ति के साथ काम करने लगा है, जिससे १,८०,००० किलोवाट विद्युत प्राप्त होती है। यह अनुमान लगाया गया है कि ६६ टन यूरेनियम डाई आक्साइड से करीब ३॥ वर्ष तक इसी बिजलीघर से विद्युत प्राप्त की जायेगी। अगर ईंधन की जगह इसमें कोयला उपयोग किया जाये तो लगभग २० लाख टन कोयले की जरूरत पड़ेगी। रूस, पश्चिमी जर्मनी, जापान और इटली में भी परमाणु बिजलीघर का निर्माण किया गया है अथवा किया जा रहा है। आणविक शक्ति उन स्थानों के लिए तो एक अद्भुत वरदान सिद्ध होगी जहाँ विद्युत उत्पादन के कोई अन्य साधन नहीं हैं। आणविक बैटरी में विकास के पूर्ण प्रयत्न हो रहे हैं। यह बैटरी उस दिन का उद्घोष करती है जब हाथ की घड़ियाँ, सिगनल नियंत्रक रेडियो आदि इस बैटरी से ही चलाये जायेंगे। यह अनुमान है कि इस तरह की एक आणविक बैटरी २० वर्ष तक बिना दुबारा चार्ज किये काम दे सकती है।

परमाणु शक्ति का विनाशकारी रूप—परमाणु शक्ति के विनाशकारी रूप की कल्पना करना ही भयावह है। इसका अनुमान जापान पर गिराये परमाणु बमों

के विनाश से लगाया जा सकता है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान (६ अगस्त १९४५ को जापान के औद्योगिक नगर हिरोशिमा पर अणु बम्ब गिराया गया था जिसके फलस्वरूप ७१,३७९ आबाल- वृद्ध नर-नारी अपने जीवन से मुक्त हो गये थे और लगभग एक लाख से भी अधिक व्यक्ति अपाहिज तथा एकदम पंगु बना दिए गए थे जिनमें से अधिकांश का कोई उपचार ही सुलभ नहीं था। इसके ठीक तीसरे ही दिन जापान के दूसरे प्रसिद्ध व्यावसायिक नगर नागासाकी पर दूसरा अणु बम्ब गिराया गया था जिससे लगभग ४० हजार व्यक्ति काल के गाल में समा गये और अनेक अन-गिनत—बाल बच्चे, नर-नारी घायल होकर असाध्य रोगों से पीड़ित हो गये। सभी जीवन से भरपूर ये बम्ब वर्षा के बाद और चारों तरफ नीरवता, उत्पीड़न और रुदन का साम्राज्य छा गया।) यह था संसार का परमाणु शक्ति के विनाशक रूप से प्रथम परिचय। आज तो जापान पर गिराये गये अणु बम्बों से हजारों गुणा अधिक शक्तिशाली अणु बम्बों का तथा उनमें भी अधिक विनाशकारी हाइड्रोजन बम्बों का निर्माण कर लिया गया है। ये बम्ब इतने विनाशकारी हैं कि थोड़ी सी संख्या में ही इनको गिराकर सम्पूर्ण विश्व की मानव सभ्यता को विनष्ट किया जा सकता है। इसीलिए तो आइन्सटाइन ने यह पूछे जाने पर कि तृतीय महायुद्ध कैसा होगा? जवाब दिया था, "तृतीय युद्ध के बारे में तो मैं नहीं कह सकता परन्तु चौथा विश्व- युद्ध पाषाण अस्त्रों से होगा।"

मानव का कल्याण इसी में है कि परमाणु ऊर्जा को विध्वंसक कार्यों के बजाय रचनात्मक कार्यों में ही लगाया जाय। रचनात्मक क्षेत्र में इसके प्रयोग से मनुष्य इस धरती पर ही स्वर्ग की रचना कर सकता है। इस शक्ति के बल पर रेगिस्तानों को हरा-भरा किया जा सकता है, दुर्गम गिरि-कन्दराओं को समतल किया जा सकता है, सतत बर्फ से आवृत हिम-प्रदेशों को निवास योग्य बनाया जा सकता है, सागर की गहराइयों में पाये जाने वाले दुर्लभ पदार्थों को सहज ही उपलब्ध किया जा सकता है, बारहों महीने मनचाही फसल उगायी जा सकती हैं, सुख-सुविधा की सामग्री बनाने वाली मशीनें चलाई जा सकती हैं, त्वरितगामी आवागमन के साधनों में अपरिमित परिवहन शक्ति की क्षमता पैदा की जा सकती है, उपभोग्य सामग्री को सस्ते दामों पर प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है, असंभव रोगों पर विजय पाई जा सकती है, मनोरंजन के विपुल साधन भोगे जा सकते हैं और [illegible] परमाणु शक्ति को [illegible] की भुखमरी, रोग [illegible] जा सकता है। [illegible] द्ध के लिए मनुष्य [illegible] तो यही स्मरण रखना चाहिये कि मानव समाज और जगत के लिए यह दीर्घायु, अधिक समृद्धि और स्थायी शांति का उत्साहवर्धक सन्देश है।

१९६६(३) रोगों के विरुद्ध संघर्ष
(Fight against diseases)

स्वास्थ्य का महत्व—जीवन तब तक ही सुखकर और सार्थक रहता है जब

तक हमारा शरीर स्वस्थ हो। किसी भी रोग से पीड़ित
गत समस्या है बल्कि एक गम्भीर सामाजिक समस्या भी
घोर कष्ट झेलता है, बिस्तर पर पड़ा रहता है और
जीविका के उपार्जन में असमर्थ हो जाता है। उसकी द
उसका व्यय बढ़ जाता है। लेकिन इसके स पश्चात घर के
सुश्रुषा और परिचर्या में लग जाते हैं तथा अपना काम-क
है। इस प्रकार पूरे के पूरे परिवार की मानसिक और आ
अन्तिम प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर पड़ता है और फलस्
होती है। यदि रोग संक्रामक हो तो वह किसी व्यक्ति
सीमित नहीं रहता प्रत्युत् पूरे समाज में उसके फैल जाने
है। रोगी पर बहुत सा व्यय होता है। स्वस्थ अवस्था में
जो कार्य कर सकता था उससे समाज वंचित ही रह जाता
वस्था से सभी प्रकार से हानि ही हानि है और लाभ कुछ

प्राचीन काल से आधुनिक समय तक की चिकित्सा

प्राचीन काल में मनुष्य रोगों को दैवी कोप मानकर देवों
की शरण लेते थे और यदि चिकित्सा की भी जाती थी
वैज्ञानिक न थी और रोग निवारण के पर्याप्त साधन न थे।
हिप्पोक्रेटीज (Hippocrates) ने सबसे पहले यह कहा कि
भूत-प्रेतों द्वारा नहीं फैलाया जाता, वह तो प्राकृतिक कारणों
बताया कि स्वभाव, स्वास्थ्य, ऋतु तथा रोग परस्पर सम्बन्धि
कुछ विशेष स्थिति के अनुकूल प्राय रोगी हो जाता है। ई
अन्य विद्वान वैरो (Varro) ने कहा कि कुछ सूक्ष्म जीव द
निकल कर मनुष्य के मुख अथवा नथुनों द्वारा शरीर में प्रवेश
के परिणामस्वरूप नाना प्रकार के रोग जन्म लेते हैं। १६०
ने यह विचार प्रस्तुत किया कि किसी वातावरण विशेष में स
अवश्य होगा। सन् १५४६ में फ्रैकेस्टोरियस (Fracastor
यह सुझाव दिया कि बीमारियों के लिए कुछ जीवधारी हैं
सुझाव की ओर प्रयोगों पर आधारित न होने और सदियों
विश्वासों के कारण किसी का ध्यान नहीं गया।

१७वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यही विचार प्रचलित
और कीटाणु स्वतः ही पैदा हो जाते हैं और वस्तुएं स्वतः ह
प्रकार की प्रधानता के कारण चिकित्सा क्षेत्र में शाकाणु
प्रयोग नहीं किया गया और न ही स्वच्छता की ओर विशेष ध्या

परन्तु प्रचलित विचार अप्रमाणित से ही रहे। १८वीं शताब्दी मे स्पालजानी (Spallanzani) ने यह प्रमाणित किया कि सूक्ष्म जीव वायु में तैरते रहते हैं, परन्तु इस बात पर भी किसी ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। उसी समय १७९६ में टीके की पद्धति (Vaccination) की खोज की गई। वह दिन मानव इतिहास में वस्तुतः बड़ा उज्ज्वल था जब डा० एडवर्ड जैनर ने पहली बार चेचक जैसी महामारी को रोकने का टीका निकाला। चिकित्सा जगत मे यह एक महान् क्रांति थी जिसने रोगों के प्रति हमारे समस्त दृष्टिकोण को बदल दिया। तत्पश्चात् लुई पाश्च्योर और कोच (Koch) की जीवाणु सम्बन्धी खोज ने सूक्ष्म जीवों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। इन वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि बहुत से रोग कीटाणुओं के द्वारा ही फैलते हैं और यदि ऐसे उपाय कर लिये जाएं कि कीटाणु शरीर में प्रविष्ट न हो सकें अथवा हो जाने पर उन्हें नष्ट कर दिया जाए तो मनुष्य रोगग्रस्त नहीं हो सकते। "प्रत्येक रोग किसी न किसी जीवाणु द्वारा ही फैलता है" (Germ Theory of Disease) के सिद्धान्त का जन्मदाता पाश्च्योर ो ही माना जाता है। पैट्रिक मैन्सन (Patrick Manson) ने यह खोज की कि ाइलेरिया (Filaria) मच्छरों द्वारा एक मनुष्य से दूसरे में चला जाता है। उसकी ा खोज ने सम्प्रेषण-विधि बताई। स्टैली ब्रास (Stally Brass) नामक वैज्ञानिक ने ारक रोग के फैलने के ३ कारण बतलाए—(१) स्वयं मनुष्य, (२) असामयिक न अथवा प्रतिनिधि (Casual Agent) जैसे मलेरिया के कीटाणु या छाया के जीवाणु आदि और (३) सम्प्रेषक का साधन।

१९ वीं शताब्दी मे रोगों के विरुद्ध संघर्ष मे गतिशीलता आई। १९ वीं तथा २० वीं शताब्दी मे चिकित्सा क्षेत्र मे विभिन्न खोजें की गईं। सन् १८९५ मे जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक रोंजेन (Rontgen) ने एक्स-रेज़ (X-Rays) का पता लगाया। रोंजेन की किरणों की खोज ने शल्य चिकित्सा के क्षेत्र मे एक क्रांति का सूत्रपात कर दिया। रोगों की विजय के पथ पर मनुष्य और आगे बढ़ा। अब यह खोज होने गी कि टीके बीमारियों को रोकने मे किस प्रकार सहायक होते हैं। २०वीं शताब्दी प्रारम्भ में प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मेचनिकाफ ने यह रहस्योद्घाटन कर ही या। उसने यह सिद्ध किया कि मनुष्य शरीर मे श्वेत रक्त कण बाहर से हमला ने वाले कीटाणुओं के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। शरीर की इस विशेषता को प्रति- रिता (Immunity) कहते हैं। जब टीके का प्रयोग किया जाता है तो शरीर मे ारी का प्रतिकार करने के लिए कुछ रासायनिक पदार्थ पैदा हो जाते हैं जिन्हें ाबोडीज (Antibodies) कहा जाता है। ये एन्टीबोडीज प्रतिकारिता को सचेष्ट हैं और रोगों के निर्धारण में सहायक होते हैं। सन् १९२८ में फ्लेमिंग ning) ने उस फफूंदी की खोज की जिससे पेनिसिलीन (Penicillin) निकाली है। सन् १९३५ में सल्फा औषधियों (Sulpha Drugs) का निर्माण किया े औषधि-क्षेत्र में वरदान सिद्ध हुई। लेकिन एन्टीबायोटिक्स की खोज ने तो ा-क्षेत्र में क्रांति ही कर दी।

इस प्रकार सदियों के अथक प्रयत्नों के बाद मनुष्य ऐसी औषधियों और

चिकित्सा यन्त्रो का आविष्कार कर सका है जिनसे असाध्य समझे जाने वाले रोग भी आज सरलता से ठीक किए जा रहे है। बीमारियो के विरुद्ध संघर्ष मे मनुष्य एक बडी सीमा तक अपने शत्रु को पराजित कर सका है। यद्यपि अभी तक कुछ बीमारियां मनुष्य के लिए चुनौती का विषय बनी हुई हैं, परन्तु जिज्ञासु मनुष्य अपने अनवरत प्रयासो के फलस्वरूप एक न एक दिन इन पर भी अवश्य विजय प्राप्त कर लेगा।

स्वास्थ्य का महत्व और चिकित्सा विज्ञान की प्रगति के इतिहास पर सक्षेप मे दृष्टि डालने के उपरान्त अब हम इस प्रसंग मे क्रमश निम्नलिखित बातो पर एक एक करके विचार करेंगे —

(क) रोग क्या है और क्यो उत्पन्न होता है ?

(ख) रोग किस प्रकार फैलता है ? और

(ग) रोगो से बचने के क्या उपाय हैं ? अथवा हम रोगो पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते है ?

(क) रोग क्या है और क्यो उत्पन्न होता है ।—हम यह भली-भांति जानते हैं कि मानव शरीर एक पेचीदा मशीन है। इसके भिन्न-भिन्न अगो मे भिन्न प्रकार की आश्चर्यजनित प्रक्रियाएं होती रहती है। इस शरीर को सुचारू रूप से चलाने के लिए, इनके सभी अग अथवा सस्थान एक दूसरे पर निर्भर और वे परस्पर मिल-जुलकर पूर्ण सहयोग के साथ कार्य करते है। जब तक इन सस्थानो के सहयोग के कारण प्रक्रियाओ मे समन्वय होता रहता है और सब बाते शरीर मे सामान्य ढग से नियमानुसार चलती रहती है तब तक शरीर स्वस्थ रहता है। परन्तु जब इन संस्थानो को अथवा शरीर के किसी भी भाग मे कोई दोष उत्पन्न हो जाता है तो इनके परिणामस्वरूप जीवन-क्रियाओ का सतुलन बिगड जाता है, मनुष्य बीमार हो जाता है अथवा उसे कोई रोग लग जाता है।

रोगों को, रोग उत्पत्ति के कारण के अनुसार मोटे रूप में ३ समूहों में विभाजित किया जा सकता है—(१) संक्रामक रोग (२) त्रुटिजन्य रोग तथा (३) अन्य रोग।

संक्रामक रोग वे होते हैं जो एक मनुष्य के शरीर से दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके फैलते है। इन रोगों का प्रसार कीटाणुओं के द्वारा होता है। प्राय प्रत्येक बीमारी का कारण कोई न कोई कीटाणु होता है जब किसी भी प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणु मानव पर आक्रमण करते हैं तो मानव उन कीटाणुओं से सम्बन्धित रोगों से संत्रस्त होकर रोगी बन जाते हैं। इनमे कुछ कीटाणु ऐसे भी हैं जो एक रोगी से दूसरे लोगों तक सम्पर्क आदि के कारण पहुँच जाते हैं और स्वस्थ व्यक्ति को भी रोगी बना देते है। ऐसे रोगोत्पादक कीटाणुओं को संक्रामक कीटाणु कहा जाता है। ये कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि मानवीय आँखों से इन्हें प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। इन्हें देखने के लिए सूक्ष्मदर्शक यन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

त्रुटिजन्य रोग दोषपूर्ण आहार से, शरीर में आवश्यकतानुसार पौष्टिक तत्त्व ठीक मात्रा में न मिलने के कारण होते हैं। सम्भवत, विटामिन आदि पौष्टिक तत्त्वों

(५) अनेक रोग दूसरों के सम्पर्क से फैलते हैं। इन रोगों को संसर्गज रोग कहा जाता है। पति-पत्नी के सहवास के द्वारा उत्पन्न जननेन्द्रिय सम्बन्धित रोग प्रत्यक्ष संसर्ग के परिणाम हैं।

(६) कुछ ऐसे रोग होते हैं जो शरीर के लिए आवश्यक और उपयोगी पदार्थों के अभाव के कारण हो जाते हैं। यदि शरीर को यथार्थ मात्रा में प्रोटीन, वसा, खनिज लवण एवम् विटामिन्स आदि न मिलें तो भांति-भांति के रोग पैदा हो जाते हैं। इन रोगों को 'अपर्याप्त पोषक भोजन से उत्पन्न रोग' (Deficiency Disease) कहा जाता है।

(ग) रोगों से बचने के क्या उपाय हैं—रोग लग जाने पर उसकी उचित चिकित्सा तो होनी चाहिये, किन्तु निम्नलिखित उपायों से रोगों से काफी हद तक सफलतापूर्वक बचाव भी हो सकता है।

(१) **रोग की सूचना**—यदि किसी छूत अथवा संक्रामक रोग के फैलने की सम्भावना हो तो इसकी सूचना तुरन्त ही स्वास्थ्य अधिकारी के पास भिजवा देनी चाहिए ताकि रोग के निरोध और उसकी रोक-थाम का प्रबन्ध किया जा सके। इससे स्वास्थ्य अधिकारी को भी इतना अवसर मिल जाता है कि वह संक्रामक रोगों के उग्र रूप धारण करने के पूर्व ही उनके निरोध के उपायों पर उचित ढंग से विचार कर सके।

(२) **रोगी को अलग रखना**—संक्रामक रोगों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि रोगी को सर्वसाधारण के सम्पर्क से अलग कर दिया जावे, उसे किसी अलग कमरे में रखा जाए, और उसकी देखभाल एवम् सेवा आदि करने वाले व्यक्तियों को टीका आदि लगाकर सुरक्षित कर दिया जाए।

(३) **ताजा हवा एवं प्रकाश**—रोगी को यथासम्भव ताजा हवा एवम् प्रकाशित स्थान में रखना चाहिये। उसका कमरा ऐसा होना चाहिये जिसमें ताजा और स्वच्छ हवा एवम् प्रकाश के आवागमन की समुचित व्यवस्था हो। अन्धकार के स्थान अथवा अवरुद्ध वायु रोग के प्रसार में सहायक हैं, अतः इनसे बचना चाहिये।

(४) **रोगी के बर्तन, वस्त्र आदि के प्रयोग का निषेध**—रोग से बचने का उत्तम साधन यही है कि जिन बर्तनों एवम् वस्त्रों आदि का रोगी के लिए प्रयोग किया जाता हो, उन्हें दूसरे व्यक्ति या तो अपने प्रयोग में लावें ही नहीं और यदि लावें भी तो लगभग एक घण्टे तक कारबोलिक (Carbolic) के घोल में रखने के बाद ही काम में लावें। कपड़ों की धुलाई व सफाई की ओर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए, क्योंकि कपड़ों में रोग के कीटाणु छिपकर रोगों का प्रसार करते हैं।

(५) **मल-मूत्र से सुरक्षा**—संक्रामक रोग से आक्रान्त रोगी के मल-मूत्र को किसी कीटाणुनाशक औषधि के घोल में २-३ घण्टे रखने के बाद किसी गड्ढे में दबा कर गाड़ देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से संक्रामक रोगाणुओं का नाश हो जाता है और उनका प्रसार स्वतः ही अवरुद्ध हो जाता है। रोगी के वस्त्र आदि को किसी गहरे अथवा स्थान आदि में बंद कर जला डालना उत्तम है।

(६) स्वच्छता या शारीरिक सफाई—स्वच्छता रोगों का निराकरण है जबकि गन्दगी रोगों की जन्मदाता है। प्राय: सभी संचारी रोगों का प्रसार गन्दगी के कारण ही होता है। ऐसे रोगों से बचाव के लिए यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि घरों, मोहल्लों आदि के निकट किसी प्रकार की गन्दगी एकत्रित न हो पाये। नियमित ढंग से स्नान करना और शरीर को स्वच्छ रखना रोगों से बचाव का सर्वोत्तम तरीका है।

(७) ताजा भोजन और जल – प्राय बासी भोजन से बीमारियां फैलती है। बाजारों में बिकने वाली मिठाइयां, कटे हुए फल और गन्दी चीजें संक्रमिक रोगों के प्रसार में सहायक होती हैं। अतः इन सबसे बचना चाहिए और सदैव ताजा भोजन करने का अभ्यास डालना चाहिए। रोगी को ताजा जल पिलाना चाहिए और स्वयं को भी ताजा जल ही पीना चाहिए। ताजा जल के अभाव में उबले हुए जल को कीटाणुनाशक औषधियों से प्रभावित करके पिलाना अधिक उत्तम है।

(८) टीका लगवाना—चेचक, प्लेग आदि संक्रामक रोगों से बचने के लिए तत्सम्बन्धी टीके लगवाना अत्यन्त श्रेष्ठ है। टीके संक्रामक रोगों के प्रसार को रोकने में बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। यदि टीके लगवाने के बाद सम्बन्धित बीमारी हो तो भी उसका प्रभाव कम हो जाता है और रोग उग्र रूप धारण नहीं करता।

(९) अनेक बार जब किसी नगर, कस्बे अथवा गाँवों में कोई संक्रामक रोग फैल जाता है तो वहां के निवासी उस स्थान को छोड़कर दूसरे गांवों, कस्बों अथवा नगरों में चले जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के साथ संक्रामक रोगों के कीटाणु न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि ऐसे लोगों को शारीरिक जांच कराने के पश्चात् ही नवीन स्थानों में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए।

(१०) रोग क्षमता का विकास—किसी भी रोग की रोकथाम के लिए मनुष्य में कृत्रिम रोग-क्षमता का विकास करना आवश्यक है। शरीर में किसी भी बीमारी की रोकथाम के लिए एक शक्ति सदैव विद्यमान होती है जिसे रोग-क्षमता (Immunity) और (Resistance against diseases) कहा जाता है। जब रोग हमारे शरीर पर आक्रमण करता है तो सम्बन्धित रोग के कीटाणुओं से रोग-क्षमता का युद्ध होता है। यदि रोगों के जीवाणु दुर्बल होते हैं तो शरीर पर वे कोई बुरा प्रभाव नहीं डाल पाते; क्योंकि शारीरिक रोग-क्षमता उन्हें दबा देती है। लेकिन जब रोग-क्षमता कम हो जाती है और जीवाणु प्रबल हो जाते हैं तो शरीर में रोग लक्षण प्रकट होने लगते हैं। अतः रोग से बचाव के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शरीर में रोग-क्षमता का विकास किया जाय। प्राकृतिक रोग-क्षमता कम हो जाने पर कृत्रिम रूप से इस क्षमता का विकास किया जाता है। स्वस्थ मनुष्य के शरीर को संक्रामक रोगों से बचने के लिए इन्जेक्शन या टीके आदि के द्वारा कृत्रिम रोग-क्षमता का प्रवेश कराया जाता है। प्रत्येक बीमारी के लिए अलग अलग प्रकार की कृत्रिम रोग-क्षमता या बनावटी ताकत का प्रयोग होता है।

(११) निस्संक्रमण करना – जिन वस्तुओं के प्रयोग से संक्रामक रोगों के

प्रसार की आशंका हो, उन्हें कीटाणुनाशक औषधियों द्वारा निर्संक्रामक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। जिन कुओं, तालाबों आदि का जल पीने के काम में लाया जाता हो, उन्हें कीटाणुनाशक औषधियों द्वारा शुद्ध बनाना चाहिये। रोगी के मल-मूत्र, बलगम, उल्टी आदि को निस्संक्रामक कर देना आवश्यक है। ऐसे पदार्थों को निर्संक्रामक करने के लिए फिनाइल, कारबोलिक, विरंजक चूर्ण, डी डी टी आदि का प्रयोग किया जा सकता है। रोगी के कमरे को कीटाणुनाशक औषधियों से धोकर शुद्ध किया जाना चाहिए। रोगी के परिचारकों को चाहिए कि वे अपने हाथों को कीटाणुनाशक औषधियों से धोते रहें।

(१२) शिक्षा का प्रसार—रोगों के प्रसार का एक मुख्य कारण जनता में शिक्षा की कमी है। अशिक्षित लोग प्रायः रोगों को दैवी प्रकोप मानते हैं और अंधविश्वास के कारण पूजा-पाठ तथा मंत्र व जादू-टोनों आदि पर विशेष ध्यान देते हैं और रोगों के वास्तविक उपचार की तरफ उपेक्षा का भाव रखते हैं। अतः नगरपालिकाओं, शासन और समाज सेवी संस्थाओं का यह कर्त्तव्य है कि वे जनता को इस बात का ज्ञान करवायें कि रोगों के असली कारण क्या हैं और उनके उपचार अथवा उनसे बचने के उपाय क्या हैं? शिक्षा के व्यापक प्रसार से रोगों के फैलाव में निर्णयात्मक रूप से कमी होगी।

(१३) दूषित पदार्थों के विक्रय पर प्रतिबंध – संक्रामक रोगों के प्रसार को अवरुद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि बाजारू दूषित खाद्य पदार्थों के विक्रय पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए अथवा उन्हें फिकवा दिया जाए। सरकार को और नगरपालिकाओं को चाहिए कि केवल ताजे खाद्य पदार्थों का विक्रय ही जन-साधारण में हो।

(१४) चिकित्सा—चाहे कितनी ही सावधानी रखी जावे किन्तु फिर भी कोई न कोई रोग होकर ही रहता है। अतः रोग हो जाने पर उसकी उपयुक्त चिकित्सा होनी चाहिए। आज का चिकित्सा शास्त्र इतना अधिक विकसित है कि कठिनाई से ही कुछ रोग ऐसे हैं जिनका उपचार संदिग्ध है।

उपर्युक्त सभी उपायों का अधिकाधिक अवलम्बन करने से रोगों का प्रसार प्रभावशाली रूप से रोका जा सकता है, इसमें संदेह नहीं।

विज्ञान द्वारा रोगों पर विजय

आधुनिक युग में मानव ने चिकित्सा क्षेत्र में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर ली है। विज्ञान के बल पर भयंकर से भयंकर रोग की सफल चिकित्सा कर दी जाती है और रोगों पर अधिकांशतः विजय प्राप्त कर ली गई है। रोगों पर विजय प्राप्त करने में निम्नलिखित वैज्ञानिक प्रयत्न सराहनीय रूप से सहायक होते हैं—

(१) रोग रचना का ज्ञान—रोगों पर विजय-प्राप्ति के लिए शरीर रचना का विस्तृत ज्ञान परम आवश्यक है। आधुनिक चिकित्सा शरीर के प्रत्येक अंग-उपांग का विशद ज्ञान रखती है और शरीर के किसी भी भाग में दोष उत्पन्न होने पर उसका निदान व उपचार करने में समर्थ हुई है। आज की शल्य चिकित्सा का विकास शरीर-रचना के ज्ञान से ही सम्भव हो सका है।

दर्शक यंत्र, एक्स–रे आदि यंत्रों द्वारा शरीर के भीतरी सभी रोगों का निदान किया जाना सम्भव है। एक्स–रे की सहायता से शरीर के समस्त भीतरी भागों का चित्र लिया जा सकता है जिससे पता चल जाता है कि शरीर का कौन सा अवयव दोषपूर्ण है।

(७) मनोविज्ञान और चिकित्सा—आधुनिक मनोविज्ञान चिकित्सा से भी विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार किया जाता है। पागलपन, हिस्टीरिया, नपुंसकता आदि रोग जो पहले शारीरिक चिकित्सा द्वारा ठीक नहीं किये जा सकते थे, उनका अब मानसिक चिकित्सा द्वारा सफलता पूर्वक उपचार किया जाने लगा है।

(८) अन्य उपचार—औषधियों एवम् शल्य क्रियाओं द्वारा उपचार सम्भव नहीं है तो रोगों को विकिरण (Radiation) से ठीक किया जा सकता है। कई प्रकार की रश्मियां जैसे अल्ट्रा वायलेट रे, कैथोड रे, आदि अनेक प्रकार के जीवाणुओं को समूल नष्ट करने में समर्थ हुई है। जीवाणु नष्ट करने के लिए ध्वनि—तरंगें भी काम में लाई जाने लगी हैं। इन तरंगों से पर्याप्त समय तक हिलाये जाने पर जीवाणुओं की बाहरी दीवारें टूट जाती हैं और वे नष्ट हो जाते हैं। रेडियो सक्रिय या आईसोटोप्स (Radio Isotopes) रोग से प्रभावित अांतरिक अंगों का पता लगाने के लिये खोजी की भांति काम में लाये जाते हैं। रेडियो आइसोटोप्स की सहायता से मनुष्य को अनेक असाध्य रोगों से ठीक होने की आशा होने लगी है। आइसोटोप्स में अल्फा, बीटा अथवा गामा किरणें निकलकर शरीर के रोगग्रस्त हिस्से पर अपना प्रभाव डालती है और रोग निवारण में सहायता देती है। रेडियो कोबाल्ट तथा रेडियो कार्बन की सहायता से कैंसर जैसे भयानक रोग की प्रवृत्ति को समझने में सहायता मिली है। रेडियो फासफोरस का उपयोग अतिश्वेतरक्तता की चिकित्सा के लिये होता है। रेडियो आयोडीन द्वारा गले की गठान का इलाज किया जाता है। रेडियो सल्फा कोढ़ में, रेडियो स्ट्रोन्टियम हड्डी के फोड़े में और रेडियो बोरोम मस्तिष्क की गठान में उपयोगी सिद्ध हुई है। रेडियो सोडियम रक्त के दौरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव ने आज लगभग सभी रोगों पर विजय प्राप्त करली है। हां अब भी निश्चय ही कुछ ऐसे रोग हैं जिनका उपचार नहीं हो पाता है परन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि विज्ञान की सहायता से मानव अन्य रोगों के विरुद्ध अपने संघर्ष में बहुत बड़ी सीमा तक विजयी हुआ है। हमें रोगों से मानव जाति को मुक्ति दिलाने हेतु सतत प्रयत्न करते रहना होगा। इस दिशा में अनुसंधान करते रहने की आवश्यकता है। इसके साथ ही आवश्यकता है कि सर्व साधारण को रोगों के प्रत्येक पहलू से परिचित कराया जाए और उनमें स्वास्थ्योपयोगी नियमों का दैनिक जीवन में पालन करने के लिए जागरूकता उत्पन्न की जाए। अधिक अच्छे से अच्छा सम्पन्न हो जाएंगे यदि हम प्रत्येक परिवार को संतुलित और समुचित भोजन स्वच्छ वातावरण और अच्छे निवास-स्थान उपलब्ध करने में सफल न होंगे।

(४) जिनेटिक्स (Genetics) ✓

जिनेटिक्स (Genetics) पैतृकता (Heredity) के वैज्ञानिक अध्ययन को कहते हैं (Genetics is the Science of heredity)। जीवशास्त्र (Biology) के अन्दर, संतति में जनक के रचनात्मक तथा कार्यकारी लक्षणों के संचारण को वंशागति या आनुवंशिकता या पैतृकता (Heredity) कहते हैं। एक ही जाति के दो सदस्यों के अन्तर को भेद (Variation) कहते हैं। भोजन, ताप, वायु, स्थान या बाहरी परिस्थिति की वजह से जीवों में जो भेद उत्पन्न हो जाता है उसे दैहिक (Somastic) या वातावरण का भेद (Environmental Variation) कहते हैं और वातावरण के अलावा किसी अन्य कारण से उत्पन्न होने वाले भेद को आनुवंशिक (Hereditary) या भ्रूणीय भेद (Germinal-Variation) कहते हैं। वंशागति या पैतृकता के कारण से उत्पन्न होने वाले अन्तर (differences) व समानता (resemblances) तथा इनके परिवर्तन की व्याख्या करने वाले विज्ञान को जिनेटिक्स (Genetics) कहते हैं।

जिनेटिक्स का प्रारम्भ मेण्डल के पैतृकता सम्बन्धी नियमों के प्रतिपादन के समय से ही होता है। यह जीव-शास्त्र की वह नवीनतम शाखा है जिसने जीव-शास्त्र को 'Exact Sciences' की श्रेणी में ला बिठाया है। जिनेटिक्स के अध्ययन ने जीवधारियों में मिलने वाली पैतृक समानताओं और भिन्नताओं को समझने में महान् योग दिया है। इस विज्ञान से प्राप्त ज्ञान के बल पर ही आज हम अनेक वनस्पतियों एवं प्राणियों में इच्छित लक्षण उत्पन्न करने में सफल होते जा रहे हैं। जिनेटिक्स ने जीवन के एक ऐसे महान् रहस्य का उद्घाटन किया है जिसके फलस्वरूप जीव सम्बन्धी दैवी चमत्कार की विभिन्न धारणायें विनष्ट हो गई हैं। जिनेटिक्स पैतृक समानता और भिन्नता के नियमों तथा उनके कारणों पर प्रकाश डालता है।

सन् १६०० में मेण्डल के पैतृकता सम्बन्धी नियमों की प्रतिष्ठापना के समय ही जिनेटिक्स के क्षेत्र में तेजी से शोध कार्य होने लगा और तब से आज तक इस क्षेत्र में विस्मयजनक प्रगति हुई है। यह स्पष्ट हो जाने पर कि माता-पिता तथा उनकी संतति के बीच की कड़ी केवल अन्यु-कोष (Gametes) ही होते हैं, वैज्ञानिक अन्यु कोषों के अध्ययन में तल्लीन हो गये। वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों से यह सिद्ध कर दिया कि हमारे शरीर का निर्माण करने वाले करोड़ों देह-कोषों (Somatic Cells) में कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें जीवन के नव-सृजन का कार्य दिया हुआ है। इन्हें ही अन्यु-कोष कहा गया है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि नर और मादा अन्यु-कोष पृथक्-पृथक् हैं और अपने आकार-प्रकार में विभिन्नता रखते हैं, परन्तु दोनों में एक बात सामान्य पाई जाती है कि इनके केन्द्र में पित्र्य-सूत्र (Chromosomes) की संख्या निश्चित होती है। यही पित्र्य-सूत्र वंशानुक्रम के वाहक होते हैं। प्रकृति का नियम है कि किसी भी एक वर्ग के सभी प्राणियों में पित्र्य-सूत्र की संख्या सदैव समान रहती है। साथ ही साथ यह भी आश्चर्यजनक बात पाई जाती है कि पूर्ण रूप में परिपक्व अन्यु-कोषों में पित्र्य-सूत्र की संख्या देह-कोषों के पित्र्य-सूत्रों की संख्या से ठीक आधी पाई जाती है। यह भेद देह-कोषों से अन्यु-कोषों की रचना होते समय विभाजन में हो जाता है।

इसका कारण भी यह है कि जब नर जन्यु-कोष का मादा जन्यु-कोष से सम्मिलन होता है तो वह एक-दूसरे से संयुक्त होकर एकाकार हो जाते हैं, और उनके इस संयोग द्वारा निर्मित नवीन कोष में पित्र्य-सूत्रों की संख्या पुनः उतनी ही हो जाती है जितनी कि उस जाति के मूल देह-कोषों में होनी निश्चित है। किसी भी जाति के जातीय लक्षणों को एक दूसरी पीढ़ी में ले जाने और उन्हें सुरक्षित रखने का कार्य इन पित्र्य-सूत्रों द्वारा ही सम्पन्न होता है।"

इन पित्र्य-सूत्रों या क्रोमोसोम्स (Chromosomes) में ही 'जीन्स' (Genes) पाये जाते हैं। मेण्डल ने जिन पैतृक-इकाइयों (Hereditary Units) का उल्लेख किया था, उन्हें 'जीन्स' कहा जाता है। वैसे 'जीन्स' शब्द का प्रथम उपयोग विल्हेम जोहान्नसन (Wilhelm Johannson) द्वारा सन् १९०६ में किया गया था और बेट्सन ने इस शब्द से ही 'जिनेटिक्स' (Genetics) शब्द का निर्माण किया। आजकल के पैतृकता के पित्र्य-सूत्र सिद्धान्त (Chromosome Theory of Germs) के अनुसार जीन्स इतने सूक्ष्म अंश होते हैं कि उन्हें सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देख पाना भी कठिन है। क्रोमोसोम्स अर्थात् पित्र्यसूत्र में विद्यमान इन जीन्स (Genes) से ही पैतृकता या आनुवंशिकता (Heredity) का ज्ञान होता है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि प्रत्येक जीव में जितने पित्र्यसूत्र (Chromosomes) होते हैं, उनमें से आधे माता से तथा आधे पिता से प्राप्त होते हैं और जीवधारी के शरीर में जन्युओं (Gametes) का निर्माण होते समय इन पित्र्यसूत्रों की संख्या आधी रह जाती है। अगली पीढ़ी के जन्म के लिए नर एवं मादा—इन दो जन्युओं (Gametes) का सम्मिलन आवश्यक है। इनके मिलन से पित्र्यसूत्र पुनः अपनी विशिष्ट संख्या (Specific number) को प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्य के प्रत्येक कोष में पित्र्यसूत्र ४८ होते हैं (नवीनतम खोजों के आधार पर यह संख्या ४६ ही मानी जाती है) तथा ड्रोसोफिला (Dresophula) नामक मक्खी में केवल ८ ही पाये जाते हैं। एक पित्र्यसूत्र में जीन्स की संख्या लाखों में होती है।

पित्र्यसूत्र और जीन्स (Chromosomes and Genes), दोनों में ही यह विशेषता होती है कि वे प्रथम विभाजन के पश्चात् पुनः अपने सामान्य रूप में विकसित हो जाते हैं (They are self duplicating)। जिस तरह प्रत्येक कोष (Cell) में दो समजातीय पित्र्यसूत्र (Homologous Chromosomes) होते हैं, उसी तरह उनमें समजातीय जीन्स (Homologous Genes) भी होते हैं। अब हमारे लिये यह समझना सुगम है कि किसी लक्षण के लिये किस प्रकार के कारक (Factors) उत्तरदायी होते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि मेण्डल के नियमों को केवल जीव विज्ञान के आधार पर ही प्रमाणित नहीं किया गया है बल्कि प्राणी-वर्ग पर भी उन्हें पूर्णतः लागू होते पाया गया है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने मक्खियों और पक्षियों पर पैतृकता सम्बन्धी अनेक प्रयोग किए हैं और इन प्रयोगों में प्राप्त बाधाओं के निराकरण के लिए मेण्डल के नियमों में कुछ वृद्धि और सुधार किए हैं। "जीन्स को बहुत विचित्र पाया गया है। कहीं किसी लक्षण के लिए एक ही जीन

Fiber), आदि पूर्णतः रासायनिक पदार्थों से बनाये गये । अब मनुष्य अपने प्राकृतिक तन्तुओं या फाइबर्स (Natural Fibers) पर आश्रित न रहने का दावा कर सकता था । अब कृत्रिम या संश्लिष्ट तन्तु या फाइबर्स (Artificial or Synthetic Fibers) बनाने की दिशा में वह बहुत आगे बढ़ चुका था । १६३८ के बाद तो कुछ ही समय के अन्दर केसीन (Casein), सोयाबीन (Soyabean), पीनट (Peanut) तथा कार्न (Corn) आदि प्रोटीन से नये फाइबर्स बनाये गये ।

स्पष्टत कृत्रिम अथवा संश्लिष्ट तन्तुओं (Artificial or Synthetic Fibers) के रूप में रसायनशास्त्र ने एक ऐसी वस्तु दी है जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति की निर्भरता में बहुत कुछ मुक्ति मिली है ।

तन्तुओं (Fibers) का वर्गीकरण विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार से किया है । वैसे मोटे रूप में इन्हें दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है—

(१) प्राकृतिक फाइबर्स (Natural Fibers)

(२) बनाये हुए फाइबर्स (Manufacuted Fibers)

प्राकृतिक फाइबर्स से हमारा आशय, जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, वनस्पति, जन्तु धातु से प्राप्त होने वाले फाइबर्स से है । इस श्रेणी में कपास, ऊन, रेशम, रेमी (Ramie) आदि आते हैं । बनाये हुए फाईबर्स (Manufactured Fibers) के अन्तर्गत वे सारे फाइबर्स आते हैं जो मनुष्य द्वारा बनाये जाते हैं । इसमें सभी कृत्रिम या संश्लिष्ट फाइबर्स (Synthetic Fibers) तथा सेमी-सिन्थेटिक फाइबर्स (Semi-Synthetic Fibers), प्रोटीन फाइबर्स (Protein Fibers) आते है । आज कृत्रिम फाइबर्स शब्द बहुत विस्तृत अर्थ में लिया जाने लगा है और उसका उपयोग मनुष्य द्वारा बनाये हुए समस्त फाइबर्स के लिए होता है । इसी कारण इनके विभेदों को समझने के कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ता है । इस कठिनाई को दूर करने के लिए "शर्मन और शर्मन" (Sherman and Sherman) ने बताया है कि कृत्रिम फाइबर्स (Synthesized Fibers) वे होते हैं जो पूर्णतः रासायनिक तत्वों (Chemical elements) से बनाये जाते हैं, जैसे नायलोन, ... इस रैजिन या विन्योन आदि सेमी-सिन्थेटिक फाइबर्स (Cemi-Synthetic Fibers) ऐसे होते हैं जो प्राकृतिक पदार्थों की रासायनिक क्रिया की सहायता से बनाये जाते हैं, जैसे रेयोन को कपास लिन्टर्स (Cotton linters) या लकड़ी की लुगदी (Wood Pulp) की सहायता से प्राप्त करते हैं ।

कृत्रिम या संश्लिष्ट फाइबर्स पर इतना प्रकाश डालने के उपरान्त अब हम ... कुछ प्रमुख फाइबर्स का संक्षिप्त विवरण देंगे—

(१) रेयोन [Rayon]—रेयोन दो प्रकार के होते हैं । विभिन्न रासायनिक ... से प्राप्त करने के आधार पर ही उन्हें भिन्न-भिन्न नाम से पुकारा जाता ... ने रेयोन को नाइट्रो-सैल्यूलोज (Nitro Cellulose) विधि से तैयार किया ... किन्तु आजकल इसे तैयार करने में मुख्य रूप से तीन विधियाँ प्रयुक्त ... विधि (Viscose Process), (ii) सैल्यूलोज एसीटेट विधि (iii) क्यूप्रर-एमोनियम विधि (Cupra-amm-

nium Process]। इन विधियों या नीतियों के नाम पर ही विस्कोज रेयोन और एसीटेट रेयोन नाम पड़े हैं। विस्कोज रेयोन के तन्तुओं का उपयोग कपड़ा-रस्सियाँ आदि बनाने के लिए किया जाता है और एसीटेट के तन्तुओं का उपयोग भी कपड़ा बनाने में होता है।

(२) नाइलोन (Nylon)—जहाँ तक रेयोन का प्रश्न है, उसमें हमें सैल्यूलोज प्राप्त करने के लिये प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है किन्तु नाइलोन शुद्ध रूप से संश्लिष्ट पदार्थ है। इसके मूल तत्वों के लिए प्राणी-जगत या वनस्पति-जगत पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। नाइलोन एक प्रकार के जटिल कार्बनिक यौगिक का बना होता है जिसे "Polyamides" कहते हैं। इन यौगिकों के अणु (Molecules) रेशम के अणुओं की भांति ही लम्बे होते हैं, इनको "Jets" के द्वारा लम्बे तन्तुओं (Fibers) के रूप में प्राप्त कर लिया जाता है। इनके निर्माण के लिए आवश्यक कच्ची सामग्री कोयला, हवा तथा पानी से प्राप्त की जाती है। नाइलोन का तन्तु ...योन की अपेक्षा अधिक मजबूत होता है इसीलिए नाइलोन-वस्त्र बड़े टिकाऊ ...ते हैं।

(३) विनाइल रेजिन (Vinyl Resin)—यह बड़ा ही उपयोगी फाइबर है ...कि उपयोग के काम में आता है। अम्लों तथा क्षारों (Concentrated acids ... alkalies) का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता है।

(४) कांच फाइबर (Glass Fibers)—यह कांच (glass) से बनाया जाता ...है। इसे आग नहीं ...र युद्ध तथा उद्योग में भी बड़ा लाभकारी होता है।

(५) पोलीस्ट्रीन (Polystyrene)—इसका रेडार (Radar) तथा युद्ध में बड़ा महत्व है। इसी की वजह से नये प्रकार का हल्का प्लास्टिक बनता है।

(६) विज्ञान और संस्कृति
(Science and Culture)

विज्ञान और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ तक इन दोनों की अपनी-अपनी परिभाषाओं का सम्बन्ध है, कोई भी एक परिभाषा व्यापक रूप में एक सामान्य जन के लिये इन्हें स्पष्ट नहीं करती। अतः पारिभाषिक रूप में केवल इतना ही लिखना पर्याप्त है कि संस्कृति ज्ञान, विश्वास, परम्पराओं, कलाओं, नीतियों और विभिन्न मानवीय क्षमताओं तथा आदतों का एक संगठन है जो मनुष्य ने समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त किया है, तो विज्ञान वह ज्ञान है जो प्रकृति को समझने और इस पर नियंत्रण करने का शिक्षण देता है। दूसरे शब्दों में विज्ञान के दो भाग हैं—मानसिक क्रिया के रूप में यह प्रकृति के बारे में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कराता है; और प्राविधिक क्रिया के व्यावहारिक रूप में यह भौतिक उपलब्धियों और प्रकृति पर नियंत्रण से सम्बन्धित है। मानसिक क्रिया के रूप में विज्ञान संस्कृति का उसी तरह एक अभिन्न अंग है जिस तरह आंख अथवा कान मनुष्य-शरीर का अंग है। विज्ञान प्रत्येक बिन्दु पर सामाजिक-सांस्कृतिक कार्य-कलापों से सम्ब-

निर्भर है। विज्ञान न केवल वर्तमान संसार का सामान्य ज्ञान देता है बल्कि भूतकाल के रहस्यों और मिथ्या धारणाओं को दूर करता है और प्रकृति में कार्य करने वाली शक्तियों पर मानवीय नियंत्रण को संभव बनाता है। इसने गहन रूप से संस्कृति और सभ्यता रूपी निकाय पर इतिहास के दौरान अपना प्रभाव डाला है। पर यह नहीं भूलना चाहिये कि प्रभाव की यह प्रक्रिया एकपक्षीय नहीं है। तथ्य यह है कि चक्र रूप में एक ने दूसरे पर प्रभाव डाला है। प्रत्येक जीवन-पद्धति, रहन-सहन, रीति-नीति, आचार-विचार और नवीन अनुसंधान व आविष्कार सभी संस्कृति के अन्तर्गत आ जाते हैं। इसका अर्थ यही है कि यदि वैज्ञानिक ज्ञान संस्कृति के विकास में सहायक होता है तो संस्कृति इतनी व्यापक है कि वह विज्ञान को अपने में समेटे हुए है। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान हमारी समकालीन संस्कृति और सभ्यता का ही एक रूप है जिसमें होकर विज्ञान की उपज और विचार उनके अच्छे-बुरे परिणामों के साथ छन जाते हैं।

उपरोक्त पृष्ठभूमि के उपरान्त अब हमें देखना चाहिये कि विज्ञान और संस्कृति किस प्रकार परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं और विज्ञान ने संस्कृति के विकास में क्या योग दिया है?

विज्ञान और परम्पराएं, धारणायें, मान्यतायें आदि--विज्ञान ने दार्शनिक जीवन एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के निर्माण और विकास में सर्वाधिक प्रभाव विकास के प्राथमिक काल में ही डाला है। मानव-इतिहास की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य पशु की भांति जीवन-यापन करता था, और वस्तुओं का कच्चे रूप में ही भक्षण करता था। संस्कृति और सभ्यता नाम की कोई चीज समझना उस समय [illegible] न थी। धीरे-धीरे उसने अग्नि और इसके उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की। फिर उसने पत्थर व लकड़ी का उपयोग प्रारम्भ किया और जंगली जानवरों को पालने लगा। जंगलों में उसने खोज से सम्बन्धित वैज्ञानिक तथ्य को सीखा और यह प्रथम वैज्ञानिक खोज थी कि उपयुक्त मात्रा में ताप और पानी दिये जाने से बीज पौधे के रूप में विकसित हो जाता है। इस वैज्ञानिक ज्ञान ने कृषि को जन्म दिया। धीरे-धीरे मनुष्य ने हल, पहियों और धातुओं आदि को उपयोग में लाने की विधियाँ खोजीं। यद्यपि आधुनिक विकसित अवस्था की तुलना में ये सभी बातें बहुत साधारण थीं, फिर भी मानव-सभ्यता के इतिहास में व आधारभूत उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं। ये सब सरल और सामान्य अनुभव से प्राप्त थोड़े विज्ञान का ज्ञान का प्रदर्शन करती थीं, जिन्होंने मनुष्य को अपने तत्कालीन वातावरण पर नियन्त्रण की कुछ शक्तियाँ प्रदान कीं और जिनके कारण मनुष्य की प्रकृति पर निर्भरता कुछ कम हुई। इन्हीं इन प्रारम्भिक वैज्ञानिक खोजों के बल पर ही मनुष्य में यह आत्मगौरव [illegible] हुई कि वह पृथ्वी के अन्य जीवों से भिन्न है। [illegible] उस समय मनुष्य में इतनी बुद्धि न थी कि वह इन खोजों के वैज्ञानिक स्वरूप को पहचान [illegible], वे सभी वस्तुयें अर्थात् अग्नि, पहिया, हल, पालतू पशु आदि पूजा की वस्तुयें बन गईं। इस प्रकार की [illegible] [illegible] [illegible] रहीं और अब वे [illegible] [illegible] परम्पराओं का रूप धारण कर लिया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अन-

सभ्यता के फलस्वरूप कालान्तर में ये परम्परागत अंध-विश्वासों अथवा वैज्ञानिक मान्यताओं के रूप में परिणित हो गईं। इस तरह इन्होंने तत्कालीन मानवीय सभ्यता और संस्कृति का रूप प्रदर्शित किया। धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक आविष्कार होते गये और मनुष्य में तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो गया त्यों-त्यों विभिन्न अन्धविश्वास, रीति रिवाज और परम्पराएं समाप्त होती गईं। प्राचीनकाल में बाढ़ों, रोगों और अकाल का सामना जादू-टोनों, पशु-बलि तथा मानव-बलि और प्राकृतिक वस्तुओं व देवी-देवताओं की पूजा आदि से किया जाता था। किन्तु शनैः शनैः विज्ञान ने मनुष्य को इन भ्रान्तियों से मुक्त किया और इस तरह एक सभ्य संस्कृति के सृजन में योग दिया जिसका उत्कृष्टतम रूप हम हमारी वर्तमानकालीन सभ्यता और संस्कृति में देखते हैं।

शिक्षक के रूप में विज्ञान—उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि विज्ञान ने सदैव से ही एक शिक्षक की भांति मानव संस्कृति और सभ्यता का नेतृत्व करने की चेष्टा की है। सुप्रसिद्ध लेखक आइन्सटाइन का मत था कि विज्ञान मनुष्य को दो प्रकार से शिक्षित करता है—प्रथम, उसके अन्धविश्वासों को समाप्त करके और द्वितीय, उसके सम्मुख प्रकृति के जटिल रहस्यों का उद्घाटन करके। विज्ञान के इसी शिक्षाप्रद पहलू ने मानव-समाज को निरन्तर प्रभावित और परिवर्तित किया है। संस्कृति व सभ्यता के प्रचार, प्रसार तथा विकास के लिए विज्ञान ने एक सर्वोत्तम माध्यम के रूप में कार्य किया है। प्रेस और साहित्य के द्वारा उसने ज्ञान का प्रसार किया है तथा रेडियो, टेलीविज़न, आवागमन और सन्देशवाहन के साधनों आदि के द्वारा विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार से संस्कृति की सहायता की है। विज्ञान ने विपत्तियों, रोगों, संकटों, अकालों, भूकम्पों आदि के विषय में प्रचलित अन्धविश्वासों का जाल छिन्न-भिन्न किया है और इस तरह मनुष्य को मानसिक गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करके उसे उन्नत संस्कृति व सभ्यता के मार्ग पर बढ़ाया है। रसेल ने कहा है, "परम्पराओं के विरुद्ध खड़े होकर सम्मान प्राप्त करना बहुत कठिन है।" किन्तु हम देखते हैं कि विज्ञान के बल पर ही आज की संस्कृति प्राचीन काल से कहीं अधिक परम्पराओं और रूढ़ियों से मुक्त है तथा मुक्ति की यह प्रक्रिया निरन्तर जारी है। संस्कृति का अभिन्न अंग ज्ञान आज दिन दूना, रात चौगुना बढ़ रहा है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान ही ज्ञान के विस्तार की इस तीव्र गति के लिए उत्तरदायी है।

विज्ञान और धर्म—विज्ञान और धर्म के बीच सदैव से संघर्ष रहा है—इसलिए नहीं कि विज्ञान धर्म का शत्रु है अपितु इसलिए कि विज्ञान धर्म की अवैज्ञानिक मान्यताओं का पर्दाफाश करता रहा है। धार्मिक पाखण्डों, आडम्बरों, अन्धविश्वासों और कुरीतियों के विरुद्ध विज्ञान ने सदा ही बगावत का झंडा उठाया है। इस दृष्टि से विज्ञान धर्म को निखारने में सहायक ही हुआ है, परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ विज्ञान भौतिक वस्तुओं के नियन्त्रण का प्रयास करता है वहाँ धर्म नैतिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य के मूल्यों की भावना के विवेचन में परिलक्षित होता है। इस प्रकार दोनों ही जीवन के विभिन्न पक्षों का

विश्लेषण करते हैं। व्हाइटहैन्ड के कथनानुसार "एक ओर गुरुत्वाकर्षण का नियम है तो दूसरी ओर पवित्र सौन्दर्य की भावना। इस तरह जो एक पक्ष देखता है, वह दूसरा नहीं देख पाता और दोनों ही पक्ष अपने-अपने ढंग से जीवन के विकास में, संस्कृति और सभ्यता की उन्नति में सहायक होते हैं। लेकिन फिर भी विज्ञान और धर्म के बीच टक्कर अवश्य विद्यमान है जो इस बात की द्योतक है कि अधिक विस्तृत सत्य और अधिक उत्तम विचारों से युक्त धर्म तथा अधिक विलक्षणता से युक्त विज्ञान के मध्य सामंजस्य की स्थिति आ सकती है। धर्म को, अपने प्रचलित अर्थ से उठ कर और अन्ध-विश्वास की बेड़ियों को तोड़ कर, सत्योन्मुखी होना चाहिए। इस तरह जब धर्म और विज्ञान दोनों ही सत्य के विवेचक होंगे तो विरोध की गुन्जायश नहीं रहेगी। विज्ञान भौतिक तथ्यों का उद्घाटन करता रहेगा और मानव-संस्कृति के लिए भौतिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करेगा, जब कि धर्म सच्चे अर्थों में संस्कृति के अध्यात्म पक्ष का रक्षक सिद्ध होगा। विज्ञान और धर्म दोनों सभ्यता और संस्कृति के उन्नायक हैं तथा दो विभिन्न पक्षों के साथ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। अतः दोनों का ही साथ-साथ होना आवश्यक है। यह कहना ठीक ही है कि जहां विज्ञान असफल होता है वहां अध्यात्मवाद और भगवान का सहारा लेना चाहिये और जहां अध्यात्मवाद से काम न चले वहां विज्ञान का आश्रय ग्रहण करना चाहिये और इस तरह दोनों को इस रूप में अपनाना चाहिए कि वे एक दूसरे के पूरक बनें।

विज्ञान और नैतिक मूल्य—मानव समाज में पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से होता है और इन्हीं के अनुरूप नैतिक मूल्यों की स्थापना होती है। विज्ञान के विकास के साथ-साथ मनुष्य के सामाजिक और आर्थिक विचारों व मूल्यों में परिवर्तन होता आया है। मानव समाज सामन्तवाद और गुलामी की दशाओं से गुजरा है। आधुनिक विज्ञान ने औद्योगिक मूल्यों को विकसित किया है और प्रजातन्त्र द्वारा उनका अनुसरण हुआ है जिसमें दासता या गुलामी को तिरस्कृत किया जाकर नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किये जाने के प्रयास हो रहे हैं। वास्तव में प्रकृति प्रदत्त जितने भी साधन हैं, विज्ञान उनका अधिकतम उपयोग करके मनुष्य के जीवन को मंगलमय बनाने को सचेष्ट है। यह दूसरी बात है कि मनुष्य राह से भटक कर, नैतिक मूल्यों को तिलांजलि देकर, विज्ञान का दुरुपयोग करे। विज्ञान के बल पर ही आज मानव समाज से भूख, गरीबी, अज्ञान और बीमारी का मूलोच्छेदन करने की स्थिति में है। परन्तु शर्त यह है कि इस दिशा में विवेकपूर्ण ढंग से कार्य किया जाना चाहिए। विज्ञान ने मनुष्य में नैतिक मूल्यों को जागृत करने का मार्ग प्रशस्त किया है और "यह नवीन मानव संस्कृति के निर्माण की दिशा में [illegible] है कि मानव ने एक ही मानव-जाति के विषय में सोचना प्रारम्भ कर दिया है और वह विचार निरन्तर अन्तर्राष्ट्रीय व व्यापक सा बनता जा रहा है।" वैज्ञानिक आविष्कारों के उपयोग के बारे में भी मानवीय मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है। अणु-शक्ति के विनाशात्मक प्रभाव को पहचान कर आज का मनुष्य सोचने लगा

है कि इस अपार अणु शक्ति को मानवीय कल्याण के रचनात्मक कार्यों में लगाया जाय। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने मानव-मूल्यों में इतना परिवर्तन ला दिया है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण करने की पारस्परिक और भौतिक आवश्यकता को वह समझने लगा है। भौतिक जीवन में भी संयम जरूरी है–इसकी बुद्धि उसे आने लगी है। जनसंख्या पर रोक को जहां विगत शताब्दियों में अनैतिक कार्य माना जाता रहा था, वही नैतिक कार्य गिना जाने लगा है। संक्षेप में यह कहना चाहिये कि विज्ञान ने प्राचीन विचारों और मान्यताओं में महान परिवर्तन उपस्थित कर दिया है और मनुष्य में नवीन मौलिक दृष्टिकोण तथा नैतिक मूल्यों का विकास होता हुआ दिखाई दे रहा है।

विज्ञान द्वारा संस्कृति और सभ्यता को यदि कोई खतरा है तो यह कि आज अनेक प्रयत्नों का एक बहुत बड़ा भाग विध्वंसात्मक कार्यों की ओर लगता जा रहा है और मानव-सभ्यता बारूद के एक ऐसे बड़े ढेर पर विराजमान है जिसमें लगने वाली एक छोटी सी चिनगारी अपने भयंकर विस्फोट से सम्पूर्ण मानव-सभ्यता का अन्त कर सकती है। परन्तु इसमें विज्ञान का दोष नहीं है, दोष है विज्ञान के प्रयोग-कर्ता मनुष्य का। सदा से मनुष्य के सामने दो मार्ग खुले रहे हैं—विनाश का और निर्माण का। विज्ञान ने भी इन्हीं दोनों पथों को अधिक आलोकित किया है। अब यह मनुष्य पर निर्भर है कि वह इनमें से कौन से पथ को चुनने का आकांक्षी है। विज्ञान के रचनात्मक प्रयोग से वह अपनी सभ्यता और संस्कृति को स्वर्गीय सुख की सीढ़ियाँ चढ़ा सकता है और विज्ञान के विध्वंसात्मक प्रयोग से वह सभ्यता और संस्कृति को विनाश के महागर्त में भी गिरा सकता है। यह सब कुछ मानवीय सुबुद्धि या दुर्बुद्धि पर निर्भर है।

(७) विज्ञान और समाज (Science and Society)

अथवा

मानव जीवन पर विज्ञान का प्रभाव

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत और इससे भी पहिले के अध्यायों में हम जगह-जगह पर यह दिखा चुके हैं कि विज्ञान ने मनुष्य को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। विज्ञान का प्रभाव आधुनिक समाज पर बहुत व्यापक और दूरगामी है। इस अध्याय में हम एक समग्र दृष्टि से संक्षेप में जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विज्ञान के प्रभाव को समझने का प्रयत्न करेंगे।

आधुनिक क्रांति का सूत्रपात और शहरी सभ्यता का विकास—मनुष्य के जीवन में विज्ञान द्वारा लाये जाने वाला परिवर्तन वास्तव में भाप की शक्ति के पैदा होने से शुरू होता है। इस शक्ति से चलने वाली मशीनों में, रेलों के एंजिन, रुई के कपड़ों को चलाने वाली मशीनें और अन्य वे सब मशीनें आती हैं जिनके कारण सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात सम्भव हो सका। यूरोप में भाप से चलने वाले कारखानों का एक के बाद एक इतने तेजी से विकास हुआ कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया और आधुनिक महायुद्धों जैसी घटनायें भी घटित हो सकीं।

यूरोप के सभी देश अपनी प्रारम्भिक व्यवस्था मे कृषिप्रधान देश थे, ग्राम्य जीवन ही वहा अधिक था । शहरो का जन्म नही सा हुआ था । गावो मे ग्रामीण जन अपनी आवश्यकता की वस्तुओ को स्वयं पैदा कर लेते थे । जीवन सुखी और सरल था । जटिलता से रहित इस समाज मे साम्य था जिसमे किसी भी प्रकार की दैवी घटना सतुलन नही तोड सकती थी । लेकिन विज्ञान के विकास ने मशीनें पैदा की और मशीनो से कारखाने बने और तब शनै. शनै और फिर तेजी से समाज का साम्य उठ गया । निम्न श्रेणी के कारीगरो और किसानो को अपने गृह–उद्योगों को तिलाजलि देनी पडी क्योकि मशीनो से सस्ता और अच्छा सामान तेजी से तैयार होने लगा । कारीगर अब शनै शनै मजदूरो की श्रेणी मे आ गये और कारखानों के समीपस्थ बस्तियो मे आकर बस गये । इन कारखानो के पास बसी हुई नई-पुरानी बस्तियो ने धीरे-धीरे बडा स्वरूप ग्रहण कर लिया और अपने जटिल रूप में आज वे लन्दन, पेरिस, बम्बई, कलकत्ता, लकाशायर आदि विशालकाय नगरों के रूप मे अवस्थित हैं । विज्ञान ने जिस औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात किया उसके फलस्वरूप लोगो की खेती मे रुचि कम हुई क्योकि अधिकाश लोग कारखानों में कार्य करने लगे । इसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि पैदावार निरन्तर कम होती गई, गाव उजडने लगे और शहरो की जनसख्या बढने लगी । इस तरह विज्ञान ने शहरी सभ्यता के विकास में निर्णायक योग देकर मानव समाज की व्यवस्था को क्रान्तिकारी रूप मे प्रभावित किया ।

आर्थिक जीवन में स्वावलम्बन का ह्रास और व्यापारिक उत्पादन की वृद्धि–विज्ञान के प्रताप से जिन यन्त्रो का आविष्कार हुआ, उन्होने उत्पादन के पुराने तरीको को लगभग उखाड फेंका । नवीन यन्त्रों की सहायता से उत्पादन बहुत बढ गया और आज निरन्तर बढता जा रहा है । उत्पादन की इस वृद्धि मे विशेषता यह है कि यन्त्रों के प्रयोग के कारण खर्च कम बैठता है और वस्तुयें बहुत सस्ती पड़ती हैं । प्राचीन काल मे समस्त उत्पादन हाथ से होता था जिसमे समय और धन अधिक लगता था तथा वस्तुयें भी महंगी पड़ती थीं । विज्ञान के द्वारा निर्मित साधनो की उपलब्धि से प्राप्त सस्ती वस्तुयें आज बाजार में जल्दी बिक जाती है जबकि महंगी वस्तुयें पडी रह जाती हैं । यही कारण है कि आज बाजारों में हाथ की बनी हुई वस्तुओ को हम लुप्त-प्राय पाते हैं जबकि यन्त्रों से बनी हुई वस्तुओं से बाजारों को भरा देखते है ।

लेकिन व्यावसायिक उत्पादन की इस अभिवृद्धि के परिणामस्वरूप मनुष्य के आर्थिक जीवन में स्वावलम्बन का ह्रास हुआ । यन्त्र–युग से पूर्व उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया जाता था और वह स्थानीय बाजारों में ही खप जाता था । इसके अतिरिक्त प्राचीन तरीकों से वस्तुओं का उत्पादन करने में एक विशेष बात यह थी कि कारीगर किसी वस्तु के निर्माण को [illegible] प्रारम्भ से लेकर अन्त तक स्वयं ही करता था और कई बार परिवार के अन्य सदस्य भी उसके काम में सहयोग करते थे—यहां तक कि स्त्री और बच्चे भी । इससे मनुष्य का [illegible] था और [illegible] उसके काम का पूरा [illegible]

वह बहुत कुछ आत्मनिर्भर भी था। चूंकि माल स्थानीय बाजारों में खप जाता था और आवश्यकता के अनुसार ही उत्पादन किया जाता था, अत माल बेचने की आधुनिक कालीन समस्या न थी। परिणामस्वरूप यातायात की समस्या भी न थी और न ही किसी व्यवसाय के लिये अधिक पूंजी की आवश्यकता ही थी। उस समय श्रम का विभाजन जटिल न था और श्रमिकों की अपनी अलग विषम समस्या न थी। लेकिन वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा लाई औद्योगिक क्रान्ति ने मनुष्य के इस प्रकार के स्वावलम्बी जीवन को समाप्त कर दिया। उद्योग-धन्धों में कारीगरों की स्वाधीनता का पतन होने लगा। आज हम स्पष्ट देखते हैं कि छोटे उद्योगों का स्थान बड़े कल कारखाने लेते आ रहे हैं। पहिले जो कारीगर अपने औजारों के स्वयं स्वामी थे और अपनी ही दुकान या चौपाल में बैठकर अपना काम स्वयं करते थे, वे ही अब अपने औजार अपनी दुकान से वंचित होकर निहत्ये तथा मिल और कारखानों के मालिकों के मुहताज मजदूर बन गये हैं।

आर्थिक शक्ति का पूंजीपतियों के हाथ में केन्द्रीयकरण और वर्ग संघर्ष का उदय—बड़े कारखानों और विशाल उद्योगों को स्थापित करने के लिए विशाल मात्रा में पूंजी का होना आवश्यक है। चूंकि कारीगर तो सदैव से गरीब ही रहते आये हैं, अत: कारखाने और उद्योग स्थापित करने का काम धनिकों द्वारा ही होने लगा। धनियों ने तरह-तरह के विशाल कारखाने स्थापित किये और निर्धन कारीगर उन कारखानों में मजदूर बनकर काम करने लगे। कारखानों में बड़े पैमाने पर उत्पादन के परिणामस्वरूप मुनाफा अधिक होने लगा। अधिकांश मुनाफा पूंजीपतियों की जेब में जाने लगा जबकि मजदूर को अपनी अल्प मजदूरी से ही सन्तोष करना पड़ा। इस स्थिति का यह स्वाभाविक परिणाम निकला कि जो धनी थे वे बहुत तेजी से और भी अधिक धनी होते गए और जो गरीब थे वे निरन्तर अधिकाधिक गरीब बनते गए। छोटे कारखाने बड़ों में मिला लिए गए और एक ही मालिक के नियन्त्रण में फैक्ट्री प्रथा (Factory System) की नींव पड़ी। समाज में इस प्रकार दो वर्गों का जन्म हुआ—पूंजीपति और श्रमिक वर्ग। इस प्रकार विज्ञान की प्रगति ने समाज में साम्य को तोड़ दिया और मानव धीरे-धीरे मानवता से दूर सघर्ष की ओर

होना पड़े। इस प्रकार समाज में पूंजीपति और मजदूरों के भिन्न भिन्न वर्ग स्थापित हुए जिनके स्वार्थ एक दूसरे से भिन्न थे। इसीलिए उनमें आपस में संघर्ष रहना अनिवार्य सा हो गया। मालिक-मजदूर संघर्ष ने हड़ताल, बायकाट और विध्वंसकारी घटनाओं को जन्म दिया। अन्त में यह भी हुआ कि रूस में वहां के शोषित वर्ग ने लेनिन के नेतृत्व में संगठित होकर पृथक साम्यवादी सरकार की स्थापना की। अन्य देशों में भी मजदूर-संघर्ष बढ़ता गया और समाज में उसी के अनुसार कटुता तथा विषमता में भी वृद्धि होती गई।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रतियोगिता और उपनिवेशों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष—इस प्रकार की विषमता किसी एक देश के समाज में ही नहीं थी अपितु संसार के सभी देश इससे पीड़ित होने लगे। विज्ञान द्वारा उत्पन्न औद्योगिक क्रांति से अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों ने भी बहुत भीषण रूप धारण कर लिया। जिन देशों ने यान्त्रिक उत्पादन में पहिले उन्नति कर ली वे अपने निर्मित माल को दुनियां के ऐसे देशों में बेचने के लिए व्यग्र हो उठे जो यान्त्रिक उत्पादन की दृष्टि से पिछड़े हुए थे। इसके अतिरिक्त इन प्रगतिशील और यान्त्रिक शक्ति से उन्नत देशों को कच्चे माल की तीव्र आवश्यकता पड़ने लगी क्योंकि इस माल से ही इनके विशाल कारखानों में तरह तरह का पक्का माल तैयार होता था। इन दोनों दृष्टियों से यूरोपियन राष्ट्रों में पारस्परिक तीव्र प्रतियोगिता का समारम्भ हुआ क्योंकि यान्त्रिक शक्ति का विकास सबसे पहिले यूरोपियन देशों में ही अधिक हुआ था। इस प्रकार की आर्थिक होड़ या प्रतिस्पर्धा ने गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की स्थिति पैदा कर दी। एशिया और अफ्रीका के सभी देश औद्योगिक विकास में पिछड़े हुए थे। परिणाम यह हुआ कि इन देशों में यूरोप वालों ने प्रवेश किया। वहां आकर उन्होंने पक्का माल बेचा और सस्ते दामों पर मजदूर तथा सस्ता माल प्राप्त करके देश को ले जाने लगे। विकसित देशों ने अविकसित देशों में पूंजी भी लगाई और उसकी रक्षा के लिए वे राजनीतिक अधिकार प्राप्त करके पूर्ण भी सक्रिय हुई।। भारत, चीन, अफ्रीका आदि के पददलित होने का इतिहास इन सब बातों के जीते-जागते परिणाम हैं। शनैः शनैः यूरोप वालों ने एशिया और अफ्रीका के विभिन्न देशों में राजनीतिक अधिकार हस्तगत कर लिये, इन देशों का शोषण किया और इन्हें दासता के कठोर शिकंजे में कस दिया। इस क्रिया में यूरोपियन देशों में भी परस्पर वैसे ही होने लगे जैसे डाकुओं द्वारा माल बांटते समय हुआ करते हैं। संघर्ष की स्थितियां इतनी तीव्र हो गईं कि एक बार तो १९१४ ई० में और इसके बाद फिर १९३९ ई० में यूरोपियन राष्ट्रों ने विश्व-विनाशक दो महायुद्ध लड़े। प्रथम महायुद्ध का सबसे बड़ा कारण यही था कि जर्मनी अपने पक्के सामान के लिए और मशीनों के लिए अविकसित देशों में उपनिवेश स्थापित करना चाहता था एवं इंग्लैंड तथा उनके साथी राष्ट्र उसे रोकना [illegible]। जब जर्मनी ने मध्य एशिया में प्रगति बढ़ाई तो महायुद्ध शुरू कर दिया गया। आज भी मिस्र, ईरान, ईराक आदि अविकसित देशों पर अपना प्रभुत्व और नियंत्रण रखने के लिए रूस तथा अमेरिका जैसे शक्तिशाली राष्ट्र [illegible] होड़ है। इस होड़ का प्रमुख कारण उपरोक्त देशों का पेट्रोल है। यदि हम इन

देशों पर नियन्त्रण करके एकबारगी ही यूरोप को निर्यात किये जाने वाले पैट्रोल को बन्द करवा दे तो वहां की सभी मशीनरियां ठप्प हो जावेंगी और पश्चिमी यूरोप पैट्रोल के अकाल से पीड़ित होकर रूस के समक्ष झुक जावेगा। वास्तव मे विज्ञान ने जहां मनुष्य को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया है वहां उसे इतना अपाहिज भी कर दिया कि अब वह अपनी निजी शक्ति से कुछ भी नहीं कर सकता।

राजनीतिक जीवन पर प्रभाव—विज्ञान के द्वारा विकसित उद्योग और नाना प्रकार के यांत्रिक एवं अन्यान्य साधनों के कारण जहां निर्जन भूमि थी वहां बड़ी-बड़ी औद्योगिक बस्तियां खड़ी हो गईं और इन बस्तियों मे सभी वर्गों के लोग साथ-साथ रहने लगे। ऐसी बस्तियों मे भिन्न भिन्न वर्ग अपने-अपने वर्गीय हितों की रक्षार्थ अपने अलग-अलग संगठन बनाने लगे और स्वहितों की रक्षा का प्रयत्न करने लगे। फलस्वरूप पूंजी-बल के समान संख्या-बल का उदय हुआ। अखबार और साहित्य के नये अंगों द्वारा मजदूरों के हकों पर पूंजीपतियों के अन्यायों के बारे मे लोकमत जागृत किया जाने लगा और ऐसी मांगें खड़ी हुईं कि राज्य के संचालन मे संख्या-बल को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। राज्य भी ऐसा होना चाहिये जिसमे अधिकाधिक लोगों का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व हो। स्पष्ट ही इस प्रकार के विचारों के फलस्वरूप जनतांत्रिक अथवा लोकतांत्रिक राज्य प्रणाली का उदय हुआ जिसमें एक-एक व्यक्ति को एक-एक मत अथवा राय देने का अधिकार होता है। विज्ञान का राजनीतिक प्रभाव यहीं पर समाप्त नहीं होता। बहुमत के कारण जब राज्यसत्ता पर संख्या-बल का प्रभाव हो गया अर्थात् गरीबों और श्रमिकों का, संख्या मे अधिक होने के कारण, विशेष प्रभाव हो गया, तब ऐसी विचारधारा का जन्म हुआ कि पूंजीपतियों की कोई आवश्यकता ही नहीं है और उनसे या तो सब पूंजी छीन ली जानी चाहिए अथवा उन्हें मिटा देना चाहिये। इस विचारधारा को प्रश्रय मिला कि आवश्यक सभी विशालकाय कारखानों के लिए पूंजी सरकार को लगानी चाहिए ताकि उन कारखानों का मुनाफा जनता के हित में प्रयोग में लिया जा सके और चन्द लोगों की जेब ही उससे भारी न हो। कुछ लोग कहने लगे कि पूंजीपतियों को पूर्णतः समाप्त करना उचित नहीं है बल्कि वह होना चाहिए कि मुनाफे के अधिकांश भाग से वंचित हो जाए। कुछ अन्य व्यक्ति कहने लगे कि पूंजीपतियों और प्रशासक अधिकारियों या सरकारी शासकों मे कोई विशेष अन्तर नहीं है और सत्ता का केन्द्रीयकरण सब तरह से खतरनाक है। इस विचारधारा का प्राबल्य होने से सत्ता के विकेन्द्रीयकरण की मांगें उठ खड़ी हुईं। इस तरह यान्त्रिक युग मे विज्ञान के द्वारा पैदा की गई औद्योगिक क्रान्ति में उत्पन्न समस्याओं के हल के लिए अनेक राजनीतिक विचारधाराएं पैदा हुईं और विभिन्न राजनीतिक दल इन विचारों का प्रचार तथा आन्दोलन करने लगे। रूस और चीन में विशेष रूप से इस विचारधारा को बल मिला कि समाज मे पूंजीपतियों का कोई स्थान नहीं है और सरकार को उत्पादन के समस्त साधन अपने हाथ में लेकर जनता का जीवन स्तर स्वयं ऊंचा उठाने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। दूसरे शब्दों मे साम्यवाद की शक्तिशाली विचारधारा का विकास हुआ।

इसके विपरीत अमेरिका और इंग्लैंड आदि पूंजीपति देशों में ऐसे प्रयोग चलते रहे और चल रहे हैं कि पूंजीपतियों को काम तो करने दिया जाये लेकिन ऐसे कानूनों का निर्माण कर दिया जाए ताकि मजदूरों का जीवन भी अमीरों के समान ही सुख-सुविधाओं से पूर्ण हो जाए। हमारे देश भारत में इन सभी विचारों के सुन्दर समन्वय का प्रयत्न चल रहा है।

विज्ञान द्वारा प्राप्त शक्ति के बल पर मानव समाज में केवल उपरोक्त राजनीतिक परिवर्तन ही नहीं हुए। विज्ञान की शक्तियों ने मनुष्य को इतना जकड़ लिया कि वह उसके वशीभूत होकर ऐसे कार्यों में प्रवृत्त हो गया जिनको वह पहिले नहीं करना चाहता था। आधुनिक साम्राज्यवाद इसी प्रवृत्ति का स्वरूप है। आवागमन के साधनों और नवीन आविष्कारों ने सरकारों को अधिनायकवाद की ओर प्रेरित किया क्योंकि विद्रोही प्रजा पर विज्ञान की शक्तियों के आधार से अधिक नियन्त्रण किया जा सकता है। यदि सरकार अचानक ही बिजली रोक दे, तो नगरों में पानी की सप्लाई नहीं हो सकती। आज नगरों का तो सम्पूर्ण सामाजिक जीवन ही बिजली पर आधारित है और बिजली पर सरकारों का नियन्त्रण है। विद्रोहों को दबाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर फौजों को भेजना बहुत सरल हो गया है। यदि औरङ्गजेब के समय विज्ञान इतना विकसित होता और उसके पास आधुनिक आवागमन के सुलभ साधन होते तो सम्भवतः मुगल साम्राज्य का अन्त अभी तक नहीं हुआ होता।

विज्ञान द्वारा प्रदत्त शक्तियों और साधनों का ही यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिणाम है कि सरकारों की शक्तियां आज बहुत बढ़ गई हैं और प्रजा पर सरकारों का अधिक नियन्त्रण है। बड़े राष्ट्रों के पास आवागमन और युद्ध सामग्री प्रचुर मात्रा में होने के कारण छोटे राष्ट्रों का जीवन खतरे में हो गया है और इसीलिए बड़े राष्ट्रों की छत्रछाया में इकट्ठे होकर नाटो, सैन्टो, सीटो आदि का निर्माण कर रहे हैं। इसका स्पष्टतः यह भी अर्थ निकल रहा है कि अब दो बड़े राष्ट्रों के झगड़े में छोटे राष्ट्र भी फंस रहे हैं, शान्ति का क्षेत्रफल घट रहा है और युद्ध स्थल का क्षेत्रफल बढ़ रहा है। निश्चय ही संसार की जन-संख्या आज तीव्र गति से बढ़ रही है और यदि इस गति से विज्ञान ने प्रगति न की तो विस्फोटक स्थिति आ सकती है। ऐसी अवस्था में खाद्य-सामग्री का संसार में वितरण नये विज्ञान के आवागमन के साधनों द्वारा ही सम्भव होगा। विज्ञान का समाज पर यह प्रभाव पड़ा है कि समाज अब अधिक आश्रित है और उसके राजनीतिक तथा सामाजिक विचारों पर काफी दबाव पड़ने लगा है।

विभिन्न राष्ट्रों के बीच आर्थिक अन्तर्निर्भरता और राजनीतिक सहयोग— विज्ञान के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभावों के फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों के मध्य केवल सम्पर्क ही पैदा नहीं हुआ बल्कि सहयोग की भावनाओं का भी विकास हुआ है। [illegible] महायुद्धों के अनुभव से विश्व अब यह समझ गया है कि [illegible] और न ही आधुनिक युग में किसी देश को [illegible] का अनुमान ही किया जा सकता है। [illegible]

देश पिछड़े हुए हैं उन्हें अपना औद्योगिक विकास कर लेने में उन्नत तथा विकसित देशों से हर प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए। ऐसा होने पर ही इस दुनिया में शान्ति कायम रह सकती है। इस प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सहयोग और आर्थिक-निर्भरता तेजी से बढ़ती जा रही है। आज विभिन्न देश राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से पारस्परिक सहयोग के मार्ग पर चलने में ही अपनी कुशल समझते हैं। एक देश का खनिज पदार्थ या कृषि उत्पादन आज दूसरे देश के काम में आता है और एक देश के आर्थिक परिवर्तन अथवा कृषि पदार्थों या खाद्य पदार्थों के उत्पादन में कमी-बेशी का प्रभाव लगभग सम्पूर्ण विश्व पर पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि राजस्थान की खानों में अभ्रक कम निकले तो सारे संसार में अभ्रक महंगी हो जायगी और यदि अमेरिका में गेहूँ का उत्पादन कम हो जाए तो भारत जैसे अनेक राष्ट्रों में गेहूँ न केवल महंगा हो जाएगा अपितु जनता को भुखमरी का सामना भी करना पड़ेगा। स्पष्टतः आज राष्ट्रों के मध्य आर्थिक अन्तर्निर्भरता विद्यमान है। एक देश अपनी आवश्यकताओं के विषय में बहुत दूर के दूसरे देश पर आश्रित होने लगा है। इसी अन्तर्निर्भरता के आधार पर आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष या बैंक चलने हैं ताकि विभिन्न देशों के सिक्के आपस में बदले जा सकें और अविकसित देशों को ऋण दिया जा सके।

(b) "Science as a boon and curse to humanity."
"विज्ञान मानवता के लिये वरदान और अभिशाप के रूप में"

(c) "Science and Culture.
विज्ञान और संस्कृति।

(d) Science and Society
विज्ञान और समाज

(e) "Fight against Diseases".
"रोगों के विरुद्ध संघर्ष"

(f) "Body defences against disease germs".
"रोग-कीटाणुओं के विरुद्ध शरीर की प्राकृतिक रक्षा।"

(g) "The spread infections diseases"
"संक्रामक रोगों का प्रसार"

(h) "Prevention, Control and Cure of diseases"
"रोगों की रोक-थाम, उन पर नियन्त्रण और उपचार।"

(i) The nature of matter.
पदार्थ की प्रकृति।

(j) Energy,
ऊर्जा

(k) Atomic Energy
परमाणु शक्ति।

(l) Structure of an Atom.
परमाणु रचना

(m) Atom for Peace.
शांतिमय कार्यों के लिए परमाणु

(n) The Properties of Matter
पदार्थ के गुण।

(o) The Three States of Matter
द्रव्य की तीन अवस्थायें

(p) Construction of Matter.
द्रव्य की बनावट।

(q) Energy and its contribution to our human civilization
ऊर्जा और इसका हमारी सभ्यता का योगदान।

(r) Different Forms of Energy.
ऊर्जा के विविध रूप।

(s) Transformation of Energy.
ऊर्जा का रूपान्तर

(t) Kinetic and Potential Energy
गतिज और स्थितिज ऊर्जा।

(iv) Uses of Atomic Energy.
परमाणु ऊर्जा के लाभ।
(v) Sources of Energy.
शक्ति के स्रोत।

2. Describe how and upto what extent science has helped in removing the superstitions in India.
बताइये कि भारत में विज्ञान ने कैसे और किस सीमा तक अन्धविश्वासों का उन्मूलन किया है।
3. Explain how science has fulfilled the primary needs of man.
विज्ञान ने मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार की है—बताइये।
4. What has been the impact of Science on human life ?
मानव-जीवन पर विज्ञान का क्या प्रभाव रहा है ?
5. Write a short essay on (a) Genetics, and (b) Synthetic Fibres.
इन पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये—(अ) जीनेटिक्स, और (ब) सिन्थेटिक फाइबर्स।

BRIEF NOTES
(संक्षिप्त टिप्पणियाँ)

१. निम्नलिखित में से प्रत्येक विषय पर लगभग २०० शब्दों में टिप्पणी लिखिये—
(a) विज्ञान एवं दूरी पर विजय
(b) विज्ञान एवं श्रम पर विजय
(c) विज्ञान की विध्वंसात्मक शक्तियाँ
(d) विज्ञान एवं अन्धविश्वास
(e) संक्रामक रोग
(f) टीके
(g) रोग-क्षमता
(h) रोगों का कीटाणुओं द्वारा फैलने का सिद्धान्त
(i) संक्रामक रोगों के लक्षण
(j) संक्रामक रोगों का नियन्त्रण
(k) विज्ञान और मनुष्य का धार्मिक जीवन
(l) विज्ञान का संस्कृति के विकास में योगदान
(m) विज्ञान का रचनात्मक प्रभाव
(n) औषधि-क्षेत्र में विज्ञान
(o) विज्ञान एवं मानव-मान्यताएं
(p) विज्ञान और संस्कृति का संकट
(q) रेयॉन और नाइलॉन

(r) जीनेटिक्स
(s) जीन्स
(t) विज्ञान द्वारा वर्ग-संघर्ष के उदय में योग
(u) विज्ञान और उद्योग
(v) परमाणु शक्ति से उपचार
(w) विज्ञान एवं शिल्प-कला
(x) विज्ञान एवं संगीत
(y) विज्ञान और विचारधारा
(z) विज्ञान और सामाजिक उपादेयता

२. निम्नलिखित में से प्रत्येक पर लगभग २०० शब्दों में टिप्पणियाँ लिखिये—
   १. द्रव्य क्या है ?
   २. द्रव्य के स्थान घेरने, विभाजनशील होने और उसमें भार होने से आप क्या समझते हैं ?
   ३. ठोस द्रव्य के गुण क्या हैं ?
   ४. द्रव पदार्थ के गुण बताइये।
   ५. ठोस, द्रव और गैस की परस्पर तुलना कीजिये।
   ६. 'तत्व', ''यौगिक' और 'मिश्रण से क्या अभिप्राय है ?
   ७. परमाणु का प्राचीन और आधुनिक विचार
   ८. यांत्रिक ऊर्जा।
   ९. बहते हुए पानी द्वारा ऊर्जा।
   १०. जलते हुए ईंधन द्वारा ऊर्जा।
   ११. प्रकाश ऊर्जा।
   १२. विद्युत ऊर्जा।
   १३. चुम्बकीय ऊर्जा।
   १४. गतिज ऊर्जा।
   १५. ऊर्जा के नियम
   १६. आइन्सटाइन का समीकरण—$E = mc^2$
   १७ परमाणु ऊर्जा की विनाशक शक्ति।
   १८. ऊर्जा के नवीन स्रोत से आपका क्या अभिप्राय है ? इसको नवीन की संज्ञा क्यों दी गयी है ?
   १९. परमाणु ऊर्जा के विकास का मानवीय सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ सकना संभव है ?
   २०. हमारे देश में परमाणु ऊर्जा के विकास के क्या-क्या कार्य किये गये ?
   २१. आइन्सटीन ने कहा था ''चौथा विश्व-युद्ध पाषाण शस्त्रों से होगा'' इस तथ्य पर टिप्पणी करो।

OBJECTIVE TYPE QUESTIONS
(नवीन शैली के प्रश्न)

१. उत्तर दीजिये—
   १. रोगों से बचाव के सरलतम उपाय क्या है ?

२. परमाणु शक्ति के विध्वंसात्मक रूप के दो उदाहरण दीजिये।
३. रेडियो आइसोटोप्स से आप क्या समझते हैं ?
४. गतिज ऊर्जा के पांच उदाहरण लिखिये।
५. स्थितिज ऊर्जा के पांच उदाहरण लिखिये।
६ ऐसे पांच उदाहरण दीजिये जिनसे यह ज्ञात हो कि ऊर्जा के स्थानान्तरण के गुण का मानवीय उपयोगी कार्यों में लाभ लिया जाता है।
७. यह कहा जाता है कि उद्योग कुछ नहीं है केवल एक शक्ति का दूसरी शक्ति में परिवर्तन मात्र है। क्या आप इससे सहमत हैं ? अगर हैं तो ऐसे पांच उदाहरण दीजिये जिसमें यह प्रतिक्रिया लागू होती है।
८. क्या पदार्थ में जड़त्व होता है ?
९. द्रव और गैस में क्या अन्तर है ? उदाहरण सहित समझाइये।
१०. आइन्सटीन द्वारा दिया गया ऊर्जा का नया नियम क्या है ?
११. "शृङ्खलाबद्ध प्रतिक्रिया" (विखण्डन की) से आप क्या समझते हैं ?

'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिये—

१ तांबे में तन्यता (Ductibility) का गुण है।
२ काच भगुर (Brittle) पदार्थ है।
३. द्रवों में सतह का तनाव (Surface Tension) मौजूद होता है।
४. द्रव की आकृति में दृढ़ता होती है।
५. द्रव की सतह स्थिर हालत में क्षैतिज (Horizontal) नहीं होती।
६ गैस बर्तन के अन्दर रखी जाने पर दीवारों पर लम्बवत् दाब डालती है।
७. पिघले हुए ठोसों के हिमांक ऊंचे होते हैं।
८. गैस का कोई तल नहीं होता।
९. गैस के कण मिलकर फिर पहली अवस्था को ग्रहण कर सकते हैं।
१०. सब प्रकार के पदार्थ पांच तत्वों—पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु से मिलकर बने हैं।
११ परमाणु का विखण्डन नहीं हो सकता।
१२. इलैक्ट्रोन परमाणु के टूटने से प्राप्त होते हैं।
१३. इलैक्ट्रोन को परमाणु के 'मूल कण' कहा गया है।
१४. तनी हुई कमानी गतिज ऊर्जा का उदाहरण है।
१५. पहाड़ की ढलान पर रखा हुआ पत्थर स्थितिज ऊर्जा ग्रहण किये हुए होता है।
१६. ऊर्जा तथा पदार्थ का योग स्थिर होता है।
१७ प्राचीनकाल की भांति अब मनुष्य केवल प्राकृतिक साधनों पर ही निर्भर नहीं है।
[illegible] की प्रथम खोज 'अग्नि' थी।
[illegible] ज्ञान ने संस्कृति के प्रत्येक रूप में उसके विकास में सहयोग दिया है।

३. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—

१. विज्ञान""की अपेक्षा""अधिक है। (हानिकारक/लाभदायक)

२ ""जो प्राचीनकाल में भारतीयों में फैले हुए थे, वैज्ञानिक शिक्षा के फलस्वरूप कम हो गये हैं।

(रीति-रिवाज/अन्धविश्वास/विलग विचार)

३ इलेक्ट्रोन और प्रोटोन में से""अधिक भारी है।

(इलेक्ट्रोन/प्रोटोन)

४ सारे पदार्थ जो छोटे तत्वों से बनते हैं"" कहलाते हैं।

(कोष, तत्व, अणु)

५ द्रव्य का"" दशा में एक निश्चित रूप तथा आयतन होता है।

(ठोस, द्रव, गैसीय)

६ विद्युत शक्ति गतिज शक्ति में अथवा यांत्रिक शक्ति में ""की सहायता से परिवर्तित हो सकती है।

(विद्युत, उत्पादक, विद्युत मोटर, ताप उत्पादक)

७. कार्य करने की क्षमता को "" कहते हैं। (शक्ति, जीवन, सामर्थ्य)

८ कोयले को जलाने पर""""शक्ति पैदा होती है।

९. छत पर टंगे हुए छीके में"""" शक्ति विद्यमान है।

१०. रेडियम द्वारा विकिरित की जाने वाली एक्स-किरणों की तरह किरणों को"" किरणें कहते हैं।

(अल्फा किरणें, बीटा किरणें, गामा किरणें, न्यूट्रोन किरणें)

११. जो परमाणु सर्वप्रथम विखण्डित किये गये थे"" धातु के थे।

(यूरोनियम, लिथियम, थोरियम, प्लूटोनियम)

१२. वे तत्व जिनका पता उनकी रेडियो सक्रियता के कारण लगाया जा सकता है,"" "" कहलाते हैं।

(परमाणु तत्व, खतरनाक तत्व, रासायनिक दृष्टि से सक्रिय तत्व, अनुसंधानक तत्व)

चन्द्रोदय प्रिन्टर्स, जयपुर